कक्षा 11

प्रारम्भिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी

कक्षा 11
प्रारम्भिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी

प्रारंभिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी

कक्षा–11

अर्थशास्त्र विषय के लिए स्वीकृत पाठ्यपुस्तक

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक – प्रारंभिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी कक्षा–11

संयोजक :– **डॉ. शंकर लाल शर्मा,** सेवानिवृत प्राचार्य
श्री संत सुन्दरदास राजकीय महिला महाविद्यालय, दौसा

लेखकगण :– 1. **डॉ. रमेश चन्द्र अग्रवाल,** प्राचार्य
राजकीय गौरादेवी कन्या महाविद्यालय, अलवर

2. **डॉ. अरूण कुमार रघुवंशी,** सह आचार्य
पृथ्वीराज चौहान राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अजमेर

3. **डॉ. राजेश कुमार जांगिड,** सह आचार्य
एल.बी.एस. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली

4. **झाबर सिंह निठारवाल,** व्याख्याता
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, सांगानेर, जयपुर

5. **सेढुराम,** व्याख्याता
राजकीय आदर्श उच्च माध्यमिक विद्यालय, सायपुरा
(जमवारामगढ़), जयपुर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक – प्रारंभिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी कक्षा–11

संयोजक :– **डॉ. शंकर लाल शर्मा,** सेवानिवृत प्राचार्य
श्री संत सुन्दरदास राजकीय महिला महाविद्यालय, दौसा

लेखकगण :– 1. **डॉ. रमेश चन्द्र अग्रवाल,** प्राचार्य
राजकीय गौरादेवी कन्या महाविद्यालय, अलवर

2. **डॉ. अरूण कुमार रघुवंशी,** सह आचार्य
पृथ्वीराज चौहान राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अजमेर

3. **डॉ. राजेश कुमार जांगिड,** सह आचार्य
एल.बी.एस. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली

4. **झाबर सिंह निठारवाल,** व्याख्याता
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, सांगानेर, जयपुर

5. **सेदुराम,** व्याख्याता
राजकीय आदर्श उच्च माध्यमिक विद्यालय, सायपुरा
(जमवारामगढ़), जयपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुस्तक – प्रारंभिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी कक्षा–11

संयोजक :– डॉ. अनूप आत्रेय
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

सदस्य :– डॉ. अशोक सोनी
मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

श्री सतीश कुमार गुप्ता, प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, बूढ़ादीत, कोटा

श्री बनवारी लाल शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय वोकेशनल उच्च माध्यमिक विद्यालय, नयापुरा, कोटा

श्रीमती अनिता खींचड़, व्याख्याता
राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, मानसरोवर, जयपुर

श्री प्रकाश चन्द्र शर्मा, प्राध्यापक
राजकीय वरिष्ठ उपाध्याय संस्कृत विद्यालय, दौसा

श्री ओमप्रकाश कूकणा, व्याख्याता
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, नं.–9, श्रीगंगानगर

प्रस्तावना

" प्रारंभिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी" पुस्तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा निर्धारित कक्षा 11 के अर्थशास्त्र के नये पाठ्यक्रमानुसार लिखी गई है। प्रस्तुत पाठ्यक्रम में निहित यह दृष्टि कि अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को, अपनी शिक्षा के इस चरण को समाप्त करने से पहले, उसे सैद्धान्तिक विवेचन के धरातल से परिचित करा दिया जाए, अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

नये पाठ्यक्रम पर आधारित इस पुस्तक के लेखन में यह चेष्टा रही है कि विद्यार्थी अपनी भाषा, अपने परिवेश तथा अपने अनुभवो के माध्यम से आर्थिक व्यवहार के विवेचना की प्रक्रिया से न केवल परिचित हो वरन् अपने आर्थिक वातावरण के विषय में कुछ सोच–विचार भी कर सके। अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को समझने के लिए यथा संभव उदाहरणों एवं चित्रों का प्रयोग किया गया है। सांख्यिकी के अध्यायो को बोधगम्य बनाने के लिए सरल उदाहरण भी दिये गये है। प्रत्येक अध्याय के अंत में महत्वपूर्ण अध्ययन बिन्दु दिये गये है ताकि विद्यार्थियों को अपने स्तर पर अध्ययन करने में भी कोई कठिनाई न रहे।

पुस्तक के कलेवर को इस रूप में पाठको के समक्ष पस्तुत करने के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर के विभिन्न पदाधिकारियों द्वारा सभी आवश्यक सुविधाएं एवं सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए मैं आभारी हूं। इस पुस्तक के लिए लेखकगण ने जो परिश्रम किया है उनका मैं आभार प्रकट करता हूं।

पूर्व सावधानी एवं सतर्कता के उपरान्त भी कुछ त्रुटियां रहना संभव है। अतः प्रबुद्ध शिक्षकों व जिज्ञासु छात्रो से निवेदन है कि इसे नीर–क्षीर विवेक से ले, आत्मसात करेगे एवं आगामी संस्करण हेतु अपने बहुमूल्य सुझाव देकर अनुगृहीत करेंगे।

संयोजक

पाठ्सक्रम

अर्थशास्त्र

समय– 3.15 घण्टे **पूर्णांक–100**

खण्ड अ–प्रारभिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी

इकाई–1 परिचय **10**

1. अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाएं : धन, भौतिक कल्याण, दुर्लभता एवं विकास संबंधी परिभाषाएं।

2. अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र : उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व।

3. अर्थ व्यवस्था : अर्थ, प्रकार एवं विशेषताएं।

इकाई–2 सांख्यिकी अध्ययन की अवस्थाऐं **12**

1. सांख्यिकी का अर्थ एवं परिभाषा, क्षेत्र, अर्थशास्त्र में सांख्यिकी की भूमिका, सांख्यिकी की सीमाएं।

2. आंकड़ों का संग्रहण : प्राथमिक एवं द्वितीयक संमक, संग्रह की विधियां, संगणना एवं प्रतिदर्श, द्वितीयक संमकों के प्रमुख स्त्रोत।

3. आंकड़ों का वर्गीकरण : व्यक्तिगत, खण्डित एवं सतत् श्रेणी, अपवर्जी, समावेशी एवं संचयी आवृत्ति श्रेणियां।

4. आंकड़ों का प्रस्तुतिकरण : सारणीयन, रेखाचित्र द्वारा निरुपण, सरल दण्ड चित्र, आयत चित्र, आवृति वक्र, आवृति बहुभुज, वृत्तचित्र, ढाल की अवधारणा।

इकाई–3 केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप **14**

1. समान्तर माध्य : अर्थ, गणना एवं उपयोग।

2. माध्यिका : अर्थ, गणना एवं उपयोग।

3. बहुलक : अर्थ, गणना एवं उपयोग।

इकाई–4 भारतीय आर्थिक चिन्तन **14**

1. प्राचीन भारतीय आर्थिक अवधारणाएं : भारतीय वाड्.मय में आवश्यकता का प्रार्दुभाव, संयमित उपभोग, सह उपभोग, धनार्जन एवं धनार्जन की आचार संहिता, पर्यावरण का वैदिक स्वरुप।

2. कौटिल्य के आर्थिक विचार।

3. पं. दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचार।

4. प्रो. जे.के. मेहता के आर्थिक विचार।

खण्ड ब– भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई–1 स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था **05**

कृषि, उद्योग, आधारभूत संरचना की स्थिति।

इकाई–2 विकासात्मक नीतियां एवं अनुभव **15**

1. आर्थिक नियोजन– अर्थ, उद्देश्य, पंचवर्षीय योजनाओं का संक्षिप्त परिचय, 12वीं पंचवर्षीय योजना का विस्तृत विवेचन, नीति आयोग।

2. कृषिगत विकास– भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व, भूमि सुधार, कृषिगत उत्पादकता, कृषिगत आगतें, हरित क्रान्ति, कृषि वित्त, प्रदूषण रहित कृषि विकास।

3. औद्योगिक विकास– भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका, औद्योगिक विकास की समस्याएं , नवीनतम औद्योगिक नीति, लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका एवं समस्याएं, भारत के औद्योगिक विकास में 'मेक इन इंडिया' योजना की भूमिका।

इकाई–3 भारत का विदेशी व्यापार **06**

संरचना, दिशा, वर्तमान प्रवृत्तियां, नवीनतम आयात निर्यात नीति, निर्यात संवर्धन के उपाय, स्वदेशी की अवधारणा।

इकाई–4 भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष वर्तमान चुनौतियां **12**

1. निर्धनता– अर्थ, प्रकार, मापन, वर्तमान स्थिति, निर्धनता के कारण एवं निवारण के उपाय।
2. बेरोजगारी– अर्थ, प्रकार, मापन, वर्तमान स्थिति, बेरोजगारी के कारण एवं निवारण के उपाय।

3. पर्यावरण प्रदूषण– प्रकार, कारण, नियंत्रण के उपाय, सतत विकास की अवधारणा।

इकाई–5 राजस्थान की अर्थव्यवस्था **12**

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति।
2. राजस्थान में प्राकृतिक संसाधन : भूमि, जल, खनिज, वन। वर्तमान स्थिति, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं संवर्धन।

3. राजस्थान में मानव संसाधन विकास।

4. राजस्थान में पर्यटन विकास।
5. राजस्थान के आर्थिक विकास में बाधायें एवं निवारण के उपाय।

निर्धारित पुस्तक –

प्रारभिक अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।

विषय सूची

खण्ड – प्रथम

इकाई	क्र.स.	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
(1) परिचय			
	1.1	अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाएं	01–07
	1.2	अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र	08–14
	1.3	अर्थव्यवस्था	15–27
(2) सांख्यिकी अध्ययन की अवस्थाऐं	2.1	सांख्यिकी का अर्थ एवं परिभाषा	28–31
	2.2	आकड़ों का संग्रहण	32–37
	2.3	आकड़ों का वर्गीकरण	38–47
	2.4	आकड़ों का प्रस्तुतिकरण	48–59
(3) केन्द्रीय प्रवृति के माप	3.1	समान्तर माध्य	60–68
	3.2	माध्यिका	69–73
	3.3	बहुलक	74–81
(4) भारतीय आर्थिक चिंतन	4.1	प्राचीन भारतीय आर्थिक अवधारणाऐं	82–94
	4.2	कौटिल्य के आर्थिक विचार	95–103
	4.3	पं. दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचार	104–112
	4.4	प्रो. जे.के. मेहता के आर्थिक विचार	113–121

खण्ड – द्वितीय

(1) स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था	1.1	स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था	122–130
(2) विकासात्मक नीतियां एवं अनुभव	2.1	आर्थिक नियोजन	131–141
	2.2	कृषिगत विकास	142–154
	2.3	औद्योगिक विकास	155–171
(3) भारत का विदेशी व्यापार	3.1	भारत का विदेशी व्यापार	172–188
(4) भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष वर्तमान चुनौतियां	4.1	निर्धनता	189–201
	4.2	बेरोजगारी	202–215
	4.3	पर्यावरण प्रदूषण	216–225
(5) राजस्थान की अर्थव्यवस्था	5.1	भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति	226–231
	5.2	राजस्थान में प्राकृतिक संसाधन	232–241
	5.3	राजस्थान में मानव संसाधन विकास	242–251
	5.4	राजस्थान में पर्यटन विकास	252–260
	5.5	राजस्थान के आर्थक विकास में बाधाएं एवं निवारण के उपाय	261–266

अध्याय – 1.1

अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definition of Economics)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान। समाज में रहते हुए वह अनेक आर्थिक क्रियायें सम्पादित करता है। व्यक्तिगत तथा परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह वस्तुयें खरीदता है, कृषि करता है, उद्योग लगाता है, उत्पादित वस्तुओं को बेचता है, नौकरी करता है, किसी कारखाने में काम करता है, पैसे लेकर अपनी सेवायें देता है। ये सभी अर्थशास्त्र से जुड़ी हुई क्रियायें हैं।

मनुष्य द्वारा निर्मित समस्त कार्य–संगठन का अध्ययन ही अर्थशास्त्र है। सेम्यूलसन जैसे अर्थशास्त्री तो अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञानों की रानी (Queen of social sciences) कहते हैं। अर्थशास्त्र का समस्त ढांचा दो आधारों पर टिका हुआ है।

(i) साधन (resources)–जो सीमित (scarce) हैं।

(ii) आवश्यकतायें (wants) जो असीमित (unlimited) हैं।

मनुष्य या समाज सीमित साधनों (scarce resources) को किफायत के साथ प्रयोग करके वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करता है और उनके द्वारा अपनी आवश्यकताओं (wants) की पूर्ति करता है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा
(Definition of economics)

किसी भी विषय के अध्ययन से पूर्व उसकी परिभाषा का ज्ञान होना जरूरी है क्योंकि परिभाषा के द्वारा सम्बन्धित विषय की विषय सामग्री, प्रकृति तथा क्षेत्र के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। अर्थशास्त्र एक विकासशील शास्त्र है। आर्थिक क्रियाओं की प्रकृति में भिन्नता तथा निरन्तर हो रहे परिवर्तनों के कारण अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं रहा। समय–समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसकी अलग–अलग परिभाषायें दी है और प्रत्येक अर्थशास्त्री ने परिस्थितियों के अनुसार अर्थशास्त्र को परिभाषित किया है। श्रीमती बारबारा वूटन (Barbara wotten) ने सही लिखा है–"जहाँ छः अर्थशास्त्री होते हैं वहाँ सात मत होते हैं।"

अध्ययन की सरलता की दृष्टि से अर्थशास्त्र की परिभाषाओं को निम्नलिखित पांच बड़े भागों में बांटा जा सकता है:–

अर्थशास्त्र की परिभाषायें

(क) धन केन्द्रित परिभाषायें

(ख) कल्याण केन्द्रित परिभाषायें

(ग) दुर्लभता प्रधान परिभाषायें

(घ) आवश्यकता विहीन परिभाषायें

(ड.) विकास आधारित परिभाषायें

(क) धन केन्द्रित परिभाषायें
(Wealth Centred Definitions)

प्रो. एडम स्मिथ, जे.बी.से, वॉकर आदि अर्थशास्त्रियों ने ऐसी परिभाषायें दी हैं जिनका केन्द्र बिन्दु ''धन'' था। प्रो. एडम स्मिथ ने 1776 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ''राष्ट्रों के धन के स्वरूप तथा कारणों की खोज'' (An enquiry into the Nature and causes of wealth of Nations) में अर्थशास्त्र की परिभाषा निम्न दी ''अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है।'' (Economics is the Science of Wealth)

वॉकर (walker) के अनुसार–''अर्थशास्त्र ज्ञान के उस भाग का नाम है जिसका सम्बन्ध धन से है।''

जे.बी.से. (J.B.Say) के अनुसार–"अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन का अध्ययन करता है।"

संस्थापनवादी सभी अर्थशास्त्री यह मानते थे कि मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अन्तिम उद्देश्य धन अर्जित करना है। धन के अध्ययन पर अधिक बल देने के कारण अर्थशास्त्र के विषय में कई भ्रम पैदा करने वाले विचार उत्पन्न हो गये। इससे यह समझा जाने लगा कि अर्थशास्त्र तो मुनष्य को धन अथवा मुद्रा से मोह करने वाला बतलाता है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही कुछ अर्थशास्त्रियों ने ऐसा कहना प्रारम्भ कर दिया कि धन तो मानव जीवन के लिए एक

साधन मात्र है इसलिए इसकी उत्पत्ति के विश्लेषण मात्र से अर्थशास्त्र का सम्बन्ध जोड़ना अनुचित है। इस विचार की आलोचना हुई।

आलोचना

(1) **धन पर आवश्यकता से अधिक बल** – इन परिभाषाओं में धन पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है। धन को एक साध्य (goal of end) मान लिया गया है, जबकि धन की प्राप्ति साध्य नहीं अपितु साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(2) **आर्थिक मानव की कल्पना अनुचित** –प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य धन की प्रेरणा एवं अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर कार्य करता है। परन्तु वास्तव में ऐसा सोचना गलत है वास्तव में मनुष्य धन की प्रेरणा के अतिरिक्त मानवीय भावनाओं (जैसे दया, प्रेम, सहिष्णुता) आदि से प्रेरित होकर भी कार्य करता है।

(3) **अर्थशास्त्र के क्षेत्र को संकुचित किया**–प्राचीन अर्थशास्त्रियों की परिभाषाओं में धन में केवल भौतिक पदार्थों को ही शामिल किया है तथा सेवाओं (जैसे डाक्टर, इंजीनियर, वकील, अध्यापक आदि) को धन के अन्तर्गत नही माना, जिसके कारण अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी संकुचित हो गया।

(ख) कल्याण केन्द्रित परिभाषायें (Wealfare Centred Definitions)

19 वीं शताब्दी में अनेकों अर्थशास्त्रियों जिनमें–प्रो. मार्शल (Marshal) पीगू, जान स्टुअर्ट मिल (J.S.Mill) प्रमुख हैं, ने स्पष्ट किया कि अर्थशास्त्र का उद्देश्य केवल धन की प्रकृति एवं उत्पत्ति का विश्लेषण करना हीं नहीं है। धन की उत्पत्ति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि धन के उपयोग द्वारा अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जाये तथा भौतिक कल्याण में वृद्धि की जाए। मार्शल ने धन के स्थान पर मनुष्य के आर्थिक कल्याण (Economic welfare) पर अधिक जोर दिया।

मार्शल के अनुसार–"अर्थशास्त्र मानव जीवन के सामान्य व्यवसाय का अध्ययन है। इसमें व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्रियाओं के उस भाग की जांच की जाती है जो भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति एवं उपभोग से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है।"

पीगू के शब्दों में–"अर्थशास्त्र आर्थिक कल्याण का अध्ययन है और आर्थिक कल्याण के उस भाग तक सीमित रहता है जिसको प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सके।"

संक्षेप में मार्शल, पीगू आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र ''भौतिक कल्याण'' का अध्ययन है।''

मार्शल की परिभाषा की व्याख्या

1. **धन की तुलना में मनुष्य का महत्त्व अधिक**– मार्शल ने धन के स्थान पर मनुष्य के कल्याण पर अधिक बल दिया। उनके अनुसार ''धन मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य धन के लिए।'' अर्थात मनुष्य का कल्याण सबसे महत्त्वपूर्ण है।

2. **सामाजिक, सामान्य एवं वास्तविक मनुष्य के रूप में अध्ययन**–अर्थशास्त्र में सामाजिक (social) सामान्य (normal) तथा वास्तविक (real) मनुष्य द्वारा की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। एकान्तवासी, साधु, सन्यासी, असामान्य आदि मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जाता।

3. **मानव जीवन के सामान्य व्यवसाय का अध्ययन**–मार्शल ने मानव जीवन के सामान्य व्यवसाय का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया है इसमें मानवीय क्रियाओं के विभिन्न पहलुओं जैसे राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पहलू में से अर्थशास्त्र केवल आर्थिक पहलू का ही अध्ययन करता है। आर्थिक पक्ष में मनुष्य द्वारा की जाने वाली उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण व राजस्व आदि से सम्बन्धित क्रियायें आती है।

4. **मानव के भौतिक कल्याण का अध्ययन**–मार्शल के अनुसार मानव एक सामाजिक प्राणी है अतएव अर्थशास्त्र में मानव की उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध धन की प्राप्ति तथा उसके उपयोग से भौतिक कल्याण में वृद्धि करना है।

भौतिक कल्याण पर आधारित परिभाषाओं की आलोचनायें

सन 1932 में प्रो. रॉबिन्स ने अपनी पुस्तक "An Essay on the Nature and significance of economic science" में कल्याण प्रधान परिभाषाओं को संकुचित, अव्यावहारिक एवं भ्रामक बताया तथा मार्शल एवं उसके समर्थक अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाओं की आलोचना की जो निम्नानुसार हैं –

(1) **साधनों का भौतिक और अभौतिक वर्गीकरण अनुचित**–मार्शल ने अर्थशास्त्र के अध्ययन की विषय वस्तु को केवल भौतिक साधनों की प्राप्ति तथा उसके उपभोग तक ही सीमित रखा। परन्तु वास्तव में साधन अभौतिक (non-material) भी होते हैं जैसे डाक्टर, इंजीनियर, मजदूर, वकील आदि भी अपनी सेवाओं के द्वारा ही साधन प्राप्त करते हैं और इन सेवाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

(2) **अर्थशास्त्र केवल सामाजिक विज्ञान नहीं –** अर्थशास्त्र को केवल सामाजिक विज्ञान मानना अनुचित होगा क्योंकि आर्थिक नियम ऐसे है जो समाज में रहने वाले मनुष्यों पर भी उसी प्रकार लागू होते है जिस प्रकार समाज से बाहर रहने वाले व्यक्तियों पर। अतः अर्थशास्त्र एक मानव विज्ञान है। उदाहरण के तौर पर–उपयोगिता ह्रासनियम, सम सीमान्त उपयोगिता नियम आदि समान रूप से सभी व्यक्तियों पर लागू होते हैं।

(3) **अर्थशास्त्र का सम्बन्ध भौतिक कल्याण से स्थापित करना ठीक नहीं**–राबिन्स के अनुसार–"अर्थशास्त्र का सम्बन्ध चाहे किसी से भी हो इतना निश्चित है कि इसका सम्बन्ध भौतिक कल्याण के कारणों से नहीं है।" राबिन्स ने कई आधारों पर कल्याण सम्बन्धी धारणा को दोषपूर्ण माना–(क) बहुत सी क्रियायें जैसे मादक पदार्थों का उत्पादन तथा इनका उपभोग मानव कल्याण के हित में नही है परन्तु फिर भी अर्थशास्त्र में इनका अध्ययन किया जाता है। (ख) कल्याण का प्रामाणिक माप नहीं है। मुद्रा को भी कल्याण का प्रामाणिक माप नहीं माना जा सकता क्योंकि कल्याण मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक अभिव्यक्ति है।

(4) **अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है**–अर्थशास्त्र का जब कल्याण के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तो इसका अर्थ यह है कि अर्थशास्त्रियों को आर्थिक कार्यों की अच्छाई तथा बुराई के सम्बन्ध में निर्णय देना होता है। जो आदर्शात्मक विज्ञान (Normative science) से सम्बन्धित हो जाता है। रोबिन्स अर्थशास्त्र को एक वास्तविक विज्ञान (Positive science) मानते हैं जो अच्छाई एवं बुराई के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं देता, बल्कि जो स्थिति जैसी है उसका वैसा ही अध्ययन करता है।

(5) **अर्थशास्त्र का क्षेत्र संकुचित**–मार्शल द्वारा अर्थशास्त्र में अभौतिक साधनों की प्राप्ति एवं उपभोग, असामाजिक, असाधारण तथा अनार्थिक क्रियाओं के अध्ययन की उपेक्षा करना भी उनकी आलोचना का कारण बना।

(ग) दुर्लभता प्रधान परिभाषायें (Scarcity Centred Definitions)

प्रो. राबिन्स ने अर्थशास्त्र को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। उन्होने न तो धन पर अधिक जोर दिया और न मनुष्य के कल्याण पर बल्कि उन्होने व्यक्ति की असीमित आवश्यकताओं का सीमित साधनों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होने नवीन दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र को परिभाषित किया।

राबिन्स के अनुसार–"अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साध्यों (ends) तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों से सम्बन्धित मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।"

राबिन्स की परिभाषा की व्याख्या–राबिन्स ने अर्थशास्त्र की परिभाषा को नया रूप प्रदान किया इस परिभाषा के निम्नांकित चार बिन्दु महत्त्वपूर्ण हैं–

(1) मनुष्य की आवश्यकतायें (साध्य) अनन्त एवं असीमित हैं।

(2) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य के पास साधन (समय एवं धन) सीमित है। मनुष्यों को ऐसी स्थिति में आवश्यकताओं के बीच चुनाव करना पड़ता है।

(3) इन साधनों के वैकल्पिक प्रयोग हो सकते हैं। इसके कारण साधनों की सीमितता और अधिक बढ जाती है और मनुष्य को विभिन्न आवश्यकताओं के मध्य चुनाव

करना पड़ता है। चुनाव की आर्थिक समस्या सदा हमारे सामने बनी रहती है।

(4) आवश्यकताओं की तीव्रता में भी भिन्नता होती है–मनुष्य की आवश्यकता की तीव्रता एक समान नहीं है। कुछ आवश्यकतायें अधिक तीव्र होती है तथा कुछ कम तीव्र। आवश्यकताओं की तीव्रता में भिन्नता होने के कारण उनके बीच चुनाव करने में सहायता मिलती है। एक विवेकशील व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं को प्राथमिकता के क्रम में रखना पड़ता है।

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि असीमित आवश्यकताओं तथा सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों के बीच मानव व्यवहार का स्वरूप चुनाव करने (choice making) या निर्णय करने (decision making) का होता है। राबिन्स ने इसे आर्थिक समस्या (economic problem) कहा है।

राबिन्स की परिभाषा की आलोचना

राबिन्स द्वारा दी गयी परिभाषा को भी अर्थशास्त्री त्रुटि रहित नहीं मानते। इस परिभाषा की मुख्य आलोचनायें निम्नलिखित हैं–

(1) **अर्थशास्त्र के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक व्यापक बनाया –** प्रो. राबिन्स ने अर्थशास्त्र को मानव विज्ञान बताते हुए सभी प्रकार की मानवीय क्रियाओं के चयनात्मक पहलू को अर्थशास्त्र की विषय वस्तु माना है। इससे अर्थशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र आवश्यक रूप से व्यापक हो गया है और आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन, समस्याओं का विश्लेषण एवं विवेचन आदि जटिल हो गये है।

(2) **अर्थशास्त्र के सामाजिक स्वभाव (Social Character) पर उचित ध्यान नहीं दिया –** राबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र में समाज के बाहर रहने वाले व्यक्तियों की क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र की आवश्यकता तभी होती है जब आर्थिक समस्यायें सामाजिक महत्त्व का स्वरूप ले लेती हैं और मानवों के एक समूह की क्रियायें दूसरे समूह की क्रियाओं को प्रभावित करती हैं।

(3) **अर्थशास्त्र केवल मूल्य निर्धारण (Value Theory) नहीं –** राबिन्स की परिभाषा में केवल यह अध्ययन किया है कि विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में साधनों का वितरण किस प्रकार होता है और इसके परिणाम स्वरूप साधनों के मूल्य अथवा कीमत किस प्रकार निर्धारित होती हैं। परन्तु अर्थशास्त्र का क्षेत्र साधनों के आवंटन तथा मूल्य निर्धारण से भी कहीं विस्तृत है। हाल ही के वर्षो में आर्थिक विकास के सिद्धान्त (theory of economic growth) का महत्त्व बढ़ गया है।

(4) **उद्देश्यों के प्रति तटस्थता –** राबिन्स ने लिखा है–"अर्थशास्त्र का सम्बन्ध केवल साधनों से है उद्देश्यों का निर्धारण, जिनके लिए सीमित साधनों का प्रयोग किया जाता है, किस प्रकार से होगा? यदि हमें उद्देश्यों की सही जानकारी नहीं है तो सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग नहीं कर सकते। अर्थशास्त्र यदि उद्देश्यों के प्रति तटस्थ रहता है तो वर्तमान युग में आर्थिक योजनाओं का महत्त्व नहीं रह जाता।

(5) **अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान नहीं है कला भी है –** अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान मान लेने पर यह केवल सिद्धान्त निर्माण करने वाला शास्त्र मात्र रह जायेगा, आलोचकों का मानना है कि अर्थशास्त्र का कर्त्तव्य केवल उपकरणों का ही निर्माण करना नहीं है अपितु उपकरणों के प्रयोग की विधि पर भी प्रकाश डालना चाहिए। अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान के साथ–साथ आदर्श विज्ञान एवं कला भी है।

(6) **परिभाषा स्थैतिक है –** प्रो. राबिन्स साध्यों को दिए हुए अथवा स्थिर मानकर चलते हैं और उन दिए हुए साध्यों का साधनों से समन्वय बिठाया जाता है। जबकि व्यावहारिक जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, साधन भी बदलते रहते है अतएव राबिन्स की परिभाषा गत्यात्मक न होकर स्थैतिक है।

(7) **आर्थिक समस्या का कारण –** आर्थिक समस्या दुर्लभता के कारण ही जन्म लेती है राबिन्स का यह कथन सही नहीं है। आलोचकों के अनुसार आर्थिक समस्या सीमितता या दुर्लभता के कारण ही नहीं बल्कि कभी–कभी विपुलता के कारण भी जन्म लेती है। उदाहरणार्थ 1930 की आर्थिक मन्दी का कारण अति उत्पादन होना था।

आलोचनाओं के उपरान्त भी यह कहना न्याय संगत होगा कि राबिन्स की परिभाषा तार्किक (logical) है और यह

अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार (Scientific foundation) को मजबूत करती है। यह परिभाषा मानव व्यवहार के चुनाव करने के महत्त्वपूर्ण पहलू पर अधिक ध्यान केन्द्रित करती है। हाल ही के वर्षो में ''आर्थिक विकास'' का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है जिनमें राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, उत्पादन क्षमता का विकास, आदि विषय जो रोजगार में वृद्धि करते है इन सभी का समावेश राबिन्स की परिभाषा में देखने को नहीं मिलता।

आवश्यकता विहीन परिभाषा (Wantlessness Definition)

भारत के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं इलाहबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे.के.मेहता ने भारतीय दर्शन से प्रभावित होकर अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में पाश्चात्य दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण अपनाया तथा इसी आधार पर आवश्यकता विहीनता की परिभाषा दी। पश्चिमी दृष्टिकोण अधिकतम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में निहित है जबकि भारतीय दृष्टिकोण में अधिकतम सन्तुष्टि अथवा सन्तोष की प्राप्ति आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में नही वरन आवश्यकताओं की कमी करने में या आवश्यकताओं को समाप्त करने में है।

प्रो. मेहता के अनुसार ''अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मानवीय आचरण का इच्छा रहित अवस्था में पहुंचने के लिए साधन के रूप में अध्ययन करता है।''

उक्त परिभाषा से निम्नांकित तथ्य स्पष्ट होते हैं –

(1) मानव व्यवहार मस्तिष्क की बेचैनी अथवा संतुलनहीनता का परिणाम है। प्रो. मेहता ने मानसिक बेचैनी का कारण मनुष्य की आवश्यकताओं तथा उन्हे सन्तुष्ट करने के साधनों के बीच अन्तर होना माना है।

(2) मानव का अन्तिम लक्ष्य या उद्देश्य सुख प्राप्त करना है। इच्छारहित अवस्था में जबकि मानव मस्तिष्क पूर्ण सन्तुलित होता है उसे सुख कहा जाता है। अर्थशास्त्र का अन्तिम लक्ष्य इसी सुख को अधिकतम करना है।

(3) प्रो. मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र का उद्देश्य केवल सन्तुष्टि में वृद्धि करना नहीं बल्कि वास्तविक सुख में वृद्धि करने से है। वास्तविक सुख इच्छाओं में कमी करने से प्राप्त हो सकता है।

प्रो. मेहता के अनुसार – मानसिक संतुलन प्राप्त करने पर ही व्यक्ति को सुख का अनुभव प्राप्त होता है। मानसिक संतुलन प्राप्त करने के दो तरीके हैं –

(i) आवश्यकताओं तथा उनको सन्तुष्ट करने वाले साधनों के बीच अन्तराल को कम करना।

(ii) मस्तिष्क को ऐसी अवस्था में रखना जिसमें बाहरी शक्तियाँ उसे प्रभावित नहीं कर सके।

(4) मानव को आवश्यकता विहीन स्थिति प्राप्त करने के लिए अपने साधनों को उस सीमा तक घटाया जाना चाहिए ताकि मानसिक असन्तुलन उत्पन्न न हो सके। मानव को अपने अन्तिम लक्ष्य – आवश्यकता विहीन स्थिति तक पहुंचना चाहिए ताकि उसे आवश्यकताओं का कोई अनुभव ही न हों।

प्रो.मेहता के दृष्टिकोण की आलोचना

भारतीय दर्शन तथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर आधारित प्रो. मेहता की अर्थशास्त्र पर दी गयी परिभाषा की अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की है। आलोचकों के अनुसार वर्तमान युग भौतिकवादी युग है और इस भौतिकवादी युग में आवश्यकताओं को कम नहीं किया जा सकता। आज तो इन भौतिक आवश्यकताओं मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। प्रो. मेहता की परिभाषा की मुख्य आलोचनायें निम्नांकित हैं –

(1) **इच्छा रहित मानव की कल्पना भी मुश्किल –** आज के इस भौतिकवादी युग में साधारण से साधारण मनुष्य भी अधिकतम सुख प्राप्त करने के लिए आवश्यकताओं में कमी करने की नहीं सोचता। बल्कि यह सोचता है कि सुख एवं दुख दोनों तो मानव जीवन के अभिन्न अंग हैं जो सांसारिक जीवन में चलते रहते हैं। इच्छाओं में कमी नहीं की जा सकती।

(2) **अधिकतम सुख की धारणा सही नहीं –** आलोचक प्रो. मेहता की धारणा को विरोधाभासी मानते हैं उनके अनुसार प्रो. मेहता एक ओर तो आवश्यकताओं में कमी करने की बात करते है तथा दूसरी ओर अधिकतम सुख की धारणा को व्यक्त करते हैं। व्यवहार में जब हम इच्छाओं को धीरे–धीरे कम करने का प्रयास करते हैं तो हमें मानसिक कष्ट तो भोगना ही पड़ता है तब अधिकतम संतोष कैसे प्राप्त होगा।

(3) **अर्थशास्त्र का अस्तित्व विहीन होना –** अर्थशास्त्र

मुख्यतः आवश्यकताओं की असीमितता पर आधारित है। यदि आवश्यकताओं को धीरे–धीरे कम करके मनुष्य आवश्यकता विहीन स्थिति प्राप्त कर लेंगे तो सभी आर्थिक क्रियायें स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी। आर्थिक क्रियाओं के अभाव में अर्थशास्त्र अस्तित्व विहीन हो जाएगा।

(4) **अर्थशास्त्र पूर्णतः आदर्श विज्ञान नहीं –** प्रो. मेहता ने अर्थशास्त्र को एक आदर्श विज्ञान माना है जबकि आलोचक जिनमें प्रो. राबिन्सन भी एक हैं अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान मानते है।

वास्तव में प्रो. मेहता ने अपनी अर्थशास्त्र की परिभाषा में एक ऐसे युग की कल्पना की है जो आज के भौतिकवादी युग में सम्भव नहीं है। यह भी कहना सही नहीं है कि प्रो. मेहता का दृष्टिकोण केवल दरिद्र–साधु संन्यासियों के जीवन का ही समर्थन करता है। वास्तव में मानव जीवन में वास्तविक सुख की प्राप्ति का समर्थन प्रो. मेहता ने किया है।

(ड.) विकास आधारित या आधुनिक परिभाषाये (Development Based Definitions)

आज का युग विकास का युग है। अतएव अर्थशास्त्र विषय के विकास के साथ–साथ उसकी परिभाषा में भी परिवर्तन हो रहा है। राबिन्स (1932) की परिभाषा के उपरान्त अर्थशास्त्र की विषय सामग्री में बहुत विकास हो चुका है। विशेषतौर पर आर्थिक विकास (Economic development) से सम्बन्धित विषय सामग्री में वृद्धि हुई है। अब ऐसी परिभाषा की आवश्यकता महसूस होने लगी है जो न केवल सीमित साधनों के वितरण या आवन्टन पर ध्यान दे बल्कि आर्थिक विकास पर अधिक जोर दे। आधुनिक नोबल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री जिनमें प्रो. सेम्युलसन, पीटरसन, फर्ग्यूसन आदि है, ने भी अर्थशास्त्र को परिभाषित किया है।

प्रो. सेम्युलसन के अनुसार (Samuelson) – ''अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति और समाज अनेक प्रयोगों में आ सकने वाले उत्पादन के सीमित साधनों का चुनाव एक समयावधि में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में लगाने और उनको समाज में विभिन्न वस्तुओं और समूहों में उपभोग हेतु, वर्तमान व भविष्य में बांटने के लिए किस प्रकार करते हैं ऐसा वे चाहे द्रव्य का प्रयोग करे या इसके बिना करें। यह साधनो के आवंटन के स्वरूप में सुधार करने की लागतों एवं उपयोगिताओं का विश्लेषण करता है।''

प्रो. सेम्युलसन की परिभाषा को निम्नानुसार व्यक्त किया जा सकता है –

(1) सेम्युलसन मानव व्यवहार के चुनाव करने तथा साधनों की सीमितता को अधिक महत्त्व देते हैं।

(2) सेम्युलसन वस्तुविनिमय प्रणाली के अन्तर्गत साधनों के आवन्टन की समस्या को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

(3) सेम्युलसन की परिभाषा में गत्यात्मक दृष्टिकोण है। सेम्युलसन की परिभाषा में मार्शल तथा राबिन्सन दोनों की परिभाषाओं का समावेश है।

प्रो. के.जी.सेठ के अनुसार – अर्थशास्त्र उस मानव व्यवहार का अध्ययन करता है जो साध्यों के सन्दर्भ में साधनों के परिवर्तनों व विकास से सम्बन्धित होते है।''

प्रो. हिक्स के अनुसार – ''अर्थशास्त्र में मानव व्यवहार के विशिष्ट पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो व्यावसायिक कार्यकलापों का अध्ययन करता है।''

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र का विकासवादी एवं कल्याणकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिसे वास्तविकता के अधिक निकट माना जा सकता है –

महत्वपूर्ण बिन्दु –

- अर्थशास्त्र एक विकासशील एवं गतिमान शास्त्र है।
- अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं।
- धन प्रधान परिभाषायें – एडम स्मिथ, जे बी से, वॉकर आदि अर्थशास्त्रियों ने दी।
- धन प्रधान परिभाषा में अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु धन रहा।
- कल्याण आधिारित परिभाषायें –मार्शल, पीगू आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी।
- कल्याण आधारित परिभाषाओं का केन्द्र बिन्दु धन नहीं अपितु मानव कल्याण रहा।
- दुर्लभता प्रधान परिभाषायें – राबिन्स द्वारा दी गयी, इसके अन्तर्गत सीमित और अनेक उपयोग वाले साधनों से सम्बन्धित मानव–व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।
- विकास आधारित परिभाषा – प्रो. सेम्युलसन द्वारा दी गयी। इसमें साधनों के विकास तथा वृद्धि पर जोर दिया जाता है।

- आवश्यकता विहीन परिभाषा प्रो. जे के मेहता ने दी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. धन प्रधान परिभाषा किसने दी है ?
   (अ) मार्शल (ब) सेम्युलसन
   (स) एडमस्मिथ (द) राबिन्स ( )
2. अर्थशास्त्र की आर्थिक कल्याण सम्बन्धी परिभाषा दी है :
   (अ) राबिन्स ने (ब) पीगू ने
   (स) जे के मेहता ने (द) उपरोक्त सभी ( )
3. ''अर्थशास्त्र आर्थिक कल्याण काअध्ययन है'' यह परिभाषा सम्बन्धित है :
   (अ) धन प्रधान परिभाषा से
   (ब) आर्थिक विकास सम्बन्धी परिभाषा से
   (स) कल्याण सम्बन्धी परिभाषा से
   (द) दुर्लभता प्रधान परिभाषा से ( )
4. व्यक्ति की असीमित आवश्यकताओं का सीमित साधनों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किससे सम्बन्धित है ?
   (अ) धन प्रभान परिभाषा से
   (ब) आर्थिक विकास सम्बन्धी परिभाषा से
   (स) दुर्लभता प्रधान परिभाषा से
   (द) कल्याण सम्बन्धी परिभाषा से ( )
5. अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान किस अर्थशास्त्री ने माना है?
   (अ) मार्शल (ब) पीगू
   (स) रोबिन्स (द) जे एस मिल ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्थशास्त्र के विषय में मार्शल के विचार बताइए ?
2. अर्थशास्त्र सम्बन्धी स्मिथ की धन सम्बन्धी परिभाषा दीजिए?
3. अर्थशास्त्र की दुर्लभता सम्बन्धी परिभाषा दीजिए ?
4. मार्शल ने अर्थशास्त्र को कैसा विज्ञान बताया है ?
5. अर्थशास्त्र को चयन का विज्ञान किस अर्थशास्त्री ने परिभाषित किया?
6. राबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र कैसा विज्ञान है ?
7. जे. के. मेहता की आवश्यकता–विहीनता की परिभाषा क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. धन सम्बन्धी परिभाषा की कोई दो आलोचनायें लिखिए ?
2. मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र की प्रमुख विषय वस्तु धन न होकर मानव कल्याण है।'' इसे स्पष्ट कीजिए ?
3. राबिन्स ने आर्थिक समस्या किसे कहा है ?
4. अर्थशास्त्र की विकास आधारित परिभाषा के प्रमुख तत्त्व क्या हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्शल तथा राबिन्स की परिभाषाओं की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. कल्याण केन्द्रित परिभाषाओं की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ?
3. अर्थशास्त्र की विकास आधारित परिभाषाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए ? इस सन्दर्भ में भारतीय दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए ?
4. ''अर्थशास्त्र धन का विज्ञान था, अब वह मानव का विज्ञान है।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ?
5. अर्थशास्त्र की ''सीमितता'' की परिभाषा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ?

उत्तरमाला –

(1) स (2) ब (3) स (4) स (5) स

संदर्भ ग्रंथ

1. Marshall - Principles of Economics, 8th Edition.
2. Joan Robinson, The second Crisis of Economie theory (1974)
3. Boulding - "principles of economy"
4. Bobins - Nature and significance of economic science.

अध्याय – 1.2

अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र
(Nature and Scope of Economics)

अर्थशास्त्र की परिभाषाओं से सम्बन्धित विवाद ने अर्थशास्त्र में खोज के क्षेत्र की उचित सीमा निर्धारित करने में अनेक समस्यायें पैदा कर दी। अर्थशास्त्र एक विकासशील गतिमान सामाजिक विज्ञान है। इसके अन्तर्गत समस्त आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। वर्तमान में मानव जीवन की आर्थिक क्रियाओं में निरन्तर परिवर्तन होने और अर्थशास्त्र की परस्पर विरोधी परिभाषाओं के कारण अर्थशास्त्रियों में अर्थशास्त्र की प्रकृति तथा क्षेत्र के बारे में अनेक मतभेद पाये जाते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि अर्थशास्त्र का क्षेत्र संकुचित है तो कुछ अर्थशास्त्री इसके क्षेत्र को विस्तृत मानते हैं। प्रो. कीन्स ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में तीन तत्त्वों का समावेश किया है –

(1) अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री (subject matter)

(2) अर्थशास्त्र की प्रकृति या स्वभाव

(3) अर्थशास्त्र का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री
(Subject matter of economics)

अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के सम्बन्ध में निम्नांकित मुख्य दृष्टिकोण हैं –

(1) **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत (classical's views)** –इस दृष्टिकोण के समर्थकों में एडम स्मिथ, जे बी से, सीनियर, जे.एस.मिल आदि अर्थशास्त्री आते हैं। एडमस्मिथ की अर्थशास्त्र की धन पर आधारित परिभाषा में अर्थशास्त्र का सम्बन्ध धन कमाने और इकट्ठा करने के साथ है। इस विचारधारा के अनुसार धन क्या है इसका उपयोग कैसे किया जाता है, इसका वितरण कैसे किया जाता है आदि सभी बातों का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

(2) **कल्याणकारी अर्थशास्त्रियों का मत** – मार्शल, पीगू आदि अर्थशास्त्रियों ने धन की अपेक्षा मानव कल्याण को अर्थशास्त्र की प्रमुख विषय–वस्तु मानकर यह स्पष्ट किया है कि धन व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति धन के लिए। मार्शल ने भौतिक कल्याण से सम्बन्धित केवल आर्थिक क्रियाओं को ही अर्थशास्त्र की विषय वस्तु माना। राबिन्स की दुर्लभता पर आधारित परिभाषा ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र (scope) का और विस्तार किया। राबिन्स ने अर्थशास्त्र को मानवीय विज्ञान मानते हुए असीमित आवश्यकताओं तथा सीमित साधनों के बीच आर्थिक चुनाव के पहलू को अर्थशास्त्र की विषय सामग्री माना।

आर्थिक क्रियाओं के निरन्तर विभाजन ने अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री को व्यापक बना दिया। अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री को निम्नांकित पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है –

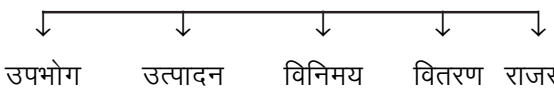

(1) **उपभोग (Consumption)** – उपभोग वह आर्थिक क्रिया है जिसका सम्बन्ध व्यक्तिगत तथा सामूहिक आवश्यकताओं से प्रत्यक्ष सन्तुष्टि के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं की उपयोगिता के उपभोग से है। उपभोग को अर्थशास्त्र का आदि एवं अन्त दोनो कहा जाता है क्योंकि उत्पादन, विनिमय, वितरण आदि सभी आर्थिक क्रियायें उपभोग के लिए ही की जाती हैं।

(2) **उत्पादन (Production)** – उत्पादन का सम्बन्ध वस्तुओं एवं सेवाओं की उपयोगिता या मूल्य में वृद्धि करने से है। ब्रेड बनाने की क्रिया उत्पादन है। उत्पादन के मुख्य साधन – भूमि, श्रम, पूंजी, संगठन व उद्यमी हैं।

(3) **विनिमय (Exchange)**– विनिमय क्रिया का सम्बन्ध किसी वस्तु के या साधन के क्रय–विक्रय से है। उत्पादित वस्तुओं के उपभोग तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विनिमय की आवश्यकता होती है।

वस्तु विनिमय प्रणाली में दोषों के कारण मुद्रा के आविष्कार ने विनिमय का कार्य सरल बना दिया। अब सभी वस्तुओं, साधनों का क्रय–विक्रय मुद्रा में किया जाता है। कीमत निर्धारण का सिद्धान्त मुद्रा पर ही आधारित है।

(4) **वितरण (Distribution) –** विभिन्न साधनों के सामूहिक प्रयासों का परिणाम उत्पादन है। अतः उत्पादन में से उत्पत्ति के प्रत्येक साधन के पारिश्रमिक का निर्धारण करना अति आवश्यक है, जो साधनों के बीच आय वितरण से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत यह ज्ञात किया जाता है कि राष्ट्रीय आय क्या है ? इसकी गणना कैसे की जाय, ब्याज, लगान, मजदूरी, लाभ का निर्धारण किस प्रकार हो। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि राष्ट्रीय आय का न्यायोचित वितरण हो रहा है अथवा नहीं। वर्तमान में राज्य का सर्वोपरि हित जनता का आर्थिक कल्याण करना हो गया है अतएव राज्य का हस्तक्षेप आर्थिक क्षेत्र में निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

(5) **राजस्व (Public Finance) –** अर्थशास्त्र के इस विभाग के अन्तर्गत सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण, घाटे की वित्त व्यवस्था, प्रशुल्क नीति आदि का अध्ययन किया जाता है। समय के साथ–साथ अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री में भी परिवर्तन होता जा रहा है।

अर्थशास्त्र की प्रकृति (Nature of economics)

अर्थशास्त्र की प्रकृति अथवा स्वभाव में निम्नलिखित प्रश्नों का अन्तर निहित है –

(1) क्या अर्थशास्त्र विज्ञान है ?

(2) यदि अर्थशास्त्र विज्ञान है तो वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान ?

(3) क्या अर्थशास्त्र कला है ?

(4) क्या अर्थशास्त्र विज्ञान एवं कला दोनों है

(A) क्या अर्थशास्त्र विज्ञान है (Is economics a Science)

विज्ञान ज्ञान का वह क्रमबद्ध और सम्पूर्ण अध्ययन है जो कारण और प्रभाव के सम्बन्ध की व्याख्या करता है। विज्ञान किसी भी घटना का वस्तुगत विश्लेषण करता है, उसका क्रमबद्ध अध्ययन करता है और इस विश्लेषण तथा अध्ययन के आधार पर किसी भी तथ्य का पूर्वानुमान कर भविष्यवाणी करता है। निम्नलिखित तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र विज्ञान है –

(1) **वैज्ञानिक रीति का प्रयोग –** आर्थिक घटनाओं के कारण और परिणाम के सम्बन्ध को ज्ञात करने के लिए तथा आर्थिक सिद्धान्तों एवं नियमों के निर्माण के लिए अर्थशास्त्र वैज्ञानिक रीति का प्रयोग करता है। व्यक्तियों अथवा समूहों के व्यवहार के सम्बन्ध में अवलोकन किया जाता है, परिकल्पनायें (hypothesis) बनायी जाती हैं, परिकल्पनाओं की जांच की जाती है, तदुपरान्त आर्थिक नियम की रचना की जाती है। अर्थात् अर्थशास्त्र में वैज्ञानिक रीति का प्रयोग होता है।

(2) **व्याख्या करने की शक्ति (Power to explain)** सामान्य नियमों का निर्माण करके अर्थशास्त्र एक सही एवं उचित मात्रा में आर्थिक घटनाओं की व्याख्या करने की शक्ति भी रखता है।

(3) **भविष्यवाणी करना (Power of prediction)** क्योंकि अर्थशास्त्र में व्याख्या करने की शक्ति है इसलिए अर्थशास्त्र में आर्थिक घटनाओं की भविष्यवाणी करने की शक्ति भी होती है। वर्तमान में गणितात्मक एवं सांख्यिकीय रीतियों और आधुनिक कम्प्यूटरों के प्रयोग तथा अर्थ–नीति के अत्यधिक विकास से अर्थशास्त्र विषय की भविष्यवाणी करने की शक्ति और बढ़ गयी है।

(4) **क्रमबद्ध अध्ययन (Systematic Study)** अर्थशास्त्र में केवल एक ही विषय अर्थात् धन से सम्बन्धित परस्पर निर्भर क्रियाओं जैसे उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण, आदि का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है।

(5) **नियमों की सत्यता (Validity of laws)** प्रत्येक विज्ञान में नियमों की सत्यता की जांच होती है। अर्थशास्त्र के नियम भी मानवीय प्रकृति पर आधारित हैं जो संसार के सभी देशों के निवासियों पर समान रूप से लागू होते हैं।

(6) **कारण – परिणाम का सम्बन्ध –** अर्थशास्त्र के

कई नियम (जैसे–उपयोगिता ह्रास नियम, सम सीमांत उपयोगिता नियम, मांग का नियम आदि) ऐसे हैं जो कि कारण – परिणामों को स्पष्ट करते हैं। इस आधार पर अर्थशास्त्र विज्ञान है।

अर्थशास्त्र के विज्ञान होने के विपक्ष में तर्क (Economics is a science, arguments against it)

अनेक विद्वान अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को विज्ञान नहीं मानते तथा वे इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क देते हैं –

(1) **एकरूपता का अभाव –** किसी विशेष घटना के सम्बन्ध में अर्थशास्त्र में एकरूपता नहीं पायी जाती अर्थात् किसी एक घटना का विश्लेषण किसी एक माध्यम के द्वारा नहीं किया जाता। दी गयी घटना का अध्ययन विभिन्न अर्थशास्त्री विभिन्न माध्यमों से करते हैं।

(2) **मत–विभेद (dis arguments)–** यह भी कहा जाता है कि अर्थशास्त्रियों में बहुत अधिक मत–विभेद पाये जाते हैं। मत–विभेद की स्थिति में विद्वान अर्थशास्त्र को विज्ञान की श्रेणी में नहीं मानते।

(3) **वस्तुपरक (objective) नहीं –** प्राकृतिक विज्ञानों की भांति अर्थशास्त्र वस्तु–परक नहीं हो सकता क्योंकि अर्थशास्त्र की विषय–वस्तु मनुष्य है। अर्थशास्त्र मनुष्यों से जुड़ी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है न कि निर्जीव वस्तुओं का। अर्थशास्त्री भी एक मनुष्य है। अतएव उसके दृष्टिकोण तथा मत उसके विश्लेषणों और खोजो को प्रभावित करते हैं। अतएव अर्थशास्त्र वस्तु–परक विज्ञान नहीं हो सकता।

(4) **आर्थिक नियम निश्चित नियम नहीं (Economic laws are not exact) –** प्राकृतिक विज्ञानों के नियम सामान्य तथा पूर्णरूप से निश्चित नियम होते हैं जैसे गुरूत्वाकर्षण का नियम। परन्तु अर्थशास्त्र के नियम पूर्णरूप से निश्चित नहीं होते।

(B) वास्तविक विज्ञान बनाम आदर्शात्मक विज्ञान (Positive Science or Normative Science)

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है तो अब प्रश्न यह उठता है कि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान है या आदर्शात्मक विज्ञान भी है। इनकी व्याख्या करने से पूर्व इनका अर्थ समझना उपयुक्त होगा –

वास्तविक विज्ञान (Positive economics) – वास्तविक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र कारणों एवं परिणामों के बीच सम्बन्ध को बताता है। यह इस बात की व्याख्या करता है कि यह क्या होता है ? क्यों होता है? और कैसे होता है। यह आर्थिक कार्यो की अच्छाई या बुराई, सही या गलत के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकता। यह विवेक पर आधारित है।

आदर्शात्मक विज्ञान (Normative science) – आदर्शात्मक विज्ञान नीति सम्बन्धी तथ्यों का विवेचन करता है अर्थात क्या होना चाहिए (**what ought to be**)। किसी दी हुई परिस्थिति में क्या करना चाहिए। आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं एवं कार्यो की अच्छाई तथा बुराई पर प्रकाश डालता है।

अर्थशास्त्र के वास्तविक पहलू होने के पक्ष में तर्क (Economics is positive science**) –** प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में प्रो जे.बी.से. सीनियर तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों में प्रो राबिन्स ने अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान माना है। राबिन्स के अनुसार ''अर्थशास्त्र जांचने योग्य तथ्यों का अध्ययन करता है जबकि नीति शास्त्र मूल्यांकनों तथा खोज के तथ्यों का अध्ययन करता है।

(1) अर्थशास्त्र में वास्तविक दृष्टिकोण क्रमबद्ध, तर्कपूर्ण तथा ठीक आर्थिक निष्कर्ष प्रदान कर सकता है क्योंकि कारण–परिणाम सम्बन्ध का आधार तर्क ही है।

(2) वास्तविक दृष्टिकोण वास्तविक मान्यताओं और वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर मजबूत आर्थिक सिद्धान्त बना सकता है।

(3) अर्थशास्त्र में यदि केवल आर्थिक क्रियाओं की वास्तविकता का अध्ययन किया जाएगा तो इससे अर्थशास्त्रियों में मतभेद कम होगा, उनमें अधिक सहमति बनेगी और अर्थशास्त्र की प्रकृति भी तेज होगी।

(4) प्रो. राबिन्स ने लिखा है कि साधनों की कमी को देखते हुए मनुष्य को अपनी श्रेष्ठ कार्य– कुशलता के अनुसार कार्य करना चाहिए। वही कार्य उसे करना चाहिए जिसमें वह विशिष्टता रखता हो। यदि मानव सभी कार्यों को करने लगेगा तो उसका समय तथा धन दोनों का अपव्यय होगा। अतः अर्थशास्त्री को कारण

तथा परिणाम तक ही सीमित रहना चाहिए। क्या करना चाहिए, क्या नहीं इस पर अर्थशास्त्री को ध्यान नहीं देना चाहिए।

अर्थशास्त्र के आदर्शवादी पहलू होने के पक्ष में तर्क

अनेकों अर्थशास्त्री फ्रेजर (Fraser) हेन्डरसन एन्ड क्वान्ट (Handerson and Quandt) आदि अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान मानते हैं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं–

(1) **मानव भावुक एवं तार्किक दोनों –** मनुष्य तार्किक होनें के साथ भावुक भी होता है, अतएव मानव व्यवहार के दोनो दृष्टिकोणों का अध्ययन आवश्यक होता है अर्थात अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान के साथ आदर्शात्मक विज्ञान भी है।

(2) **अधिक उपयोगी –** अर्थशास्त्र वास्तव में सामाजिक कल्याण का वाहक है। अतएव एक आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में इसका उपयोग अधिक महत्वपूर्ण होगा। अर्थशास्त्री को आर्थिक क्रियाओं के अध्ययन के साथ–साथ यह भी विचार करना चाहिए कि इसे अधिक उपयोगी, प्रभावशाली कैसे बनाया जाये।

(3) **श्रम–विभाजन का गलत तर्क (**Wrong Argument of Division of Labour**) –** यह तर्क सही नहीं है कि अर्थशास्त्री किसी विषय का अध्ययन करें, कारण – परिणाम के सम्बन्ध की व्याख्या करें और समाधान खोजने की जिम्मेदारी नीति शास्त्रियों या राजनेताओं को दे दी जाये। इससे वास्तविक विश्लेषण नीरस तथा प्रेरणा रहित हो जाएगा तथा श्रम एवं शक्ति की बचत नहीं होगी। अतएव निर्णय क्षमता भी अर्थशास्त्री के पास ही रहनी चाहिए।

(4) **अधिक यथार्थवादी होना (**More realistic**) –** अर्थशास्त्र के स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है। आज अर्थशास्त्र कल्याणकारी अर्थशास्त्र के रूप में तेजी से विकास हो रहा है। आर्थिक नियोजन तथा सामाजिक सुरक्षा जैसे विषय अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण विषय बन गये हैं। ऐसी स्थिति में अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू की अवहेलना नहीं की जा सकती। अधिक यथार्थवादी स्थिति तब कही जायेगी जब अर्थशास्त्री आर्थिक विकास की गति तेज करने, अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर बढ़ाने, आर्थिक स्थायित्व जैसे विषयों पर ठोस उपाय सुझावें।

(5) **समाज उत्थान में सहायक –** अर्थशास्त्र यदि समाज के उत्थान के लिए (social betterment) कार्य करता है तो आदर्शात्मक पहलू उसके लिए भुलाया नहीं जा सकता। अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान भी है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र एक वास्तविक तथा आदर्शात्मक दोनों प्रकार का विज्ञान है। अर्थशास्त्र को हम विशुद्ध एवं यथार्थवादी अर्थशास्त्र मान सकते हैं परन्तु व्यावहारिक उपभोग के साधन के रूप में कुछ आदर्शात्मक लक्ष्यों को भी रखना चाहिए ताकि चारित्रिक महत्ता भी बनी रहे।

(C) अर्थशास्त्र कला के रूप में (Economics is an Art)

अर्थशास्त्र कला है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं। अर्थशास्त्रियों का एक वर्ग जिसमें एडम स्मिथ, रिकार्डो, मिल, मार्शल, पीगू आदि आते हैं अर्थशास्त्र को कला मानते हैं। जबकि अर्थशास्त्रियों का दूसरा वर्ग जिसमें वालरस, शुम्पीटर, सीनियर आदि आते हैं वे अर्थशास्त्र को कला नहीं मानते।

अर्थशास्त्र कला है अथवा नहीं इसका परीक्षण करने से पूर्व हम यह जानते है कि कला शब्द का अर्थ क्या है ?

कला का अर्थ (Meaning of Art**) –** सामान्य अर्थ में किसी लक्ष्य की पूर्ति को कार्य कुशलता के साथ करना ही कला है। कला हमें व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है। यह समस्या का केवल विश्लेषण ही नहीं करती अपितु समाधान भी करती है। प्रो. कीन्स के अनुसार – कला ज्ञान की वह शाखा है जो निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक सर्व श्रेष्ठ तरीका बताती है।

अर्थशास्त्र को कला न मानने के पक्ष में तर्क (Arguments against treating economics as an Art) –

(1) कला तथा विज्ञान की प्रकृति में अन्तर है। विज्ञान किसी विषय की खोज तथा उसकी व्याख्या करता है जबकि कला किसी विषय की व्यावहारिक जानकारी देती है। सिद्धान्त निर्माण विज्ञान करता है जबकि

सिद्धान्तों को असली जामा कला पहनाती है। अतएव अर्थशास्त्र को यदि विज्ञान माना जाय तो यह कला नहीं हो सकता।

(2) आर्थिक समस्यायें सदैव आर्थिक नहीं होती बल्कि वे सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होती हैं। अतएव यह सम्भव नहीं है कि केवल आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर ही अर्थशास्त्री समस्याओं के समाधान के लिए उचित नीति का निर्माण कर सकें।

(3) अर्थशास्त्र का कार्य नीति–निर्धारण करना ही नहीं है अपितु समस्याओं का विश्लेषण करना भी है। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष नहीं देते जिनका नीति के रूप में तत्काल प्रयोग किया जा सके। अर्थशास्त्र एक रीति है विश्वास नहीं। जब नीति निर्धारण में आर्थिक नियमों को तत्काल प्रयोग में नही लाया जा सकता तो अर्थशास्त्र को कला कहना भी उचित नहीं है।

(4) अर्थशास्त्र का स्वरूप विशुद्ध विज्ञान जैसा है अतएव इस स्वरूप को बनाये रखने के लिए इसे कला मानना ठीक नहीं है। अर्थशास्त्री को तो एक विशेषज्ञ के रूप में ही कार्य करना चाहिए।

(5) प्रो. कीन्स का मानना है कि ''अर्थशास्त्र के सिद्धान्त ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष प्रदान नहीं करते है जिन्हे तत्काल नीति निर्धारण में प्रयोग किया जा सके। यह तो विश्लेषण करने का एक ढंग है, विचार करने की विधि तथा मस्तिष्क का एक यन्त्र है। जो इसको काम में लेने वाले को सही निष्कर्ष निकालने में मदद करता है। अर्थात् अर्थशास्त्री आर्थिक समस्याओं का तत्काल समाधान प्रदान नहीं करता।

अर्थशास्त्र को कला मानने के पक्ष में तर्क (Arguments in favour of treating Economics as an Art)

(1) जो समस्याएँ विशुद्ध रूप से आर्थिक प्रकृति की होती हैं उन पर अन्तिम निर्णय अर्थशास्त्री ही ले सकता हैं, उदाहरण के तौर पर विनिमय दर, बैंक दर, आदि समस्यायें अर्थशास्त्री से ही सम्बन्धित हैं और समाधान भी अर्थशास्त्री ही दे सकता है। रोजगार नीति, कर नीति आदि का निर्धारण भी राजनेता तभी कर सकता है जब उसे इससे सम्बन्धित पर्याप्त आर्थिक दृष्टिकोण का ज्ञान हो।

(2) अर्थशास्त्र का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि वह व्यक्ति अथवा समाज के कल्याण को अधिकतम करे। एक निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्री या सरकार द्वारा अपनायी गयी नीतियों को कला कहा जाएगा।

(3) अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में निसन्देह सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्माण करता है। सिद्धान्तों तथा नियमों की पुष्टि तभी होगी जब उन्हें क्रियान्वित किया जाता है। आर्थिक नियमों तथा सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग ही अर्थशास्त्र को कला बनाता है।

(4) वर्तमान में व्यावहारिक अर्थशास्त्र का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अर्थशास्त्री अपना अधिकतम समय जीवन की वास्तविक समस्याओं जैसे कीमत वृद्धि, बेरोजगारी, आर्थिक विकास, मुद्रा स्फीति आदि से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने में ही लगा रहता है। अतएव अर्थशास्त्र को कला मानना उचित है।

(5) यदि कला के रूप में अर्थशास्त्र का अध्ययन किया जाता है तो इससे आर्थिक सिद्धान्तों की जांच करने में भी सहायता मिलेगी तथा सिद्धान्त के सही अथवा गलत होने का पता भी लगाया जा सकता है जिससे नये सिद्धान्त का प्रतिपादन सम्भव है।

(6) वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में नियोजन प्रणाली अर्थ व्यवस्था का आधार बनती जा रही है। विश्व के अधिकांश देश नियोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया अपनाकर आर्थिक समस्याओं का निराकरण कर विकास की गति को बढ़ा रहे हैं। अतः अर्थशास्त्र का कला रूप में अध्ययन आवश्यक है।

(7) अर्थशास्त्र का कला रूप इसके वैज्ञानिक स्वरूप में बाधा उत्पन्न नहीं करता। अर्थशास्त्र में सत्य की खोज ही अपने आप में पर्याप्त नहीं है बल्कि यह भी आवश्यक है कि उनके द्वारा आर्थिक समस्याओं का व्यावहारिक हल भी प्रस्तुत किया जाय। अर्थशास्त्र मानवीय समस्याओं को हल करने में भी सहायक होना चाहिए।

(D) अर्थशास्त्र की वास्तविक प्रकृति : अर्थशास्त्र विज्ञान एवं कला दोनों
(Real nature of economics: economics is science as well as Art)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र विज्ञान के साथ–साथ कला भी है। विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान ही नहीं अपितु आदर्श विज्ञान भी है। अर्थशास्त्र विषय के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों का अध्ययन करता है। सैद्धान्तिक पक्ष इसके वैज्ञानिक स्वरूप से सम्बन्धित है जबकि व्यावहारिक पक्ष कला से सम्बन्धित है। सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र विज्ञान है तथा व्यावहारिक अर्थशास्त्र कला। एक अर्थशास्त्री के भी वैज्ञानिक की भांति दो रूप हो सकते है। एक वैज्ञानिक के रूप में तथा एक अच्छे नागरिक के रूप में। सभी नागरिकों की भांति अर्थशास्त्री को भी यह अधिकार प्राप्त है कि वह राष्ट्र के महत्त्व के विषयों में भाग ले, बहस करें, तथा राष्ट्र के लिए तकनीकी सलाहकार के रूप में कार्य करें। सारांश में प्रो. कौसा ने ठीक ही लिखा है – ''विज्ञान को कला की आवश्यकता है तथा कला को विज्ञान की आवश्यकता है दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।''

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- अर्थशास्त्र की प्रकृति के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं कि यह विज्ञान है या कला अथवा विज्ञान एवं कलादोनों।
- अर्थशास्त्र की विषय सामग्री को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है – उपभोग, विनिमय, वितरण, उत्पादन, राजस्व।
- अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान होने के साथ – साथ आदर्शात्मक विज्ञान भी है।
- अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान भी है अतएव विभिन्न आर्थिक घटनाओं के सम्बन्ध में नैतिक निर्णय लेते हुए इनकी अच्छाई का अध्ययन करना भी आवश्यक है।
- जो शास्त्र कारण एवं परिणाम के सम्बन्ध की व्याख्या करता है विज्ञान कहलाता है।
- ज्ञान की वह शाखा जो निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक सर्वश्रेष्ठ तरीका बताती है उसे कला कहा जाता है।
- अर्थशास्त्र की नयी शाखा ''विकास अर्थशास्त्र'' के अन्तर्गत विकास के मुख्य तत्त्वों, मापदण्डों आदि का अध्ययन किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) आदर्शात्मक विज्ञान का सम्बन्ध है –
(अ) क्या है से (ब) क्या होना चाहिए से
(स) कहाँ है से (द) कहाँ था से ( )

(2) वास्तविक विज्ञान का सम्बन्ध निम्न में से किससे है –
(अ) क्या है (ब) कहाँ था
(स) कहाँ है (द) क्या होना चाहिए ( )

(3) क्या होना चाहिए, विषय वस्तु है –
(अ) वास्तविक विज्ञान की
(ब) आदर्श विज्ञान की
(स) कला की
(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्थशास्त्र की विषय सामग्री को कितने भागों में विभाजित किया जाता है ?
2. उपभोग क्रिया क्या है ?
3. उत्पादन क्रिया क्या है ?
4. वितरण किसे कहते है ?
5. विनिमय क्या है ?
6. वास्तविक विज्ञान किसे कहते हैं ?
7. आदर्शात्मक विज्ञान क्या है ?
8. कला किसे कहते हैं ?
9. आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र किन प्रश्नों को हल करता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के अंगो को स्पष्ट कीजिए ?
2. ''अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ?
3. ''क्या अर्थशास्त्र विज्ञान है।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ?
4. ''किसी कार्य को सर्वोत्तम ढंग से करने की क्रिया कला हैं।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अर्थशास्त्र विज्ञान है अथवा कला या दोनों। व्याख्या कीजियें?
2. अर्थशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र की व्याख्या कीजियें ?
3. विज्ञान का अर्थ क्या है ? क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है ? इस कथन की व्याख्या कीजियें?
4. अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है या आदर्शात्मक विज्ञान अथवा दोनो। व्याख्या कीजियें ?

उत्तरमाला–

(1) ब (2) अ (3) ब

संदर्भ ग्रंथ

1. Marshall, - Principles of Economics, 8th Edition.
2. Joan Robinson, The second Crisis of Economie theory (1974)
3. Boulding - "principles of economy"
4. Bobins - Nature and significance of economic science.

अध्याय – 1.3

अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली
(Economy or economic System)

अर्थव्यवस्था का अर्थ
(Meaning of an Economy)

''आर्थिक प्रणाली से हमारा अभिप्राय अर्थव्यवस्था की उस वैधानिक एवं संस्थागत संरचना से है, जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण आर्थिक क्रियायें सम्पादित की जाती हैं।'' इससे यह स्पष्ट है कि जिस संस्थागत संरचना के अन्तर्गत मानव से सम्बन्धित उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं का सम्पादन होता है उसे आर्थिक प्रणाली (Economic System) या आर्थिक संगठन (Economic organisation) की पद्धति कहते है। एक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी आजीविका कमाते है तथा आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत उनके तौर तरीकों, नियमों तथा संस्थाओं को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा अर्थव्यवस्था का संचालन होता है।

परिभाषा (definition) अनेक विद्वानों ने अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली को परिभाषित करने का प्रयास किया है –

प्रो. ए.जे. ब्राउन के शब्दों में ''अर्थव्यवस्था का प्रयोग अधिकतर ऐसी प्रणाली के लिए किया जाता है, जिसके द्वारा मानव का जीवन निर्वाह होता है।'' सरल शब्दों में अर्थव्यवस्था अथवा आर्थिक प्रणाली से हमारा अभिप्राय उस पद्धति से है जिसके आधार पर किसी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन हेतु पारस्परिक सहयोग प्रदान करते हैं ताकि वे अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सकें।

वर्तमान में अर्थशास्त्रियों का अधिक बल आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) अथवा आर्थिक विकास (Economic development) के पहलू पर रहा है। इसीलिए सभी राष्ट्रों में मानवीय आर्थिक क्रियाओं पर राज्य का न्यूनाधिक हस्तक्षेप दिखाई पड़ता है। और इसी कारण से अर्थ व्यवस्था या आर्थिक प्रणाली का स्वरूप बहुत कुछ राज्य द्वारा की जाने वाली हस्तक्षेप की मात्रा, प्रकृति, सीमा तथा सामाजिक परम्पराओं पर निर्भर करता है।

अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषतायें
(Salient features of an economy)

1. **अर्थव्यवस्था का आधार व्यक्ति समूह है –** अर्थव्यवस्था की धारणा किसी निजी क्षेत्र विशेष के लोगों की जीवन निर्वाह पद्धति से सम्बन्धित है। जो आजीविका कमाने के लिए उत्पादन प्रक्रिया का हिस्सा बनते हैं और अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करते हैं। अर्थात् अर्थव्यवस्था मानव निर्मित होती है तथा आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करती है।

2. **अर्थव्यवस्था की अनिवार्य प्रक्रियायें –** अर्थव्यवस्था की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि अर्थव्यवस्था की तीन अनिवार्य प्रक्रियायें – उत्पादन, उपभोग, विनियोग हैं जो व्यक्ति और समूह के जीवन निर्वाह से सम्बन्ध रखती हैं और निरन्तर जीवन में चलती रहती हैं।

(क) उत्पादन (Production) – इसके अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन का समावेश होता है जो आवश्यकता, कुशलता, उत्पादन की तकनीक व आर्थिक साधनों की मात्रा पर निर्भर करता है।

(ख) उपभोग (consumption) – के अन्तर्गत व्यक्ति समूह की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रयोग के द्वारा की जाती है।

(ग) विनियोग (Investment) – पूँजी की मात्रा (स्टॉक) में गत वर्ष की तुलना में वर्तमान वर्ष में होने वाली विशुद्ध वृद्धि को विनिमय कहते है।

3. **अर्थव्यवस्था के लिए विनिमय आवश्यक –** उत्पादन का अन्तिम लक्ष्य उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना होता है। सभी अर्थव्यवस्थाओं में उपभोक्ता को चुनाव की स्वतन्त्रता देनी होती है और इसके लिए विनिमय प्रक्रिया की व्यवस्था करनी पड़ती है। जैसे खाद्य दुकानें, उपभोक्ता

भण्डार आदि।

4 **अर्थव्यवस्था पर सरकारी नियन्त्रण –** अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली पर अनेकों विकासात्मक उत्तरदायित्व आ गये हैं अतएव अब पूंजीवादी देश की अपनी पुरानी ''स्वतन्त्रता की नीति'' में अधिक विश्वास न कर राज्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका का समर्थन करने लगे हैं। मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति में समन्वय के द्वारा आर्थिक विकास की गति, रोजगार के स्तर को अधिक तेजी से बढ़ाया जा सकता है।

आर्थिक संगठन या आर्थिक प्रणाली के रूप (Forms of economic organisation or Economic system)

मानव की आर्थिक क्रियाओं पर वर्तमान में बढ़ते राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा, प्रकृति, सीमा, सामाजिक नियमों, आर्थिक परम्पराओं तथा आर्थिक संगठन की संरचना में भिन्नता के कारण वर्तमान में अर्थव्यवस्था के विभिन्न रूप दृष्टिगत होते हैं। अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है –

अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण

1. उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के आधार पर	1. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था 2. समाजवादी अर्थव्यवस्था 3. मिश्रित अर्थव्यवस्था
2. विकास के स्तर पर	1. विकासशील अर्थव्यवस्था 2. विकसित अर्थव्यवस्था

उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्थाओं के निम्नलिखित स्वरूप दिखायी पडते हैं –

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था–या स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था (Capitalism or Free economy)

पूंजीवादी प्रणाली अथवा पूंजीवाद का जन्म 18वीं शताब्दी के उपरान्त इंग्लैड में तथा यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के साथ हुआ। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें उत्पत्ति तथा वितरण के साधनों पर निजी स्वामित्व एवं नियन्त्रण होता है। फर्ग्यूसन एवं क्रिप्स के शब्दों में ''पूंजीवाद वह प्रणाली है जिसमें निजी सम्पत्ति हो तथा आर्थिक निर्णय निजी रूप से लिये जाते हों।''

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विशेषतायें (Main characteristics of capitalist economy)

1. **निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार –** पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने का तथा उसको अपनी इच्छानुसार प्रयोग करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। निजी सम्पत्ति मृत्यु के पश्चात् अपने उत्तराधिकारियों को भी दी जा सकती है।
2. **आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic Freedom) –** पूँजीवाद में प्रत्येक व्यक्ति को इच्छानुसार अपनी सम्पत्ति का प्रयोग करने और उद्योगों का चयन करने की स्वतन्त्रता होती है।
3. **उपभोक्ताओं में सार्वभौमिकता (Consumer's Sovereignity)–** इस अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की सार्वभौमिकता का विशेष स्थान होता है। उपभोक्ता को अपनी रूचि एवं अधिमान के अनुसार उपभोग करने की स्वतन्त्रता होती है।
4. **निजी लाभ उद्देश्य–** पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निजी लाभ प्राप्त करना ही प्रमुख उद्देश्य होता है, कोई भी कार्य बिना निजी लाभ प्रेरणा के नहीं किया जाता।
5. **प्रतिस्पर्धा (Competition) –** पूंजीवाद में वस्तु–बाजारों एवं साधन–बाजारों में क्रेताओं एवं विक्रेताओं में प्रतिस्पर्धा पायी जाती है।
6. **मूल्य यन्त्र (Price Mechanism) –** पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक क्रियाओं का संचालन, समन्वय एवं नियन्त्रण किसी केन्द्रीय सत्ता द्वारा न होकर मूल्य संयन्त्र द्वारा होता है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के गुण (Merits of capitalism)

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के गुण निम्नलिखित हैं–

1. **कुशल उत्पादन (Effective production)–**निजी लाभ की प्रेरणा बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा होने के कारण हर उद्यमी दूसरे उद्यमी के मुकाबले अच्छी व टिकाउ वस्तु का उत्पादन करने का प्रयास करता है तथा इस हेतु नयी–नयी तकनीक का प्रयोग करता है। यह भी प्रयास करता है कि उत्पादन कम लागत पर अधिकतम हो।
2. **लोचशीलता (Flexibility) –** इस अर्थव्यवस्था

का यह एक महत्त्वपूर्ण गुण है कि यह लोचशील है। समय के अनुसार अपने आपको हर ढांचे में ढालने की शक्ति इसमें होती है।

3. **व्यक्ति का विकास** – प्रत्येक व्यक्ति इस प्रतियोगिता में अपनी योग्यता बढ़ाने का प्रयास करता है क्योंकि सफलता श्रेष्ठतम व्यक्ति को मिलती है।

4. **जीवन स्तर में वृद्धि**– पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और पदार्थो में विविधता होने के कारण उत्पादक बडे पैमाने पर उत्पादन करने लगता है जिससे उसकी उत्पादन लागत कम हो जाती है तथा वह कम कीमत पर बाजार में बेचता है जिससे गरीब जनता के जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

5. **साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग** – पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादक का उद्देश्य केवल लाभ कमाना होता है अतएव इस अर्थव्यवस्था में जो भी साधन उपलब्ध होते हैं उन साधनों का कुशलतम प्रयोग किया जाता है। साधनों का अपव्यय नहीं होता।

6. **स्वचालित** – अर्थव्यवस्था के संचालन में मूल्य–संयन्त्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था में नहीं होता।

7. **तकनीकी प्रगति** – पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादकों में आपसी प्रतिस्पर्धा रहती है। प्रत्येक उत्पादक कम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना चाहता है, इसी आपसी प्रतिस्पर्धा में वे नयी–नयी तकनीकों का प्रयोग उत्पादन हेतु करते हैं। इससे पूंजी निर्माण को प्रेरणा मिलती है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के दोष
(Demerits of capitalism)

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अनेक गुण हैं परन्तु इसे अपव्यय पूर्ण अर्थव्यवस्था माना जाता है। इसके मुख्य दोष निम्नलिखित हैं –

1. **आय और धन का असमान वितरण** – इस अर्थव्यवस्था में आय एवं धन के वितरण में असमानता पायी जाती है। यह असमानता निजी सम्पत्ति, स्वतन्त्र प्रतियोगिता, अत्यधिक लाभ कमाने की इच्छा आदि के कारण उत्पन्न होती है। धनी वर्ग अधिक धनवान् होता जाता है तथा निर्धन अधिक निर्धन ।

2. **वर्ग संघर्ष** – आय एवं धन की असमानता के कारण इस अर्थव्यवस्था में समाज दो वर्गों में बंट जाता है – एक अमीर वर्ग और दूसरा गरीब वर्ग। अमीर वर्ग आरामदायक जीवन व्यतीत करता है जबकि निर्धन वर्ग (श्रमिक वर्ग) को अपने दो समय का भोजन जुटाने में भी मुश्किलें उठानी पडती हैं। यह स्थिति आगे चलकर वर्ग संघर्ष को जन्म देती है।

3. **व्यापार चक्र एवं आर्थिक अस्थिरता** – स्वचालित होने के कारण इस अर्थव्यवस्था में निरन्तर उतार चढाव आते रहते हैं कभी अर्थव्यवस्था में व्यापारिक तेजी (स्फीति की स्थिति) तथा कभी मन्दी की स्थिति आ जाती है। तेजी की स्थिति में उत्पादन एवं कीमत स्तर तेजी से बढ़ता है तथा मन्दी की अवस्था में इसके विपरीत बहुत कम हो जाता है। अर्थात् अर्थव्यवस्था में अस्थिरता तथा व्यापार चक्र आते रहते हैं।

4. **बेरोजगारी, सामाजिक असुरक्षा** – पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रों के कारण अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। श्रमिकों के पास काम नहीं होता तथा वे धनीवर्ग पर आश्रित हो जाते हैं। धन का असमान वितरण होने से उनके पास आय का स्तर कम होता है ओर उनके जीवन में सदैव असुरक्षा बनी रहती है। दुर्घटना, बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था में उनकी आय का स्रोत भी समाप्त हो जाता है।

5. **शोषण** – पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों का शोषण सर्वाधिक होता है। उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार उन्हें इस व्यवस्था में मजदूरी नहीं मिलती। केवल जीवन निर्वाह स्तर की मजदूरी ही उन्हें पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत प्राप्त होती है।

6. **अनार्जित आय एवं सामाजिक परजीविता** – पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति में निजी स्वामित्व तथा उत्तराधिकार के कारण समाज में कुछ व्यक्तियों को बिना परिश्रम के ही आय प्राप्त हो जाती है। जमीदारों को लगान मिलता रहता है, पूंजीपतियों को ब्याज व किराया आदि। जिससे वे पीढ़ी दर पीढ़ी दूसरों के श्रम पर जीते हैं।

7. **जन–कल्याण का अभाव** – इस प्रतियोगिता में

उद्यमी स्वलाभ प्रेरणा के कारण राष्ट्रीय उत्पादन हेतु साधनों का प्रयोग करते हैं परन्तु उनका लक्ष्य अधिकतम लाभ कमाना होता है अतएव वे ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में रूचि लेते हैं जो उन्हें अधिक लाभ दे – जैसे विलासी वस्तुयें। जन कल्याण की वस्तुओं के उत्पादन में उनकी रूचि कम रहती है।

अन्य दोष – इसके अतिरिक्त पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के निम्नलिखित दोष भी है –

(क) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में गलाकाट प्रतियोगिता के कारण साधनों पर अपव्यय होता है। विज्ञापन, विक्रय कला आदि लागतों में वृद्धि करती है।

(ख) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में बड़े उत्पादक संघ चलाकर या तो प्रतियोगिता को समाप्त कर देते हैं या अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की कृत्रिम कमी दिखाकर शोषण का मार्ग प्रशस्त कर लेते हैं।

(ग) इस अर्थव्यवस्था में समन्वय की कमी रहती है। अर्थव्यवस्था में आपसी सहयोग एवं संगठन का अभाव पाया जाता है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का आधुनिक स्वरूप

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अनेकों दोष पाये गये है अतएव समय–समय पर परिवर्तन होने के कारण पूंजीवाद अब परिष्कृत रूप में जीवित हुआ है। आधुनिक पूंजीवाद में बाजार में अपूर्णताओं का होना, आधुनिक नियम व एकीकरण को प्रमुखता देना, श्रमिक संघो का प्रभाव बढना, सार्वजनिक उपक्रमों का बढ़ना, राज्य का नियन्त्रण आदि तत्त्व नये रूप में उत्पन्न हुए हैं परन्तु आधुनिक पूंजीवाद में आज भी विशुद्ध पूंजीवाद के लक्षण विद्यमान हैं। यद्यपि अब सरकारें मूक दर्शक न रहकर अपनी भूमिका पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निभाने लगी हैं।

समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialistic economy)

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अनेको दोष होने के कारण एक नवीन अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ जो समाजवादी अर्थव्यवस्था के नाम से जानी जाती है। संसार के अनेकों देशों जैसे क्यूबा, चीन, वियतनाम आदि की अर्थव्यवस्थायें समाजवादी अर्थव्यवस्थायें कहलाती हैं। इस अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा सामाजिक कल्याण के लिए मुख्य आर्थिक क्रियाओं का नियन्त्रण तथा संचालन किया जाता है। समाजवाद को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने ढंग से परिभाषित किया है –

अर्थ (Meaning) समाजवाद आर्थिक प्रणाली का वह रूप है जिसमें उत्पत्ति एवं वितरण के प्रमुख साधनों पर सरकार (समस्त समाज) का स्वामित्व एवं नियन्त्रण होता है तथा सहकारिता के आधार पर इन साधनों का प्रयोग अधिकतम सामाजिक लाभ के लिए किया जाता है।

परिभाषा – समाजवाद की परिभाषा निम्नलिखित हैं –

प्रो.लेफ्टविच के शब्दों में – समाजवाद में सरकार की भूमिका केन्द्रीय या मुख्य होती है। वह उत्पादन के साधनों का स्वामित्व करती है और आर्थिक क्रियाओं का निर्देशन करती है।

समाजवाद के बारे में जोड (Joad) ने लिखा है कि ''समाजवाद एक ऐसी टोपी है जिसका स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति के पहनने के कारण बिगड़ गया है। अर्थात् समाजवाद का स्वभाव बहुपक्षीय है। समाजवाद में सरकारी हस्तक्षेप सर्वोपरि होता है। राज्य ही अर्थव्यवस्था का प्रभावी रूप से नियन्त्रण करता है तथा संचालन करता है।''

समाजवाद अथवा नियोजित अर्थव्यवस्था की विशेषतायें (Characteristics of Socialism or Planned economy)

एक विशुद्ध साम्यवादी अथवा समाजवादी अर्थव्यवस्था की विशेषतायें पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताओं से ठीक विपरीत हैं –

(1) **सरकारी स्वामित्व –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में सभी प्रमुख उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है। निजी सम्पत्ति के एवं उत्पादन के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण कर इन्हें सरकारी स्वामित्व में ले लिया जाता है। साधनों का उपयोग अधिकतम लाभ की दृष्टि से योजनाबद्ध तरीके से किया जाता है। प्रत्येक नागरिक सरकार के अधीन कार्य करता है।

(2) **केन्द्रीय नियोजन –** समाजवाद में केन्द्रीय नियोजन की प्रभावी व्यवस्था होती है। अर्थव्यवस्था का संचालन निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु केन्द्रीय नियोजन द्वारा किया जाता है। उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी सभी निर्णय भी केन्द्रीय नियोजन ही लेता है।

प्रो. पीगू ने लिखा है ''उत्पादन के साधनों पर सरकारी स्वामित्व के साथ–साथ केन्द्रीय नियोजन समाजवाद

की प्रमुख विशेषता है।''

(3) **अधिकतम सामाजिक कल्याण का उद्देश्य –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में सरकार का उद्देश्य जनता का अधिकतम सामाजिक कल्याण करना होता है। निजी लाभ को यहाँ महत्त्व नहीं दिया जाता। केन्द्रीय संगठन अधिकतम सामाजिक लाभ को केन्द्र बिन्दु मानकर नीति निर्धारण करता है।

(4) **शोषण का अभाव –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति का शोषण नहीं होता, क्योंकि अर्थव्यवस्था का संचालन स्वयं सरकार करती है और उसका उद्देश्य अधिकतम कल्याण करना होता है। यहाँ श्रमिकों का तथा उपभोक्ताओं का शोषण नहीं होता, क्योंकि यहाँ समानता का भाव होता है।

(5) **समानता –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में राज्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति सरकार की होती है निजी सम्पत्ति, निजी लाभ उद्देश्य यहाँ नहीं होता अतएव शोषण भी जन्म नहीं लेता तथा समानता स्थापित हो जाती है। अवसरों की समानता तथा लाभ पर समान अधिकार के कारण आर्थिक विषमतायें भी कम पायी जाती है।

(6) **पूर्ण रोजगार –** समाजवादी अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहॉ पर अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है। मानवीय साधनों का पूर्ण एवं सर्वोत्तम उपयोग करने के प्रयास के कारण बेरोजगारी भी दिखायी नहीं पड़ती। अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार होता है।

(7) **ठोस उद्देश्य –** समाजवादी अर्थव्यवस्था उद्देश्य के साथ कार्य करती है। अर्थव्यवस्था के उद्देश्य निश्चित होते हैं। उन उद्देश्यों की समाज द्वारा पूरी तरह से व्यवस्था कर दी जाती है तथा योजनानुसार इनको प्राप्त करने के लिए कार्य किए जाते हैं। तीव्र औद्योगीकरण, जीवनस्तर में वृद्धि करना, पूर्ण रोजगार स्थापित करना, धन, आय की असमानता को कम करना आदि समाजवादी अर्थव्यवस्था के मुख्य उद्देश्य होते हैं।

(8) **प्रतियोगिता का अभाव –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में प्रमुख उद्यमी सरकार या केन्द्रीय नियन्त्रण होने के कारण अर्थव्यवस्था में प्रतियोगिता का अभाव पाया जाता है। गलाकाट प्रतियोगिता के स्थान पर यहां पर सरकारी एकाधिकार दिखाई पड़ता है।

(9) **आधारभूत भारी उद्योगों का विकास –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में अर्थव्यवस्था पूर्णतया नियन्त्रित एवं नियोजित होने के कारण, भारी उद्याोगों एवं आधारभूत उद्योगों का विकास तेजी से होता है।

(10) **सामाजिक सुरक्षा –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में सरकारी नियन्त्रण होने के कारण प्रत्येक नागरिक को भूख, बीमारी, दुर्घटना आदि से सामाजिक सुरक्षा मिलती है। समाजवाद का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण होता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के गुण या लाभ (Advantage or Merits of Socialism economy)

समाजवादी अर्थव्यवस्था के मुख्य गुण निम्न है –

1. **आर्थिक साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में समस्त प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उपयोग केन्द्रीय नियोजन द्वारा किया जाता है। समाजवाद में केन्द्रीय नियोजन का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण, सामाजिक सुरक्षा होता है।

2. **व्यापार चक्रों से मुक्ति –** समाजवादी अर्थव्यवस्था नियोजित अर्थव्यवस्था है अतएव मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की तुलना में यहां अर्थव्यवस्था में उतार चढ़ाव कम आते है। सरकार सामाजिक सुरक्षा एवं अधिकतम कल्याण के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए एक नियोजित तरीके से साधनों का उपयोग करती है। अतएव तेजी, मन्दी आने की सम्भावना कम रहती है।

3. **तेजी से आर्थिक विकास –** इस अर्थ व्यवस्था का मुख्य निर्णायक योजना प्राधिकरण होता है जो अर्थव्यवस्था के संसाधनों को कुशलता के साथ समन्वित करता है जिसके कारण अर्थव्यवस्था के विकास की गति तेजी से बढ़ती जाती है। आर्थिक विकास में सभी की सहभागिता भी इसका एक कारण है।

4. **मूलभूत समस्याओं का बेहतर हल –** इस अर्थव्यवस्था में क्या उत्पादन हो, कितनी मात्रा में हो,

आदि समस्याओं का हल केन्द्रीय नियोजन द्वारा किया जाता है। यहां पर सरकार को यह पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे समाज के हित को ध्यान में रखते हुए, साधनों का कुशलतम प्रयोग कर, आवश्यक पदार्थो तथा सेवाओं का उत्पादन वास्तविक आवश्यकतानुसार करें।

5. **संतुलित विकास –** इस अर्थव्यवस्था में नियोजन प्राधिकरण का उद्देश्य आर्थिक विकास करना तो होता ही है परन्तु साथ ही साथ प्राधिकरण का यह भी प्रयास होता है कि राज्य का आर्थिक विकास संतुलित हो। राज्य के सभी प्रदेश – क्षेत्र सन्तुलित रूप से विकसित हो।

6. **वर्ग संघर्ष, शोषण नहीं –** समाजवादी अर्थव्यवस्था का मूल आधार समानता है। यहां पर पूंजीपति एवं निर्धन वर्ग अलग–अलग नहीं होता। आर्थिक विकास में केवल एक ही वर्ग की सहभागिता नहीं होती है। सभी वर्गों की समान सहभागिता होती है। अतएव यहां पर पूंजीवाद की तरह से हड़ताल, तालाबन्दी आदि नहीं होती।

7. **आर्थिक समानता–** समाजवादी अर्थव्यवस्था में आय एवं धन की असमानता नहीं होती क्योंकि आय के वितरण का निर्णय यहां केन्द्रीय संगठन के द्वारा लिया जाता है। धनीवर्ग पर कर की मात्रा अधिक होती है जबकि अल्प आय वर्ग की उन्नति के लिए निशुल्क सेवाएँ उपलब्ध रहती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के दोष
(Demerits of Socialist Economy)

अनेकों अर्थशास्त्री जिनमें रोबिन्स, डिकिन्स, जार्जहॉम मोरिस डॉव आदि है जो इस अर्थव्यवस्था की कड़ी आलोचना करते हैं –

(i) **उत्पादन के साधनों का दोषपूर्ण वितरण –**प्रो हॉयक ने लिखा है 'समाजवादी अर्थव्यवस्था में साधनों का वितरण मूल्य तन्त्र के अभाव में मनमाने ढंग से होता है।'' इनका मूल आधार यह है कि मूल्य–तन्त्र उत्पादन के साधनों का वितरण स्वतः ही महत्वपूर्ण उपयोगों में कर देता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था न होने से, मूल्य–तन्त्र प्रणाली के अभाव में साधनों का वितरण विवेकपूर्ण ढंग से नहीं होता। आधुनिक अर्थशास्त्री जिनमें प्रो लांगे, टेलर हैं, का मानना है कि पूंजीवाद में मूल्य तन्त्र सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक माना जाता है जबकि व्यवहार में साधनों का वितरण समाजवादी अर्थव्यवस्था में ही नियोजित एवं उपयुक्त होता है।

(ii) **उपभोक्ता की सार्वभौमिकता का अन्त –** पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता मांग पक्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परन्तु समाजवाद में उपभोक्ता का प्रभुत्व प्रायः समाप्त हो जाता है। क्या उत्पादन हो, कितनी मात्रा में हो, का निर्णय यहां पर केन्द्रीय नियोजन द्वारा तय किया जाता है। केन्द्रीय नियोजन उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्णय लेती है। परन्तु उपभोक्ता जिन वस्तुओं एवं सेवाओं को वास्तविक रूप में चाहते है वे इस अर्थव्यवस्था में उपलब्ध नहीं होती। जो उत्पादन निर्णय केन्द्रीय नियोजन द्वारा तय किया जाता है वह सभी वर्ग को स्वीकार करना होता है।

(iii) **व्यक्तिगत प्रेरणा का अभाव –** व्यक्तिगत लाभ तथा निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार दोनो ऐसे तत्व है जो मनुष्य को अधिक कार्य करने की प्रेरणा देते है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में इन दोनो तत्वों का अभाव पाया जाता है। अब समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में नये–नये प्रयोग किए जा रहे है।

(iv) **उत्पादकता, कुशलता का अभाव –** पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादक का उद्देश्य लाभ अधिकतम रहता है। अतएव वह न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कुशलता से करने का प्रयास करता है परन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था में न तो साधनों का विवेकपूर्ण वितरण होता है और न ही व्यक्तिगत लाभ की प्रेरणा होती है जिससे इस अर्थव्यवस्था में उत्पादकता एवं कुशलता का अभाव पाया जाता है।

(v) **नौकरशाही –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण दोष नौकरशाही का होना है। इस अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय संगठन निर्णय करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तन्त्र होता है। इसके निर्णय लागू करने हेतु कर्मचारी लगाये जाते है जिनका कोई निजी हित नहीं होता। पदोन्नति का आधार भी वरिष्ठता होती है न कि योग्यता, कुशलता। इस कारण इस अर्थव्यवस्था में

नौकरशाही, लाल फीताशाही का बोलबाला होता है, भ्रष्टाचार फैलता है। नवीन जोखिम लेने की प्रेरणा अर्थव्यवस्था में न होने से विकास को तीव्र गति नहीं मिलती। यद्यपि अब इन अर्थव्यवस्थाओं में इस दोष के निवारण के प्रयास किये जा रहे है।

(vi) **सत्ता का केन्द्रीकरण –** समाजवादी अर्थव्यवस्था के बारे में कुछ विद्वान यह भी मत रखते है कि यहां पर अत्यधिक केन्द्रीयकरण तथा नियोजन प्रणाली होने के कारण मानव शक्ति का दुरूपयोग होता है। जो मानव शक्ति सीधे–सीधे उत्पादन कार्यो के लिए लगायी जा सकती थी उस मानव शक्ति को योजना बनाने, गणना करने, क्रियान्वयन की देखभाल करने में लगाया जाता है। वास्तव में इसे दोष नहीं कह सकते यह तो इस प्रणाली को अधिक संवेदनशील एवं प्रभावी बनाने के लिए मानव शक्ति का नियोजन है।

निष्कर्ष – यद्यपि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के समर्थक समाजवादी अर्थ व्यवस्था की कटु आलोचना करते है परन्तु ये वास्तविकता से परे है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना में समाजवादी अर्थव्यवस्था के दोष कम भयावह है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी, स्फीति दीर्घकालीन समस्या है जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में इन्हे नियन्त्रित रखा जाता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में कीमत स्थिरता नहीं पायी जाती परन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में कीमत में स्थिरता पायी जाती है। प्रो. शुम्पीटर ने लिखा है ''समाजवादी अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से श्रेष्ठ है क्योंकि समाजवाद में राजकीय प्रबन्ध में उत्पादन कुशलता और साधनों का अधिक विवेकपूर्ण उपयोग होता है। व्यापार चक्रों का अभाव पाया जाता है। एकाधिकारी प्रवृत्तियों का समापन होता है, आर्थिक विषमताएँ कम होती है, बेकारी एवं शोषण का अन्त होता है।

वर्तमान में समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में भी परिवर्तन दिखाई पडते है। प्रशिक्षण, सत्ता के विकेन्द्रीकरण तथा विकास हेतु नवाचार तथा सीमित व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर बल दिया जा रहा है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था
(Mixed Economy)

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में गलाघोंट प्रतियोगिता, बेकारी, मुद्रास्फीति, आर्थिक अस्थिरता, वर्ग संघर्ष जैसी अनेक समस्याओं के कारण यहाँ की अर्थव्यवस्थाओं में हस्तक्षेप को आवश्यक समझा जाने लगा। दूसरी और समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में कठोर नियन्त्रण, सत्ता का केन्द्रीयकरण, नौकरशाही, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन, अत्यधिक राजकीय हस्तक्षेप आदि ऐसे तत्व है जो मानवीय जीवन को कष्टप्रद बनाते है। अतएव एक ऐसी आर्थिक प्रणाली का विकास हुआ जिसमें पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों अर्थव्यवस्थाओं की विशेषताओं का मिश्रण है जिसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ – सामान्य अर्थ में मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का पर्याप्त सह–अस्तित्व (Co-existence) पाया जाता है। दोनों के कार्यक्षेत्र सरकार द्वारा इस प्रकार नियन्त्रित, निर्धारित होते है कि दोनों मिलकर तीव्र आर्थिक विकास तथा अधिकतम सामाजिक कल्याण को अधिकतम करें।

प्रो. सेम्युलसन के अनुसार ''मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें राजकीय तथा निजी दोनो ही प्रकार की संस्थाओं का आर्थिक जीवन में नियन्त्रण रहता है।''

मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ
(Features of Mixed economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था की निम्न विशेषताएँ है –

(i) **निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों का सह अस्तित्व –** इस अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों का सह अस्तित्व पाया जाता है। दोनों क्षेत्र साथ–साथ कार्य करते है। राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों जैसे आधारभूत उद्योगो, युद्ध सामग्री बनाने वाले उद्योग, बिजली आदि सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते है तथा इसके अतिरिक्त **उपभोग** उद्योग, लघु उद्योग, कृषि उद्योग आदि निजी क्षेत्र के अन्तर्गत संचालित होते है। उनका मुख्या उद्देश्य दोनो में परस्पर सहयोग करना होता है। दोनो उद्योग एक दूसरे के पूरक भी होते है।

(ii) **निजी सम्पत्ति एवं आर्थिक समानता –** एक और व्यक्ति को निजी सम्पत्ति एकत्रित करने, रखने की स्वतन्त्रता होती है वहीं दूसरी और सरकार द्वारा आय एवं धन के वितरण की समानता बनाये रखने के लिए सरकार कठोर नीति निर्माण भी करती है। सरकार निजी सम्पत्ति पर आयकर, सम्पत्तिकर आदि लगाकर

नियन्त्रण रखती है तथा दूसरी और निर्धन व्यक्तियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ जैसे वृद्धावस्था पेंशन, आधारभूत सुविधाएँ आदि प्रदान करती है।

(iii) **कीमत संयन्त्र एवं आदेशात्मक नियन्त्रण –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में कीमत संयन्त्र एवं केन्द्रीय नियोजनतन्त्र दोनों कार्य करते है। कीमत संयन्त्र द्वारा मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा अर्थव्यवस्था का संचालन होता है। वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण मांग एवं पूर्ति द्वारा होता है। मुख्य आर्थिक निर्णय जैसे क्या उत्पादन हो, कितनी मात्रा में हो, कैसे हो, किसके लिए हो कीमत प्रणाली द्वारा होते है। इसके विपरीत नियोजन प्रणाली भी अर्थव्यवस्था में संचालित रहती है। आर्थिक विकास, पूर्ण रोजगार, कीमत नियन्त्रण, आय की असमानता को कम करना आदि लक्ष्यों की प्राप्ति में नियोजन तन्त्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(iv) **व्यक्तिगत लाभ प्रेरणा एवं सामाजिक कल्याण दोनों –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत लाभ एवं अधिकतम सामाजिक कल्याण दोनो उद्देश्यों के साथ अर्थव्यवस्था का संचालन होता है। उत्पादन कार्य स्वहित लाभ की प्रेरणा से किया जाता है तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था की भांति अधिकतम सामाजिक कल्याण नियोजन तन्त्र का मुख्य उद्देश्य होता है। यदि निजी उद्योग सामाजिक हित में कार्य नहीं करते हों तो सरकार उन्हे राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) कर निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तान्तरित कर देती है।

(v) **नियन्त्रित अर्थव्यवस्था –** अर्थव्यवस्था में आय के समान वितरण को बनाये रखने के लिए प्रगतिशील करारोपण, समाजिक सुरक्षा कार्यो पर व्यय, एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण आदि नीतियों को अपनाया जाता है। भूमि की अधिकतम सीमा का निर्धारण भी किया जाता है।

(iv) **आर्थिक नियोजन –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन के माध्यम से अर्थव्यवस्था में आर्थिक–सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जाती है। नियोजन के अभाव में किसी भी अर्थव्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था नहीं कहा जा सकता चाहे उसमें राज्य का हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण भले ही हों। महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय नियोजन के माध्यम से ही तय होते है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के लाभ या गुण (Advantages or Merits of Mixed economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनो अर्थव्यवस्थाओं के गुण पाये जाते है। ये गुण निम्न है –

(i) **पर्याप्त स्वतन्त्रता –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र में पर्याप्त स्वतन्त्रता होती है – व्यक्ति अपनी आय को स्वतन्त्र रूप से व्यय कर सकता है, अपनी योग्यता के अनुसार तथा रूचि के अनुसार व्यवसाय को चुन सकता है। निजी लाभ प्राप्त करने तथा वैयक्तिक सम्पत्ति रखने की निश्चित सीमा तक स्वतन्त्रता होती है। प्रतिबन्धित क्षेत्रों को छोड़कर व्यक्ति अपनी रूचि के अनुसार व्यवसाय प्रारम्भ कर सकता है।

(ii) **आर्थिक विषमता में कमी –** आर्थिक विषमता अर्थव्यवस्था के लिए एक अभिशाप है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार आर्थिक विषमता को कम करने के लिए प्रगतिशील करारोपण अपनाती है। एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के प्रयास करती है ताकि अर्थव्यवस्था में आर्थिक समानता स्थापित हो।

(iii) **साधनों का कुशल बंटवारा –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्र साथ–साथ कार्य करते है तथा यह प्रयत्न करते है कि साधनों का कुशलतम उपयोग हो। निजी क्षेत्र निजी लाभ प्रेरणा से साधनों का कुशलतम उपयोग करने का प्रयास करता है। सामाजिक क्षेत्र अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से साधनों का उपयोग करता है। अर्थात मिश्रित अर्थव्यवस्था निजी लाभ तथा सामाजिक लाभ के बीच समन्वय स्थापित करती है।

(iv) **आर्थिक समानता –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक समानता के उद्देश्य को बिना आर्थिक स्वतन्त्रता का त्याग किये हुए प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। निजी क्षेत्र की बढ़ती हुई सम्पन्नता को नियन्त्रित कर उसके स्थान पर सामाजिक सुरक्षा तथा आर्थिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

(v) **शोषण से बचाव –** मिश्रित अर्थव्यवस्था समाज के

निर्धन एवं मध्यम वर्ग को एकाधिकारी प्रवृत्तियों से, जमींदारों के शोषण से मुक्त करने का प्रयास करती है। निजी श्रमिकों एवं किसानों के लिए कल्याणात्मक योजनाएँ बनाती है। कानून बनाती है तथा सहकारिता का विकास करती है।

(v) **नियोजित, तीव्र आर्थिक विकास –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में कीमत संयन्त्र कार्य अवश्य करता है परन्तु उसे पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। देश में उपलब्ध साधनों का पर्याप्त सर्वेक्षण कर उनके उपयोग की योजना बना कर आर्थिक विकास में उनकी सहभागिता निश्चित की जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाने से देश का सन्तुलित आर्थिक विकास होता है एवं पूंजी निर्माण, को गति मिलती है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष या अवगुण (Defects or Disadvantages of mixed economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों अर्थव्यवस्थाओं के गुणों का समावेश होता है। अधिकतम सामाजिक कल्याण, आर्थिक विकास, बेरोजगारी में कमी, आय की असमानता में कमी, सामाजिक सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण लक्ष्यों को साथ लेकर अर्थव्यवस्था आगे बढ़ती है। परन्तु पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में स्थापित गुणों में वृद्धि हो जाने से इस अर्थव्यवस्था में शोषण की प्रवृत्तियां पनपने लगती है। यदि अर्थव्यवस्था में समाजवादी अर्थव्यवस्था के तत्वों में वृद्धि होती है तो अर्थव्यवस्था में लाल फीताशाही, तानाशाही, अकुशलता पनपने लगती है। अतएव मिश्रित अर्थव्यवस्था को भी दोष रहित नहीं का जा सकता इस अर्थव्यवस्था में निम्न दोष पाये जाते है –

(i) **कुशल क्रियान्वयन कठिन –** मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था दोनों से मिलकर बनी है जो एक दूसरे के विपरीत विचारधाराएँ है। अतएव इनके कुशल क्रियान्वयन में कठिनाई आती है। इस अर्थव्यवस्था में न तो आर्थिक नियोजन सफलतापूर्वक कार्य कर पाता है और न ही मूल्य तन्त्र ठीक से कार्य करता है। जैसा कि शुम्पीटर ने लिखा है – मिश्रित अर्थव्यवस्था आक्सीजन के टैन्ट में पूंजीवाद (Capitalism in oxygen tent) है।

(ii) **अस्थिर अर्थव्यवस्था–** मिश्रित अर्थव्यवस्था में अस्थिरता विद्यमान रहती है। या तो निजी क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र को महत्वहीन बना देता है और अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र इतना शक्तिशाली बन जाता है कि वह निजी क्षेत्र को समाप्त कर देता है जिससे समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना हो जाती है।

(iii) **अकुशल नियोजन–** मिश्रित अर्थव्यवस्था में अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा रह जाता है जिस पर सरकार का नियन्त्रण नहीं होता और यह क्षेत्र अपने स्वार्थ हेतु कार्य करता है तथा योजनाओं की सफलता में बहुत बड़ी बाधा बन जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र अपने लक्ष्य पूर्ण नहीं कर पाता।

(iv) **भ्रष्टाचार –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में भ्रष्टाचार बडी मात्रा में पाया जाता है। राजनीतिक दल अपने स्वार्थ हेतु सार्वजनिक क्षेत्र का अनुचित उपयोग करते है तथा निजी क्षेत्र अपने निजी हित हेतु सरकारी नियन्त्रण से बचने के लिए निरन्तर कानूनों को तोडने के लिए भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाते है जिससे आर्थिक विकास में बाधा आती है।

(v) **काला धन –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में एक दोष यह भी है कि यह अर्थव्यवस्था कालेधन को प्रोत्साहन देती है। प्रजातन्त्र होने के कारण ऐसे कानूनों का निर्माण यहाँ सम्भव हो जाता है जो अर्थव्यवस्था में आय की असमानता को जन्म देता है। अर्थव्यवस्था में एक तरफ अधिक करारोपण होता है दूसरी और करों की चोरी होती है जिससे अर्थव्यवस्था में काला धन बढ़ने लगता है।

(vi) **लोकतन्त्र को भय –** आर्थिक लोकतन्त्र को आर्थिक नियोजन और सरकार की नीतियॉ धीरे–धीरे समाप्त कर सकती है। अर्थव्यवस्था में सदैव तानाशाही पनपने का डर बना रहता है। वास्तव में यह भय मात्र ही है। प्रजातन्त्र में जनता के पास वास्तविक शक्ति का आदर होता है।

अनेक दोषों के उपरान्त भी मिश्रित अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास, सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में अकुशलता एवं तानाशाही का भय अवश्य बना रहता है परन्तु निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का सह अस्तित्व अर्थव्यवस्था की प्रगति को गति देता है। सरकार का प्रभावी

नियन्त्रण व्यापार चक्रों, बेकारी, शोषण, वर्ग संघर्ष, आदि से मुक्ति दिलाने का प्रयास करता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था–एक मिश्रित अर्थव्यवस्था
(Indian Economy as a mixed economy)

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का सूत्रपात 1948 की ओद्यौगिक नीति तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद बनाई गयी 1956, 1977, 1991 की ओद्यौगिक नीतियों से माना जा सकता है जिसमें उद्योगों का श्रेणीवार विभाजन हुआ।

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना में भी सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों को पृथक–पृथक निर्धारित किया गया। 1954 में समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य से प्रेरित होकर योजनाबद्ध आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया गया और तीव्र ओद्यौगीकरण हुआ। भारत में लगभग 60 वर्षो के योजनाबद्ध विकास नीतियों से देश में तीव्र आर्थिक विकास, बेकारी निवारण, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर रोक, सन्तुलित ओद्यौगिक विकास, कृषि विकास, सामाजिक कल्याण आदि में प्रगति देखने को मिलती है। प्रो. के.एन. राज ने लिखा है यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्रित बनी हुई है परन्तु मिश्रण के तत्व इसे पूंजीवाद अर्थव्यवस्था के समान बनाये हुए है न कि समाजवादी अर्थव्यवस्था के समान।

विकास के स्तर के आधार पर अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण
(Classification of Ecomomy on the basis of development)

विकास के स्तर के आधार पर मोटे तौर पर अर्थव्यवस्था को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– (1) विकसित अर्थव्यवस्था (2) विकासशील अर्थव्यवस्था।

विकसित अर्थव्यवस्था (developed economy) – विकसित अर्थव्यवस्था उस अर्थव्यवस्था को कहा जाता है जिसमें आर्थिक विकास तेजी से हो। प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय का स्तर बहुत ऊँचा हो। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, जापान आदि की अर्थव्यवस्थाओं को विकसित अर्थव्यवस्था की श्रेणी में रखा जाता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य विशेषताएँ निम्न है –

(1) **ऊंची राष्ट्रीय, प्रतिव्यक्ति आय –** विकसित देशों में प्रतिव्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय की दरें अधिक होती है तथा यहाँ के निवासियों का जीवन स्तर बहुत ऊंचा होता है। विश्वबैंक की 2012 की रिपोर्ट के अनुसार, 2010 में विकसित पूंजीवादी देशों में प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद औसतन 38745 डालर था। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद तो इससे भी अधिक 47340 डालर थी।

(2) **पूंजी निर्माण की ऊंची दर –** उत्पादन के स्तर को बढ़ाने के दृष्टिकोण से पूंजी निर्माण के महत्व को अर्थशास्त्री हमेशा स्वीकार करते रहे है जब राष्ट्रीय आय का बड़ा अंश बचाकर पुनः निवेश किया जाता है तो उसे पूंजी निर्माण कहते है। विकसित राष्ट्रों में पूंजी निर्माण की दर ऊंची होती है तथा निर्धनता का दुष्चक्र वहाँ नहीं होता।

(3) **उद्योगों एवं गैर कृषि व्यवसायों की प्रधानता –** विकसित अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या का एक बड़ा भाग गैर कृषि व्यवसायों जैसे उद्योग, यातायात, संचार बैंकिंग, बीमा आदि में लगा होता है राष्ट्रीय आय में सेवाक्षेत्र का योगदान अधिक होता है।

(4) **तकनीकी दृष्टि से उच्च –** विकसित अर्थव्यवस्थाएँ तकनीकी दृष्टि से कुशल अर्थव्यवस्थाएँ होती है। इन अर्थव्यवस्थाओं में अनुसन्धान एवं तकनीकी पर राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग व्यय किया जाता है। उत्पादकता में वृद्धि के लिए निरन्तर उत्पादन तकनीकों में परिवर्तन किया जाता है।

(5) **अन्य विशेषताएँ –** विकसित अर्थव्यवस्थाओं में इसके अतिरिक्त निम्नलिखित विशेषताएँ भी प्राप्त होती है –

(i) विकसित देशों में मानव संसाधनों का प्रबंधन एव उपयोग कुशल तरीके से किया जाता है।

(ii) विकसित देशों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया की गति तेज करने की आंकाक्षा चेतना तुलनात्मक रूप से अधिक होती है।

विकासशील या अल्पविकसित अर्थव्यवस्था
(developing or under developed economy)

प्रो सेम्युलसन के अनुसार – ''एक अल्प विकसित या विकासशील अर्थव्यवस्था वह है जिसमें प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय कनाडा, अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन अथवा सामान्यतया पश्चिमी

यूरोपीय देशों की वर्तमान प्रतिव्यक्ति आय की तुलना में कम है। आशावादी रूप में यह समझा जाता है कि अल्प विकसित देश में अपनी आय के स्तर में पर्याप्त सुधार कर सकने की क्षमता विद्यमान है।'' जैकबवाइनर की परिभाषा से मिलती जुलती परिभाषा भारतीय योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में अल्प विकास की दी है – ''अल्पविकसित देश वह है जिसमें एक ओर तो मानव शक्ति (Man Power) का बहुत कम उपयोग हो पा रहा हो तथा दूसरी और प्राकृतिक संसाधनों का भी पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा हो। अर्थात विश्व की वे सभी अर्थव्यवस्थाएँ जिनकी प्रतिव्यक्ति आय का स्तर अमेरिका, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोप के देशों की प्रतिव्यक्ति आय के स्तर से पर्याप्त नीचा हो, अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाएँ कहलाती है। भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि अर्थव्यवस्था विकासशील अर्थव्यवस्था कहलाती है।

विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की सामान्य विशेषताएँ निम्न है –

(1) **राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय का नीचा स्तर –** विकासशील राष्ट्रो में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय का स्तर विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में नीचा होता है। विश्व बैंक रिपोर्ट 2010 के अनुसार निम्न आय वाले अल्प विकसित देशों में 528 डालर तथा मध्यम आय वाले अल्प विकसित देशों में 3725 डालर थी। भारत में यह उक्त वर्ष में 1270 डालर रही। निम्न प्रति व्यक्ति आय के कारण सामान्य जनता का जीवन स्तर बहुत नीचा होता है तथा नागरिक सुविधाएँ भी कम प्राप्त हो पाती है।

(2) **निम्न जीवन स्तर –** अल्प विकसित या विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति आय का स्तर कम होने से जीवन स्तर नीचा होता है जिसके कारण उनकी कार्यकुशलता भी कम हो जाती है। आवश्यकता की वस्तुओं जैसे भोजन, कपड़ा, मकान आदि का उपभोग स्तर भी कम हो जाता है।

(3) **कृषि पर अधिक निर्भरता –** अल्प विकसित देशों में लगभग 30 से 70 प्रतिशत तक जनसंख्या कृषि पर निर्भर रहती है। कृषि पर निर्भर रहने के बावजूद कृषि विकास का स्तर नीचा रहना भी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की एक विशेषता है जिसके कारण राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का योगदान घटता है तथा कृषि क्षेत्र से प्राप्त होने वाली आय इस व्यवसाय में लगी हुई जनसंख्या के अनुपात से नीची होती है।

(4) **ओद्यौगिक पिछड़ापन –** अल्प विकसित देशों अथवा विकासशील देशों में ओद्यौगिक ढांचा अक्सर पिछडा एवं असन्तुलित होता है बुनियादी तथा भारी उद्योगों जैसे लोहा और इस्पात, भारी इंजीनियरिंग मशीनी औजार, भारी रसायन, परिवहन आदि उद्योगों का विकास तुलनात्मक रूप से कम होता है। इससे इस क्षेत्र में कम लोगों को रोजगार मिलता है तथा सकल राष्ट्रीय उत्पादन में इस क्षेत्र का योगदान घटता है।

(5) **श्रम उत्पादकता का नीचा स्तर –** विकासशील देशों में श्रम उत्पादकता (Productivity) का स्तर नीचा होता है। यह व्यक्ति के नीचे जीवन स्तर रहने का कारण तथा प्रभाव दोनों है। कम उत्पादिता के कारण आय का स्तर भी नीचा होता है तथा यह निध नता को जन्म देता है। श्रम उत्पादिता का नीचा स्तर श्रमिकों के स्वास्थ्य, कौशल, काम करने की प्रेरणा, संस्थागत ढांचा आदि पर निर्भर करता है।

(6) **व्यापक गरीबी –** अल्प विकसित देशों में गरीबी का दुष्चक्र चलता रहता है। प्रतिव्यक्ति आय का स्तर कम होने के कारण तथा आय की असमानताओं के कारण व्यापक गरीबी पायी जाती है। कुपोषण, अल्प भोजन, बीमारी, स्वास्थ्य सेवाओं में कमी होना भी इसका एक कारण है।

(7) **तकनीकी का पिछड़ापन –** विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अनुसन्धान एवं विकास का स्तर नीचा होता है। अर्थव्यवस्थाओं में साधनों के अभाव, पूंजी के अभाव एवं श्रम की अधिकता के कारण भी नवीन तकनीक के प्रयोग में बाधा आती है। इससे उत्पादकता तथा उत्पादन की गुणवत्ता के स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(8) **बेरोजगारी, छिपी बेरोजगारी –** विकासशील देशों में बेरोजगारी का स्तर काफी ऊंचा होता है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में अधिकतर बेरोजगारी अनैच्छिक (Involuntary) पायी जाती है। जबकि कृषि क्षेत्र में छिपी बेरोजगारी पायी जाती है। परम्परागत कृषि में भी कम उत्पादकता के चलते श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने का सीमित सामर्थ्य होता है। इसलिए

बढ़ती जनसंख्या के परिणाम स्वरूप प्रच्छन्न बेरोजगारी लगातार कृषि क्षेत्र में बढ़ती जाती है।

अन्य विशेषताएँ

(1) अल्प विकसित देशों में मानव कल्याण (level of human welfare) का स्तर नीचा होता है। उनकी संभाव्य वास्तविक आय, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सम्बन्धी उपलब्धियाँ कम होती है।

(2) अल्प विकसित अथवा विकासशील अर्थ व्यवस्थाओं में आय एवं सम्पत्ति के वितरण में असमानता पायी जाती है। विकासशील देशों में कर प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था, शिक्षा प्रशिक्षण, रोजगार की दृष्टि से विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में कम ध्यान दिया गया है।

विश्व बैंक के अनुसार अर्थव्यवस्थाओं का वर्गीकरण

विश्व बैंक ने 2003 में विश्व के विभिन्न देशों की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आधार पर विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को चार भागों में विभाजित किया है।

(1) निम्न आय वाले देश – वे देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 675 डालर अथवा उससे कम है।

(2) मध्यवर्ती निम्न आय वाले देश – वे देश जिनकी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 676 डालर से 3035 डालर के मध्य है।

(3) मध्यवर्ती उच्च आय वाले देश – वे देश जिनकी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 3038 डालर से 9385 डालर के मध्य है।

(4) उच्च आय वाले देश – वे देश जिनकी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 9386 डालर से अधिक है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था, संस्थाओं का वह ढांचा है जिसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों तथा उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग पर सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है।
- उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्थाएँ – पूंजीवादी, समाजवादी, मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ होती है।
- विकास के स्तर के आधार पर अर्थव्यवस्था को दो भागों में बाँटा जाता है – विकासशील अर्थव्यवस्था एवं विकसित अर्थव्यवस्था।
- विश्व बैंक ने राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय के आधार पर अर्थव्यवस्था को चार भागों में बांटा – निम्न आय वाले देश, मध्यम निम्न आय वाले देश, मध्यवर्ती उच्च आय वाले देश तथा उच्च आय वाले देश।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें –
   (अ) सम्पत्ति पर सार्वजनिक स्वामित्व होता है
   (ब) आय के वितरण में समानता होती है।
   (स) निजी सम्पत्ति होती है।
   (द) नियोजन तन्त्र प्रभावी होता है। ( )

2. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है –
   (अ) श्रमिकों का कल्याण
   (ब) आर्थिक समानता
   (स) निजी लाभ को अधिकतम करना
   (द) समाजवाद की स्थापना करना ( )

3. आर्थिक संगठन की सबसे पुरानी पद्धति निम्न में से है –
   (अ) समाजवाद (ब) मिश्रित
   (स) साम्यवादी (द) पूंजीवादी ( )

4. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सम्भावित खतरे है –
   (अ) वर्ग संघर्ष (ब) व्यापार चक्रों में वृद्धि
   (स) आर्थिक शोषण (द) उपर्युक्त सभी ( )

5. समाजवादी अर्थव्यवस्था है –
   (अ) नियोजित अर्थव्यवस्था
   (ब) अनियोजित अर्थव्यवस्था
   (स) कीमत संयन्त्र वाली
   (द) उत्पत्ति के साधनों पर निजी स्वामित्व वाली अर्थव्यवस्था ( )

6. समाजवादी अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य है –
   (अ) वैयक्तिक लाभ (ब) रोजगार में वृद्धि
   (स) राष्ट्रीय आय में वृद्धि (द) कोई नहीं ( )

7. निम्न में से समाजवादी अर्थव्यवस्था का लक्षण नहीं है –
   (अ) केन्द्रीय नियोजन
   (ब) कीमत संयन्त्र की भूमिका

(स) अधिकतम सामाजिक कल्याण

(द) उत्पत्ति के साधनों पर सरकारी स्वामित्व ( )

8. मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों पर नियन्त्रण होता है –

(अ) सरकार का (ब) निजी व्यक्ति का

(स) निजी एवं सरकार दोनो का (द) कोई नहीं। ( )

9. मिश्रित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय समस्याओं का समाधान होता है –

(अ) कीमत संयन्त्र द्वारा

(ब) केन्द्रीय नियोजन द्वारा

(स) केन्द्रीय नियोजन एवं कीमत संयन्त्र द्वारा

(द) कोई नहीं ( )

10. विश्व बैंक ने राष्ट्रीय आय के आधार पर अर्थशास्त्र को कितने भागों में बांटा –

(अ) दो (ब) तीन

(स) चार (द) पांच ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था अथवा आर्थिक प्रणाली किसे कहते है ?
2. विश्व की पंजीवादी अर्थव्यवस्था वाले कोई तीन देशो के नाम लिखिए ?
3. विश्व की दो समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों के नाम लिखिए ?
4. विकसित अर्थव्यवस्था किसे कहते है ?
5. विकासशील अर्थव्यवस्था क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था के प्रमुख तत्व कौन–कौन से है ?
2. अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ क्या है ?
3. आर्थिक प्रणाली के विभिन्न स्वरूपों को लिखिए ?
4. मिश्रित अर्थव्यवस्था क्या है ?
5. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था किसे कहते है ?
6. विकासशील अर्थव्यवस्था तथा विकसित अर्थव्यवस्था में अन्तर कीजिए ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ? बताइए कि यह अर्थव्यवस्था किस सीमा तक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था के गुणों का मिश्रण है ?
2. समाजवादी अर्थव्यवस्था किसे कहते है ?
3. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिए इसके प्रमुख गुण एवं दोष कौन–कौन से है ?
4. मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुण–दोषो का वर्णन कीजिए? भारतीय अर्थव्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था क्यों कहा जाता है ?
5. समाजवादी अर्थव्यवस्था के गुण–दोषों का वर्णन कीजिए ?

उत्तरमाला

(1) स (2) स (3) द (4) द (5) द

(6) ब (7) ब (8) स (9) स (10) स

संदर्भ ग्रंथ

1- J.S.Mill- Principles of political economy (1948)

2- J.M.Keynes-Scope & Methods of political economy

3- Samuelson - An essay on the nature and sigmificance of economic science.

4- शुम्पीटर – ''केपीटलिज्म, सोसियलिस्म एन्ड डेमोक्रेसी'' (1942)

5- M.P.Todars and stephen 'C' smith-''Economic Development (2003)

अध्याय – 2.1

सांख्यिकी का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and definition of statistics)

आज का युग ज्ञान विज्ञान का युग है और ज्ञान विज्ञान की प्रत्येक शाखा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से संख्यात्मक तथ्यों से सम्बद्ध होती है। सामान्य जीवन की छोटी से छोटी घटनाओं को भी संख्याओं में व्यक्त किया जा सकता है। संख्याओं के बिना तथ्य की सत्यता अधूरी रहती है। राज्य में संख्यात्मक विवेचन के आधार पर ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं के बारे में जानकारी मिलती है तथा उनके समाधान हेतु प्रयास किये जाते है। अर्थात संख्यात्मक तथ्यों पर आधारित ज्ञान वास्तविक तथा यथार्थ होता है। ब्रिटिश विद्वान लार्ड केल्विन ने लिखा है – ''जिस विषय के सम्बन्ध में आप बात कर रहे है यदि आप उसे माप सकते है तथा संख्याओं में व्यक्त कर सकते है तो आप उस विषय में कुछ जानते है। किन्तु जब आप उसे माप नहीं सकते, जब आप उसे संख्याओं में व्यक्त नहीं कर सकते तो आपका ज्ञान अल्प व असन्तोषजनक प्रकृति का है।''

सांख्यिकी की उत्पत्ति
(Origin of Statistics)

राष्ट्रीय संगठनों के साथ–साथ सांख्यिकी की उत्पत्ति हुई। पुरानी जातियों के संगठन के साथ उनके शासकों ने प्रबन्ध सम्बन्धी समंको (आंकड़ों) का संग्रह करना आवश्यक समझा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी शासन, सामाजिक व्यवस्था, युद्ध व्यवस्था इत्यादि से सम्बन्धित अनेक तथ्य साँख्यिकी से सम्बन्धित मिलते है। रोम एवं अन्य देशों में भी समंको के संकलन की प्रवृत्ति दिखाई पडती है। राज्य की नीतियाँ समंको पर आधारित होने के कारण सांख्यिकी विज्ञान को राज्य तंत्र का विज्ञान (Science of State Craft) या सम्राटों का विज्ञान (Science of King) कहा गया।

सांख्यिकी का अर्थ
(Meaning of Statistics)

अंग्रेजी भाषा में सांख्यिकी को STATISTICS कहते हैं। सांख्यिकी शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द State (राज्य) से निकला हुआ है। लेटिन भाषा के state को status रोमन भाषा में stato, जर्मन भाषा में statistik तथा इटली भाषा में statista कहा जाता है। इन सभी शब्दों का अर्थ राज्य से है। राज्य से सांख्यिकी का गहरा सम्बन्ध रहा है। यह शब्द अनेक बार राज्य कार्य में निपुण हो ऐसे व्यक्ति के लिए भी प्रयोग हुआ है। भारत में सांख्यिकी का प्रयोग अनेक प्राचीन ग्रन्थों जैसे कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि में मिलता है। सांख्यिकी का जनक जर्मन विद्वान गणितज्ञ गोटीफ्राइड एक्नेवाल (Gott fried Achenwall) को माना जाता है। 1749 में सर्वप्रथम **Statistics** शब्द का प्रयोग इन्होनें ही किया तथा सांख्यिकी को ज्ञान की विशिष्ट शाखा के रूप में स्थापित किया एवं विकसित किया। आधुनिक काल में समंको का अधिक प्रयोग होने का प्रमुख कारण समंको की बढ़ती मांग है। सॉख्यिकी में नवीन विधियों का प्रयोग होने से श्रम एवं समय की बचत होती है। समंकों के प्रयोग में घटती लागत भी इसका प्रमुख कारण है।

अंग्रेजी शब्द STATISTICS का प्रयोग हिन्दी में तीन प्रकार से होता है आंकड़ें, समंक, साँख्यिकी और प्रतिदर्शज। साधारण प्रयोग में यह आंकड़ों के अर्थ में होता है। जैसे भारत में जन्म–मृत्यु के आंकड़ें, अपराध सम्बन्धी आंकडे, मूल्य सम्बन्धी आंकड़ें आदि। समंक तथ्यों का अंको के रूप में किया गया संग्रह मात्र है। सांख्यिकी (**Statistics**) शब्द का दूसरा अर्थ उन विधियों से है जिनका प्रयोग सांख्यिकी में किया जाता है। इसके अन्तर्गत सभी सिद्धान्त एवं युक्तियाँ (devices) आती है जो मात्रा सम्बन्धी विवरण का संकलन, विश्लेषण तथा निर्वचन में काम आती है।

Statistics (साख्यिकी) शब्द का दूसरा प्रयोग सांख्यिकी के बहुबचन समूह अथवा समंको के रूप में भी होता है जैसे जनसंख्या समंकों के रूप में। समंकों का तीसरा अर्थ प्रतिदर्शज है। जिसका अर्थ समष्टि के संख्यात्मक गुणों को बताने वाली संख्याओं का अनुमान (**estimate**) है।

परिभाषा (definition) – सांख्यिकी की अनेक परिभाषाएँ दी गयी है। क्वेट्रलेट (**Quetelet**) ने 1869 में साँख्यिकी की

180 परिभाषाओं की सूची बनाई थी। जान ग्रिफिन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है ''साँख्यिकी को परिभाषित करना कठिन है। आज दिन तक साँख्यिकी की एक सर्वमान्य परिभाषा का अभाव है। कुछ विद्वानों ने साँख्यिकी की निम्न परिभाषाएँ दी है–

बाउले (Bouley) के अनुसार – "सॉख्यिकी गणना का विज्ञान है।'' एक अन्य स्थान पर बाउले ने लिखा है कि ''सॉख्यिकी को उचित रूप से साध्यों का विज्ञान कहा जा सकता है।''

बोडिंगटन (Boddinglon) के शब्दों में "सांख्यिकी अनुसन्धानों एवं सभांविताओं का विज्ञान है।''

सेलिगमेन के अनुसार – "सांख्यिकी वह विज्ञान है जो किसी विषय पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से संग्रहित किए गये आंकड़ों के संग्रहण, वर्गीकरण, प्रस्तुतीकरण, तुलना एवं व्याख्या करने की रीतियों का विवेचन करता है।'' सांख्यिकी के क्षेत्र में यह परिभाषा व्यापक परिभाषा मानी जाती है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्रियों की भॉति साँख्यिकी में भी विषय की परिभाषा के बारे में मतभेद है। यह मतभेद इसलिए भी है क्योंकि सांख्यिकी की आदर्श परिभाषा देना सरल कार्य नहीं है।

सांख्यिकी का क्षेत्र (Scope of Statistics)

प्राचीन काल में सांख्यिकी का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। साख्यिकी का जन्म राजाओं के विज्ञान के रूप में हुआ। परन्तु आधुनिक युग में इस विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया। वास्तव में प्रत्येक विज्ञान में एक साधन के रूप में साँख्यिकीय विधियों का काफी प्रयोग किया जाता है। यह कहना सही है कि विज्ञान सांख्यिकी के बिना अधूरा है तथा सांख्यिकी विज्ञान के बिना। सांख्यिकी की विषय सामग्री को दो भागों में बांटा जाता है –

(A) सांख्यिकीय विधियाँ (Statistical Methods)

(B) व्यावहारिक सांख्यिकी (Applied Statistics)

(A) सांख्यिकीय विधियाँ– सांख्यिकीय विधियों की सहायता से समंक संकलित किए जाते है तथा उन्हे उचित रूप से प्रस्तुत करके उन्हे तुलनात्मक एवं समझने योग्य बनाया जाता है। इससे उचित निष्कर्ष निकालने में भी सहायता मिलती है। जैसा कि जॉन्सन एवं जैक्सन ने लिखा है – ''सांख्यिकीय रीतियां वे प्रक्रियाएँ है जो संख्यात्मक तथ्यों के संग्रहण, संगठन, संक्षिप्तीकरण, विश्लेषण, निर्वचन, और प्रस्तुतीकरण के लिये प्रयोग में लायी जाती है।'' अर्थात सांख्यिकी विधियों के अन्तर्गत निम्न कार्य आते है –

(i) समंको का संकलन करना (collection of data) – अर्थात यह निश्चित करना कि अनुसन्धान के लिए समंक कहां से, कितने एवं किस ढंग से एकत्रित किए जाएँ।

(ii) समंको का वर्गीकरण (classification) – समंको को तुलनीय, सुगम बनाने के लिए उन्हे विभिन्न वर्गो में बांटना जैसे आयु, भार, स्थान, रंग, जाति आदि।

(iii) सारणीयन (Tabulation) – समंको को व्यवस्थित कर प्रस्तुत किया जाता है। वर्गीकृत समंको या आंकड़ों को पंक्ति तथा कॉलम में लिखा जाता है।

(iv) प्रस्तुतीकरण (Presentation) – व्यवस्थित समंकों को सरल, सुव्यवस्थित एवं तुलनीय बनाने के लिए उन्हे बिन्दु रेखाओं तथा चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है ताकि मस्तिष्क पर उनकी छाप पड़े।

(v) विश्लेषण (Analysis) – समंकों का विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों जैसे केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप, अपकिरण, सह सम्बन्ध आदि के माध्यम से किया जाता है।

(vi) निर्वचन (Interpretation) – निर्वचन में जांच के विषय के सम्बन्ध में निर्वचन किया जाता है जैसे दो तथ्यों के बीच सह सम्बन्ध है या नहीं।

(vii) पूर्वानुमान (Forecasting) – भूत एवं वर्तमान के विश्लेषण के आधार पर भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाये जाते है तथा पूर्व घोषणाएँ की जाती है।

(B) व्यावहारिक सांख्यिकी (Applied Statistics)

सांख्यिकीय विधियाँ सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करती है। सैद्धान्तिक विधियों का व्यवहार में प्रयोग कैसे किया जाय इसका अध्ययन व्यावसायिक सांख्यिकी में किया जाता है। उदाहरणार्थ जनसंख्या, राष्ट्रीय आय, ओद्योगिक उत्पादन, मूल्य, मजदूरी आदि के आंकड़ें व्यावहारिक समंक है। व्यावहारिक समंक अर्थशास्त्र, वाणिज्य, समाज शास्त्र, प्रशासन, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान आदि से सम्बन्धित होते है। व्यावहारिक सांख्यिकी को दो भागों में बांटा जाता है –

(i) वर्णात्मक सांख्यिकी – इसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र से सम्बन्धित भूतकाल तथा वर्तमान काल में संकलित समंकों का अध्ययन किया जाता है

(ii) वैज्ञानिक व्यावहारिक सांख्यिकी – इसके अन्तर्गत विभिन्न विषयों के कुछ वैज्ञानिक नियमों के प्रतिपादन के उद्देश्य से व्यावहारिक समंकों को एकत्रित किया जाता है। मांग के नियम, व्यापार चक्रों का अध्ययन इसी के उदाहरण है।

(iii) व्यावहारिक सांख्यिकी के अन्तर्गत विभिन्न व्यावसायिक समस्याओं का अध्ययन, विश्लेषण एवं समाधान हेतु सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है। अर्थात सांख्यिकी का क्षेत्र काफी व्यापक है।

अर्थशास्त्र में सांख्यिकी की भूमिका
(Role of statistics in economics)

सांख्यिकी और अर्थशास्त्र का गहरा सम्बन्ध है। अर्थशास्त्र के विभिन्न नियमों एवं सिद्धान्तों की नींव में सांख्यिकी समंक ही हैं। प्रोफेसर मार्शल ने लिखा है – समंक वे कण है जिसमें प्रत्येक अर्थशास्त्री की भांति मुझे भी (आर्थिक नियमों को) ईंटे बनानी पड़ती है। अर्थशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों स्वरूपों में सांख्यिकी अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। आर्थिक नियमों का परीक्षण करने हेतु आगमन–नियमन प्रणाली संमकों पर ही आधारित है। अर्थशास्त्र में जनसंख्या का सिद्धान्त, मुद्रा परिमाण सिद्धान्त, वितरण के सिद्धान्त आदि का प्रतिपादन सांख्यिकी द्वारा ही सम्भव हुआ है और इसकी जांच सांख्यिकीय विधियों द्वारा ही सम्भव है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय विकास की योजनाओं के निर्माण में, उनकी प्रगति का मूल्याकंन करने में सांख्यिकीय समंक आवश्यक होते है। योजनाओं की सफलता को प्रदर्शित करने हेतु चित्रों, आरेखों का प्रयोग किया जाता है। प्रो बाउले ने लिखा है कि ''अर्थशास्त्र का कोई भी विद्यार्थी पूर्ण सामग्री का दावा तब तक नहीं कर सकता जब तक वह सांख्यिकीय रीतियों में पारंगत न हो।''

सांख्यिकी की सीमाएँ
(Limitations of Statistics)

सांख्यिकी का विषय क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। वर्तमान में सांख्यिकीय विधियों की लोकप्रियता निरन्तर बढ़ रही है परन्तु सांख्यिकी की भी कुछ सीमाएँ है –

(i) **केवल संख्यात्मक तथ्यों का ही अध्ययन –** सांख्यिकी केवल संख्यात्मक तथ्यों का ही अध्ययन करती है। गुणात्मक तथ्यों का अध्ययन नहीं करती। अर्थात सांख्यिकी के अन्तर्गत केवल उन्ही समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जिनकों संख्याओं के रूप में व्यक्त किया जा सके जैसे आयु, ऊंचाई, उत्पादन, मूल्य, मजदूरी आदि। गुणात्मक स्वरूप प्रगट करने वाले तथ्य जैसे स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर, गरीबी आदि का प्रत्यक्ष रूप से विश्लेषणात्मक अध्ययन सांख्यिकी के अन्तर्गत नहीं किया जाता।

(ii) **समूहों का अध्ययन, व्यक्तिगत इकाई का नहीं –** सांख्यिकी के अन्तर्गत संख्यात्मक तथ्यों की सामुहिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है जैसे देश की औसत प्रति व्यक्ति आय। यह औसत प्रति व्यक्ति आय केवल सामूहिक विशेषताओं पर ही प्रकाश डालती है। इसमें अलग–अलग व्यक्तियों जैसे निर्धन, भिखारी, अमीर आदि की व्यक्तिगत आय पर यह प्रकाश नहीं डालती।

(iii) **समस्या के अध्ययन की एक मात्र रीति नहीं –** सांख्यिकीय रीति समस्या के अध्ययन की एक मात्र रीति नहीं है। जैसाकि क्राक्स्टेल एवं काउडेन ने लिखा है – ''यह नहीं मान लेना चाहिए कि सांख्यिकी रीति ही अनुसन्धान कार्य में प्रयोग में लायी जाने वाली एक मात्र रीति है। साँख्यिकी इस रीति को प्रत्येक प्रकार की समस्याका सर्वोत्तम हल करने की एक मात्र रीति नहीं समझना चाहिए। सांख्यिकी रीति द्वारा प्राप्त परिणामों को तभी सही मानना चाहिए जब अन्य रीतियों के द्वारा जैसे प्रयोग निगमन आदि की सहायता से या अन्य प्रमाणों से यह पुष्ठ हो जाये।

(iv) **प्राप्त निष्कर्ष भ्रामक हो सकते है –** सांख्यिकी निष्कर्षो को भली भांति समझने के लिये उनके सन्दर्भो का भी अध्ययन करना आवश्यक है अन्यथा वे असत्य सिद्ध हो सकते है। बाउले ने लिखा है ''जो विद्यार्थी समंको का उपयोग करता है उसे अनुसन्धान के निष्कर्षो को प्रमाणित मानकर सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए परन्तु इस विधि के समस्त अंगों का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए।

(v) **सांख्यिकी नियम केवल औसत रूप से और दीर्घकाल में ही सत्य –** सांख्यिकी नियम भौतिकी, रसायन विज्ञान अथवा खगोल शास्त्र के नियमों की भांति पूर्णरूप से सत्य नहीं होते तथा वे हमेशा तथा सभी परिस्थितियों में लागू नहीं होते। वे केवल औसत रूप में समूहों में दीर्घकाल में ही लागू होते है।

(vi) **विशेषज्ञ ही प्रयोग करें –** समंको का संकलन, विश्लेषण, निर्वचन आदि केवल उन व्यक्तियों द्वारा ही किया जाना चाहिए जो सांख्यिकीय रीतियों का विशेष ज्ञान रखते है। अयोग्य तथा अनभिज्ञ व्यक्ति प्राप्त समंको से या तो निष्कर्ष नहीं निकाल सकते अथवा गलत निष्कर्ष निकालेगें। जैसा कि यूल तथा कैन्डाल ने लिखा है –''अयोग्य व्यक्ति के हाथ में सांख्यिकीय रीतियाँ बहुत खतरनाक औजार है।''

सारांश में यह कहना युक्ति संगत होगा कि वर्तमान में ऐसा कोई विज्ञान नहीं है जहाँ पर सांख्यिकी का प्रयोग नहीं होता।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- सांख्यिकी वह शास्त्र है जिसका सम्बन्ध सार्थक संख्याओं से है।
- सांख्यिकी की विषय सामग्री को दो भागों में बांटा जा सकता है – (i) सांख्यिकीय विधियाँ (ii) व्यावहारिक सांख्यिकी
- अर्थशास्त्र के विभिन्न नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन सांख्यिकीय समंको द्वारा ही होता है।
- सांख्यिकी प्रयोग की सीमाएँ है। इन सीमाओं का ध्यान न रखने पर भ्रामक एवं पक्षपात पूर्ण निष्कर्ष निकल सकते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. बहुबचन में सांख्यिकी STATISTICS का अर्थ है –
   (अ) सांख्यिकी विज्ञान से (ब) समंको से
   (स) सांख्यिकी मापों से (द) उपरोक्त सभी ( )
2. साख्यिकी है –
   (अ) गणना का विज्ञान
   (ब) अनुमानों एवं सम्भावितओं का विज्ञान
   (स) समंको के निर्वचन एवं विश्लेषण का विज्ञान
   (द) उपरोक्त सभी ( )
3. ''सांख्यिकी गणना अथवा साध्यों का विज्ञान है'' यह परिभाषा है –
   (अ) बाउले की (ब) क्राउडन की
   (स) जान ग्रिफिन की (द) पार्सेन की ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सांख्यिकी का अर्थ लिखियें ?
2. सांख्यिकी का बहुवचन के रूप में अर्थ लिखियें ?
3. समंको का अर्थ लिखियें ?
4. सांख्यिकी की कोई दो सीमाएँ लिखियें ?
5. व्यावहारिक सांख्यिकी का प्रयोग किन–किन क्षेत्रों में किया जाता है ?
6. सांख्यिकी का जनक कौन है ?
7. सांख्यिकी को एक वचन के रूप में परिभाषित कीजिए ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सांख्यिकी से आप क्या समझते है ?
2. सांख्यिकी के क्षेत्र को संक्षिप्त में समझाइयें ?
3. सांख्यिकीय विधियॉ कौन–कौन सी है ?
4. सांख्यिकी की कोई दो सीमाओं की व्याख्या कीजियें ?
5. सांख्यिकी का अर्थशास्त्र से सम्बन्ध संक्षिप्त में समझाइयें ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. सांख्यिकी का अर्थ बताते हुए इसके क्षेत्र की व्याख्या कीजियें?
2. सांख्यिकी को संक्षिप्त में समझाइए ? इसके अर्थशास्त्र से सम्बन्ध की व्याख्या कीजियें ?
3. सांख्यिकी को परिभाषित कीजिए ? सांख्यिकी की सीमाओं की व्याख्या कीजियें ?
4. सांख्यिकी को परिभाषित कीजिए ? अर्थशास्त्र में सांख्यिकी की भूमिका को स्पष्ट कीजियें ?

उत्तरमाला

(1) ब (2) स (3) अ

संदर्भ ग्रंथ –

1. कैलाशनाथ नागर–''सांख्यिकी के मूल त्तव
2. रंगा, गुप्ता, गोयल, भटनागर, शाह, रघुवंशी – ''सॉंख्यिकी'' 2nd Edition

अध्याय – 2.2

आंकड़ों का संग्रहण
(Collection of Data)

सांख्यिकीय अनुसंधान एक जटिल प्रक्रिया है। सांख्यिकीय अनुसंधान की योजना बनाने के उपरान्त उपर्युक्त रीति का चुनाव कर समंको को एकत्रित करने का कार्य प्रारम्भ किया जाता है। समंको को एकत्रित करना (संग्रहण) सांख्यिकी विज्ञान की मूलभूत क्रिया है। समंक सांख्यिकी विज्ञान की आधारशिला है। वास्तव में आंकड़ों के संकलन की क्रिया की शुद्धता और व्यापकता पर ही समंको के विश्लेषण एवं निर्वचन की आगामी क्रियाओं की सफलता निर्भर करती है। समंको के संकलन का कार्य सांख्यिकीय अनुसंधानकर्ता के लिए उसी प्रकार से है जैसे कि भवन निर्माण करने के लिए पत्थर, बजरी, चूना, सीमेंट, ईंट आदि सामग्री को एकत्रित करना है। जैसे बिना इन सामग्री को एकत्र किए भवन निर्माण कार्य असम्भव है उसी प्रकार बिना समंक संकलन के अनुसंधान कार्य को आगे बढाना मुश्किल है। वास्तव में संकलन क्रिया (आंकड़ों का एकीकरण) की शुद्धता और व्यापकता पर ही समंको के विश्लेषण एवं निर्वचन की आगामी क्रियाओं की सफलता आधारित है। यदि एकत्रित समंक अशुद्ध और अपर्याप्त होते हैं तो इससे निकाले जाने वाले निष्कर्ष भी भ्रामक होंगे। अतएव इस कार्य में सावधानी बरतनी आवश्यक है।

प्राथमिक तथा द्वितीयक समंक
(Primary & Secondary data)

समंको को एकत्रित करने के स्रोतों के आधार पर समंको को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(i) प्राथमिक समंक (Primary data)

(ii) द्वितीयक समंक (Secondary data)

प्राथमिक समंक (Primary data) – अनुसंधानकर्ता द्वारा स्वयं के प्रयोग के लिए नये सिरे से पहली बार एकत्रित किये जाने वाले समंक प्राथमिक समंक कहलाते है। अर्थात् उन समंको को प्राथमिक समंक कहते हैं जो अनुसंधानकर्ता द्वारा पहली बार आरम्भ से अन्त तक बिल्कुल नये सिरे से एकत्रित किए जाते है। खेलने की आदत के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों से खेल के मैदान में जाकर मौलिक रूप से आंकड़े संग्रहित करना प्राथमिक समंक कहलायेंगे।

द्वितीयक समंक (Secondary data) –द्वितीयक समंक वे हैं जिनका पूर्व में किसी अन्य व्यक्ति या संस्था द्वारा संकलित किये हुए हों और जो प्रकाशित किये जा चुके हो। अनुसंधानकर्ता केवल उनका प्रयोग करता है। अन्य शब्दों में, यदि पूर्व में किसी अनुसंधानकर्ता ने कोई समंक एकत्रित किए थे और अन्य अनुसंधानकर्ता अपने अनुसन्धान के लिए उन्हीं समंको का प्रयोग करता है तो दूसरे अनुसंधानकर्ता के लिए वे मौलिक समंक नहीं होगें बल्कि द्वितीयक समंक होगें। उदाहरण के लिए यदि अनुसंधानकर्ता सरकार द्वारा कृषि, श्रम, रोजगार के अन्तर्गत संकलित एवं प्रकाशित समंको का उपयोग करता है तो वे समंक उसके लिए द्वितीयक समंक कहलायेंगे।

प्राथमिक एवं द्वितीयक समंक में अन्तर
(Difference between Primary data and Secondary data)

(i) **प्रकृति –** प्राथमिक समंक मौलिक एवं सांख्यिकीय विधियों के लिए कच्चे माल की भांति होते है जबकि द्वितीयक समंक सांख्यिकीय क्षेत्र में से एक बार गुजर चुके होते है तथा निर्मित माल की भांति होते है।

(ii) **संग्रहकर्ता –** प्राथमिक समंक अनुसंधानकर्ता या उसके प्रतिनिधि द्वारा संकलित किये जाते है जबकि द्वितीयक समंक अन्य व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा पूर्व में संकलित एवं प्रकाशित होते हैं।

(iii) **योजना –** प्राथमिक समंक नये सिरे से स्वतन्त्र योजना बनाकर एकत्र किए जाते हैं जबकि द्वितीयक समंक पहले से उपलब्ध समंक होते हैं अर्थात किसी प्रकाशन, प्रतिवेदन या अभिलेखों में उपलब्ध समंक द्वितीयक समंक है।

(iv) **उद्देश्य –** प्राथमिक समंक अनुसंधान के उद्देश्य के सदैव अनुकूल होते हैं जबकि द्वितीयक समंको के

एकत्रित करने में कम धन एवं कम समय व्यय करना पडता है। इन्हें उद्देश्य के अनुकूल बनाना पडता है।

(v) **धन, शक्ति –** प्राथमिक समंको के संकलन में अधिक समय, धन एवं शक्ति लगती है जबकि द्वितीयक समंको के संग्रहण में कम समय व धन का व्यय करना पड़ता है।

प्राथमिक समंको के संकलन की रीतियाँ (Methods of collection of Primary data)

प्राथमिक समंको के संग्रहण की निम्नलिखित रीतियाँ हैं –

(i) प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुसन्धान (Direct personal Investigetion)

(ii) अप्रत्यक्ष मौलिक अनुसन्धान (Indirect oral Investigation)

(iii) संवाददाताओं से सूचना प्राप्ति (Information through correspondents)

(iv) सूचकों द्वारा अनुसूचियाँ भरकर सूचना प्राप्ति (Information through scheduled to be filled by the informants)

(v) प्रगणकों द्वारा सूचना प्राप्ति (Information through enumerators)

1. **प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुसंधान रीति –** यह रीति ऐसे अनुसंधानों के लिए उपयुक्त है जिनका क्षेत्र सीमित या स्थानीय प्रकृति का हो तथा जिनमें समंको की मौलिकता, शुद्धता व गोपनीयता को अधिक महत्त्व दिया जाता हो। इस रीति में अनुसंधानकर्ता स्वयं अनुसंधान वाले क्षेत्र में जाकर सूचना देने वाले व्यक्ति से प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करता है तथा निरीक्षण तथा अनुभव के आधार पर आंकड़ें एकत्र करता है। सीमित क्षेत्र में आय–व्यय, मजदूरों की रहन सहन की स्थिति, शिक्षित बेरोजगारी आदि से सम्बन्धित अनुसंधान अक्सर इसी रीति से किए जाते हैं। आर्थर यंग ने कृषि उत्पादन के अध्ययन में इसी रीति का प्रयोग किया है। इस रीति में आंकड़ों की शुद्धता होने, विश्वसनीय सूचना प्राप्त होने, सजातीयता होने तथा लोचशीलता का गुण विद्यमान होने पर भी इस विधि में पर्याप्त दोष भी हैं जैसे अनुसंधानकर्ता व्यक्तिगत पक्षपात कर सकता है जिससे परिणाम प्रभावित हो सकते हैं। अधिक अपव्यय तथा सीमित क्षेत्र में कार्य करने के कारण पक्षपात पूर्ण निष्कर्ष भी प्राप्त हो सकते है।

2. **अप्रत्यक्ष मौखिक अनुसंधान रीति –** इस रीति के अन्तर्गत समस्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों से सूचना प्राप्त नहीं की जाती अपितु तृतीय पक्ष वाले ऐसे व्यक्तियों या साथियों से मौखिक पूछताछ कर समंक एकत्रित किए जाते है। ये समंक स्थिति से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते है। जिन व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करनी है उनसे प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं किया जाता। जैसे श्रमिकों के रहन–सहन से सम्बन्धित सूचना स्वयं श्रमिक से न प्राप्त कर श्रम संघो या मिल मालिकों के माध्यम से प्राप्त करना। यह रीति तब प्रयोग की जाती है जब अनुसंधान क्षेत्र अधिक व्यापक हो। इस प्रणाली में अनेक गुण है जैसे यह प्रणाली मितव्ययी प्रणाली है, इस प्रणाली में निष्पक्षता है तथा क्षेत्र भी व्यापक है परन्तु इसमें अनेक दोष भी है जैसे सूचना अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त की जाती है, जिन साक्षियों से सूचना प्राप्त की जाती है वे लापरवाही भी कर सकते है।

3. **स्थानीय लोगों एवं संवाददाताओं से सूचना प्राप्त करना –** इस रीति से स्थानीय व्यक्ति या विशेष संवाददाता अनुसंधानकर्ता द्वारा नियुक्त कर दिए जाते है जो समय–समय पर अपने अनुभव के आधार पर अनुमानतः सूचना भेजते हैं। इस विधि में अनेक अशुद्धियाँ पायी जाती हैं।

4. **सूचकों द्वारा प्रश्नावलियाँ भरवाकर सूचना प्राप्ति रीति –** इस विधि में अनुसंधानकर्ता जांच से सम्बन्धित प्रश्नों की एक सूची या प्रश्नावली तैयार करता है। प्रश्नावली छपवाकर डाक द्वारा उन व्यक्तियों के पास भेजता है जिनसें सूचनायें प्राप्त करनी हो। इसके साथ अनुरोध पत्र भी भेजता है जिसमें निश्चित तिथि तक इसे भेजने तथा इसकी गोपनीयता बनाए रखने का अनुरोध होता है। अनुरोध पत्र में प्रश्नावली भरवाने का उद्देश्य भी स्पष्ट किया जाता है। यह रीति अनुसंधान के व्यापक क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। इस रीति के लिए सूचनादाता शिक्षित होना भी आवश्यक

है। पारिवारिक बजट, सूचना, मत सर्वेक्षण, बेरोजगारी से सम्बन्धित आंकड़ों का संकलन इस रीति द्वारा किया जा सकता है। इस रीति में मौलिकता, मितव्ययिता, व्यापकता आदि के गुण अवश्य है परन्तु साथ ही अप्रत्यक्ष एवं अपूर्ण सूचना के भय के साथ पक्षपात पूर्ण शुद्धता व लापरवाही बरतने का भय भी रहता है।

5. **प्रगणकों द्वारा अनुसूचियाँ भरना –** इस विधि में भी जांच से सम्बन्धित प्रश्नों की एक अनुसूची तैयार की जाती है तथा प्रगणकों को दे दी जाती है। प्रगणक सूचना देने वालों से आवश्यक प्रश्न पूछकर उनके उत्तर अनुसूची में लिखते हैं। प्रगणक इस कार्य में प्रशिक्षित होते हैं तथा वे क्षेत्रीय भाषा से भी परिचित होते हैं। यह रीति वहॉ उपयुक्त है जहॉ पर पर्याप्त श्रम शक्ति एवं धन उपलब्ध हो। अक्सर सरकारें इस रीति का उपयोग करती हैं। जैसे जनगणना, आर्थिक–सामाजिक सर्वेक्षण आदि। इस रीति में शुद्धता, विश्वसनीयता, पक्षपात न होने के गुण विद्यमान हैं, साथ ही यह रीति अधिक खर्चीली भी है इसमें प्रशिक्षण तथा सम्पर्क करने में देरी की समस्या भी बनी रहती है।

अनुसूची एवं प्रश्नावली – सर्वेक्षण के लिए समंक एकत्रित करने के लिए अनुसूचियों एवं प्रश्नावलियों का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया किसी प्रश्नावली को सूचना देने वाले द्वारा ही भरा जाता है तथा अनुसूची को प्रगणक द्वारा पूछताछ कर भरा जाता है।

एक अच्छी प्रश्नावली के गुण

1. प्रश्नावली का आकार छोटा तथा प्रश्नों की संख्या कम होनी चाहिए।
2. प्रश्न सरल व आसानी से समझ में आने वाले होने चाहिए।
3. सही उत्तर दिये जा सकने वाले प्रश्न हों। ये बहुविकल्प वाले या सामान्य विकल्प वाले प्रश्न भी हो सकते हैं।
4. सूचना देने वाले व्यक्ति के आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाने वाले प्रश्न नहीं होने चाहिए। वे प्रश्न भी नहीं होने चाहिए जो भावनाओं को ठेस पहुंचायें।
5. ऐसे प्रश्न होने चाहियें जिनका उत्तर उत्तरदाता के पास हो।
6. प्रश्नों के निर्माण में सही एवं प्रासंगिक शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहियें।
7. प्रश्न ऐसे होने चाहियें जिनका स्पष्ट उत्तर प्राप्त होने की सम्भावना हो।
8. प्रश्नों का क्रम उपयुक्त व संगत होना चाहिये ताकि उत्तर देने वाले को उत्तर देने में सुविधा हो
9. अनुसंधान से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्यक्ष प्रश्नों को ही पूछा जाना चाहिये।
10. प्रश्नों के सभी विकल्प होने चाहिये।
11. खुले प्रश्नों की संख्या कम होनी चाहिये (जैसे भ्रष्टाचार मिटाने के लिए आप क्या सुझाव देंगे आदि)
12. सूचनायें एवं उत्तर गुप्त रखने का आश्वासन लिखित में दिया जाना चाहिये।
13. ऐसे प्रश्न पूछे जाने चाहिये जिससे उत्तरों की सत्यता की जाँच हो सके।
14. प्रश्नावली भरने के स्पष्ट निर्देश होने चाहिये।

प्रश्नावली एवं अनुसूची में अन्तर (Difference between Questionnaire and schedule)

1. प्रश्नावली सूचक भरता है जबकि अनुसूची को प्रगणक सूचना देने वाले से पूछताछ कर भरता है।
2. प्रश्नावली डाक द्वारा सूचना देने वाले से भरवाई जाती है। अनुसूची को प्रगणक स्वयं सूचना देने वाले के पास जाकर व्यक्तिगत रूप से लेकर जाता है।
3. अनुसंधानकर्ता का सूचना देने वाले से प्रश्नावली में व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं होता, जबकि अनुसूची में व्यक्तिगत सम्पर्क होता है।
4. प्रश्नावली शिक्षित सूचनादाता से सम्बन्धित है जबकि अनुसूची का प्रयोग शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों प्रकार के सूचनादाताओं हेतु किया जा सकता है।
5. प्रश्नावली मितव्ययी प्रणाली है। अनुसूची अधिक खर्चीली प्रणाली है।
6. प्रश्नावली में शुद्धता का स्तर कम होता है जबकि अनुसूची में अधिक विश्वसनीयता होती है।

द्वितीयक समंको का संकलन (Collection of Secondary data)

द्वितीयक समंक वे समंक है जो पहले से ही किसी

व्यक्ति या संस्था या सरकार द्वारा संकलित किए जा चुके हैं और उनका दुबारा प्रयोग हो। अन्य शब्दों में किसी अन्य अनुसंधानकर्ता द्वारा या संस्था द्वारा संकलित, प्रकाशित, सांख्यिकीय सामग्री को द्वितीयक समंक कहते है।

द्वितीयक समंको के दो प्रमुख स्रोत है –

(i) प्रकाशित स्रोत (Published Source)

(ii) अप्रकाशित स्रोत (Un Published Source)

प्रकाशित स्रोत – अनेक अनुसंधानकर्ता संस्थायें, सरकारी विभाग, शोध संस्थायें, निगमें विभिन्न विषयों पर मौखिक समंक संकलित करके उन्हे समय–समय पर प्रकाशित करवाते हैं। प्रकाशित समंको के स्रोत निम्नलिखित है –

1. सरकारी प्रकाशन
2. समितियों एवं आयोगों की रिपोर्ट
3. अर्द्धसरकारी संस्थाओं का प्रकाशन
4. व्यापारिक संस्थाओं का प्रकाशन
5. पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन
6. अनुसंधान – संस्थाओं द्वारा प्रकाशन
7. विश्वविद्यालयों का शोध–कार्य
8. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का प्रकाशन
9. विशेषज्ञों के मौलिक ग्रन्थ

अप्रकाशित स्रोत – कभी–कभी सरकारी या अन्य संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा (विशेषकर अनुसंधानकर्ताओं द्वारा) महत्त्वपूर्ण विषयों पर सामग्री संग्रह तो कर ली जाती है परन्तु अप्रकाशित रह जाती है। ऐसी अप्रकाशित सामग्री कार्यालय की पत्रावलियों, प्रलेखों, रजिस्टरों, या अनुसंधानकर्ता की डायरी आदि से प्राप्त की जा सकती है।

द्वितीयक समंकों की जांच एवं प्रयोग (Scrutiny and uses of Secondary data)

द्वितीयक समंको का प्रयोग करने से पूर्व आलोचनात्मक जांच द्वारा उनका विस्तृत सम्पादन कर लेना आवश्यक है। द्वितीयक समंको में अनेकों कमियॉ होती है अतएव इनका उपयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। अनुसंधानकर्ता को इनके प्रयोग करने से पहले यह अच्छी तरह से देख लेना चाहिए कि प्राप्त द्वितीयक समंको में विश्वसनीयता, अनुकूलता तथा सामग्री पर्याप्त है अथवा नहीं।

द्वितीयक समंको के प्रयोग में सावधानियां (Precautions in use of Secondary data)

द्वितीयक समंको की विश्वसनीयता, उपयुक्तता तथा पर्याप्तता की जांच करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है –

(i) सर्व प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि द्वितीयक सामग्री पहले किस अनुसंधानकर्ता द्वारा प्राथमिक रूप से एकत्र की गयी थी। उसकी विश्वसनीयता योग्यता, अनुभव, ईमानदारी सन्तोषजनक है अथवा नहीं।

(ii) आंकड़े संग्रहण की जो रीति अपनायी गयी है वह समंको के वर्तमान प्रयोग के लिए कहाँ तक उपयोगी है, यह भी जान लेना आवश्यक है।

(iii) द्वितीयक समंको के प्रयोग से पहले यह भी देख लेना चाहिए कि प्रस्तुत समंक जो एकत्रित किये गये थे वे उद्देश्य एवं अनुसंधान क्षेत्र के लिए उपयुक्त हैं अथवा नहीं। यदि उद्देश्य एवं क्षेत्र में अन्तर हो तो वे समंक उपयुक्त नहीं होंगे।

(iv) द्वितीयक समंको के प्रयोग से पहले यह भी निश्चित कर लेना चाहिए कि उपलब्ध सामग्री किस समय से सम्बन्धित है तथा किस परिस्थिति में एकत्र की गयी थी। युद्धकालीन परिस्थितियों में एकत्र किए गये समंको का प्रयोग शान्तिकाल में नहीं किया जा सकता। आंकड़ों के प्रारम्भिक संग्रहण और उसके उपयोग के समय की परिस्थितियों में अन्तर होने के कारण उनकी उपयोगिता कम हो सकती है।

(v) प्राप्त समंको में शुद्धता का स्तर क्या रखा गया था और उसे प्राप्त करने में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई। समंको में जितनी शुद्धता होगी वे समंक उतने ही विश्वसनीय होंगे।

(vi) यदि एक ही विषय पर अनेकों स्रोतों से द्वितीयक समंक प्राप्त होते है तो इनकी सत्यता की जांच करने के लिए उनकी तुलना कर लेनी चाहिए।

सांख्यिकी अनुसंधान की रीतियां (Methods of Statistical Investigation)

कोई भी सांख्यिकीय अनुसंधान समग्र के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह जानकारी दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है, जिसे सांख्यिकीय अनुसन्धान की रीतियाँ कहते हैं। ये रीतियाँ दो प्रकार की हैं – संगणना रीति एवं प्रतिदर्श रीति।

संगणना रीति (Census Method) – जब समग्र की

समस्त इकाइयों एवं अवयवों से अनुसंधानकर्ता जानकारी प्राप्त करता है तो उसे संगणना रीति कहते है। इसके अन्तर्गत समग्र की प्रत्येक इकाई की जानकारी प्राप्त की जाती है। जनगणना, संगणना रीति का ही एक उदाहरण है। जनगणना के अन्तर्गत प्रत्येक घर तथा प्रत्येक व्यक्ति के बारे में जानकारी एकत्रित की जाती है। यह जानकारी विस्तृत होती है। इस रीति के परिणाम शुद्ध एवं विश्वसनीय होते हैं। यह रीति खर्चीली है इसमें श्रम एवं समय अधिक लगता है।

प्रतिदर्श रीति (Sample Method) इसके अन्तर्गत समग्र में से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चयन किया जाता है एवं चयनित इकाइयों के अध्ययन के द्वारा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। जीवन में घर का सामान जैसे गेहूँ, चावल आदि खरीदते समय बोरी के प्रत्येक गेहूँ या चावल को नहीं देखते अपितु कुछ कणों का नमूना लेकर उसके आधार पर गेहूँ या चावल खरीदने का निर्णय लेते हैं। इस रीति में समय एवं धन की बचत होती है। इस रीति में अत्यन्त सावधानी रखने की आवश्यकता है अन्यथा निष्कर्ष गलत निकलने की सम्भावना बनी रहती है।

प्रतिदर्श या निदर्शन रीति तीन सिद्धान्तों पर आधारित है इन्हे प्रतिदर्श नियम कहते हैं। प्रमुख तीन नियम हैं – प्रायिकता सिद्धान्त, सांख्यिकी नियमित्ता नियम, महांक जड़ता नियम।

प्रतिदर्श चयन की रीतियाँ

जन साँख्यिकीय अनुसंधान प्रतिदर्श रीति से किया जाता है तब समग्र में से पर्याप्त मात्रा में निष्पक्ष एवं प्रतिनिधि इकाइयों को प्रतिदर्श के रूप में चुना जाता है। प्रतिदर्श के चयन की निम्नलिखित रीतियाँ हैं –

(1) **सविचार प्रतिदर्श**–जब अनुसंधनकर्ता अपनी बुद्धि एवं अनुभव के आधार पर पूर्ण विचार करके प्रतिदर्श का चयन करता है तो उसे सविचार प्रतिदर्श कहते हैं। यह अनुसंधानकर्ता की पूर्व धारणा पर निर्भर करता है।

(2) **दैव प्रतिदर्श** –जब प्रतिदर्श का चुनाव दैव रीति से किया जाता है तो इसके अन्तर्गत समग्र की प्रत्येक इकाई को प्रतिदर्श में शामिल होने का अवसर मिलता है। इस रीति में प्रतिदर्श चयन की निम्नलिखित मुख्य रीतियाँ हैं –

(अ) **लॉटरी रीति –** इस रीति में समग्र की समस्त इकाइयों की पर्चियाँ या गोलियाँ बनाकर किसी निष्पक्ष व्यक्ति से एक–एक पर्चियाँ उठवा ली जाती है।

(ब) **ढोल घुमाकर –** इस रीति में एक ढोल या गोलनुमा आकार के लोहे या लकड़ी के गोल टुकड़े जिन पर समग्र की इकाइयों के संकेत या संख्यायें लिखी होती है डाल दिए जाते हैं बाद में ढोल को खूब घुमाया जाता है। किसी निष्पक्ष व्यक्ति से ढोल में जितनी इकाइयों का प्रतिदर्श लेना हो उतने टुकड़े निकलवा लिए जाते हैं।

(स) **आँख बन्द करके चयन –** दीवार पर एक ऐसा मानचित्र लटकाया जाता है जिसमें समग्रह की इकाइयों के बराबर खाने होते है इन्हें चिह्नित कर लिया जाता है। बाद में निष्पक्ष व्यक्ति की आंख पर पट्टी बांध कर मानचित्र पर उससे उतनी बार तीर चलवाया जाता है जितनी इकाइयां प्रतिदर्श में चयन करनी हों।

(द) **निश्चित क्रम की व्यवस्थित रीति –** इस रीति में समग्र की सभी इकाइयों को वर्णमाला के अनुरूप किसी अन्य उपयुक्त ढंग से व्यवस्थित जमा लिया जाता है। सूची को संख्यात्मक क्रम दिए जाते हैं। फिर आकस्मिक रूप से अपेक्षित इकाइयों का चयन बराबर अंतरों के आधार पर इस सूची में से कर लिया जाता है।

(य) **दैव संख्याओं की तालिकाओं के चयन से –** अनेक सांख्यिकों ने दैव संख्याओं की तालिकायें तैयार की है। टिपेट ने चार अंको की 10400 दैव संख्याओं की तालिका बिना किसी क्रम के तैयार की है। इनमें से क्रम प्रदान कर टिपेट सारणी की सहायता से संख्यायें छांट ली जाती हैं और प्रतिदर्श चुन लिया जाता है।

(3) **स्तरित प्रतिदर्श** – यह रीति सविचार एवं दैव प्रतिदर्श का निश्चित स्वरूप है। इस रीति में सबसे पहले समग्र को सविचार प्रतिदर्श द्वारा अनेक भागों में बांट लिया जाता है इसके पश्चात् दैव प्रतिदर्श द्वारा प्रत्येक भाग में से कुछ इकाइयों का चयन कर लिया जाता है।

अन्य रीतियां – अन्य रीतियों में बहुस्तरीय दैव निदर्शन रीति, बहुचरण निदर्शन रीति, कोटा निदर्शन रीति, विस्तृत निदर्शन रीति, सुविधानुसार निदर्शन, रेखा निदर्शन रीति आदि हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- स्रोतों के आधार पर समंको को दो भागों में बांटा जाता है –प्राथमिक समंक एवं द्वितीयक समंक।

- अनुसंधानकर्ता द्वारा पहली बार प्रारम्भ से अन्त तक प्रत्यक्ष रूप से नये सिरे से एकत्रित किये जाने वाले समंक प्राथमिक समंक कहलाते है।
- द्वितीय समंक वे समंक है जिन्हें पूर्व में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संकलित किया गया हो एवं जिनका प्रकाशन हो गया हो।
- प्रश्नावली को सूचना देने वाले व्यक्ति द्वारा ही भरा जाता है।
- अनुसूची को प्रगणक द्वारा पूछताछ कर भरा जाता है।
- द्वितीयक समंको के संकलन के दो स्रोत हैं–प्रकाशित स्रोत एवं अप्रकाशित स्रोत।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्राथमिक समंक हैं –
   (अ) मौलिक समंक
   (ब) पहली बार एकत्रित किये जाने वाले समंक
   (स) पहले से अस्तित्व में न होने वाले समंक
   (द) उपर्युक्त सभी ( )
2. द्वितीयक समंक संकलित किए जाते हैं –
   (अ) अनुसूची भरा कर
   (ब) प्रश्नावली भरा कर
   (स) प्रकाशित एवं अप्रकाशित स्रोतों द्वारा
   (द) उपर्युक्त सभी ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संकलन के दृष्टिकोण से समंक कितने प्रकार के होते है ?
2. प्राथमिक समंक क्या हैं ?
3. द्वितीयक समंक क्या हैं ?
4. प्राथमिक समंक मौलिक समंक क्यों कहे जाते हैं ?
5. प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुसंधान क्या हैं?
6. प्रश्नावली का अर्थ लिखिए ?
7. दैव प्रतिदर्श क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रकाशित एवं अप्रकाशित स्रोत में क्या अन्तर है ?
2. प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों में कोई तीन अन्तर लिखिए?
3. प्राथमिक समंक का अर्थ उदाहरण सहित लिखिए ?
4. द्वितीयक समंकों का अर्थ उदाहरण सहित बताइए ?
5. एक अच्छी प्रश्नावली के क्या गुण हैं? कोई तीन गुण लिखिए?
6. प्रश्नावली एवं अनुसूची में कोई तीन अन्तर लिखिए ?
7. द्वितीयक समंको के स्रोतो को संक्षेप में लिखिए ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको में अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा प्राथमिक समंको को एकत्र करने की रीतियों को समझाइए?
2. द्वितीयक समंको से आप क्या समझते हैं ? द्वितीयक समंको के विभिन्न स्रोतों को समझाइए?
3. प्राथमिक समंको के एकत्र करने की विभिन्न रीतियों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ?
4. साँख्यिकीय अनुसंधान की रीतियों का वर्णन कीजिए ?

उत्तरमाला

(1) द (2) स

संदर्भ ग्रंथ

1. कैलाशनाथ नागर–''सांख्यिकी के मूलतत्व
2. रंगा, गुप्ता, गोयल, भटनागर, शाह, रघुवंशी–''साँख्यिकी'' 2nd Edition 2007

अध्याय– 2.3

आंकड़ों का वर्गीकरण
(Classification of Data)

संग्रहित आंकड़े प्रायः अव्यवस्थित, जटिल एवं अपरिष्कृत होते है। ये आंकडे एक ढेर के समान होते हैं। इन आंकड़ों को आसानी से समझना एवं उनसे वांछित परिणाम प्राप्त करना एक मुश्किल कार्य है। आंकड़ों को आसानी से समझने एवं उनसे उचित परिणाम निकालने के लिए आवश्यक है कि उन्हें सुव्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत किया जाये। अव्यवस्थित एवं अपरिष्कृत आंकड़े कबाड़ी वाले के कबाड़ की भांति अव्यवस्थित होते हैं। एक कबाड़ी गली–गली घूमकर लोगों से अखबार की रद्दी, किताब–कापी, कांच की खाली बोतलें, प्लास्टिक व लोहे का सामान, टूटे–फूटे घरेलू सामान आदि खरीदता है। बाद में वह उनको थोक व्यापारी को बेच देता है। थोक व्यापारी के पास अनेक कबाड़ी वाले कबाड़ बेचकर जाते है। वह अपनी दुकान के बाहर सब का ढेर लगा देता है। बाद में वह व्यापारी एकत्रित कबाड़ को उपयुक्त समूहों या वर्गों मे बाँटता है। अखबार की रद्दी, कापी–किताब, कांच की खाली बोतल, प्लास्टिक बोतल, अन्य प्लास्टिक का सामान, मोटा लोहा, पतला लोहा आदि समूहों में कबाड़ को वर्गीकृत करके रखता है। इस व्यवस्थित एवं वर्गीकृत कबाड़ को आगे मांग के आधार पर बेचने मे सुगमता रहती है। अपरिष्कृत आंकड़ों को वर्गीकृत करने का उद्देश्य उन्हें सुव्यवस्थित करना है ताकि इन्हें सांख्यिकीय विश्लेषण के योग्य बनाया जा सके। आंकड़ों को तुलनात्मक एवं बुद्धिगम्य बनाने की आवश्यकता होती है।

उदाहरण : एक अध्यापक अपनी कक्षा के 50 विद्यार्थियों के अर्थशास्त्र में प्राप्त अंको के आंकड़े निम्न रूप में प्रस्तुत करता है :

22, 20, 30, 26, 31, 48, 25, 14, 19, 24, 11, 45, 27, 25, 06, 40, 13, 03, 29, 11, 24, 47, 02, 09, 45, 31, 20, 12, 15, 41, 49, 01, 27, 24, 31, 07, 02, 49, 14, 19, 17, 44, 47, 26, 09, 02, 42,35, 26, 17

क्या आप उपरोक्त आंकड़ों से कोई परिणाम प्राप्त कर सकते है? चूंकि उपरोक्त आंकड़े अव्यवस्थित या अवर्गीकृत हैं। इन्हें सर्वप्रथम एक क्रम (आरोही या अवरोही) में व्यवस्थित करना होगा, तभी संकलित आंकड़े बुद्धिगम्य एवं तुलना योग्य बनेंगे।

वर्गीकरण में एकत्रित समंकों को उनकी विभिन्न विशेषताओं एवं गुणों के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है। वर्गीकरण एकत्रित समंको को समानता तथा सजातीयता के आधार पर विभिन्न वर्गों या समूहों में क्रमबद्ध करने की क्रिया है। वर्गीकरण वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है। यह इस प्रकार निर्मित किया जाता है कि समंको की 'विविधता में एकरूपता' स्पष्ट हो सके।

वर्गीकरण के उद्देश्य
(Objectives of Classification)

1. **सरल एवं संक्षिप्त बनाना –** वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य एकत्रित समंकों की जटिलता को दूर करके उन्हें सरल एवं संक्षिप्त रूप देना है ताकि वर्गीकृत समंको को आसानी से समझा जा सके।

   जैसे – उदाहरण 1 में दिये गये समंको के आधार पर औसत या अन्य जानकारी प्राप्त करना एक मुश्किल कार्य है। यदि उपरोक्त आंकड़ों को 0–10, 10–20,..... ...आदि वर्गों में बांट दें तो इसे समझने में आसानी होती है।

2. **समानता तथा असमानता को स्पष्ट करना –** वर्गीकृत समंकों को समान गुणवाले तथा सजातीय समूहों में अलग–अलग रखने से उनके मध्य समानता व असमानता को आसानी से समझा जा सकता है।

3. **तुलना में सहायक –** वर्गीकरण से समंकों का तुलनात्मक अध्ययन सरल हो जाता है। यदि दो शहरों या गांवो की जनसंख्या को साक्षर व निरक्षर या विवाहित व अविवाहित या रोजगारित व बेरोजगार के वर्गों में विभाजित करें तो दोनो शहरों/गांवो की गुणों के आधार पर तुलना आसानी से की जा सकती है।

4. **तर्कपूर्ण व्यवस्था करना –** वर्गीकरण एक तर्कसंगत

क्रिया है। इसके अन्तर्गत समंक नियमित एवं सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं। जैसे – जनगणना समंकों को आयु, लिंग, जाति, धर्म, राज्य, शहरी/ग्रामीण आदि वर्गों में बांटना एक तर्कपूर्ण क्रिया है।

5. **सारणीयन का आधार प्रस्तुत करना –** अव्यवस्थित एवं परिष्कृत समंको को बिना वर्गीकरण किये सारणीयन असम्भव है, फिर इसके बिना सांख्यिकीय विश्लेषण अव्यवहारिक है। अतः वर्गीकरण की क्रिया, सारणीयन के लिए आधार प्रस्तुत करती है

आदर्श वर्गीकरण के आवश्यक तत्त्व – एक आदर्श वर्गीकरण में निम्नलिखित तत्त्वों का होना आवश्यक है–

1. **स्पष्टता** – संकलित आंकड़ों को किस वर्ग या समूह में रखना है इस सम्बंध में कोई अनिश्चितता या अस्पष्टता नही होनी चाहिये। वर्गों का निर्माण इस प्रकार किया जाये कि उनमें सरलता, स्पष्टता या असंदिग्धता के लक्षण दिखाई दें। प्रत्येक मद केवल एक ही वर्ग में सम्मिलित होनी चाहिये।
2. **स्थिरता –** आंकड़ों को तुलना योग्य बनाने तथा परिणामों की अर्थपूर्ण तुलना करने के लिए आवश्यक है कि वर्गीकरण में स्थिरता हो।
3. **व्यापकता** – विभिन्न वर्गों की रचना इस प्रकार व्यापक रूप से करनी चाहिये कि संग्रहित समंको की कोई मद छूट न जाये तथा किसी न किसी वर्ग में आवश्यक रूप से सम्मिलित हो सके। आवश्यक हो तो एक विविध वर्ग बनाया जा सकता है, जैसे – वैवाहिक स्थिति के आधार पर वर्ग बनाते समय विवाहित तथा अविवाहित वाले वर्गो मे विधुर, विधवा, तलाकशुदा आदि का उपरोक्त वर्गीकरण में समावेश नहीं हो सकेगा। अतः वर्गीकरण पूर्ण तथा व्यापक होना चाहिये।
4. **उपयुक्तता –** वर्गो की रचना उद्देश्यानुसार होनी चाहिये। जैसे–व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति या बचत प्रवृति जानने के लिए आय के आधार पर वर्गों की रचना करना उपयुक्त रहेगा।
5. **लोचशीलता –** वर्गीकरण लोचदार होना चाहिये जिससे नवीन परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न वर्गों में परिवर्तन, संशोधन,समायोजन किया जा सके।
6. **सजातीयता** – प्रत्येक वर्ग की इकाईयों में सजातीयता होनी चाहिये। एक वर्ग या समूह के अन्तर्गत समस्त इकाईया उस गुण के अनुसार होनी चाहिये जिसके आधार पर वर्गीकरण किया गया है।

वर्गीकरण की रीतियां
(Methods of classification)

सांख्यिकीय समंक दो प्रकार के होते है –

1. वर्णात्मक या गुणात्मक, तथा 2. संख्यात्मक या अंकात्मक। गुणात्मक समंकों का प्रत्यक्ष रूप से मापन नही किया जा सकता। केवल समंकों की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति के आधार पर उनका मापन किया जाता है, उदाहरणार्थ, जैसे – साक्षरता, वैवाहिक स्थिति, रोजगार आदि गुणात्मक समंक है। अंकात्मक समंक या तथ्य वे तथ्य हैं जिनका प्रत्यक्ष मापन संभव है। जैसे – आय, आयु, ऊँचाई, भार आदि। ऐसे तथ्यों को चर–मूल्य (Variables) भी कहते हैं। चर वे मूल्य होते हैं जिनका मान बदलता रहता है।

उपरोक्त दो प्रकार के तथ्यों के आधार पर वर्गीकरण की दो विधियां है–

(A) गुणात्मक वर्गीकरण

(B) संख्यात्मक वर्गीकरण या वर्गोन्तरों के अनुसार वर्गीकरण

(A) गुणात्मक वर्गीकरण (Classification according to attributes) :

जब तथ्यों को उनके वर्णन या गुणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है तो उसे गुणात्मक वर्गीकरण कहते है।

गुणात्मक वर्गीकरण दो प्रकार का होता है –

1. साधारण वर्गीकरण या द्वन्द्व–भाजन वर्गीकरण
2. बहुगुण वर्गीकरण।

जब तथ्यों को किसी एक गुण की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है तो ऐसे वर्गीकरण को द्वन्द्व भाजन/साधारण वर्गीकरण कहते है जैसे – उपलब्ध समंको को ग्रामीण तथा शहरी या पुरूष तथा महिला के आधार पर वर्गीकरण करना।

जबकि बहुगुण वर्गीकरण में तथ्यों को दो या दो से अधिक गुणों के आधार पर बांटा जाता है जैसे – जनगणना से प्राप्त समंकों को पहले पुरूष तथा महिला वर्ग में बाँटना, फिर दोनो को साक्षर तथा निरक्षर में बाँटना, फिर प्रत्येक को रोजगारित तथा बेरोजगार के रूप में वर्गीकृत करना, बहुगुण

वर्गीकरण कहलाता है।

उपरोक्त दोनों प्रकार के वर्गीकरण को निम्न चार्ट द्वारा समझा जा सकता है।

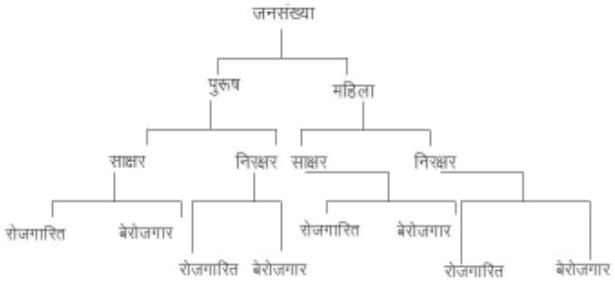

(B) संख्यात्मक या वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकरण

संख्यात्मक वर्गीकरण में समंकों को कुछ विशेषताओं/सजातीयता (जिनका मापन संभव हो) के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। जैसे – आय, उत्पादन, प्राप्तांक, भार, आयु आदि।

उदाहरण 2: एक कक्षा के 100 छात्रों के प्राप्तांको को, जो 00 से 98 के मध्य हैं, को 10–10 अंको के वर्गान्तरों में निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जायेगा –

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या
0-10	3
10-20	7
20-30	8
30-40	11
40-50	30
50-60	20
60-70	13
70-80	4
80-90	3
90-100	1

संख्यात्मक वर्गीकरण में निम्न पारिभाषिक शब्दों को उपयोग में लिया जाता है–

(i) **वर्ग–सीमाऐं (Class-limits)** प्रत्येक वर्ग दो अंकों से बनता है जिन्हें वर्ग सीमाऐं कहते है। पहली सीमा, नीचली सीमा (lower limit or l_1) तथा दूसरी सीमा, ऊपरी सीमा (Upper limit or l_2) कहलाती है। जैसे–वर्ग 50–60 में निचली सीमा 50 है तथा ऊपरी सीमा 60 है।

(ii) **वर्ग–अन्तराल (Class-interval) –** किसी भी वर्ग की ऊपरी तथा निचली सीमा के अन्तर को वर्ग–विस्तार या वर्ग–अन्तराल कहते हैं। इसे "i" से व्यक्त किया जाता है।

इस प्रकार, $i = L_2 - L_1$

उपरोक्त उदाहरण में प्रत्येक वर्ग का विस्तार 10 है जो एक समान है। यह भिन्न–भिन्न भी हो सकता है।

(iii) मध्य–बिन्दु या मध्य–मूल्य (Mid-point) - वर्ग की दोनों सीमाओं के मध्य–स्थान को मध्य बिन्दु कहते हैं। दोनो सीमाओं के जोड़ का आधा मध्य बिन्दु कहलाता है।

सूत्रानुसार – मध्य बिन्दु =

$$= \frac{l_1 + l_2}{2} \quad \text{या} = \frac{\text{निचली सीमा} + \text{ऊपरी सीमा}}{2}$$

(iv) **वर्ग–आवृति (Class frequency)** – किसी वर्ग विशेष की सीमाओं के अन्तर्गत पदों की संख्या, उस वर्ग की आवृत्ति या बारम्बारता कहलाती है। जैसे –उपरोक्त उदाहरण में (30–40) अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की सख्या 11 है जो इस वर्ग की आवृत्ति है। आवृत्ति को 'f' द्वारा व्यक्त किया जाता है।

आवृत्ति बंटन
(Frequency distribution)

एक आवृत्ति बंटन से तात्पर्य किसी मापनीय चर के आधार पर समंको के वर्गीकरण से है। आवृत्ति बंटन एक तालिका है जिसमें समंको को मूल्यो या वर्गों के रूप में समूहित किया जाता है तथा प्रत्येक मूल्य या वर्ग में आने वाली इकाइयों की संख्या को अंकित कर लिया जाता है, जो उन मूल्यों या वर्गों की आवृत्तियाँ कहलाती है। इस प्रकार मूल्यों या वर्गों और उनकी आवृत्तियों के क्रमबद्ध विन्यास को ही आवृत्ति बंटन कहते है। आवृत्ति बंटन, चर तथा आवृत्ति का फलन होता है।

चर दो प्रकार के होते हैं एवं इसे 'X' द्वारा व्यक्त करते हैं–

(i) खंडित चर तथा **(ii)** सतत या अखंडित चर या निरंतर चर।

खंडित चर वे चर है जिनके मूल्य निश्चित तथा खण्डित होते हैं। इनमें विस्तार नही होता तथा इनकी इकाइयां विभाज्य नही होती। जैसे– परीक्षा में छात्रों के प्राप्तांक 0,1,2,3,. ....., परिवार में बच्चो की संख्या, फुटबाल मैच में किये गये गोलों की संख्या, आदि। जबकि सतत चर, वह चर है जिसका मान निश्चित नही होता। दी गई सीमाओं के अन्तर्गत, उसका मान कोई भी हो सकता है। जैसे – (10–20) वर्ग के अन्तर्गत 10.01 से 19.999 तक कुछ भी मान संभव है।

निम्न तालिका में, दोनों प्रकार के चरों पर आधारित,आवृत्ति बंटन को तुलना की दृष्टि से समझाया गया है –

खंडित आवृत्ति बंटन		सतत आवृत्ति बंटन	
बच्चों की संख्या	परिवारों की संख्या	प्राप्तांक	छात्रों की संख्या
0	5	10–20	7
1	18	20–30	12
2	35	30–40	20
3	21	40–50	40
4	13	50–60	16
5	8	60–70	5
योग	N=100	योग	N=100

जब समंकों का आकार बहुत बडा हो तथा वे अनियमित रूप से फैले हुए हो तो सुविधा एवं सरलता की दृष्टि से विभिन्न मूल्यों या वर्गों में आवृत्तियों का विन्यास करने के लिए मिलान चिन्हो (Tally Marks) का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक वर्ग में आने वाले एक पद या इकाई के लिए उस वर्ग के सामने एक रेखा (l) खीची जाती है। किसी वर्ग में पांच इकाइयां हो तो चार रेखाऐं खीचनें के बाद एक उनके बीच आडी रेखा खींच दी जाती है जो कुल पांच इकाईयों को प्रदर्शित करता है (1111)। फिर प्रत्येक वर्ग के मिलान चिन्हों को जोड़कर आगे कॉलम में उनकी संख्या लिख दी जाती हैं जो उस वर्ग की आवृत्ति कहलाती है।

उपरोक्त तालिका को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है –

वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकरण की समस्याऐं

आवृत्ति–समंकों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में कुछ समस्याऐं हमारे समक्ष आती हैं जिनका उचित समाधान होना बहुत आवश्यक है। मुख्य समस्याऐं निम्न प्रकार हैं –

(i) वर्गान्तरों की संख्या – वर्गों की संख्या निश्चित करने के लिए कोई निश्चित नियम नही है। उपलब्ध समंकों को उतने वर्गों में वर्गीकृत करना चाहिये कि समंको के महत्वपूर्ण लक्षण स्पष्ट दिखाई दें एवं सम्पूर्ण सूचनाओं का समावेश हो। सामान्यतः वर्गों की संख्या 5 से 15 के मध्य होनी चाहिए।

(ii) वर्ग–विस्तार (Magnitude) – सामान्यतः वर्ग–विस्तार दो बातों पर निर्भर करता है–उपलब्ध समंको के अधिकतम व न्यूनतम मूल्य तथा वर्गों की संख्या। जहाँ तक सम्भव हो, वर्ग विस्तार सभी वर्गों के लिए एक समान होना चाहिये।

$$\text{वर्ग विस्तार या } i = = \frac{\text{अधिकतम मूल्य} - \text{निम्नतम मूल्य}}{N}$$

$$i = \frac{L - S}{N}$$

जहाँ N = वर्गों की संख्या

(iii) वर्ग–सीमाऐं (Class-limits) – वर्गान्तरों की वर्ग सीमाऐं (L_1 तथा L_2) स्पष्ट हों तथा सरलता की दृष्टि से यथासंभव पूर्णांक में हों। समूह की प्रत्येक इकाई का किसी न किसी वर्ग में आवश्यक रूप से समावेश हो जाये। वर्ग–सीमाऐं अपवर्जी या समावेशी दोनों प्रकार से बनायी जा सकती हैं। परन्तु आसानी की दृष्टि से वर्ग–सीमाओं अपवर्जी आधार पर बनाना अधिक उपयुक्त रहता है।

सांख्यिकीय श्रेणियां (Statistical series)

सांख्यिकी के अन्तर्गत विभिन्न श्रेणियों का अध्ययन भी आवश्यक है। वास्तव में श्रेणी तथ्यों या पदों का तर्कपूर्ण एवं व्यवस्थित क्रम होता है। सांख्यिकीय तथ्यों को किसी निश्चित आधार पर अनुविन्यासित करने से जो व्यवस्थित क्रम प्राप्त होता है उसे सांख्यिकीय श्रेणी कहते हैं। सांख्यिकीय श्रेणियों को उनकी रचना या बनावट के आधार पर निम्न भागों में बाँटा जाता है –

(A) व्यक्तिगत श्रेणी (Individual series)

(B) खण्डित श्रेणी (Discrete series)

(C) सतत या अखंडित श्रेणी (Continuous series)

(A) व्यक्तिगत श्रेणी इस प्रकार की श्रेणी में प्रत्येक पद को व्यक्तिगत तथा स्वतंत्र रूप से महत्व दिया जाता है। प्रत्येक पद को व्यक्तिगत रूप से मापा जाता है तथा उसे कियी समूह या वर्ग में शामिल नही किया जाता। यदि किसी कक्षा के 40 छात्रों के प्राप्तांक अलग–अलग लिखे जायें अथवा 25 परिवारों का मासिक व्यय पृथक–पृथक रूप से लिखा जाये तो यह व्यक्तिगत अवलोकनों की श्रेणी में मानी जायेगी।

उदाहरण – किसी कक्षा के 30 छात्रों के मासिक जांच में दस में से निम्न अंक आये–

8, 2, 9, 3, 5, 8, 6, 1, 0, 5, 5, 4, 2, 9, 8, 8, 4, 5, 3, 7, 7, 2, 3, 5, 9, 3, 4, 6, 1, 7

इस श्रेणी में बारंबारता या आवृत्ति का कॉलम नही होता है।

(B) खंडित श्रेणी – जिस श्रेणी में प्रत्येक इकाई का यथार्थ मापन किया जा सकता है उसे खण्डित श्रेणी कहते हैं। इस श्रेणी में दिये गये चर मूल्य अविभाज्य होते हैं। इस प्रकार खंडित चर–मूल्यों को क्रमबद्ध करने पर जो श्रेणी प्राप्त होती है उसे खण्डित श्रेणी कहते है। चर एक दूसरे के बीच निश्चित अन्तर लिये हो सकते है तथा चर सामान्यतः पूर्णाकों में होते हैं। जैसे – परिवार में बच्चों की संख्या, किसी पुस्तक में पृष्ठ संख्या, शहर में दुर्घटना, छात्रों के प्राप्तांक आदि खंडित चर हैं।

उदाहरण – उपरोक्त दी गई 30 छात्रों के प्राप्तांक की व्यक्तिगत श्रेणी को क्रमबद्ध करके निम्नलिखित रूप में खण्डित श्रेणी बनायी जा सकती है –

प्राप्तांक (x)	छात्रों की संख्या (f)
0	1
1	2
2	3
3	4
4	3
5	5
6	2
7	3
8	4
9	3
10	0
योग	**N =30**

इसमें x खण्डित चर तथा f चर की आवृत्ति है।

(C) निरंतर या सतत या अखण्डित श्रेणी – सतत चरों से अखण्डित श्रेणी की रचना की जाती है। सतत चरों का कोई निश्चित मूल्य नही होता, बल्कि एक निश्चित सीमा या वर्ग के अन्तर्गत उनका कुछ भी मूल्य हो सकता है। चरों के मूल्यों को अलग–अलग दर्शाने के बजाय वर्गान्तरों में प्रस्तुत किया जाता है। इसे ही सतत श्रेणी कहते है। प्रत्येक मूल्य को किसी एक वर्ग में रखा जाता है, अतः वर्गों में प्रस्तुत किये जाने पर मूल्यों के यथार्थ माप स्पष्ट नहीं होते। सतत श्रेणी में निरन्तरता या अविच्छिन्नता होती है अर्थात् जहाँ एक वर्ग समाप्त होता है वही से दूसरा वर्ग आरम्भ हो जाता है। सतत श्रेणी का प्रयोग सतत चरों जैसे – आयु, लम्बाई, भार, आय, उत्पादन, बचत, उपभोग आदि के लिए किया जाता है।

उदाहरण : व्यक्तिगत श्रेणी मे दिये गये 30 छात्रों के प्राप्तांक में दो–दो अंक का वर्ग–विस्तार लेकर सतत–श्रेणी बनायी जा सकती है –

प्राप्तांक वर्ग	छात्रों की संख्या/आवृत्ति
0–2	3
2–4	7
4–6	8
6–8	5
8–10	7
योग	**N= 30**

खण्डित तथा सतत श्रेणी में अन्तर

खण्डित श्रेणी तथा सतत श्रेणी के मध्य निम्न आधारों पर अन्तर किया जा सकता है –

आधार	अन्तर
(1) स्वरूप	खण्डित श्रेणी इकाइयों का मूल्य दिया होता है। सतत श्रेणी में वर्गान्तर दिये होते है।
(2) माप	खण्डित श्रेणी में माप यथार्थ होते हैं तथा सामान्यतः पूर्णाक में होते है। सतत श्रेणी में माप यथार्थ न होकर कृत्रिम–रूप से बनाये गये वर्गों में शामिल हो जाते हैं। चरों का कोई निश्चितमूल्य नही होता।
(3) विच्छिन्नता	खण्डित श्रेणी में विच्छिन्नता होती है पद–मूल्य में एक निश्चित अन्तर हो सकता है। सतत श्रेणी में निरन्तरता या अविच्छिन्नता पायी जाती है।
(4) रचना स्त्रोत	खण्डित श्रेणी की रचना खंडित चरों से होती है। इसकी रचना सतत चरों से होती है।

वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकरण की रीतियां (Methods of classification According to class-Intervals)

वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकरण की निम्न दो विधियां हैं –

(i) अपवर्जी विधि (Exclusive method), तथा

(ii) समावेशी विधि (Inclusive Method)

(i) **अपवर्जी विधि –** इस विधि में एक वर्ग की ऊपरी सीमा तथा उससे अगले वर्ग की निचली सीमा एक समान होती हैं इस विधि को अपवर्जी इसलिए कहते हैं कि एक वर्ग की ऊपरी सीमा के बराबर चर मूल्यों के मान, उसी वर्ग में सम्मिलित नहीं कर उससे अगले वर्ग में शामिल किये जाते हैं अर्थात् एक वर्ग की ऊपरी सीमा के बराबर चर मूल्यों के मानों का उसी वर्ग में प्रवेश निषेध या अपवर्जित है। यदि किसी संस्थान में आय का वर्ग (400–500) रू. प्रतिमाह है तो 500रू. मजदूरी पाने वाले मजदूर को (400–500) वर्ग में शामिल न कर, उसे अगले वर्ग (500–600) में शामिल किया जायेगा।

उदाहरण : अपवर्जी वर्गान्तरों को निम्न दो तालिकाओं द्वारा आसानी से समझा जा सकता है :

I तालिका

अंक	
0–10	0 परन्तु 10 से कम
10–20	10 परन्तु 20 से कम
20–30	20 परन्तु 30 से कम
30–40	30 परन्तु 40 से कम
40–50	40 परन्तु 50 से कम

II तालिका

आय (रू.)	
0–400	0 परन्तु 400 से कम
400–1000	400 परन्तु 1000 से कम
1000–2000	1000 परन्तु 2000 से कम
2000–5000	2000परन्तु 5000 से कम
5000–10000	5000 परन्तु 10000 से कम

(ii) **समावेशी श्रेणी –** वे वर्ग जिनमें उनकी निचली तथा ऊपरी दोनों सीमाओं के बराबर चर–मूल्यों के मानों को उसी वर्ग में सम्मलित करते हैं, समावेशी वर्ग कहलाते हैं। इस विधि में किसी वर्ग–अन्तराल में उच्च वर्ग सीमा को नही छोड़ा जाता है। समावेशी वर्गीकरण की पहचान यह है कि एक वर्ग की ऊपरी सीमा तथा उससे अगले वर्ग की निम्न सीमा बराबर नही होती तथा दोनो क्रमागत वर्गों में अधिकतम अन्तर 1 का होता है।

उदाहरण : समावेशी वर्गान्तरों को निम्न तीन तालिकाओं द्वारा समझा जा सकता है :

I तालिका	II तालिका तालिका	III
बच्चों का भार(Kg)	x	
40–45	0 - 9	20–29.5
46–50	10-19	30–39.5
51–55	20-29	40–49.5
56–60	30-39	50–59.5
61–65	40-49	60–69.5

समावेशी श्रेणी को अपवर्जी श्रेणी में बनाना – सामान्यतः खंडित चरों (श्रमिकों की संख्या, प्राप्तांक आदि) के लिए समावेशी विधि का ही प्रयोग किया जाता है। लेकिन सतत चरों (आय, आयु, भार आदि) के लिए अपवर्जी विधि का प्रयोग किया जाता है। ऐसी स्थिति में सुगमता एवं सरलता की दृष्टि से हमें समावेशी श्रेणी को अपवर्जी श्रेणी में बदलना चाहिए।

इसके लिए किसी एक वर्ग की ऊपरी सीमा तथा उससे अगले वर्ग की निम्न सीमा के अन्तर को आधा करके, उसे वर्ग की निचली सीमाओं (l_1) में से घटा दिया जाता है तथा ऊपरी सीमाओं (l_2) में जोड दिया जाता है।

उपर्युक्त तालिका 1, के अनुसार सभी वर्गों में अन्तर समान है :

अन्तर (d) = 46-45 = 1

अन्तर का आधा = 0.5

निम्न सीमा (L_1) = 46-0.5 = 45.5

ऊपरी सीमा (L_2) = 45 + 0.5 = 45.5

उपरोक्त उदाहरण से संशोधित तालिका 1, इस प्रकार समावेशी से अपवर्जी श्रेणी में बनायी जा सकती है।

तथा निचली सीमा के आधार पर संचयी आवृत्ति लिखते समय 'से अधिक (more than or above) शब्द का प्रयोग किया जाता है।

सांख्यिकीय मापों (समांतर माध्य, बहुलक, मध्यका आदि) की गणना करने के लिए आवश्यक है कि हमें सामान्य आवृत्ति बंटन दिया हुआ होना चाहिये। यदि संचयी आवृत्ति बंटन दिया हुआ है तो उसे हमें सामान्य आवृत्ति–बंटन में बदलना चाहिये। यहाँ हम उदाहरणों के द्वारा निम्न प्रकार की दोनो श्रेणियों को जान सकेंगे।

(i) सामान्य आवृत्ति बंटन को संचयी आवृत्ति बंटन मे बदलना

(ii) संचयी आवृत्ति बंटन को सामान्य आवृत्ति–बंटन में बदलना

(i) सामान्य आवृत्ति बंटन को संचयी आवृत्ति बंटन में बदलना :

वर्गान्तर	आवृत्ति
0-5	4
5-10	16
10-15	20
15-20	8
20-25	2
योग	**N= 50**

'से कम' संचयी आवृत्ति

वर्ग (उच्च सीमा)	संचयी आवृत्ति
5 से कम	4
10 से कम	20(4+16)
15 से कम	40(20+20)
20 से कम	48(40+8)
25 से कम	50(48+2)

'से अधिक' संचयी आवृत्ति

वर्ग (निम्न सीमा)	संचयी आवृत्ति
0 से अधिक	50 (46+4)
5 से अधिक	46(30+16)
10 से अधिक	30(10+20)
15 से अधिक	10(4+6)
20 से अधिक	4

ध्यान देने की बात है कि 'से कम' में वर्ग की उच्च सीमा तथा 'से अधिक' में वर्ग की सीमा से वर्गों की रचना करते हैं।

(ii) संचयी आवृत्ति बंटन को साधारण आवृत्ति–बंटन में बदलना – इसके लिए दो निकटवर्ती सीमाओं के आधार पर वर्ग बनाने चाहिये। फिर उन सीमाओं से संबंधित संचयी आवृत्तियों के अन्तर को उन वर्गों की आवृत्तियों के रूप मे लिखना चाहिए।

उदाहरण : निम्न श्रेणी को साधारण आवृत्ति बटन में परिवर्तित कीजिए –

4 छात्र 5 से कम अंक प्राप्त करते है।

20 छात्र 10 से कम अंक प्राप्त करते है।

40 छात्र 15 से कम अंक प्राप्त करते है।

48 छात्र 20 से कम अंक प्राप्त करते है।

50 छात्र 25 से कम अंक प्राप्त करते है।

हल :

प्राप्तांक (ऊपरी सीमा)	संचयी आवृत्ति	वर्गान्तर	आवृत्ति
5 से कम	4	0–5	4
10 से कम	20	5–10	16(20–4)
15 से कम	40	10–15	20(40–20)
20 से कम	48	15–20	8(48–40)
25 से कम	50	20–25	2(50–48)

इसी प्रकार, अभ्यास द्वारा 'से अधिक' संचयी आवृत्ति बंटन को भी साधारण आवृत्ति–बंटन में परिवर्तित किया जा सकता है।

विविध प्रश्न

1. किसी परीक्षा में सम्मिलित होने वाले 50 विद्यार्थियों के प्राप्तांक नीचे दिये हुए है –

25	30	45	42	52	28
50	73	60	58	43	30
76	78	44	63	42	56
49	44	38	54	67	36
41	52	65	65	70	46
37	61	35	40	84	51
32	50	61	88	54	59
49	87	35	65	51	59
50	35				

20–30, 30–40 आदि वर्गान्तर लेते हुए उपर्युक्त समंकों को एक आवृत्ति बंटन के रूप में वर्गीकृत कीजिए।

प्रश्न में प्रथम वर्गान्तर (20–30) और वर्ग विस्तार 10

रखते हुए, वर्ग निम्नानुसार तैयार किये जायेंगे–

वर्गान्तर	मिलान चिह्न	आवृत्ति (f)
20–30	II	2
30–40	IIII IIII	9
40–50	IIII IIII I	11
50–60	IIII IIII III	13
60–70	IIII III	8
70–80	IIII	4
80–90	III	3
योग		N= 50

2. निम्न बंटन को (i) से कम तथा (ii) से अधिक आधार पर संचयी बंटन बनाइए–

प्राप्तांक	विद्यार्थियों की संख्या
0-10	21
10-20	39
20-30	32
30-40	58
40-50	37
50-60	13

हल – (i) 'से कम' आधार पर संचयी आवृत्ति बंटन निम्न प्रकार से बनाया जायेगा–

प्राप्तांक	संचयी आवृत्ति
10 से कम	21
20 से कम	60 (21+ 39)
30 से कम	92 (60+ 32)
40 से कम	150 (92+ 58)
50 से कम	187 (150+ 37)
60 से कम	200 (187+ 13)

(ii) 'से अधिक' आधार पर संचयी आवृत्ति बंटन :

प्राप्तांक	संचयी आवृत्ति
0 से अधिक	200
10 से अधिक	179 (200–21)
20 से अधिक	140 (179–39)
30 से अधिक	108 (140–32)
40 से अधिक	50 (108– 58)
50 से अधिक	13 (50–37)

3. निम्नांकित समावेशी श्रेणी को अपवर्जी श्रेणी में बदलिए–

वर्ग का अन्तराल	आवृत्ति
1-10	5
11-20	10
21-30	15
31-40	8
41-50	7

हल :– उपर्युक्त श्रेणी समावेशी श्रेणी है। श्रेणी में क्रमागत पदों के बीच 1 का अन्तर है। अब हमें अन्तर का आधा अर्थात 0.5 को प्रत्येक वर्ग की निम्न सीमा में से घटाकर तथा सीमा में जोड़कर नवीन वर्ग–अन्तराल बनाना है। इससे सारणी अपवर्जी श्रेणी में परिवर्तित हो जायेगी। अब किसी भी वर्ग की ऊपरी सीमा उससे अगले वर्ग की निम्न सारणी के बराबर है।

वर्ग अन्तराल	आवृत्ति
0.5– 10.5	5
10.5–20.5	10
20.5–30.5	15
30.5–40.5	8
40.5– 50.5	7

4. निम्न असमान वर्गान्तरों को समान वर्गान्तरों में परिवर्तित कीजिए।

वर्गान्तर	आवृत्ति	वर्गान्तर	आवृत्ति
0-3	5	18-20	24
3-6	8	20-24	12
6-10	12	24-25	15
10-12	14	25-28	10
12-16	16	28-30	6
16-18	16	30-36	5

हलः उपर्युक्त सारणी में वर्ग विस्तार असमान है। हम 6–6 का अंतर लेते हुए 0–6, 6–12 .... के आधार पर श्रेणी को समान वर्गान्तरों में परिवर्तित कर सकते हैं–

वर्गान्तर	आवृत्ति
0-6	13
6-12	26
12-18	42
18-24	36
24-30	31
30-36	04

5. निम्नलिखित श्रेणी को सामान्य सतत श्रेणी में बदलिए–

मध्य–मूल्य	आवृत्ति
10.5	3
17.5	7
24.5	15
31.5	25
38.5	40
45.5	18
52.5	12
59.5	10

हलः उपर्युक्त श्रेणी में मध्य–मूल्य दिये हुए हैं। सर्वप्रथम हमें इन्हें समान वर्गान्तरों में बदलना होगा। श्रेणी को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि श्रेणी में पदों के मध्य अन्तर 7 का है जो कि पूरी श्रेणी में समान है। श्रेणी को सामान्य सतत श्रेणी बनाने के लिए हमें वर्गान्तर का आधा या 3.5 को प्रत्येक पद में से एक बार घटाना तथा एक बार जोड़ना होगा, जिससे उस वर्ग की निम्न तथा उच्च सीमाऐं ज्ञात हो सकेगी। अतः श्रेणी को निम्न प्रकार से सामान्य सतत श्रेणी में बदला जा सकेगा–

मध्य–मूल्य	वर्गान्तर	वर्गान्तर आवृत्ति
10.5	10.5+ 3.5	7–14 3
17.5	17.5+ 3.5	14–21 7
24.5	24.5+ 3.5	21–28 15
31.5	31.5+ 3.5	28–35 25
38.5	38.5+ 3.5	35–42 40
45.5	45.5+ 3.5	42–49 18
52.5	52.5+ 3.5	49–56 12
59.5	59.5+ 3.5	56–63 10

महत्वपूर्ण बिन्दु

- अपरिष्कृत आंकड़ों को वर्गीकृत करने का उद्देश्य उन्हें सुव्यवस्थित करना है।
- वर्गीकरण एकत्रित समंकों को समानता तथा सजातीयता के आधार पर विभिन्न वर्गों में क्रमबद्ध करने की क्रिया है।
- वर्गीकरण का उद्देश्य एकत्रित समंको को सरल एवं संक्षिप्त बनाना, समानता व असमानता को स्पष्ट करना, तुलना में सहायक, सारणीयन का आधार प्रस्तुत करना हैं।
- स्पष्टता, स्थिरता, व्यापकता, उपयुक्तता, लोचशीलता, सजातीयता एक आदर्श वर्गीकरण के आवश्यक तत्व हैं।
- वर्गीकरण की दो रीतियां है – संख्यात्मक या वर्गान्तरों के अनुसार तथा गुणात्मक वर्गीकरण।
- संख्यात्मक वर्गीकरण में वर्ग–सीमाऐं, वर्ग–अन्तराल, मध्य–बिन्दु, वर्ग आवृत्ति शब्दों का प्रयोग किया जाता है।
- मूल्यों या वर्गों तथा उनकी आवृत्तियों के क्रमबद्ध विकास को आवृत्ति–बंटन कहते है। यह दो प्रकार का होता है – खंडित तथा सतत आवृत्ति–बंटन
- वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकरण की निम्न समस्याऐं होती है – वर्गान्तरों की संख्या, वर्ग–विस्तार, वर्ग–सीमाऐं।
- सांख्यिकीय श्रेणियों को व्यक्तिगत, खंडित तथा सतत श्रेणियों में बांटा जाता है।
- वर्गान्तरों के अनुसार वर्गीकरण की दो विधियां है – अपवर्जी तथा समावेशी विधि।
- संचयी आवृत्ति श्रेणियों को 'से कम' तथा 'से अधिक' नाम से जाना जाता है। संचयी आवृत्ति–बंटन को साधारण आवृत्ति–बंटन में बदला जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. एक अपवर्जी श्रेणी में –
   (अ) दोनों वर्ग–सीमाओं पर विचार किया जाता है।
   (ब) निचली सीमा को निकाल दिया जाता है।
   (स) ऊपरी सीमा को निकाल दिया जाता है।
   (द) दोनों सीमाओं को निकाल दिया जाता है। ( )
2. व्यक्तिगत श्रेणी में प्रत्येक पद–मूल्य की आवृत्ति होती है –
   (अ) बराबर
   (ब) असमान
   (स) उपर्युक्त दोनों स्थितियां संभव
   (द) कोई सत्य नही ( )
3. वर्गीकरण का प्रमुख उद्देश्य है –
   (अ) समंको के विशाल समूह को संक्षिप्त रूप प्रदान करना

(ब) समंको को लोचशील बनाना

(स) समंको को स्थिरता प्रदान करना

(द) समंको को परस्पर अपवर्जी बनाना ( )

4. निम्न श्रेणी है –

प्राप्तांक	1	2	3	4	5
छात्रों की संख्या	20	4	2	3	1

(अ) व्यक्तिगत

(ब) खंडित

(स) सतत समावेशी

(द) सतत अपवर्जी ( )

5. यदि किसी वर्ग की निचली सीमा (L_1) 10 तथा ऊपरी सीमा (L_2) 20 हो तो मध्य बिन्दु होगा –

(अ) -15

(ब) 10

(स) 15

(द) 30 ( )

6. निम्न में से कौन सा तथ्य अंकात्मक नहीं है –

(अ) ऊंचाई

(ब) भार

(स) बेरोजगारी

(द) आयु ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गुणात्मक वर्गीकरण के दो प्रकारों के नाम लिखिए।
2. चरों के आधार पर वर्गीकरण किसे कहते है ?
3. चर से क्या आशय है ?
4. श्रेणियां कितनी प्रकार की होती है? उनके नाम लिखिये।
5. वर्ग–सीमाऐं किसे कहते है ?
6. मध्य–बिन्दु की गणना कैसे की जाती है?
7. संचयी आवृत्ति ज्ञात करते समय 'से कम' तथा 'से अधिक' में कौन–कौन सी सीमाओं को प्रयोग में लाते है?

लघूत्तरात्मक

1. समंको के वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं ?
2. वर्गीकरण के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ?
3. एक आदर्श वर्गीकरण के कोई चार आवश्यक तत्व बताइये।
4. आवृत्ति बंटन क्या है ?
5. अपवर्जी तथा समावेशी श्रेणी में अन्तर बताइये।
6. एक उदाहरण देकर स्पष्ट करें कि किस प्रकार सामान्य आवृत्ति–बंटन को संचयी आवृत्ति बंटन में बदला जाता है ?
7. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि अपरिष्कृत समंको की अपेक्षा वर्गीकृत समंक बेहतर होते है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. समंकों के वर्गीकरण में प्रयुक्त अपवर्जी तथा समावेशी विधियों की व्याख्या कीजिए।
2. एक आदर्श वर्गीकरण में आवश्यक तत्त्वों को समझाइये। वर्गीकरण के क्या उद्देश्य हैं?
3. एक काल्पनिक उदाहरण देकर व्यक्तिगत समंको से खंडित तथा सतत श्रेणियों की रचना कीजिए।

उत्तरमाला

(1) स (2) द (3) अ (4) ब (5) स (6) स

सन्दर्भ ग्रंथ

1. S.C.Gupta & V.K. Kapoor: Fundamentals of Mathematical Statistics, Published by Sultan Chand and Sons
2. एस.पी.सिंहः सांख्यिकीः सिद्धान्त एवं व्यवहार, एस. चन्द
3. कैलाशनाथ नागरः सांख्यिकी के मूल तत्व, मीनाक्षी प्रकाशन

अध्याय – 2.4

आंकड़ों का प्रस्तुतिकरण
(Presentation of data)

एकत्रित समंक जटिल एवं अव्यवस्थित रूप में होते हैं। आंकड़ों का परिमाण भी सामान्यतः अधिक होता है। अपने मूलरूप में इकट्ठे किये गये समंक अंकों के ढेर के समान है। इन समंको को न तो सरलता से समझा जा सकता है और न ही कोई तर्क–संगत उचित परिणाम निकाला जा सकता है। अतः आंकडों को सुसंबद्ध एवं प्रस्तुति–योग्य बनाने की आवश्यकता है। तुलनात्मक अध्ययन, आंकडों के विश्लेषण एवं निर्वचन के लिए भी आवश्यक है कि संकलित सामग्री को सरल, संक्षिप्त एवं समझने योग्य बनाया जाये। संग्रहित आंकडों को आसानी से समझने एवं उपयोगी बनाने की दृष्टि से आंकड़ों के उचित प्रस्तुतिकरण की आवश्यकता है। सामान्यतः आंकड़ें तीन प्रकार से प्रस्तुत किये जा सकते है :

(A) पाठ–विषयक या वर्णात्मक प्रस्तुतिकरण

(B) सारणीबद्ध प्रस्तुतिकरण या सारणीयन

(C) आरेखीय या चित्रमय एवं बिन्दुरेखीय प्रस्तुतिकरण

(A) पाठ–विषयक या वर्णात्मक प्रस्तुतिकरण – इसमें एकत्रित आंकड़ों का विवरण पाठ में दिया जाता है। कम परिमाण वाले आंकडों के लिए प्रस्तुतिकरण हेतु यह एक अधिक उपयोगी तरीका है। जैसे – एक शहर में 20 अक्टूबर, 2015 को छात्रों की हडताल के दौरान 12 दुकानें खुली तथा 155 दुकानें बंद पायी गई तथा 2 विद्यालय खुले तथा 24 विद्यालय बंद पाये गये।

(B) **सारणीयन (Tabulation)** सांख्यिकीय आंकडों या तथ्यों को एकत्रित कर उचित वर्गीकरण करने के पश्चात आंकडो को तुलनात्मक एवं निर्वचन योग्य बनाने के लिए उनका सारणीयन करना आवश्यक है। इससे एकत्रित समंक सरल, संक्षिप्त एवं बोधगम्य हो जाते है। वर्गीकृत समंको को सरल व संक्षिप्त करने हेतु सारणियों में प्रस्तुत करने की क्रिया को सारणीयन कहते है।

व्यापक अर्थ में, सारणीयन आंकड़ों को पक्तियों तथा खानों/स्तम्भों के रूप में प्रस्तुत करने की एक क्रमबद्ध व्यवस्था है। सारणीयन द्वारा अंतिम तर्कसंगत परिणाम ज्ञात किया जा सकता है।

उद्देश्य (Objective) : सारणीयन के तीन उद्देश्य हैं –

(1) समंको को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना

(2) समंको को संक्षिप्त व स्थायी रूप में प्रकट करना, तथा

(3) समस्या को अधिक सरल व स्पष्ट बनाना।

सारणीयन का महत्व या लाभ (Importance of Tabulation) सारणीयन समंकों के वर्गीकरण तथा उनके निर्वचन के बीच की एक महत्वपूर्ण क्रिया है। यह आंकड़ों को सांख्यिकीय प्रयोग एवं उसके आधार पर निर्णय लेने के लिए व्यवस्थित करता है।

सारणीयन का महत्व निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है–

(1) सरलता – सारणीयन से आवश्यक सूचनाऐं बहुत जल्दी एवं सरलता से समझी जा सकती हैं तथा समंको की जटिलता समाप्त हो जाती है। अशुद्धियों का शीघ्र पता चल जाता है।

(2) तुलनात्मक अध्ययन – सारणियों में समान एवं तुलना योग्य आंकडों को परस्पर निकटवर्ती खानों में रखा जाता है जिससे उनका आसानी से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके।

(3) प्रदर्शन – सारणियों की सहायता से आंकड़ों को आरेखीय चित्रों द्वारा आकर्षक ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है

(4) समय व स्थान की बचत – विशाल तथ्यों एवं आंकडों को सारणीयन द्वारा थोड़े एवं संक्षिप्त रूप में व्यक्त करने पर समय एवं स्थान की बचत होती है।

(5) सांख्यिकीय विवेचन में सहायक – समंको के विस्तृत विश्लेषण में सारणीयन सहायक होता है। समंको को सारणियों में व्यवस्थित करके ही माध्य, अपकिरण, विषमता, सहसम्बन्ध आदि सांख्यिकीय माप ज्ञात किये जाते हैं।

सारणीयन एवं वर्गीकरण में अन्तर – वर्गीकरण एवं सारणीयन दोनों ही सांख्यिकीय अनुसंधान की महत्वपूर्ण क्रियाऐं हैं। इनके द्वारा बिखरे एवं अव्यवस्थित समंको को सरल, संक्षिप्त व समझने योग्य बनाया जाता है। फिर भी दोनो में निम्न अन्तर हैं –

(1) सबसे पहले अव्यवस्थित आंकडो को वर्गीकृत किया जाता है, फिर उसके बाद उन्हें विभिन्न श्रेणियों में प्रस्तुत किया जाता है, अतः वर्गीकरण, सारणीयन का आधार है।

(2) वर्गीकरण में एकत्रित समंकों को उनके समान या असमान गुणों के आधार पर विभिन्न वर्गों या श्रेणियों में बांटा जाता है। जबकि सारणीयन में वर्गीकृत तथ्यों को पंक्तियों तथा स्तम्भों में प्रस्तुत किया जाता है।

(3) वर्गीकरण सांख्यिकीय विश्लेषण की एक विधि है जबकि सारणीयन समंको के प्रस्तुतिकरण की एक प्रक्रिया है।

(4) वर्गीकरण में समंकों को वर्गों व उपवर्गों में बाँटा जाता है जबकि सारणीयन में उन्हे शीर्षकों व उपशीर्षकों में रखा जाता हैं

सारणी की रचना तथा सारणी के प्रमुख अंग (Construction and main parts of a Table)

सारणी के निर्माण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि एक अच्छी सारणी के कौन–कौन से महत्वपूर्ण अंग हैं। सारणी की संकल्पना का सबसे सरल तरीका यह है कि आंकड़ों को दी गई सूचनाओं के अनुसार पंक्तियों और स्तम्भों में व्यवस्थित कर दिया जाए। एक अच्छी सारणी के निम्नलिखित प्रमुख भाग होते हैं–

(1) सारणी संख्या
(2) शीर्षक
(3) खानों व पंक्तियों के अनुशीर्षक/उपशीर्षक
(4) सारणी का मुख्य भाग
(5) रेखायें खीचना एवं रिक्त स्थान छोडना
(6) पदों की व्यवस्था
(7) माप की इकाई
(8) टिप्पणियाँ
(9) उद्गम/स्त्रोत

उपरोक्त का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

(1) सारणी संख्या (Table number) – किसी सारणी की संख्या उसकी पहचान के लिए की जाती है। इसे सारणी के सबसे ऊपर अंकित करना चाहियें। जैसे – सारणी 6.3 को अध्ययन 6 की सारणी संख्या 3 के रूप में पहचाना जा सकता है।

(2) शीर्षक (Title) – सारणी का शीर्षक सारणी की विषय–वस्तु को बताता है। यह शीर्षक स्पष्ट, संक्षिप्त एवं सही भाषा में हो। इसे सारणी संख्या के बराबर या ठीक इसके बाद में लिखना चाहिये।

(3) खानों व पंक्तियों के अनुशीर्षक व उपशीर्षक (Stubs and captions)– सारणी की प्रत्येक पंक्ति को एक शीर्षक दिया जाता है। पंक्तियों के नाम को अवशीर्ष भी कहते हैं। ये सारणी के बॉयी ओर वाले स्तम्भ में दिये होते हैं। सारणी के प्रत्येक स्तम्भ के ऊपर की ओर एक स्तम्भ होता है जिसे उपशीर्षक/स्तम्भ शीर्षक कहते है।

(4) सारणी का मुख्य भाग (Main body of the Table) – सारणी के मुख्यभाग में तथ्यों/समंकों को प्रस्तुत किया जाताहै। यह सारणी का हृदय होता है। इसका आकार समंकों की प्रकृति एवं उपलब्धता पर निर्भर करता है। इसके आकार व स्वरूप की योजना पहले ही बना ली जाती है।

(5) रेखाऐं खीचना व रिक्त स्थान छोड़ना – सारणी की सुन्दरता रेखाऐं खीचने व रिक्त स्थान छोडने पर ही निर्भर करती है। कौन सी रेखा छोटी हो या मोटी हो या किस रंग से खीची जायें, ये सभी बातें उपलब्ध विषय–वस्तु पर निर्भर करती है।

(6) पदों की व्यवस्था (Arrangement of items)– सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध पदों की व्यवस्था सारणी को अधिक आकर्षक एवं उपयोगी बना देती है। जिन खानों की तुलना करनी हो, वे यथासंभव पास–पास रखे जावें।

(7) माप की इकाई – यदि सम्पूर्ण सारणी में माप की इकाई समान है तो माप की इकाई को सारणी के शीर्षक के साथ लिखा जाना चाहिये। भिन्न माप की इकाइयों को उपशीर्षक या अवशीर्ष के साथ लिखा जाना चाहिये।

(8) टिप्पणियां (Footnotes) – यदि समंको से संबंधित कोई आवश्यक सूचना सारणी में देने से रह गई है अथवा किसी तथ्य से संबंधित विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता है तो इसके लिए सारणी के अन्त में नीचे व्याख्यात्मक टिप्पणी दी जा सकती है।

(9) उद्‌गम/स्त्रोत (Source) – सारणी के अन्त में समंको को संदेहरहित बनाने एवं अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए समंको के संदर्भ व उद्‌गम स्थान अवश्य स्पष्ट कर देना चाहिये।

सारणी के प्रमुख भाग निम्न प्रारूप में दर्शाये गये है :

टिप्पणी: .....

उद्‌गम/स्त्रोत.....

सारणी के प्रकार (Kinds of Tables)

समंकों का सारणीयन करते समय विभिन्न आधारों पर सारणियां निर्मित की जा सकती है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा सारणियों के वर्गीकरण को प्रदर्शित किया जा सकता है :

(1) उद्‌देश्य के अनुसार – सामान्य उद्‌देश्यीय सारणी का कोई विशिष्ट उद्‌देश्य नहीं होता। इसे संदर्भ सारणी भी कहते है। विशेष उद्‌देशीय सारणी किसी उद्‌देश्य विशेष की पूर्ति के लिए तैयार की जाती है। इसका आकार सामान्य सारणी से अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसे संक्षिप्त या विश्लेषण सारणी भी कहते है। इसमें माध्य, प्रतिशत, अनुपात आदि का प्रयोग किया जाता है।

(2) मौलिकता के अनुसार – प्राथमिक सारणी में समंकों को उनके मौलिक मूल रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। इसे वर्गीकरण सारणी भी कहते हैं। व्युत्पन्न सारणी में मौखिक समंकों के अतिरिक्त उनसे ज्ञात किये गये योग, प्रतिशत, अनुपात, गुणक आदि मूल्यों को भी प्रस्तुत किया जाता है।

(3) रचना के अनुसार – जब समंकों को केवल एक ही गुण के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है तो उसे सरल सारणी कहते है जैसे – जनसंख्या का आयु/लिंग/राज्यों के अनुसार वितरण। जब समंको को एक से अधिक विशेषताओं के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है तो उसे जटिल सारणी कहते है। यह द्विगुणी, त्रिगुणी, बहुगुणी सारणी हो सकती है। जैसे – जनसंख्या का आयु तथा लिंग के आधार पर वितरण हेतु द्विगुण सारणी तैयार करते हैं। जनसंख्या का आयु, लिंग तथा साक्षरता के आधार पर समंकों को त्रिगुण सारणी द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं।

उदाहरण 1 : एक रिक्त सारणी बनाइये जिसमें जनशक्ति समंकों का वितरण आयु, लिंग तथा ग्रामीण–शहरी निवास के आधार पर दिखाया जा सके।

हल : उपरोक्त प्रश्न के लिए त्रिगुण सारणी निर्मित की जायेगी।

जनशक्ति का आयु, लिंग तथा ग्रामीण–शहरी निवास के अनुसार वितरण

आयु वर्ग (वर्ष)	ग्रामीण			शहरी			योग		
	M	F	योग	M	F	योग	M	F	योग
0–20									
20–40									
40–60									
60 से अधिक									
योग									

टिप्पणी : M- पुरूष, F- महिला स्त्रोत : जनगणना 2011

सारणी की रचना के नियम (Rules for Construction of Statistical Tables)

एक अच्छी सारणी की रचना काफी हद तक अनुसंधानकर्ता की योग्यता, उसके सामान्य विवेक तथा अनुभव

पर निर्भर करती है। हमें सारणियों का निर्माण करते समय निम्न नियमों तथा सावधानियों पर ध्यान देना चाहिए–

1. **शीर्षक –** प्रत्येक सारणी का एक स्पष्ट, पूर्ण एवं संक्षिप्त शीर्षक होना चाहिए। इससे समंकों से सम्बन्धित विषय, समय, वर्गीकरण का आधार आदि का पता चल जाता है।

2. **खाने व पंक्तियां –** सारणीयन के उद्देश्य तथा प्रस्तुत सामग्री को ध्यान में रखते हुए खानों व पंक्तियों की संख्या पूर्व में ही निर्धारित कर लेनी चाहिए। खानों पर क्रम संख्या अंकित कर देनी चाहिए। उनके शीर्षक स्पष्ट व संक्षिप्त हों तथा माप की इकाई का भी उल्लेख करना चाहिए। कॉलम अत्यधिक न हों अन्यथा समस्या जटिल हो सकती है।

3. **तुलना –** तुलनायोग्य समंकों को सारणी में यथा संभव पास–पास रखना चाहिए। प्रतिशत, अनुपात, गुणांक आदि व्युत्पन्न समंकों को भी तुलना की दृष्टि से मूल समंकों के पास वाले खाने में ही रखना चाहिए।

4. **रेखाऐं –** महत्वपूर्ण सूचनाओं को मोटी या गहरी रेखाओं वाले खानों में रखना चाहिए। जिससे वे पाठक का ध्यान तुरन्त आकर्षित कर सके।

5. **पदों की व्यवस्था–** सारणियों में महत्त्व, आकार, स्थान, समय, वर्णमाला के अनुसार विभिन्न पदों की व्यवस्था करनी चाहिए। अधिक महत्व वाले समंकों को पहले वाले तथा कम महत्व के समंकों को बाद वाले खानों में व्यवस्थित करना चाहिए।

5. **विशेष महत्व** – विशेष महत्व की सूचनाओं की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए उन्हें मोटे अंकों में लिखना चाहिए।

6. **टिप्पणियां** – कोई आवश्यक सूचना जो सारणी में प्रस्तुत न की गई हो या किसी समंक विशेष के बारे में विशेष स्पष्टीकरण देना है तो उसके लिए सारणी के नीचे टिप्पणी दे देनी चाहिए।

7. **उद्गम –** सारणी में प्रस्तुत समंक कहां से उद्धृत किये गये हैं उनका उल्लेख सारणी में नीचे की ओर आवश्यक रूप से होना चाहिए।

8. **सामान्य नियम**– एक अनुसंधानकर्ता को सारणी के निर्माण में उपरोक्त नियमों के अतिरिक्त सामान्य नियमों का भी पालन करना आवश्यक है। जैसे– सारणी का आकार कागज के आकार के अनुकूल हो, अत्यधिक सामग्री को कई सारणियों में प्रस्तुत करना। लेकिन प्रत्येक सारणी पूर्ण, सरल, मितव्ययी तथा बुद्धिगम्य होनी चाहिए।

(C) समंकों का आरेखीय प्रस्तुतीकरण – समंक स्वभाविक रूप से नीरस होते है। चित्रों एवं ग्राफ द्वारा आंकड़ों की प्रस्तुति को बडे सरल ढंग एवं जल्दी से समझा जा सकता है। चित्रों एवं ग्राफ को देखकर निर्णय लेने में सुगमता होती है। आज व्यक्ति समंको की प्रस्तुति इस प्रकार चाहता है कि वह मस्तिष्क पर जोर डाले बिना विषय–वस्तु को आसानी से समझ सके। अखबारों तथा पत्र–पत्रिकाओं किसी भी विषय से संबंधित आंकड़ों को जब चित्र या ग्राफ द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तो तुरन्त वह समझ में आ जाता है। सांख्यिकी में समंको के प्रदर्शन की दो विधियां है :– (A) समंकों का चित्रमय प्रदर्शन (B) बिन्दु–रेखीय प्रदर्शन

(A) समंको का चित्रमय प्रदर्शन (Diagrammatic presentation of data) – चित्रमय प्रदर्शन से तात्पर्य समंको को सरल, आकर्षक ज्यामितीय आरेखों जैसे – दण्ड चित्र, आयत, वृत्त आदि रूप में प्रस्तुत करना है। एक चित्र हजारों शब्दों के बराबर होता है।चित्रमय प्रदर्शन के लाभ/उपयोगिता सांख्यिकीय चित्रों के मुख्य लाभ निम्न प्रकार है –

(i) आकर्षक और प्रभावी
(ii) सरल एवं बोधगम्य प्रस्तुतिकरण
(iii) श्रम एवं समय की बचत
(iv) तुलना में सहायक
(v) व्यापक उपयोग
(vi) मनोरंजन एवं जानकारी के साधन

(i) आकर्षक और प्रभावी –चित्र मानस पटल पर स्थायी छाप छोड़ते हैं। चित्र आकर्षक तथा प्रभावी होने के कारण लोगों का ध्यान तुरन्त अपनी ओर खींच लेते हैं। जो विषय हमें अंकों से समझ नहीं आता, वह तुरन्त चित्रों की सहायता से आसानी से समझा जा

सकता है। इसलिए कहा जाता है कि 'एक चित्र हजार शब्दों के बराबर होता है।'

(ii) **सरल एवं बोधगम्य प्रस्तुतिकरण –** जटिल, अव्यवस्थित एवं नीरस समंकों को चित्रों की सहायता से सरल तथा आसानी से समझने योग्य बनाया जा सकता है। उसके लिए दिमाग पर अधिक जोर डालने की आवश्यकता नहीं होती। चित्र विषय की तुरन्त जानकारी देते हैं। जैसे– सम्पूर्ण देश की रचना का विहंगम दृश्य एक मानचित्र द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। उसी प्रकार समंकों से संबंधित जटिल तथ्यों का सार चित्र की सहायता से आसानी से समझ में आ जाता है।

(iii) **श्रम एवं समय की बचत –** प्रायः समंकों को समझने एवं उनसे निष्कर्ष निकालने के लिए अधिक समय व परिश्रम लगाना पड़ता है। वहीं चित्रों की सहायता से तथ्यों की सारी विशेषताओं को कम समय एवं बिना तकनीकी ज्ञान के आसानी से समझा जा सकता है।इससे समय व श्रम की बचत होती है।

(iv) **तुलना में सहायक –** चित्रों की सहायता से विभिन्न तथ्यों के मध्य तुलना की जा सकती है। संख्यात्मक तुलना से चित्रात्मक तुलना ज्यादा प्रभावी होती है। यदि एक सारणी में 8 वर्षों के उत्पादन के आंकड़े दिये हो तथा दूसरी आरे उनको चित्र द्वारा दर्शाया गया हो तो हम चित्र की सहायता से आसानी से तुलना कर सकते हैं।

(v) **व्यापक उपयोग –** सांख्यिकीय चित्रों का जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। व्यापार, वाणिज्य, विज्ञापन, पर्यटन, शिक्षा, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में तो चित्रों का बहुत अधिक महत्व है।

(vi) **मनोरंजन एवं जानकारी के साधन –** चित्र समंकों की जानकारी देने के साथ–साथ मनोरंजन भी करते हैं। चित्रों में गहनता होती है, साथ ही उनमें हास्य–विनोद भी छिपा हुआ होता है जिसके कारण हम सहज रूप से उनके प्रति आकर्षित होते हैं।

चित्रों से उत्सुकता बढ़ती है जिससे हम तथ्यों के संबंध में अधिक और अधिक जानने की रूचि रखते हैं, यही ज्ञान अर्जित करने का आधार है।

चित्र–रचना के सामान्य नियम
(General Rules for constructing diagrams)

चित्रों की रचना अत्यन्त सावधानी पूर्वक करनी चाहिये। यह कार्य एक विशिष्ट योग्यता का कार्य है तभी आंकडो के यथार्थ–भाव को चित्रों द्वारा सही रूप में प्रकट किया जा सकता है। चित्रों को आकर्षक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये –

(1) **आकर्षक एवं स्वच्छता (Attractive & Cleanliness) –** चित्र सांख्यिकीय समंको के प्रस्तुतिकरण के चक्षुप उपकरण (Visual Aids) है। ये आंखों को लुभाने के साथ–साथ दिमाग पर स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। अतः चित्र स्वच्छ, रोचक एवं आकर्षक हों। विभिन्न प्रकार के रंग, बिन्दुओं, रेखाओं का उपयोग कर चित्रों को बहुत सुंदर एवं बोधगम्य बनाया जा सकता है।

(2) **शुद्धता (Accuracy) –** चित्रों को आकर्षक रूप देते समय शुद्धता का ध्यान रखना चाहिए। क्योकि अशुद्ध एवं गलत चित्रों से भ्रमात्मक परिणाम निकलते हें।

(3) **उपयुक्त आकार (Suitable Size) –** चित्रों के आकार के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नही है। चित्र न बड़ा हो और न ही बहुत छोटा। कागज के आकार के अनुरूप चित्रों की रचना करनी चाहिये।

(4) **शीर्षक एवं फुटनोट (Title & foot notes) –** चित्र के प्रारंभ में ऊपर एक स्पष्ट, उपयुक्त तथा संक्षिप्त शीर्षक होना चाहिये। जिससे चित्र देखते ही विषय–वस्तु एवं तथ्यों की जानकारी तुरन्त हो सके। अस्पष्ट तथ्यों की व्याख्यात्मक टिप्पणी चित्र के नीचे बांयी ओर देनी चाहिये।

(5) **मापदण्ड का चयन (Selection of Scale) –** मापदण्ड या पैमाने का चयन सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। कागज के आकार, समंको की प्रकृति, समंकों की महत्वपूर्ण विशेषताऐं आदि के आधार पर पैमाने का निर्धारण किया जाना चाहिये। ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज, दोनों तरफ पैमाने का स्पष्ट संकेत देना चाहिये। दो या अधिक चित्रों की तुलना करते समय पैमाना समान रखना चाहिये।

(6) **संकेत (Index) –** चित्र की रचना करते समय उपयोग

में लिए गये विभिन्न प्रकार के चिन्हों (बिन्दुओं, रेखाओं, शेड्स, चारखाने आदि) को स्पष्ट करने के लिए ऊपर दाँये कोने पर संकेत दे देना चाहिये। ताकि चित्रों को आसानी से समझा जा सके।

(7) सरलता (Simlicity) – आसानी से समझने हेतु चित्र सामान्यतः सरल होने चाहिये। इससे पाठक भ्रम की स्थिति से बच सकता है।

(8) उपयुक्त चित्र का चुनाव (Choice of a suitable diagram) – समंको के प्रस्तुतिकरण हेतु अनेक प्रकार के चित्रों का उपयोग किया जाता है। चित्र का चयन मुख्यतः समंको की प्रकृति, समंको का विस्तार, चित्र का क्षेत्र आदि बातों पर निर्भर करता है। इसके साथ–साथ उपयुक्त चित्र के चयन में अनुभव, शान, विवेक, निपुणता भी आवश्यक है।

चित्रो के प्रकार (Kinds of diagrams) – सांख्यिकीय चित्र मुख्यतया पांच प्रकार के होते है –

(1) एक विमा चित्र – (i) रेखा–चित्र (Line diagram)
(ii) सरल दण्ड चित्र (Simple Bar diagram)
(iii) बहुगुणी दण्ड चित्र
(iv) अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र

(2) द्वि–विमा चित्र – (i) आयत चित्र (Rectangular diagram)
(ii) वर्ग चित्र (Square diagram)
(iii) वृत्तीय चित्र

(3) त्रि–विमा चित्र – (Three dimensional diagram)

(4) चित्र–लेख (Pictograms)

(5) मान चित्र (Cartograms)

यहाँ हम रेखा–चित्र, सरल दण्ड चित्र, आयत –चित्र तथा वृत्तीय चित्र का अध्ययन करेंगे।

(A) रेखा–चित्र (Line diagram) – ये एक विमीय चित्र हैं। जब तथ्य से संबंधित पद–मूल्यों की संख्या अधिक हो तथा श्रेणी के सबसे छोटे तथा सबसे बड़े मूल्य के बीच अंतर कम हो, तो ऐसी स्थिति में रेखा–चित्रों का प्रयोग किया जाता है। इसमें सभी रेखाओं के बीच अन्तर समान रखा जाता है तथा प्रत्येक पद–मूल्य के बराबर लम्बाई की खड़ी रेखा खींची जाती है। इन रेखाओं में मोटाई नही होती, अतः ये कम आकर्षक होते हैं। इसमें दिये गये मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन हो जाता है।

उदाहरण : असम के एक शहर में प्रतिदिन वर्षा का 15 दिनों का रिकार्ड नीचे दिया गया है। इन समंको को एक उपयुक्त चित्र द्वारा प्रस्तुत कीजिए।

दिनांक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
वर्षा	7	8	10	12	13	14	15	17	11	15	14	16	10	18	10

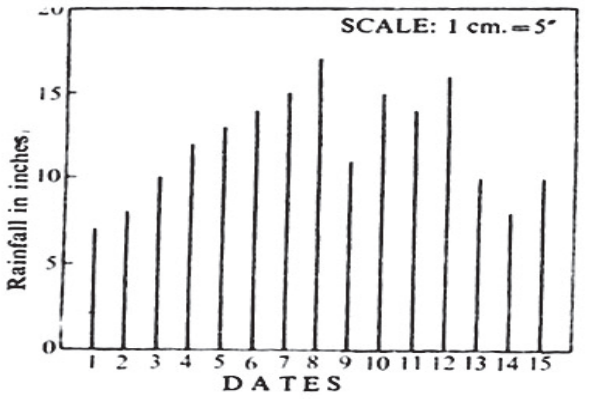

(B) सरल दण्ड चित्र (Simple Bar diagram) – यह भी एक विमीय चित्र है। किसी तथ्य से संबंधित पद–मूल्यों की संख्या कम होने की दशा में सरल दण्ड–चित्र बनाये जाते हैं। रेखाचित्र तथा दण्ड–चित्र में अन्तर यह है कि रेखा–चित्र में चौड़ाई नही बनाते, जबकि दण्ड–चित्र में रेखाओं की चौडाई बना दी जाती है जिससे चित्र आकर्षक बनाया जा सकता है। पद–मूल्यों के अनुपात में ऊँचाई तथा समान चौड़ाई वाले चित्र सरल दण्ड–चित्र कहलाते है। इन चित्रों में समान अन्तर रखा जाता है। दण्ड–चित्र उदग्र (खडे) तथा क्षैतिज (लेटे हुए) दोनों प्रकार के हो सकते हैं। ये चित्र व्यक्तिगत समंको, काल श्रेणी तथा स्थानानुसार समंक श्रेणियों के प्रदर्शन के लिए अधिक उपयुक्त होते है।

उदाहरण : एक निश्चित समयावधि में विभिन्न देशों की जन्म दर (प्रति हजार) से संबंधित आंकड़ें निम्न तालिका में दिये गये हैं। एक उपयुक्त चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए –

देश	चीन	भारत	न्यूजीलैंड	यू.के.	जर्मनी	स्वीडन
जन्म दर	40	33	30	20	16	15

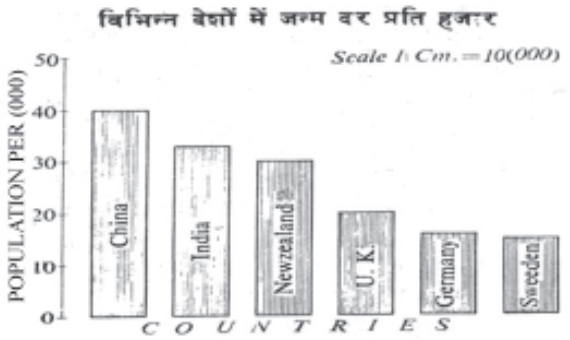

(C) आयत–चित्र (Rectangular diagrams) – ये द्वि–विमा–चित्र कहलाते है। एक विमा चित्रों में केवल एक ही विस्तार (ऊँचाई/लम्बाई) का ध्यान रखा जाता है, जबकि द्वि–विमा–चित्रों में दो विस्तारों–ऊँचाई तथा चौडाई के आधार पर चित्र निर्मित किये जात है। द्वि विमा–चित्रों के क्षेत्रफल पद–मूल्यों के अनुपात में होते हैं, इसलिए इन्हें धरातल चित्र (Surface diagram) या क्षेत्रफल चित्र (Area diagram) भी कहते हैं।

दो या दो से अधिक राशियों की पारस्परिक तुलना करने के लिए आयत–चित्रों का प्रयोग किया जाता है। आयत–चित्रों के दो प्रकार होते है–

(i) प्रतिशत अन्तर्विभक्त आयत–चित्र

(ii) विभाजित आयत–चित्र

(i) प्रतिशत अन्तर्विभक्त आयत–चित्र – इनमें विभिन्न परिवारों के पारिवारिक बजट की परस्पर तुलना की जा सकती है। ऐसे चित्रों में कुल आय को 100(%) मानकर, विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय को प्रतिशत में बदल लिया जाता है। प्रत्येक परिवार के लिए 100 के बराबर एक समान ऊँचाई वाले आयत बना लिए जाते है। इन आयतों की चौड़ाई कुल–व्यय के अनुपात में रखते हैं। फिर विभिन्न मदों पर किये जाने वाले व्यय की प्रतिशत राशियों के आधार पर

विभिन्न खण्डों में आयत को बांट दिया जाता है। इनसे सापेक्ष तुलना करने में मदद मिलती है।

उदाहरण : द्वि विमा वाले चित्रो द्वारा निम्न दो परिवारों के मासिक व्यय (रू.) को प्रस्तुत कीजिए :

व्यय की मदें	परिवार (A)	परिवार (B)
भोजन	400	500
वस्त्र	200	400
मकान किराया	160	200
ईधन	80	100
विविध	160	400
कुल व्यय	**1000**	**1600**

हल : दोनो परिवारों की आय को 100 मानते हुए विभिन्न मदों पर व्यय की जाने वाली राशि को निम्न तालिका अनुसार प्रतिशत में बदल लिया जाता है। यदि कुल व्यय में से विभिन्न मदों पर व्यय की जाने वाली राशि कम होती है तो उसे बचत के रूप में दिखाया जा सकता है। फिर आयत–चित्र की रचना की जायेगी।

व्यय मदें	परिवार			परिवार		
	रू.	प्रतिशत	संचयी	रू.	प्रतिशत	संचयी
भोजन	400	40	40	500	31.3	31.3
वस्त्र	200	20	60	400	25.0	56.3
मकान किराया	160	16	76	200	12.5	68.8
ईधन	80	8	84	100	6.20	75.0
विविध	160	16	100	400	25.0	100.0
कुल व्यय	1000	100		1600	100	

(ii) विभाजित आयत चित्र – इन चित्रों का उपयोग विभिन्न किन्तु परस्पर संबंधित तथ्यों का चित्र द्वारा प्रदर्शन करने में किया जाता है। जैसे – किसी वस्तु का प्रति इकाई मूल्य, बिक्री की मात्रा तथा विक्रय राशि का एक साथ प्रदर्शन। इन चित्रों में चौड़ाई प्रति इकाई मूल्यों के अनुपात में ली जाती है तथा ऊचाई बिक्री की मात्रा के अनुपात में।

दो परिवारों का मासिक व्यय

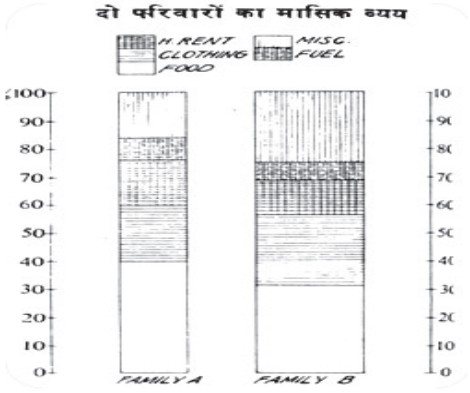

विक्रय मूल्य (ऊँचाई x चौड़ाई) = आयत का क्षेत्रफल

शेष क्रिया प्रतिशत अन्तर्विभक्त आयत–चित्र के समान ही रहती है।

(D) वृत्त–चित्र (Circular or pie diagram) – वृत्त–चित्रों की रचना वर्ग–चित्र की भांति ही की जाती है। ये भी द्वि–विमा वाले चित्र कहलाते हैं। वृत्त–चित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम दिये गये मूल्यों के वर्गमूल निकाले जाते है। फिर वर्गमूलों के अनुपात में वृत्तों की त्रिज्याऐं (radius) निकाल ली जाती है। इन त्रिज्याओं को आधार मानकर वृत्त बनाये जाते हैं। वृत्तों को हमेशा एक ही धरातल पर बनाना चाहिये तथा उनके बीच का अन्तर समान रखना चाहिए।

वृत्त–चित्रों को भी उनके विभिन्न उप–भागों में अन्तर्विभक्त किया जा सकता है, उससे हम तुलना कर सकते हैं। इन चित्रों के निर्माण के लिए मदों के कुल योग को 360^0 डिग्री मानकर विभिन्न मदों के कोणों का माप निकाल सकते हैं। चूँकि वृत्त के केन्द्र में 360^0 का कोण होता है। इसलिए इन्हें कोणीय चित्र या वृत्त–खण्ड चित्र भी कहते हैं।

उदाहरण : निम्न आंकडो को कोणीय चित्र द्वारा प्रस्तुत कीजिए –

कार्य स्थिति के अनुसार भारत की जनसंख्या (2001)

स्थिति	2001 में जनसंख्या (करोड)
सीमांत श्रमिक	9
मुख्य श्रमिक	31
गैर श्रमिक	62
योग	**102**

हल : कार्य स्थिति के अनुसार भारत की जनसंख्या को निम्न तालिका द्वारा कोणीय धटक ज्ञात कर वृत्त–चित्र का निर्माण करते है –

स्थिति	जनसंख्या (करोड)	प्रतिशत	कोण (डिग्री)
सीमांत श्रमिक	9	8.8	32^0
मुख्य श्रमिक	31	30.4	109^0
गैर श्रमिक	62	60.8	219^0
योग	**102**	**100.0**	**360^0**

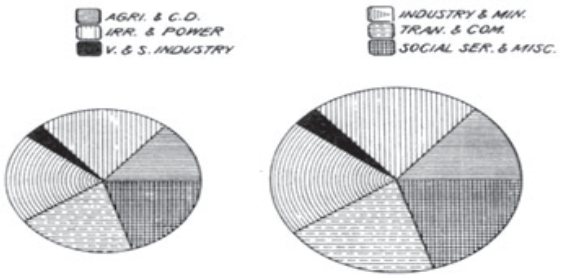

उदाहरण : निम्न आधारों पर रिक्त सारणी की रचना कीजिए–

1. जनसंख्या का आयु के अनुसार वितरण
2. जनसंख्या का आयु तथा लिंग के आधार पर वर्गीकरण,
3. जनसंख्या का आयु, लिंग तथा साक्षरता के आधार पर वर्गीकरण
4. जनसंख्या का आयु, लिंग, साक्षरता तथा राज्यों में वितरण के आधार पर वर्गीकरण।

1. जनसंख्या का आयु के अनुसार वितरण

इसके लिए एक सरल अथवा एक–गुण वाली रिक्त सारणी की रचना निम्न रूप में दी गई है–

आयु–समूह (वर्षों में)	व्यक्तियों की संख्या (मिलियन में)
0–20	.....
20–40	.....
40–50	.....
50 से अधिक	.....
योग	.....

2. जनसंख्या का आयु तथा लिंग के आधार पर वर्गीकरण – जब समंकों की केवल दो विशेषताओं का समावेश किया जाता है तो हम द्विगुण सारणी की रचना करते हैं। जनसंख्या का आयु तथा लिंग के आधार पर वर्गीकरण निम्न रिक्त सारणी में दर्शाया गया है।

आयु–समूह (वर्षों में)	व्यक्तियों की संख्या मिलियन में		
	पुरूष	महिला	योग
0–20	.....	.....	.....
20–40	.....	.....	.....
40–50	.....	.....	.....
50 से अधिक	.....	.....	.....
योग	.....	.....	.....

3. जनसंख्या का आयु, लिंग तथा साक्षरता के आधार पर वर्गीकरण एक त्रिगुण सारणी में एक साथ तीन गुणों को सम्मिलित किया जाता है। निम्न रिक्त तालिका में जनसंख्या का आयु, लिंग तथा साक्षरता के अनुसार वर्गीकरण दिखाया गया है–

आयु–समूह (वर्षों में)	व्यक्तियों की संख्या (मिलियन में)					
	पुरूष			महिला		योग
	साक्षर	निरक्षर	योग	साक्षर	निरक्षर	योग
0–20	.....	.....	.....	.....	.....	.....
20–40	.....	.....	.....	.....	.....	.....
40–50	.....	.....	.....	.....	.....	.....
> 50	.....	.....	.....	.....	.....	.....
योग	.....	.....	.....	.....	.....	.....

4. जनसंख्या का आयु, लिंग, साक्षरता तथा राज्यों में वितरण के आधार पर वर्गीकरण।

राज्य	आयु–समूह	व्यक्तियों की संख्या मिलियन में								
	वर्षों में	पुरूष			महिला			योग		
		L	IL	योग	L	IL	योग	L	IL	योग
बिहार	0–20	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	20–40	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	40–50	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	> 50	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	योग	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
राजस्थान	0–20	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	20–40	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	40–50	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	> 50	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....
	योग	....	...	..	...	....	.....	....	.....	.....

इसी प्रकार उपर्युक्त सारणी को अन्य राज्यों के लिए भी विस्तृत किया जा सकता है। L= साक्षरता, IL= निरक्षरता

आवृत्ति बंटनों के रेखाचित्र
(Graphs of frequency distribution)

सामान्यतः समूहीकृत आवृत्ति बंटनों के रूप में दिये गये आंकड़ों को बारंबारता आरेखों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। ये रेखाचित्र निम्न प्रकार के होते है –

(a) आवृत्ति आयत–चित्र (Histogram)

(b) आवृत्ति बहुभुज (Frequency polygon)

(c) आवृत्ति–वक्र (Frequency curve)

(d) संचयी आवृत्ति वक्र/तोरण (Cumulative frequency curve or ogives)

उपरोक्त रेखा चित्र बनाने के लिए आकार, वर्ग–सीमाओं को क्षैतिज–अक्ष पर तथा आवृत्तियों लम्बवत–अक्ष को पर रखा जाता है।

(a) आवृत्ति आयत चित्र (Histogram) – इस रेखाचित्र का प्रयोग सतत श्रेणी के आंकड़ों के प्रदर्शन हेतु किया जाता है। इसमे वर्गान्तर की आवृत्ति की ऊँचाई के माप के बराबर आयत बना लेते हैं। यदि वर्गान्तर समावेशी है तो पहले हमें उन्हें अपवर्जी श्रेणी में बदल लेना चाहिये। सभी आयत एक दूसरे से मिले/सटे हुए बनाये जाते हैं। आयत–चित्रों की

सहायता से बहुलक का निर्धारण किया जा सकता है।

ग्राफ द्वारा बहुलक–निर्धारण – इसमें सबसे अधिक ऊँचाई वाले आयत को बहुलक–वर्ग माना जाता है। फिर उस आयत के दाहिने ओर के ऊपरी कोने को उससे पहले वाले वर्ग के दाहिने कोने से तथा बायी ओर वाले ऊपरी कोने को उसके बाद वाले वर्ग के बायी ओर के कोने से मिला देते हैं। इन दोनों रेखाओं के कटान बिन्दु से भुजाक्ष पर एक लम्ब डाला जाता है, वही बहुलक मूल्य होता है।

उदाहरण : निम्न समंको को आवृत्ति आयत–चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए तथ्ज्ञा बहुलक का मूल्य निकालिये।

वर्गान्तर	आवृत्ति
0–10	8
10–20	18
20–30	23
30–40	37
40–50	47
50–60	26
60–70	16
70–80	5

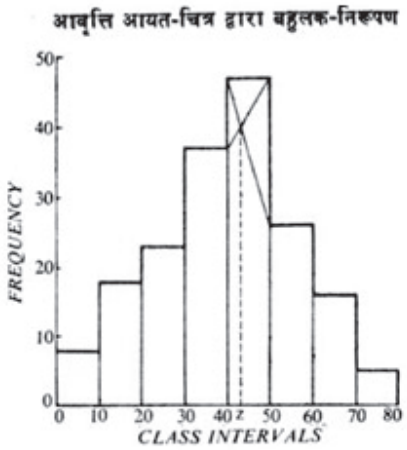

हल: निरीक्षण से बहुलक वर्ग (40–50) है। अतः बहुलक का मूल्य (40–50) के मध्य होगा।

$$z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

$$z = 40 + \frac{47 - 37}{94 - 37 - 26} \times 10$$

$$z = 40 + 3.2 = 43.2$$

(b) आवृत्ति बहुभुज (Frequency Polygon) – मूल्यों या मध्य बिन्दुओं और मध्य बिन्दुओं और उनकी आवृत्तियों के आधार पर बनाया गया अनेक भुजा वाला चित्र आवृत्ति–बहुभुज कहलाता है। x-अक्ष पर सतत/खंडित श्रेणी के मूल्य तथा y-अक्ष पर आवृत्तियों को मानकर रेखा चित्र तैयार करते है। फिर उन ऊपरी बिन्दुओं को आपस में मिलाकर तथा पहले व अंतिम बिन्दुओं को आधार रेखा से मिलाकर आवृत्ति बहुभुज का निर्माण कर लिया जाता है।

(c) आवृत्ति वक्र (frequency curve) – आवृत्त–वक्र, आवृत्ति बहुभुज का एक सरलित (Smothed) रूप है। आवृत्ति वक्र को आवृत्ति बहुभुज के बिन्दुओं से निकटतम गुजरते हुए मुक्त–हस्त (Free hand) से वक्र बनाकर बहुत सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है। यह आवश्यक नही कि आवृत्ति वक्र, आवृत्ति बहुभुज के सभी बिन्दुओ से होकर गुजरे, परन्तु यह उन बिन्दुओं से निकटतम होकर गुजरता है।

(d) संचयी आवृत्ति वक्र – जब वर्गान्तरों की ऊपरी सीमाओं को x-अक्ष पर तथा संचयी आवृत्तियों को y-अक्ष पर मानकर वक्र बनाया जाता है तो उसे संचयी आवृत्ति वक्र कहते है।

संचयी आवृत्ति वक्रो की सहायता से मध्यका तथा अन्य विभाजन मूल्यों (चतुर्थक, दशमक, अष्टमक, शतमक) का आसानी से निर्धारण किया जा सकता है । ये वक्र दो प्रकार से बनाये जा सकते है –

(i) वर्गांतर की ऊपरी सीमाओं तथा संचयी आवृत्तियों द्वारा (से कम)

(ii) वर्गान्तर की निम्न सीमाओं तथा संचयी आवृत्तियों के

द्वारा (से अधिक)

'से कम' वाला वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ तथा 'से अधिक' वाला वक्र ऊपर की ओर उठा हुआ होता है।

जिस बिन्दु पर 'से कम' तथा 'से अधिक' वाले वक्र परस्पर काटते हैं वही मध्यका बिन्दु होता है।

उदाहरण – निम्न समंकों से एक संचयी आवृत्ति वक्र की रचना कीजिए तथा उनकी सहायता से मध्यका मूल्य निर्धारित कीजिए :

आयु (से कम)	10	20	30	40	50	60
व्यक्तियों की संख्या	15	32	51	78	97	109

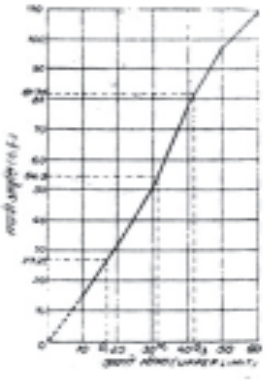

हल: उपरोक्त श्रेणी संचयी आवृत्ति बंटन के रूप में दी गई हुई है।

अतः मध्यका

मध्यका $M = \frac{N}{2}$ वें आकार का मूल्य

$$M = \frac{109}{2} or \quad 54.5\text{th मद}$$

सूत्र से $m = 31.3$

इस प्रकार हम जान सकते है कि अर्थशास्त्र में बिन्दु रेखीय चित्रों का बहुत उपयोग है। इनके द्वारा स्थिति सम्बन्धी माध्यों (मध्यका, बहुलक, विभाजन मूल्य आदि) का सरल तरीके से निर्धारण किया जा सकता है। चित्रों व रेखाचित्रों द्वारा सामान्य व्यक्ति को भी अपनी बात या संदेश को बहुत आसान तरीके से पहुंचाया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- तुलनात्मक अध्ययन, आंकड़ों के विश्लेषण एवं निर्वचन के लिए आवश्यक है कि संकलित सामग्री को सरल, संक्षिप्त एवं समझने योग्य बनाया जाये जिसके लिए उचित प्रस्तुतिकरण की आवश्यकता है।
- आंकड़े तीन प्रकार से प्रस्तुत किये जा सकते है – (a) पाठ–विषयक (b) सारणीबद्ध (c) चित्रमय एवं बिन्दुरेखीय प्रस्तुतिकरण।
- वर्गीकृत समंको को सरल एवं संक्षिप्त करने हेतु सारणियों में प्रस्तुत करने की क्रिया को सारणीयन कहते हैं।
- सरलता, तुलनात्मक अध्ययन,प्रदर्शन,समय व स्थान की बचत, सांख्यिकीय विवेचन में सहायक आदि दृष्टि से सारणीयन का महत्व है।
- वर्गीकरण सांख्यिकीय विश्लेषण की एक विधि है जबकि सारणीयन समंको के प्रस्तुतिकरण की एक प्रक्रिया है।
- उद्देश्यानुसार, मौलिकतानुसार, रचनानुसार सारणियों का वर्गीकरण किया जा सकता है।
- समंको की प्रस्तुति को चित्रों एवं ग्राफ द्वारा सरल ढंग एवं जल्दी से समझा जा सकता है।
- समंको के प्रदर्शन की दो विधियाँ है – (a) चित्रमय प्रदर्शन (b) बिन्दु रेखीय प्रदर्शन
- चित्रमय प्रदर्शन से अभिप्राय समंकों को दण्ड चित्र, आयत चित्र, वृतचित्र आदि रूप में प्रस्तुत करना है।
- समूहीकृत आवृत्ति बंटनों में आंकड़ों को आवृत्ति आयत चित्र, आवृत्ति बहुभुज, आवृत्ति–वक्र, संचयी आवृत्ति वक्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. दो या दो से अधिक संबंधित अंक समूहों की गुण, समय या स्थान पर तुलना करने के लिए किन चित्रों का प्रयोग किया जाता है ?
   (अ) सरल दण्ड चित्र (स) बहुदण्ड चित्र
   (स) अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र (द) आयत चित्र ( )
2. वृत्त बनाने के लिए जानना आवश्यक है –
   (अ) वर्ग (ब) भुजा
   (स) त्रिज्या (द) गोला ( )
3. वृत्त चित्र है ?
   (अ) एक त्रिज्या (ब) द्विविमा

(स) त्रिविमा (द) उपर्युक्त सभी ( )

4. यदि 40% महिला भारत में शिक्षित हैं तो इसके अनुपात को वृत्त चित्र में दर्शानें के लिए कोण का प्रयोग होगा–

(अ) 60 डिग्री (ब) 72 डिग्री

(स) 144 डिग्री (द) 40 डिग्री ( )

5. आवृत्ति चित्रों की सहायता से बहुलक का निर्धारण किस श्रेणी में किया जा सकता है ?

(अ) व्यक्तिगत श्रेणी

(ब) सतत श्रेणी

(स) खण्डित श्रेणी

(द) अपवर्जी श्रेणी ( )

6. यह द्विविमा चित्र नही है –

(अ) दण्ड चित्र (ब) वर्ग चित्र

(स) आयत चित्र (द) वृत्त चित्र ( )

7. बिन्दुरेखीय प्रदर्शन किया जाता है –

(अ) सादा पेपर पर (ब) ग्राफ पेपर पर

(स) ड्राइंग शीट पर (द) किसी पर भी ( )

अतिलघूत्तरात्मक

1. रेखाचित्र से क्या आशय है?
2. किस चित्र द्वारा बहुलक ज्ञात किया जा सकता है ?
3. सारणीयन को समझाइये।
4. आंकड़ें प्रस्तुत करने के कोई तीन आधार बताइये।
5. चित्रों की उपयोगिता के कोई चार बिन्दु लिखिये।
6. द्वि विमा चित्रों के नाम लिखिये।
7. एक आवृत्ति आयत चित्र बनाइये।

लघूत्तरात्मक

1. सारणीयन तथा वर्गीकरण मे अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. चित्रमय एवं बिन्दुरेखीय प्रदर्शन में क्या अन्तर है ?
3. बिन्दुरेखीय चित्र बनाते समय किन–किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए।
4. चित्रों की उपयोगिता के कोई चार बिन्दु समझाइये।
5. सारणियों का वर्गीकरण किन आधारों पर किया जा सकता है ?

निबन्धात्मक

1. सारणीयन का अर्थ स्पष्ट कीजिए। सारणी के कौन–कौन से अंग हैं ? सारणी का निर्माण करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।
2. एक नगर में शिक्षा, रोजगार तथा लिंग के आधार पर जनसंख्या वितरण के लिए रिक्त सारणी की रचना कीजिए।
3. सांख्यिकीय तथ्यों का प्रदर्शन करने के लिए सामान्यतः जिन विभिन्न प्रकार के चित्रों का प्रयोग किया जाता है उनका संक्षिप्त वर्णन किजिए।

उत्तरमाला

(1)ब (2)स (3)ब (4)स (5)ब (6)अ (7)ब

सन्दर्भ ग्रंथ

1. S.C.Gupta & V.K. Kapoor: Fundamentals of Mathematical Statistics, Published by Sultan Chand and Sons
2. एस.पी.सिंहः सांख्यिकीः सिद्धान्त एवं व्यवहार, एस. चन्द
3. कैलाशनाथ नागरः सांख्यिकी के मूल तत्व, मीनाक्षी प्रकाशन

अध्याय 3.1

समान्तर माध्य
(Arithmetic Mean)

प्रारम्भिक रूप सें समंको को भली–भाँति समझने तथा उनकी तुलना करने मे काफी कठिनाई होती है। वर्गीकरण एवं सारणीयन विधियों द्वारा समंको के समूह को आसानी से समझने के लिए संक्षिप्तीकरण द्वारा आवृत्ति–बंटन के रूप में व्यक्त किया जाता है। ये विधियां सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रारम्भिक अवस्थाएँ है। इससे समंको के महत्वपूर्ण लक्षण दृष्टिगत नही होते। विभिन्न समंको के महत्वपूर्ण लक्षणों को कम से कम मूल्यों में सारांश रूप में प्रकट करने के लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों या सांख्यिकीय माध्यों की गणना की जाती है।

प्रत्येक समंक श्रेणी में एक ऐसा बिन्दु होता है जिसके आस–पास अन्य समंकों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह मूल्य श्रेणी के लगभग केन्द्र में स्थित होता है और उसके महत्वपूर्ण लक्षणों का प्रतिनिधित्व करता है, यह मूल्य ही केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप या माध्य कहलाता है।

सिम्पसन एवं काफ्का के अनुसार, '' केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप एक ऐसा प्रतिरूपी मूल्य है जिसकी ओर अन्य संख्याऐं संकेन्द्रित होती हैं।''

केन्द्रीय प्रवृति के मापों को सांख्यिकीय माध्य, स्थान–संबंधी माप, प्रतिरूपी मृल्य के नामों से भी जानते हैं। सांख्यिकीय माध्यों की व्यवहारिक रूप में काफी उपयोगिता है। इनकी सहायता से अव्यवस्थित एवं जटिल समंको को सरल रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह समग्र का प्रतिनिधित्व करता है। दो या अधिक समूहों की तुलना की जा सकती है। अन्य सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रक्रियाओं में यह आधार प्रस्तुत करता है तथा भावी नीतियों के निर्धारण में यह पथ–प्रदर्शक का कार्य करता है।

आदर्श माध्य की विशेषताएँ

1. **यह सुस्पष्ट परिभाषित होना चाहिये –** माध्य को स्पष्टतः परिभाषित होना चाहिए जिससे कि उसका केवल एक ही अर्थ लगाया जा सके।
2. **यह समझने में सरल तथा गणना करने में आसान होना चाहिए –** माध्य ऐसा होना चाहिए कि वह समझने में सरल तथा गणना करने में आसान हो।
3. **यह सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिए –** एक अच्छे माध्य को श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिये। इसके बिना माध्य समंक श्रेणी का सही प्रतिनिधि नहीं बन सकेगा।
4. **यह चरम मूल्यों(अधिकततम/न्यूनतम) से कम प्रभावित होना चाहिए –** किसी भी समंक श्रेणी के अत्यधिक छोटे व अत्यधिक बड़े मूल्यों का माध्य पर प्रभाव न्यूनतम होना चाहिये।
5. **यह अन्य बीजगणितीय विवेचन में सहायक होना चाहिए –** एक अच्छे सांख्यिकीय माध्य में कुछ ऐसी गणितीय विशेषताऐं होनी चाहिए कि उसका आगे बीजगणितीय विवेचन संभव हो सके। जैसे– यदि हमें कुछ समूहों के माध्य मूल्य और आवृत्तियाँ ज्ञात हैं तो उनसे उन समूहों का सामूहिक माध्य ज्ञात किया जा सकता है।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों के प्रकार
(Kinds of measures of Central Tendency)

सांख्यिकीय में निम्न प्रकार के माध्यों का अध्ययन किया जाता है –

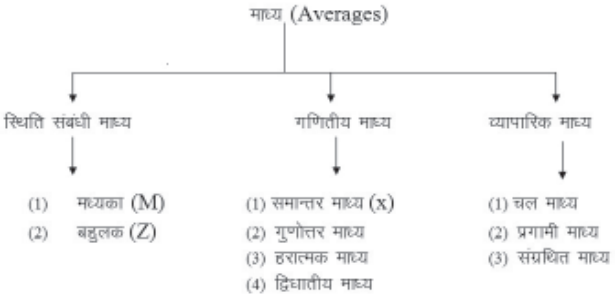

हम इस इकाई में केवल समान्तर माध्य, मध्यका एवं बहुलक का ही अध्ययन करेंगे।

1. समान्तर माध्य (Arithmetic Mean) – समान्तर माध्य गाणितीय माध्यों में सबसे अधिक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण माध्य है जिसका सामान्यतः आम आदमी द्वारा दैनिक जीवन में उपयोग किया जाता है।

किसी श्रेणी का समान्तर माध्य वह मूल्य है जो उस श्रेणी के सभी मूल्यों के योग को उनकी पद–संख्याओं से भाग देने पर प्राप्त होता है। यदि छः बच्चों का भार क्रमशः 41, 48, 57, 45, 52 तथा 39 किलाग्राम है तो उनके भार का समान्तर माध्य 47 किलोग्राम होगा, जो कि भारों के योग (282 किलोग्राम) को उनकी संख्या (6) से भाग देने पर प्राप्त होता है। सामान्यतः समान्तर माध्य को $\overline{X}$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

समान्तर माध्य के प्रकार
(Kinds of Arithmetic Mean)

समान्तर माध्य के दो प्रकार होते हैः

(1) सरल/अभारित समान्तर माध्य

(2) भारित समान्तर माध्य

सरल/अभारित समान्तर माध्य का परिकलन
(Calculation of Arithmetic Mean)

समान्तर माध्य का परिकलन प्रत्यक्ष या लघु विधि से तीनों प्रकार की श्रेणियों (व्यक्तिगत, खण्डित एवं सतत) में अलग–अलग किया जा सकता है।

व्यक्तिगत श्रेणी (Individual series)

1. प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

किसी श्रेणी के समस्त मूल्यों को जोड़कर, उनके योग (Óx) को उनकी संख्या (N) से भाग दे दिया जाता है। यदि x_1, x_2, x_3 …… …….x_N आदि छः संख्याऐं हैं तो समान्तर माध्य( ) निम्नप्रकार होगा :

$$\overline{X} = \frac{\sum X}{N}$$

$$= \frac{58+95+100+82+85+65+79+41+50+75}{10}$$

$$\overline{X} = \frac{730}{10} = 73$$

उदाहरण 1 :

निम्न समंको से समान्तर माध्य($\overline{X}$) की गणना कीजिएः

क्रमांक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्राप्तांक	58	95	100	82	85	65	79	41	50	75

$$\overline{X} = \frac{58+95+100+82+85+65+79+41+50+75}{10}$$

$$\overline{X} = \frac{730}{10} = 73$$

परीक्षा में छात्रों के औसत अंक 73 हैं।

लघु रीति (Short-cut Method) – जब किसी श्रेणी में मूल्यों की संख्या अधिक हो, संख्याऐं बड़ी हों, दशमलव में हो तो लघु रीति द्वारा गणना को सरल बनाया जा सकता है। इस रीति में श्रेणी के बाहर से किसी सुविधाजनक मूल्य को कल्पित माध्य (A) ....मानकर प्रत्येक मूल्य से उसका विचलन निकाला जाता है। फिर विचलनों के योग को उनकी संख्या से भाग देकर जो मूल्य प्राप्त होता है उसे बीजगणित चिन्ह (+ या –) के साथ कल्पित माध्य में जोडने पर समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।

$$X = A + \frac{\sum d}{N}$$

$$\overline{X} = \frac{X_1 + X_2 + X_3 + \ldots\ldots\ldots\ldots X_N}{N}$$

$$\overline{X} = \frac{\sum X}{N}$$

जहाँ A – कल्पित माध्य

d – मूल्यों से कल्पित माध्य का विचलन (X -A)

N - पद मूल्यों की संख्या

उपरोक्त दोनो रीतियों से समान्तर माध्य का एक ही मूल्य आता है।

उदाहरण –2 : पिछले उदाहरण 1 में दिये गये 10 छात्रों के प्राप्तांको से लघु रीति द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए :–

हल :

छात्र	प्राप्तांक (x)	विचलन A=75, d=X-A
1	58	-17
2	95	20
3	100	25
4	82	7
5	85	10
6	65	-10
7	79	4
8	41	-34
9	50	-25
10	75	0
N=10		Ó= -86+66 = –20

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma d}{N}$$

$$= 75 + \frac{(-20)}{10} = 75 - 2 = 73$$

उदाहरण 1 व 2 दो से स्पष्ट है कि समान्तर माध्य का मान दोनों रीतियों में समान आता है।

खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना (Calculation of Arithmetic mean in discrete series)

1. **प्रत्यक्ष रीति (Direct Method)** – खण्डित श्रेणी में श्रेणी के प्रत्येक मूल्य को उससे संबंधित आवृत्ति से गुणा किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त सभी गुणाओं का योग ही कुल मूल्यों का योग होता है। इस योग को आवृत्तियों के योग (Óf) / इकाइयों की संख्या (N) से भाग देने पर समान्तर माध्य ज्ञात हो जाता है।

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{N}$$

जहाँ N= Óf =आवृत्तियों का योग

Ófx = प्रत्येक मूल्य को आवृत्ति से गुणा कर उनका योग

उदाहरण 3 : निम्न समंकमाला से समांतर माध्य ज्ञात कीजिए:

चर (x)	56	60	64	68	72	76	80	84	88
आवृत्ति (f)	10	12	16	14	10	8	17	5	4

हल :

चर (x)	आवृत्ति (f)	fx
56	10	560
60	12	720
64	16	1024
68	14	952
72	10	720
76	8	608
80	17	1360
84	5	420
88	4	352
	N= 96	Ófx= 6716

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{6716}{96}$$

$$\overline{X} = 69.96$$

2. **लघु रीति (Direct Method)** – खण्डित श्रेणी में लघुरीति द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए निम्न गणन क्रिया की जाती है :–

(1) दिये गये चर मूल्यों में से या बाहर से किसी एक को कल्पित माध्य (A) मानना

(2) प्रत्येक चर मूल्य (x) में से कल्पित माध्य (A) घटाकर उस मूल्य का विचलन ज्ञात करना d = (X-A)

(3) प्रत्येक विचलन को उससे संबंधित आवृत्ति (f) से गुणा करना चाहिए (fd)

(4) उन गुणाओं का योग करना चाहिए (Ófd)
यहाँ चिन्हों का ध्यान आवश्यक रूप से रखना चाहिए।

(5) सूत्र का प्रयोग –

$\overline{X} = A + \frac{\Sigma fd}{N}$ जहाँ N= Óf

उदाहरण 4 : पिछले उदाहरण में दी गई समंक माला से लघुरीति द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए –

हल :

चर (x)	आवृत्ति (f)	A= 68 d= X-A	fd
56	10	-12	-120
60	12	-8	-96
64	16	-4	-64
68	14	0	0
72	10	4	40
76	8	8	64
80	17	12	204
84	5	16	80
88	4	20	80
	N= 96		Ófd= -280+468 = 188

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma fd}{N}$$

$$\overline{X} = 68 + \frac{188}{96} = 68 + 1.96$$

$$\overline{X} = 69.96$$

अखण्डित / सतत श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना
(Calculation of arithmetic mean in continuous series)

सतत श्रेणी में वर्ग अन्तराल दिये होते हैं। सतत श्रेणी में समान्तर माध्य उसी प्रकार ज्ञात किये जात है जिस प्रकार खंडित श्रेणी में। अन्तर केवल इतना है कि सतत श्रेणी में सर्वप्रथम वर्गों के मध्य बिन्दु (X) ज्ञात किये जाते हैं। इस प्रकार मध्य बिन्दु लेने पर सतत श्रेणी, खण्डित श्रेणी का रूप ले लेती है। सतत श्रेणी में वर्ग–अन्तराल अपवर्जी (0–10, 10–20, ...आदि) या समावेशी (0–9, 10–19, ... आदि) या असमान आकार (0–20, 20–50 आदि) वाले हो सकते है। लेकिन इन सभी स्थितियों में समान्तर माध्य की गणना एक ही तरीके से होती है।

(1) प्रत्यक्ष रीति (Direct method) – इसमे सर्वप्रथम वर्गान्तरों के मध्य बिन्दु ज्ञात कर लेना चाहिए, इसके बाद वही प्रक्रिया अपनायी जाती है जो खण्डित श्रेणी में उपयोग में लायी जाती है। असमान वर्गान्तरों वाली श्रेणी में यह रीति उपयोग में लायी जाती है। असमान वर्गान्तरों वाली श्रेणी में यह रीति उपयुक्त रहती है।

$$\overline{X} = \frac{\sum fm}{N} = \frac{\sum fm}{N}$$ जहाँ m – मध्य बिन्दु

(1) लघु रीति (Short-cut method) :

लघुरीति में दिये गये वर्गान्तरों के मध्य बिन्दु ज्ञात कर, वही प्रक्रिया अपनायी जाती है जो खंडित श्रेणी में प्रयोग में लायी जाती है।

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fd}{N}$$

m – मध्य बिन्दु
d= X-A
N= Óf

उदाहरण 5 : निम्न बंटन से प्रत्यक्ष तथा लघुरीति द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

आय (रु. में)	आवृति
100–110	4
110–120	16
120–130	36
130–140	52
140–150	64
150–160	40
160–170	32
170–180	11

हल :

1. प्रत्यक्ष विधि :

$$\overline{X} = \frac{\sum fx}{N} = \frac{36465}{253}$$

$$\overline{X} = 143$$

2. लघु रीति :

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fd}{N} = 145 - \frac{510}{255}$$

$$\overline{X} = 145 - 2$$

$$\overline{X} = 143$$

3. पद विचलन रीति (Step Deviation Method)–

यदि सतत श्रेणी में वर्ग–विस्तार समान हो तथा वर्गान्तरों की संख्या भी अपेक्षाकृत अधिक हो तो लघु रीति को और भी सरल बनाने के लिए पद–विचलन रीति का प्रयोग किया जा सकता है। लघुरीति में जब कल्पित माध्य से विचलन लिए जाते है तो उन्हे इस रीति द्वारा वर्ग–विस्तार के बराबर समापवर्तक / उभयनिष्ठ(Common factor) से भाग देकर पद–विचलन ज्ञात किये जाते हैं।

$\overline{X} = A + \frac{\sum fd}{N} \times i$ पद विचलन रीति में गणना क्रिया निम्नप्रकार होती है :

(i) दिये गये वर्गान्तरों से मध्य–मूल्य ज्ञात करना

(ii) मध्य मूल्यों में से किसी एक को कल्पित माध्य (A) मानना,

(iii) कल्पित माध्य से विचलन, d= (x-A) ज्ञात करना

(iv) विचलनों को वर्ग विस्तार समापवर्तक से भाग देकर पद विचलन (d') ज्ञात करना

$d' = \frac{(X - A)}{i}$ i = वर्ग –विस्तार

(v) पद विचलनों को उनकी आवृत्तियों से गुणा करने योग (Ófd') ज्ञात करना,

(vi) निम्न सूत्र द्वारा गणना की जाती है –

उदाहरण 6 : उदाहरण 5 में दी गई संख्याओं के आधार पर पद विचलन रीति द्वारा समान्तर माध्य की गणना कीजिए–

समान्तर माध्य की गणना

आय वर्ग (रू.)	आवृत्ति (f)	मध्य बिन्दु	कल्पित मा. A= 145 d= x-A	i= 10 d'=d/i	fd'
100–110	4	105	.40	-4	-16
110–120	16	115	.30	-3	-40
120–130	36	125	.20	-2	-72
130–140	52	135	.10	-1	-52
140–150	64	145	0	0	0
150–160	40	155	10	0	40
160–170	32	165	20	2	64
170–180	11	175	30	3	33
	N =255			Ófd'= +137-188 = - 51	

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fd'}{N} \times i = 145 + \frac{(-51)}{255} \times 10$$

$$= 145 - \frac{510}{255} = 145 - 2$$

$$\overline{X} = 143$$

भारित समान्तर माध्य (Weighted Arithmetic mean)

– सरल समान्तर माध्य की गणना में सभी मूल्यों को समान महत्व दिया जाता है। जबकि व्यवहार में अनेक समंक श्रेणियों में विभिन्न मूल्यों का अलग–अलग सापेक्षिक महत्व होता है। अतः ऐसी श्रेणियों में समान्तर माध्य की गणना करते समय मूल्यों के सापेक्षिक महत्व को ध्यान में रखना आवश्यक है। इकाइयों का सापेक्षिक महत्व निश्चित अंको द्वारा व्यक्त किया जाता है। इन अंको को भार कहते है। भार के आधार पर परिकलन किया गया समान्तर माध्य, भारित समान्तर माध्य कहलाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कारखाने में एक पुरूष श्रमिक प्रतिदिन 200 रू., स्त्री श्रमिक 160रू. तथा एक बालक 90 रू. मजदूरी प्राप्त करता है तो उनकी औसत मजदूरी (200+160+90/3) 150 रू. प्रतिदिन होती है। लेकिन यह समान्तर माध्य सही नही है। क्योंकि यहाँ श्रमिकों की संख्या पर विचार ही नही किया गया। यदि उपरोक्त तीनों श्रेणियों के श्रमिकों की संख्या क्रमशः 50, 20 व 10 हो तो श्रमिकों की संख्या के आधार पर मूल्यों को सापेक्ष महत्व प्रदान कर भारित माध्य निकालना अधिक उपयुक्त होगा। उपर्युक्त उदाहरण को निम्न प्रकार समझा जा सकता है :

x	भार (W)	XW
200	50	10,000
160	20	3200
90	10	900
	Ów=80	ÓxW=14100

$$\overline{X}w = \frac{\sum Xw}{\sum w} = \frac{14100}{80}$$

$$\overline{X}w = 176.125$$

भारित समान्तर माध्य =

$$\overline{X}w = \frac{X_1W_1 + X_2W_2 + \ldots\ldots\ldots\ldots X_4W_4}{W_1 + W_2 + \ldots\ldots\ldots\ldots W_N} = \frac{\sum X_W}{\sum w}$$

समान्तर माध्य की विशेषताऐं (properties of arithmetic mean)

$$\overline{X} = \frac{\sum x}{N} \quad \sum x = N\overline{X} \quad N = \frac{\sum x}{\overline{X}}$$

1. समान्तर माध्य से लिए गये विभिन्न पद–मूल्यों के विचलनों का योग सदैव शून्य होता है –

   i.e. $\sum (x - \overline{x}) = 0$

2. समान्तर माध्य से लिए गये विभिन्न पद मूल्यों के विचलनों के वर्गो का योग न्यूनतम होता है –

   i.e. $\sum (x - x)^2$ न्यूनतम

3. अज्ञात मूल्य का निर्धारण $\overline{X}$, N व Óx में से कोई दो माप ज्ञात हों तो तीसरा माप ज्ञात किया जा सकता है –

4. सामूहिक समान्तर माध्य ज्ञात करना – एक समूह के दो या अधिक भागों के समान्तर माध्य तथा उनके पदों की संख्या ज्ञात हो तो उनके आधार पर सामूहिक समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।

$$\overline{X} = \overline{X}_{1.2} = \frac{N_1\overline{X}_1 + N_2\overline{X}_2}{N_1 + N_2}$$

5. जब वर्गान्तर समावेशी तथा अवरोही आधार पर दिये गये हों तो समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए किसी भी संशोधन या समायोजन की आवश्यकता नहीं है।

6. असमान वर्गान्तर वाली श्रेणी में आवृत्तियों के समायोजन की आवश्यकता नहीं है। इनमें वर्गान्तरों के मध्य बिन्दु ज्ञात कर प्रश्न को हल किया जा सकता है।

7. किसी भी श्रेणी के समस्त पद–मूल्यों में यदि एक स्थिर राशि (k) को जोड़ दिया जाये या घटा दिया जाये तो समान्तर माध्य क्रमशः $\overline{X}+k$ अथवा $\overline{X}-k$ हो जायेगा। यदि स्थिर राशि (k) को श्रेणी के समस्त पद–मूल्यों से गुणा कर दिया जाये अथवा स्थिर राशि से पद–मूल्यों को भाग दे दिया जाये तो परिवर्तित समान्तर माध्य उसी अनुसार क्रमशः $k\overline{X}$ अथवा हो जायेगा।

विविध प्रश्न

1. निम्न समंक श्रेणी का समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए –

वर्गान्तर	46–55	36–45	26–35	22–25	18–21
आवृत्ति	20	36	54	32	8

हलः उपरोक्त प्रश्न में वर्गान्तर अवरोही तथा समावेशी है और वर्ग–विस्तार भी असमान है। समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए किसी भी संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

समान्तर माध्य का परिकलन

वर्गान्तर	मध्य बिन्दु	f	dx = x-A A=30.5	fdx
46–55	50.5	20	20	400
36–45	40.5	36	10	360
26–35	30.5	54	0	0
22–25	23.5	32	-7	-224
18–21	19.5	8	-11	-88
योग		N=150		$\sum fdx$ 448

$$\overline{X} = 30.5 + \frac{448}{150}$$

$$= 30.5 + 2.99$$

$$\overline{X} = 33.49$$

2. निम्न श्रेणी का समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए –

आय रु.	व्यक्तियों की संख्या
100–200	15
100–300	33
100–400	63
100–500	83
100–600	100

सर्वप्रथम संचयी आवृत्ति श्रेणी को सामान्य आवृत्ति श्रेणी में बदला जायेगा।

आय वर्ग	आवृत्ति	मध्य–बिन्दु	dx=X-A A=350	i=100 d^1	Fd^1x
100-200	15	150	-200	-2	-30
200-300	18	250	-100	-1	-18
300-400	30	350	0	0	0
400-500	20	450	100	1	20
500-600	17	550	200	2	24
					$\Sigma fd=6$

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fd^1x}{N} \times i$$

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N} \times 100$$

$$\overline{X} = 350 + \frac{6}{100} \times 100$$

$$\overline{X} = 350 + 6 = 356$$

3. रविवार को छोड़कर सप्ताह के शेष दिनों के लिए औसत वर्षा 4.2 सेमी थी। रविवार को अत्यधिक वर्षा होने के कारण पूरे सप्ताह का औसत बढ़कर 7 सेमी हो गया। ज्ञात कीजिए कि रविवार को कितनी वर्षा हुई ?

हलः

रविवार को छोड़कर शेष 6 दिनों की औसत वर्षा = 4.2 सेमी

अतः 6 दिनों की कुल वर्षा = 4.2 x 6

= 25.2सेमी

पूरे सप्ताह (7 दिन) की औसत वर्षा = 7 सेमी

7 दिनों कि कुल वर्षा = 7x7 = 49 सेमी

अतः 7 वें दिन अर्थात् रविवार को हुई वर्षा =

49–25.2 = 23.8 सेमी

4. 50 छात्रों का माध्य अंक 40 था। बाद में पता चला कि एक छात्र के अंक 53 के स्थान पर गलती से 83 पढ़ लिये गए। सही माध्य अंक ज्ञात कीजिए –

हल :

दिया हुआ $\overline{X} = 40$, $N = 50$

सही अंक = 53, गलत अंक = 83

चूंकि $\overline{X} = \frac{\sum x}{N}$ $\sum x = N.\overline{X} = 50 \times 40$

अतः अशुद्ध $\sum x = 2000$

शुद्ध $\sum x$ = अशुद्ध $\sum x$ – गलत मूल्य+सही मूल्य

$= 2000 - 83 + 53 = 1970$

सही सही $\frac{\sum x}{N} = \frac{1970}{50} = 39.4$

5. एक कम्पनी के सभी 100 कर्मचारियों में से 60 पुरूष कर्मचारियों की औसत मजदूरी 40 रु. है तथा शेष महिला कर्मचारियों की औसत मजदूरी 35रु. है तो समस्त कर्मचारियों की औसत मजदूरी ज्ञात कीजिए।

हलः दिया हुआ है–

$N = 100, N_1 = 60, N_2 = N - N_1$

$= 100 - 60 = 40$

$\overline{X}_1 = 40, \overline{X}_2 = 35$

सामूहिक माध्य

$$\overline{X} = \frac{N_1 \overline{X} + N_2 \overline{X}_2}{N_1 + N_2}$$

$$= \frac{60 \times 40 + 40 \times 35}{100}$$

$$= \frac{2400 + 1400}{100} = \frac{3800}{100}$$

$$\overline{X} = 38$$

अतः समस्त कर्मचारियों की औसत मजदूरी 38 रु. है।

6. निम्न समंकों से समांतर माध्य ज्ञात कीजिए–

2,4,6,8,10,12,17, 21

हलः– उपरोक्त समंकों से समान्तर माध्य–

$$\overline{X} = \frac{\sum x}{N} = \frac{2+4+6+8+10+12+17+21}{8}$$

$$\overline{X} = \frac{80}{8} = 10$$

यदि प्रत्येक पद में (i) 2 को जोड दिया जाये

(ii) 2 को घटा दिया जाये।

(iii) 2 से गुणा कर दिया जाये।

(iv) 2 से भाग दे दिया जाये, तो समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

स्थिर राशि = 2

x	$x+2=x_1$	$x-2=x_2$	$x.2=x_3$	$x/2=x_4$
2	4	0	4	1
4	6	2	8	2
6	8	4	12	3
8	10	6	16	4
10	12	8	20	5
12	14	10	24	6
17	19	15	34	8.5
21	23	19	42	10.5
$\sum x = 80$	$\sum x_1 = 96$	$\sum x_2 = 64$	$\sum x_3 = 160$	$\sum x_4 = 40$

(i) 2 को जोड़ने पर,

$$\overline{X}_1 = \frac{\sum x_1}{N} = \frac{96}{8}$$

$$\overline{X}_1 = 12$$

$(\overline{X}) =$

अतः $\overline{X}_1 = \overline{X} + 2 = 10 + 2$

(ii) 2 को घटाने पर,

$$\overline{X}_1 = \frac{\sum \times 2}{8} = \frac{64}{8}$$

$$\overline{X}_2 = 8$$

अतः $\overline{X}_2 = \overline{X} - 2 = 10 - 2 = 8$

(iii) 2 से गुणा करने पर,

$$\overline{X}_3 = \frac{\sum x_3}{N} = \frac{160}{8}$$

$$\overline{X}_3 = 20$$

अतः $\overline{X}_3 = \overline{X}.2 = 10 \times 2 = 20$

(iv) 2 से भाग देने पर,

$$\overline{X}_4 = \frac{\sum x_4}{N} = \frac{40}{8}$$

$$\overline{X}_4 = 8$$

अतः $\overline{X}_4 = \frac{\overline{X}}{2} = \frac{10}{2} = 5$

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण से समान्तर माध्य की सातवीं विशेषता की पुष्टि हो जाती है।

समान्तर माध्य के उपयोग (Uses of Arithmetic Mean)

सांख्यिकीय माध्यों में समान्तर माध्य अधिक सरल एवं गणना करने में आसान होने के कारण आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के अध्ययन हेतु अधिक उपयोगी है। औसत उत्पादन, औसत लागत, औसत आय, औसत आयात–निर्यात, औसत बोनस आदि में यह अधिक प्रयोग में आता है। चरम मूल्यों पर प्रभाव, अप्रतिनिधि, भ्रामक निष्कर्ष जैसे कुछ दोष होते हुए भी समान्तर माध्य को आदर्श माध्य माना जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- विभिन्न समंकों के लक्षणों को कम से कम मूल्यों में प्रकट करने के लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों की गणना की जाती है।
- केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप एक ऐसा प्रतिरूपी मूल्य है जिसकी ओर अन्य संख्याऐं केन्द्रित होती है।
- अव्यवस्थित एवं जटिल समंको को सरल रूप में प्रस्तुत करने, समग्र का प्रतिनिधित्व, समूहों की तुलना, भावी नीतियों के निर्धारण की दृष्टि से सांख्यिकीय माध्यों की उपयोगिता हैं।
- सांख्यिकी में स्थिति संबंधी, गणितीय तथा व्यापारिक माध्यों का अध्ययन करते हैं।
- समान्तर माध्य, मध्यका तथा बहुलक गणितीय माध्य हैं।
- समान्तर माध्य $\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N}$
- समान्तर माध्य दो प्रकार के होते हैं– सरल तथा भारित।
- समान्तर माध्य की गणना प्रत्यक्ष या लघुरीति द्वारा व्यक्तिगत, खण्डित व सतत श्रेणियों में अलग–अलग प्रकार से की जा सकती है।
- सरल समान्तर माध्य की गणना में सभी मूल्यों को समान महत्व दिया जाता है, जबकि भारित समान्तर माध्य में मूल्यों के सापेक्षित महत्व को ध्यान में रखा जाता हैं।
- समान्तर माध्य से लिए गये विभिन्न पद–मूल्यों के विचलनों का योग सदैव शून्य होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. समंको की विशेषताओं को सारांश के रूप में प्रकट करने के लिए परिकलन किया जाता है –
   (अ) सांख्यिकीय विधि
   (ब) सांख्यिकीय माध्य
   (स) सांख्यिकीय सूत्र
   (द) सारणीयन ( )
2. समान्तर माध्य का उद्देश्य है –
   (अ) पदों का औसत मूल्य
   (ब) पदों का समान्तर मूल्य
   (स) पदों का मध्य मूल्य
   (द) उपरोक्त सभी ( )
3. किस माध्य में बीजगणित विवेचन सम्भव है –
   (अ) समान्तर माध्य
   (ब) मध्यका
   (स) बहुलक
   (द) उपर्युक्त सभी ( )
4. यदि $x_1=4,\ x_2=5, N_1=10, N_2=15$ है तो सामूहिक माध्य होगा–
   (अ) 4.5 (ब) 4.6
   (स) 5 (द) 4.8 ( )
5. किसी श्रेणी में समान्तर माध्य से लिए गये विचलनों का योग होता है –
   (अ) अधिकतम योग
   (ब) न्यूनतम योग
   (स) शून्य योग
   (द) अनन्त ( )

अतिलघूत्तरात्मक

1. स्थिति सम्बन्धी माध्य कौन–कौन से हैं ?
2. सरल एवं भारित समान्तर माध्य में प्रमुख अन्तर बताइये।
3. समान्तर माध्य में पद–विचलन रीति का कब प्रयोग किया जाता है।
4. प्रथम श्रेणी के माध्य किसे कहते हैं?
5. सामूहिक समान्तर माध्य ज्ञात करने का सूत्र बताइये।

लघूत्तरात्मक

1. उदाहरण द्वारा सिद्ध कीजिए कि समान्तर माध्य से

लिए गये विभिन्न पदों में विचलनों का योग शून्य होता है।

2. एक श्रेणी के समान्तर माध्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा यदि बंटन के प्रत्येक मूल्य में एक निश्चित राशि जोड़ें, घटायें, गुणा करें या भाग करें ?
3. एक आदर्श माध्य के कोई चार लक्षण बताइये।
4. सांख्यिकी माध्य को समझाइये।
5. माध्यों का अध्ययन करने के क्या उद्देश्य हैं ?

निबन्धात्मक

1. केन्द्रीय प्रवृति के माप से क्या अभिप्राय है? एक आदर्श माध्य की विशेषताओं को समझाइये।
2. निम्न सारणी से बच्चों की संख्या ज्ञात कीजिए, यदि समान्तर माध्य आयु 11.9 वर्ष हो।

आयु (वर्षों में)	बच्चों की संख्या
0.5–5.5	3
5.5–10.5	17
10.5–15.5	x
15.5–20.5	8
20.5–25.5	2

3. निम्न आवृत्ति बंटन से समान्तर माध्य, मध्यका तथा बहुलक ज्ञात कीजिए।

वर्ग	आवृत्ति
0–5	3
5–10	4
10–15	6
15–20	12
20–25	0
25–30	14
30–35	6
35–40	5

4. निम्न आंकड़ों से भारित माध्य ज्ञात कीजिए।

मद	खर्च(रू)	भार
खाद्यान्न	940	7.5
किराया	200	2.5
वस्त्र	500	1.5
ईंधन	250	1.0
अन्य मद	240	0.5

उत्तरमाला

(1) ब (2) द (3) अ (4) ब (5) स

सन्दर्भ ग्रंथ

1. S.C.Gupta & V.K. Kapoor: Fundamentals of Mathematical Statistics, Published by Sultan Chand and Sons
2. एस.पी.सिंहः सांख्यिकीः सिद्धान्त एवं व्यवहार, एस. चन्द
3. कैलाशनाथ नागरः सांख्यिकी के मूल तत्व, मीनाक्षी प्रकाशन

अध्याय– 3.2

माध्यिका या मध्यका
(Median)

मध्यका एक स्थिति सम्बन्धी माध्य है। यह एक क्रमबद्ध समंकमाला का मध्य–मूल्य होता है। किसी समंकमाला को आरोही (बढ़ते हुए) या अवरोही (घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित करने के पश्चात, उस श्रेणी के मध्य में जो मूल्य आता है वही मध्यका कहलाता है।

मध्यका समंकमाला का वह चर मूल्य है जो क्रमबद्ध श्रेणी को दो बराबर भागों में इस प्रकार विभाजित करता हैं कि एक भाग में सभी मूल्य मध्यका से अधिक और दूसरे भाग में सभी मूल्य मध्यका से कम हों। जैसे, यदि 7 व्यक्तियों की दैनिक आय, क्रमशः 68, 95, 101, 118, 165, 182, 210 रू. हो तो उनकी मध्यका 118 रू. होगी। क्योंकि यह चौथे क्रम का अंक है जो श्रेणी के बिल्कुल मध्य में स्थित है तथा इससे पहले के तीनों अंक (68, 95, 101) 118 से छोटे है तथा बाद के तीनों अंक (165, 182, 210) 118 से बडे हैं। मध्यका को सामान्यतः (M) द्वारा व्यक्त करते हैं।

मध्यका का निर्धारण (Determination of median) :

(1) व्यक्तिगत श्रेणी (Individual series) – व्यक्तिगत मूल्यों से मध्यका ज्ञात करने के लिए (i) सबसे पहले दिये हुए मूल्यों को आरोही या अवरोही क्रम में क्रमबद्ध किया जाता है। सुविधा की दृष्टि से मूल्यों की क्रम संख्याऐं भी साथ–साथ लिखनी चाहिए। (ii) फिर निम्न सूत्र द्वारा मध्यका मूल्य ज्ञात कर लिए जाता है –

$M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वें पद का मूल्य

जहाँ N – मदों का संख्या

M – मध्यका

ध्यान देने की बात है कि उपरोक्त सूत्र से मध्यका संख्या का पता चलता है न कि मध्यका का । इस क्रम संख्या का पद–मूल्य ही मध्यका मूल्य होता है। यदि व्यक्तिगत श्रेणी में पदों की संख्या सम (यानि 2 से विभाजित) है तो केन्द्रीय क्रम संख्या पूर्णांक नहीं होगी। ऐसी क्रम संख्या का मूल्य निर्धारित करने के लिए उसके दोनों ओर की दो पूर्ण क्रम–संख्याओं के मूल्यों को जोड़कर 2 से भाग दिया जाता है। वही मध्यका –मूल्य होता हैं।

उदाहरण 1 : निम्न संख्याओं से मध्यका ज्ञात कीजिए–

31, 38, 42, 33, 35, 49, 28, 45, 39

हल : सर्वप्रथम मूल्यों को आरोही क्रम में व्यवस्थित किया जायेगा

क्र.सं.	1	2	3	4	5	6	7	8	9
पद–मूल्य	28	31	33	35	38	39	42	45	49

$M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वें पद का मूल्य

= 5 वें पद का मूल्य

अतः क्रम संख्या 5 पर जो पद–मूल्य है वही मध्यका–मूल्य है।

M = 38

उदाहरण 2 : निम्न आंकड़ों से मध्यका–मूलय की गणना कीजिए –

15, 19, 40, 20, 18, 22, 28, 11, 15, 15, 21, 35, 30, 23, 32, 22, 11, 12

हल : मूल्यों को आरोही क्रम मे व्यवस्थित करने पर –

क्र.सं.	पद मूल्य	क्र.संख्या	पद–मूल्य	क्र.सं.	पद–मूल्य
1	11	7	18	13	23
2	11	8	19	14	28
3	12	9	20	15	30
4	15	10	21	16	32
5	15	11	22	17	35
6	15	12	22	18	40

$M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वें पद का मूल्य

$= \frac{18+1}{2} = 9.5$ वें पद का मूल्य

= 9 वें पद का मूल्य + 10 वें पद का मूल्य
2

= अथवा

M = 20.5

(2) खण्डित श्रेणी (Discrete series) खंडित श्रेणी में मध्यका का निर्धारण करने के लिए –

(1) सबसे पहले संचयी आवृत्तियां ज्ञात की जाती हैं।

(2) फिर निम्न सूत्र द्वारा मध्यका की क्रम–संख्या ज्ञात कर ली जाती है –

$M = (\frac{N+1}{2})$ वें मद का आकार

जहाँ N = Óf

(3) मध्यका क्रम– संख्या का मूल्य संचयी आवृत्ति की सहायता से ज्ञात किया जाता है। जिस संचयी आवृत्ति में यह क्रम–संख्या पहली बार शामिल होती है, उससे सम्बन्धित मूल्य ही मध्यका होता है।

* प्रश्न हल करने से पूर्व यह आवश्यक रूप से देख लेना चाहिए कि दी हुई श्रेणी क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित हो।

उदाहरण 3 : निम्न बंटन से मध्यका मजदूरी ज्ञात कीजिए –

दैनिक मजदूरी (रू.)	25	10	18	26	20	30	15
श्रमिकों की संख्या	13	18	14	10	16	6	12

हल : उपरोक्त श्रेणी एक खण्डित श्रेणी है परन्तु क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित नही है। अतः सबसे पहले इसे क्रमबद्ध (आरोही क्रम) किया जायेगा।

दैनिक मजदूरी आकार (रू.)	आवृत्ति (f)	संचयी आवृत्ति (cf)
10	18	18
15	12	30
18	14	44
20	16	60
25	13	73
26	10	83
30	6	89
योग	N= 89	

मध्यका– मजदूरी का निर्धारण

$M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वें पद का आकार

$\frac{89+1}{2}$ = अथवा 45 वें पद का आकार

उपर्युक्त सारणी में संचयी आवृत्तियों वाले कॉलम को देखने से पता चलता है कि 45 से 60 वीं इकाई तक सभी पदों का मूल्य 20 रू. है। अतः 45 वी इकाई का मूल्य भी 20 रू. है।

अतः मध्यका मजदूरी या M = 20 रू.

(3) सतत श्रेणी (Continuous Series) – सतत श्रेणी में मध्यका ज्ञात करने के लिए निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है –

(i) सर्वप्रथम, संचयी आवृत्तियां ज्ञात की जाती हैं।

(ii) निम्नसूत्र द्वारा मध्यका–संख्या ज्ञात की जाती है।

$M = (\frac{N}{2})$ वें पद का आकार

*विशेष : सतत श्रेणी में मध्यका $(\frac{N}{2})$ वें पद का ही मूल्य होता है, न कि $(\frac{N+1}{2})$ वें पद का का मूल्य।

इसका कारण है कि मध्यका का मूल्य आरोही या अवरोही क्रम में एक समान होना चाहिए। केन्द्र बिन्दु को $\frac{N}{2}$ पर स्थित मानने पर ही दोनों स्थितियों में मध्यका का मान

समान आता है तथा $\frac{N}{2}$ का प्रयोग संचयी आवृत्ति वक्र से मध्यका निर्धारित करनें में उपयुक्त रहता है क्योंकि वक्र का केन्द्र बिन्दु $\frac{N}{2}$ पर ही होता है।

(iii) मध्यका संख्या, जिस संचयी आवृत्ति में सबसे पहली बार शामिल होती है उससे सम्बन्धित वर्ग, मध्यका वर्ग कहलाता है।

(iv) मध्यका वर्ग में से मध्यका का मूल्य ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

(A) जब समंक श्रेणी आरोही क्रम में हो –

(अ) $M = l_1 + \frac{i}{f}(\frac{N}{2} - c)$

जहाँ M= मध्यका ,

i - मध्यका वर्ग से विस्तार $(l_2 - l_1)$,

f – मध्यका वर्ग की आवृति ,

N – कुल आवृत्तियां,

C–मध्यका वर्ग से पहले वर्ग की संचयी आवृत्ति

(ब) जब समंक श्रेणी अवरोही क्रम में हो –

$$M = l_2 - \frac{i}{f}(\frac{N}{2} - c)$$

l_1 – मध्यका वर्ग की निचली सीमा,

l_2 – मध्यका वर्ग की ऊपरी सीमा

उदाहरण 4 : निम्नलिखित आंकड़ों से मध्यका ज्ञात कीजिए –

वर्ग	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70
आवृत्ति	110	125	86	45	18	12

हल : मध्यका का निर्धारण

वर्ग	आवृत्त (f)	संचयी आवृत्ति (Cf)
10-20	110	110
20-30	125	235
30-40	86	321
40-50	45	366
50-60	18	384
60-70	12	396
योग	$\acute{O}f = N$	

मध्यका = $(\frac{N}{2})$ वें पद का आकार

$= (\frac{396}{2})$ = 198 वें पद का आकार

संचयी आवृत्ति वाले कॉलम को देखने पर –

मध्यका वर्ग = (20-30)

सूत्र = $M = l_1 + \frac{i}{f}(\frac{N}{2} - c)$

$$M = 20 + \frac{10}{125}(\frac{396}{2} - 110)$$

$$M = 20 + \frac{10}{125}(198 - 110)$$

$$M = 20 + \frac{10}{125}(88)$$

$$= 20 + 7.04$$

$$M = 27.04$$

उदाहरण 5 : निम्न समंको से मध्यका ज्ञात कीजिए –

वर्ग	50-60	40-50	30-40	20-30	10-20
आवृत्ति	4	8	15	10	7

हल : उपरोक्त उदाहरण में श्रेणी अवरोही क्रम में है। अतः अवरोही क्रम में मध्यका का निर्धारण –

वर्ग	**आवृत्ति(f)**	**संचयी आवृत्ति(cf)**
50-60	4	4
40-50	8	12
30-40	15	27
20-30	10	37
10-20	7	44
योग	$\acute{O}f = 44$	

मध्यका = $(\frac{N}{2})$ वें पद का आकार

$= \frac{44}{2} =$ 22 वें पद का आकार

मध्यका वर्ग = (30-40)

सूत्र $= M = l_2 - \frac{i}{f}(\frac{N}{2} - c)$

$l_2 = 40, l_1 - 30,\ f = 15, N = 44, c = 12$

$$M = 40 - \frac{10}{15}(\frac{44}{2} - 12)$$

$$M = 40 - \frac{10}{15}(22 - 12)$$

$$= 40 - \frac{2}{3}(10)$$

$$= 40 - \frac{20}{3}$$

$= 40 - 6\text{-}67$

$M = 33.33$

मध्यका के गुण (Merits of Median) – मध्यका के गुणों को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

(i) यह स्पष्ट एवं पूर्णरूप से परिभाषित माध्य है।

(ii) यह गणना करने में सरल तथा समझने में आसान है।

(iii) इसका बहुलक की तरह निरीक्षण द्वारा निर्धारण किया जा सकता है।

(iv) मध्यका पर अत्यधिक छोटे तथा अत्यधिक बड़े अर्थात् चरम–मूल्यों का प्रभाव नहीं पड़ता।

(v) मध्यका गुणात्मक तथ्यों के लिए अधिक उपयुक्त है।

(vi) मध्यका का बिन्दुरेखीय रीति द्वारा भी निर्धारण किया जा सकता है।

मध्यका के दोष (Demerits of Median)

(i) पदों को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने, पदों की संख्या सम होने पर मध्यका का निर्धारण करने में कठिनाई आती है।

(ii) इसमें चरम मूल्यों की अवहेलना की जाती है।

(iii) मध्यका का बीजगणितीय गुण के अभाव के कारण उच्चतर सांख्यिकीय विधियों में प्रयोग नहीं हो पाता।

(iv) मध्यका प्रतिचयन–उच्चवचनों से प्रभावित होती है।

मध्यका का उपयोग (Uses of median) – मध्यका की गणना–क्रिया सरल एवं आसान होने के कारण यह व्यावहारिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। मध्यका का धन एवं सम्पत्ति वितरण के लिए उपयोग किया जाता है। सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण में मध्यका की बहुत उपयोगिता है। मध्यका गुणात्मक पहलूओं जैसे – स्वास्थ्य, गरीबी, बुद्धिकौशल आदि के मापन में अत्यधिक उपयोगी है। जहाँ मूल्यों को भारांकित न करना हो, वहाँ मध्यका का प्रयोग उचित होता है। विभाजन मूल्यों का (विशेषकर चतुर्थको का) अपकिरण तथा विषमता के माप में काफी प्रयोग किया जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- मध्यका एक स्थिति सम्बन्धी माध्य है।
- किसी श्रेणी को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने के पश्चात, उस श्रेणी के मध्य में जो मूल्य आता है वही मध्यका कहलाता है।
- मध्यका का निर्धारण व्यक्तिगत, खण्डित तथा सतत श्रेणियों में किया जाता है।
- सतत श्रेणी में मध्यका मूल्य ज्ञात करने का सूत्र – $M = l_1 + \frac{i}{f}(\frac{N}{2} - c)$ जब श्रेणी आरोही क्रम में है।

  $M = l_2 - \frac{i}{f}(\frac{N}{2} - c)$ जब श्रेणी अवरोही क्रम में है।
- मध्यका का धन एवं सम्पत्ति वितरण, गुणात्मक पहलूओं, अभारांकन आदि में काफी प्रयोग किया जाता है। सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण में भी मध्यका की बहुत उपयोगिता है।

अभ्यासर्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ऐसे तथ्य जिन्हें संख्या में व्यक्त नहीं किया जा सकता, उनके लिए सर्वोत्तम माध्य है –

   (अ) समान्तर माध्य

   (ब) मध्यका

   (स) बहुलक

   (द) हरात्मक माध्य

2. निम्न श्रेणी में मध्यका है –

   8, 11, 12, 13, 15, 18

   (अ) 12.5 (ब) 13

   (स) 12 (द) 14

3. यदि बहुलक 18 तथा समान्तर माध्य 20 है तो मध्यका होगी–

(अ) 29.33 (ब) 19.33

(स) 18.66 (ब) 9.33

अतिलघूत्तरात्मक

1. मध्यका से आप क्या समझते हैं ?
2. व्यक्तिगत श्रेणी में मदों की संख्या सम होने पर मध्यका ज्ञात करने का सूत्र लिखिए।
3. मध्यका का प्रयोग श्रेष्ठ कब रहता है?
4. खुले–सिरे वाले वर्गान्तरों के लिए कौन सा अधिक उपयुक्त माध्य है ?

लघूत्तरात्मक

1. यदि चार अवलोकनों 3, 4, ग तथा 8 का मध्यका मूल्य 5 है तो ग का मान निकालिये।
2. मध्यका ज्ञात करने के लिए खंडित श्रेणी में $\frac{N+1}{2}$ तथा सतत श्रेणी में $(\frac{N}{2})$ का प्रयोग किया जाता है क्यों ?
3. यदि समान्तर माध्य 75 तथा बहुलक 60 है तो मध्यका का मूल्य ज्ञात किजिए।
4. मध्यका के कोई चार लाभ बताइये।

निबन्धात्मक

1. निम्न सारणी से बहुलक एवं मध्यका ज्ञात कीजिए–

वर्गान्तर	आवृत्ति
0-10	10
10-20	3
20-30	7
30-40	15
40-50	5

2. केन्द्रीय प्रवृत्ति के महत्वपूर्ण मापों और उनके गुण–दोषों का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।

उत्तरमाला

(1) ब (2) अ (3) स (4) द (5) ब

सन्दर्भ ग्रंथ

1. S.C.Gupta & V.K. Kapoor: Fundamentals of Mathematical Statistics, Published by Sultan Chand and Sons
2. एस.पी.सिंहः सांख्यिकीः सिद्धान्त एवं व्यवहार, एस. चन्द
3. कैलाशनाथ नागरः सांख्यिकी के मूल तत्व, मीनाक्षी प्रकाशन

अध्याय – 3.3

बहुलक
(Mode)

अंग्रेजी शब्द "Mode" की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के "La Mode" से हुई जिसका अर्थ है फैशन या रिवाज अर्थात् जिसका प्रचलन अत्यधिक हो। जिस वस्तु का रिवाज या फैशन अधिक होता है, अधिकांश व्यक्ति उसी वस्तु का अपेक्षाकृत उपयोग अधिक करते हैं। अतः बहुलक किसी समंक श्रेणी में अधिकतम आवृत्ति वाला पद होता है। बहुलक उस मूल्य को कहते हैं जो समंकमाला में सबसे अधिक बार आता हो अर्थात् जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक हो। यह उस बिन्दु को बताता है जहां सबसे अधिक पद संकेन्द्रित होते हैं। यह सर्वाधिक घनत्व की स्थिति या मूल्यों के संकेन्द्रण का बिन्दु कहलाता है। इसलिए बहुलक को स्थिति–सम्बन्धी माध्य कहा जाता है। उदाहरण के लिए, एक निर्माता जूते के उस आकार के बारे में जानना चाहता है जिसकी बाजार में मांग अधिकतम है। यदि किसी फैक्ट्री में बहुलक मजदूरी 400 रू. प्रतिमाह है तो इसका तात्पर्य यह होगा कि उस फैक्ट्री के अधिकांश श्रमिक 400 रू. प्रतिमाह मजदूरी प्राप्त करते हैं। एक भारतीय की औसत ऊँचाई 160 सेन्टीमीटर है, या किसी दुकान पर बिकने वाली डायरियाँ और अभ्यास पुस्तिका, जींस व टी–शर्ट की बिक्री आदि घटनाओं का तात्पर्य अधिकतम इकाईयों की संख्या या मूल्य या बहुलक से है।

बहुलक का निर्धारण : (Determination of mode)

बहुलक का निर्धारण व्यक्तिगत श्रेणी, खण्डित श्रेणी तथा सतत श्रेणी में किया जाता है।

(1) व्यक्तिगत श्रेणी – किसी भी श्रेणी में वह मूल्य जो अधिकतम बार आता है, उसे ही बहुलक मूल्य कहते हैं। एक व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक ज्ञात करने की निम्न तीन विधियां है–

(i) व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित श्रेणी में बदलकर, या

(ii) सतत श्रेणी में बदलकर, या

(iii) समान्तर माध्य तथा मध्यका की सहायता से बहुलक का अनुमान लगाना।

(A) व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित श्रेणी में बदलना– जब व्यक्तिगत श्रेणी में अनेक मूल्य दो या दो से अधिक बार पाये जाते है तो उसे खण्डित श्रेणी में बदल लेना चाहिए। उन्हें आरोही क्रम में रखकर उनके सामने उनकी आवृत्ति लिख दी जाती है। फिर निरीक्षण द्वारा यह देखा जाता है कि अधिकतम आवृति क्या है। इस आवृत्ति का मूल्य ही बहुलक हैं। बहुलक को "Z" द्वारा व्यक्त किया जाता है।

उदाहरण 1 : निम्न श्रेणी का बहुलक ज्ञात कीजिए।

40, 44, 46, 50, 44, 34, 38, 44, 46, 42, 44

हल :

मूल्य (x)	34	38	40	42	44	46	50
आवृत्ति (f)	1	1	1	1	4	2	1

निरीक्षण द्वारा स्पष्ट है कि 44 पद सबसे अधिक बार (4 बार) आया है अतः 44 ही बहुलक है।

$Z=44$

(B) सतत श्रेणी में बदलना – जब किसी श्रेणी का कोई भी व्यक्तिगत मूल्य एक से अधिक बार नही पाया जाता हो तो व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित श्रेणी में बदलने की प्रक्रिया निरर्थक सिद्ध होती है क्योंकि सभी मूल्यों की आवृत्ति समान रहने पर बहुलक का निर्धारण करना असंभव होता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्तिगत मूल्यों को सतत श्रेणी में बदलकर अधिकतम आवृत्ति वाला वर्गान्तर (बहुलक वर्ग) ज्ञात कर लेना चाहिए। फिर सूत्र द्वारा बहुलक वर्ग में से बहुलक मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इस विधि को आगे स्पष्ट किया गया है।

(C) समान्तर माध्य तथा मध्यका की सहायता से बहुलक का अनुमान लगाना :

यदि किसी व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य, मध्यका

(M) तथा बहुलक (Z) तीनों ही ज्ञात करने हों तो तीनों के पारस्परिक सम्बंध पर आधारित निम्न सूत्र द्वारा बहुलक मूल्य का अनुमान लगाया जा सकता है –

$(\overline{X} - Z) = 3(\overline{X} - M)$

$Z = 3M - 2\overline{X}$

उपरोक्त सूत्र का प्रयोग केवल असाधारण स्थिति में अथवा परीक्षक द्वारा पूछने पर ही किया जाना चाहिए।

उदाहरण 2 : निम्न समंकों से समान्तर माध्य ($\overline{X}$), मध्यका (M)तथा बहुलक (Z) ज्ञात किजिए।

4, 13, 9, 25, 17, 20, 10

हल : उपरोक्त व्यक्तिगत मूल्यों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर –

4, 9, 10, 13, 17, 20, 25

समान्तर ( )

$(\overline{x}) = 14$

मध्यका (M) = वें पद का मूल्य

$= \frac{(7+1)}{2} = 4$वें पद का मूल्य

M = 13

बहुलक का (Z) का अनुमान निम्न सूत्र से लगाया जायेगा

Z = 3M - 2

= 3 X 13 - 2 X 14

=39-28

Z = 11

(2) खण्डित श्रेणी (Discrete series) – खण्डित श्रेणी में बहुलक निर्धारण की दो रीतियाँ हैं

(a) निरीक्षण रीति द्वारा (By Inspection)

(b) समूहन रीति (Grouping Method)

(A) निरीक्षण रीति द्वारा (By Inspection) – बहुलक निर्धारण की निरीक्षण रीति का प्रयोग केवल तभी करना चाहिए जब खण्डित श्रेणी की आवृतियां नियमित हों अर्थात् श्रेणी के आरम्भ से आवृतियाँ निरन्तर बढ़ती रहें, अधिकतम आवृत्ति लगभग श्रेणी के केन्द्र में हो और उनके बाद से आवृत्तियां निरन्तर घटने लगे। ऐसी श्रेणी में अधिकतम आवृत्ति बिल्कुल स्पष्ट दिखायी देती है। निरीक्षण द्वारा बहुलक मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है।

उदाहरण 3 : निम्नलिखित श्रेणी से बहुलक भार ज्ञात कीजिए।

भार (x) किग्रा	50	52	55	58	64	70
व्यक्तियों की सं.(f)	4	10	20	11	3	2

हल : उपरोक्त श्रेणी में आवृत्तियाँ नियमित हैं। अतः निरीक्षण द्वारा बहुलक ज्ञात किया जा सकता है। अधिकतम आवृत्ति 20 है जिसका मूल्य 55 किलोग्राम है। अतः बहुलक भार,

Z = 55 किलोग्राम

(B) समूहन रीति(Grouping Method) – समूहन रीति का प्रयोग उस समय किया जाता है जब समंक श्रेणी की आवृत्तियां अनियमित हों, क्योंकि ऐसी स्थिति में अधिकतम आवृत्ति का पता नहीं लग पाता। आवृत्तियो में घटने/बढ़ने, संकेन्द्रण स्थान आदि में अनियमितता पाये जाने पर निरीक्षण रीति द्वारा बहुलक ज्ञात करना मुश्किल होता है।

समूहन का उद्देश्य – समूहन का उद्देश्य अनियमित आवृत्ति वाले बंटन में आवृत्तियों का जमाव बिन्दु निश्चित करना होता है।

समूहन की प्रक्रिया – समूहन विधि में सर्वप्रथम एक सारणी बनाई जाती है जिसमें चर मूल्यों (x) के अतिरिक्त आवृत्तियों के लिए 6 कॉलम होते हैं। इसे निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

$\overline{X} = \frac{\Sigma(X1)}{N} = \frac{4+9+10+13+17+20+25}{7} = \frac{98}{7} = 14$

क्र.सं.	चर–मूल्य (x)
1	आवृत्तिया (f)
2	2–2 आवृत्तियों का योग
3	पहली आवृत्ति छोड़कर 2–2 आवृत्तियों का योग
4	3–3 आवृत्तियों का योग
5	पहली आवृत्ति छोड़कर 3–3 आवृत्तियों का योग
6	शुरू की दो आवृत्तिया छोड़कर 3–3 आवृत्तियों का योग

आवृत्तियों का उपरोक्तानुसार समूहन करने के पश्चात् प्रत्येक कॉलम की अधिकतम आवृत्ति को पेंसिल से गोला कर दिया जाता है तथा उन अधिकतम आवृत्तियों के चर–मूल्यों पर चिह्न लगाकर विश्लेषण सारणी द्वारा गणना कर ली जाती है। जिस चर–मूल्य के सामने अधिकतम चिह्न होते हैं वही बहुलक का मूल्य होता है।

उदाहरण 4 : निम्न समंको से कमीज की कॉलर का बहुलक माप ज्ञात कीजिए –

कॉलर माप (सेमी) (X)	30	31	32	33	34	35	36	37
व्यक्तियों की संख्या (f)	2	9	3	4	8	7	8	5

हल : यद्यपि निरीक्षण विधि से लगता है कि अधिकतम आवृत्ति 9 है अतः बहुलक मूल्य 31 होना चाहिए। लेकिन उदाहरण में आवृत्तियों का वितरण अनियमित होने से हमारे समक्ष संशय बना रहता है। अतः हमें वैधता की दृष्टि से समूहन विधि का प्रयोग करना चाहिये, ताकि भ्रम की स्थिति से बचा जा सके।

समूहन विधि द्वारा बहुलक – निर्धारण

कालर माप X	आवृत्ति f(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)	अधिकतम आवृत्तियों की संख्या / विश्लेषण सारणी	
30	2	11						0
31	9		12	14			1	1
32	3	7			16	15		0
33	4		12	(19)			1	1
34	8	(15)			(23)	(20)	111	3
35	7		(15)				1111	5
36	8	13					111	3
37	5						1	1

विश्लेषण सारणी से स्पष्ट है कि बहुलक मूल्य 35 है जहाँ आवृत्तियों की संख्या अधिकतम हैं।

अतः $Z = 35$ Cm.

(3) सतत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण (Determination of mode in continuous series) – सतत श्रेणी में बहुलक ज्ञात करने के लिए सबसे पहले बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है। इसे ज्ञात करने के लिए खण्डित श्रेणी की तरह दो रीतियां है : (i) निरीक्षण रीति (ii) समूहन रीति जिनको ऊपर समझाया जा चुका है। अधिकतम आवृत्तियों वाले वर्ग को ज्ञात करने के लिए भ्रम की स्थिति में हमें समूहन रीति का उपयोग करना उचित रहेगा।

बहुलक–वर्ग ज्ञात करने के बाद निम्न सूत्र की सहायता से बहुलक–मूल्य ज्ञात किया जाता है। बहुलक का मान बहुलक–वर्ग की दी हुई सीमाओं के अन्दर ही आना चाहिए।

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

जहाँ – Z = बहुलक–मूल्य

l_1 = बहुलक वर्ग की निम्न सीमा

i = वर्गान्तर $(L_2 - L_1)$

f_1 = बहुलक वर्ग की आवृत्ति

f_0 = बहुलक वर्ग की पूर्ववर्ती वर्ग की आवृत्ति

f_2 = बहुलक वर्ग के तुरन्त बाद वाले वर्ग की आवृत्ति

उदाहरण 5 : निम्नालिखित आवृत्ति सारणी से बहुलक ज्ञात कीजिए।

वर्ग (x)	आवृत्ति (f)
20-40	6
40-60	9
60-80	11
80-100	14
100-120	20
120-140	15
140-160	10
160-180	8
180-200	7

हल : उपरोक्त उदाहरण में आवृत्तियां नियमित हैं, अतः निरीक्षण रीति द्वारा हम देख सकते है कि अधिकतम आवृत्तियां 20 हैं जिससे संबंधित बहुलक वर्ग (100–120) होगा। बहुलक ज्ञात करने के लिए सूत्र का प्रयोग करने पर –

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

$$Z = 100 + \frac{20-14}{40-14-15} \times 20$$

$$= 100 + \frac{6 \times 20}{11}$$

$$= 100 + \frac{120}{11}$$

$$= 100 + 10.9$$

$$Z = 110.9$$

बहुलक के गुण (Merits of Mode) बहुलक के गुणों को निम्न आधारों पर समझा जा सकता है–

1. बहुलक ज्ञात करना सबसे सरल है। सामान्य समझ

से इसका मान आसानी से ज्ञात किया जा सकता है। अधिकतर बहुलक का मान निरीक्षण द्वारा ज्ञात हो जाता है। फिर इसके निर्धारण हेतु गणितीय सूत्र की आवश्यकता भी नहीं होती।

2. यह एक लोकप्रिय माध्य है। इसका दैनिक जीवन में काफी प्रयोग किया जाता है।
3. बहुलक चरम मूल्यों से प्रभावित नहीं होता। क्योंकि अधिकतम आवृत्ति संकेन्द्रण सामान्यतः श्रेणी के माध्य में होता है न कि चरम–सीमाओं के आस–पास।
4. बहुलक का बिन्दु–रेखीय विधि द्वारा भी निर्धारण किया जा सकता है।
5. बहुलक सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व माध्य है। बहुलक का मूल्य, श्रेणी में दिये गये पद–मूल्यों में से ही कोई एक होता है जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है। अतः बहुलक श्रेणी का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करने वाला माध्य माना जाता है।

बहुलक के दोष (Demerits of Mode)

1. यह एक अस्पष्ट, अनिश्चित तथा अनिर्धारित माध्य है। जब श्रेणी के सभी पदों की आवृत्तियाँ समान हों या श्रेणी में दो या दो से अधिक बहुलक हों तो इन स्थितियों में बहुलक का निर्धारण करना एक कठिन कार्य है।
2. निरीक्षण विधि द्वारा बहुलक का पता नहीं चलने पर, समूहन विधि काफी जटिल लगती है।
3. यह माध्य चरम मूल्यों की उपेक्षा करता है जो गणितीय दृष्टि से उचित नहीं है।
4. इस माध्य का बीजगणितीय विवेचन संभव नहीं है।
5. यह एक अवास्तविक तथा अप्रतिनिधिक माध्य है। निम्न अपूर्ण बंटन में अज्ञात आवृत्तियों के मान ज्ञात कीजिए, यदि माध्यिका और बहुलक के मूल्य क्रमशः 27 तथा 26 हैं–

बहुलक के उपयोग (User of Mode) – बहुलक दैनिक जीवन में सर्वसाधारण के द्वारा अधिक प्रयोग में लाया जाता है। व्यापारिक क्षेत्र में, ऋतु विज्ञान, जीवशास्त्र, उपभोक्ताओं की पसंद आदि का अध्ययन करने के लिए बहुलक एक उपयोगी माध्य माना जाता है। विशेष रूप से मूल्यों का अधिकतम संकेन्द्रण बिन्दु ज्ञात करने के लिए, जैसे– कालर का औसत आकार, छात्र का औसत मासिक खर्चा, टेलिफोन काल की प्रतिदिन औसत संख्या, किसी पुस्तक के औसत पृष्ठ में शब्दों की संख्या, प्रति दम्पत्ति बच्चों की औसत संख्या आदि जानने के लिए बहुलक का ही प्रयोग किया जाता है।

व्यापारिक पूर्वानुमानों या भविष्यवाणी में बहुलक अधिक पथ–प्रदर्शक समझा जाता है। वर्षा, गर्मी, वायु गति सम्बंधी पूर्वानुमान बहुलक द्वारा ही किये जाते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक जीवन में बहुलक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

विविध प्रश्न :

उदाहरण 6 : यदि निम्न श्रेणी में बहुलक 24 है तो वर्गान्तर (30–40) की अज्ञात आवृत्ति ज्ञात कीजिए।

वर्ग	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
आवृत्ति	14	23	27	?	15

हल : माना की अज्ञात वर्गान्तर की आवृत्ति x है,

वर्ग	आवृत्ति	
0-10	14	
10-20	23	f_0
20-30	27	f_1
30-40	x	f_2
40-50	15	

चूंकि बहुलक का मूल्य 24 है अतः बहुलक वर्ग (20–30) होगा।

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

$Z = 24,\ l_1 = 20,\ f_1 = 27,\ f_0 = 23,\ I = 10,\ f_2 = x$

उपरोक्त सुत्र में मान रखने पर

$$24 = 20 + \frac{27-23}{54-23-x} \times 10$$

$$24 - 20 = \frac{40}{31-x}$$

$$4 = \frac{40}{31-x}$$

पक्षान्तर करने पर, $31 - f_2 = \frac{40}{4} = 10$

$$f_2 = 31 - 10 = 21$$

अतः वर्ग (30–40) की आवृत्ति 21 है।

उदाहरण 7 :निम्न श्रेणी से समान्तर तथा बहुलक की गणना

कीजिए –

वर्ग अंतराल	आवृत्ति
10-20	4
20-30	16
30-40	56
40-50	97
50-60	124
60-70	137
70-80	146
80-90	150

समान्तर माध्य = $\overline{X} = A + \frac{\sum fd'}{N} \times i$

$= 55 - \frac{130}{150} \times 10 \quad = 55 - \frac{26}{3}$

$= 46.33$

बहुलक (Z) – उपर्युक्त श्रेणी में आवृत्तियाँ नियमित हैं अतः निरीक्षण रीति से स्पष्ट है कि अधिकतम आवृत्ति 41 है जिससे सम्बन्धित वर्ग (40–50) हैं। अतः बहुलक वर्ग (40–50) होगा।

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

$l_1 = 40,\ i=10,\ f_1=41,\ f_0=40,\ f_2=27$

उपरोक्त सूत्र में मान रखने पर –

$$40 + \frac{41-40}{82-40-27} \times 10$$

$$Z = 40 + \frac{1}{82-67} \times 10$$

$$= 40 + \frac{10}{15} \quad = 40 + 0.67 \quad = 40.67$$

अतः समान्तर माध्य = 46.33, मध्यका = 44.63, बहुलक = 40.67

उदाहरण 8 : निम्न लिखित सारणी से बहुलक ज्ञात कीजिए–

वर्ग	1-9	11-19	21-29	31-39	41-49	51-59
आवृत्ति	14	31	54	69	28	24

हल : उपरोक्त श्रेणी समावेशी श्रेणी है। सर्वप्रथम हमें इसे अपवर्जी श्रेणी में बदलना होगा। चूंकि क्रमागत वर्गो में ं का अंतर है अतः $(l_1 - 1)$तथा $(l_2 - 1)$ कर श्रेणी को समायोजित कर समूहन रीति द्वारा बहुलक ज्ञात करते हैं।

वर्ग	आवृत्ति f	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)	विश्लेषण सारणी
0-10	14	45					1 =1
10-20	31		85	99	(154)		111 = 3
20-30	54	(124)				(151)	1111 =6
30-40	(69)		(97)	(111)			111= 3
40-50	28	42					1 = 1
50-60	14						

विश्लेषण सारणी से स्पष्ट है कि अधिकतम आवृत्ति 6 है जो कि वर्ग (30 – 40) से सम्बन्धित है। अतः बहुलक वर्ग (30–40) होगा।

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

$l_1 = 30,\ i=10,\ f_1=69,\ f_0=54,\ f_2=28$

उपर्युक्त सूत्र में मान रखने पर –

$$30 + \frac{69-54}{139-54-28} \times 10$$

$$30 \quad + \quad \frac{150}{56}$$

$= 30 + 2.41 = 32.41$

$Z = 40.67$

अतःबहुलक का मूल्य 32.41 है।

उदाहरण 9: निम्न सारणी से बहुलक ज्ञात कीजिए–

केन्द्रीय आकार	आवृत्ति
15	5
25	9
35	13
45	21
55	20
65	15
75	8
85	3

हल : उपरोक्त प्रश्न में वर्गान्तरों की जगह केन्द्रीय आकार या माध्य–मूल्य दिए हुए हैं। सभी में 10–10 का अंतर है। अतः वर्गान्तरों की सीमाऐं $l_1 = (\text{मध्य बिन्दु} - \frac{i}{2})$ तथा $l_2 = (\text{मध्य बिन्दु} + \frac{i}{2})$ द्वारा निर्धारित कर सकते हैं। निरीक्षण करने पर पता चलता

है प्रश्न को समूहन विधि द्वारा हल करना अधिक श्रेष्ठकर होगा।

वर्गान्तर	आवृत्ति						विश्लेषण सारणी	
	(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)		
10–20	5	14						–
20–30	9		22	27			1	1
30–40	13	34			(43)	(54)	11	2
40–50	(21)		(41)				1111	5
50–60	20	(35)		(56)			1111	5
60–70	15		23		(43)	(26)	111	3
70–80	8	11					1	1
80–90	3							–

बहुलक का निर्धारण

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि वर्गान्तर (40–50) तथा (50–60) दोनों में अधिकतम आवृत्ति 5–5 बार आती है। अतः इन दोनों में से बहुलक वर्ग निर्धारित करने के लिए हमें घनत्व परीक्षण करना होगा–

वर्ग / आवृत्ति	40–50	50–60
f_0	13	21
f_1	21	20
f_2	20	15
योग Z=	54	56

इस प्रकार (50–60) बहुलक वर्ग है जिसकी आवृत्ति 20 है। चूंकि इससे पहले वाले वर्ग की आवृत्ति इससे अधिक है। अतः हमें वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग करना होगा–

$$Z = l_1 + \frac{f_2}{f_0 + f_2} \times i$$

$$Z = 50 + \frac{15}{21+15} \times 10$$

$$Z = 50 + \frac{150}{36}$$

$$Z = 50 + 4.17 = 54.17$$

अभ्यास के तौर पर मूल सूत्र का प्रयोग करने पर पता चलेगा कि बहुलक का मूल्य बहुलक–वर्ग की सीमाओं के बाहर आता है जो गलत है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- सामान्यतः बहुलक किसी समंक श्रेणी में अधिकतम आवृत्ति वाला पद होता है।
- बहुलक सर्वाधिक घनत्व की स्थिति या मूल्यों के संकेन्द्रण का बिन्दु कहलाता है। इसलिए बहुलक को स्थिति–सम्बन्धी माध्य कहा जाता है।
- बहुलक का निर्धारण व्यक्तिगत, खण्डित तथा सतत श्रेणी में किया जाता है।
- समान्तर माध्य तथा मध्यका की सहायता से असाधारण स्थिति में बहुलक का अनुमान निम्न सूत्र द्वारा लगाया जा सकता है –

$$Z = 3M - 2\bar{X}$$

- खण्डित श्रेणी तथा सतत श्रेणी में बहुलक निर्धारण की दो रीतियां हैं – निरीक्षण रीति तथा समूहन रीति
- जब समंको श्रेणी में आवृत्तियां अनियमित हों तो समूहन रीति का प्रयोग किया जाना उचित होगा।
- सतत श्रेणी में निरीक्षण या समूहन रीति से सर्वप्रथम बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है फिर निम्न सूत्र से बहुलक मूल्य ज्ञात किया जाता है–

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

- बहुलक समान–वर्गान्तर की मान्यता पर आधारित है। यदि श्रेणी में वर्ग–विस्तार असमान है तो प्रश्न हल करने से पूर्व उसे समान बना लेना चाहिए।
- व्यापारिक क्षेत्र, ऋतु विज्ञान, जीव शास्त्र, उपभोक्ताओं की पसंद आदि का अध्ययन करने के लिए बहुलक एक उपयोगी माध्य माना जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन सा सबसे अनिश्चित माध्य है –
   (अ) बहुलक
   (ब) समान्तर माध्य
   (स) मध्यका
   (द) हरात्मक माध्य
2. पद का वह मूल्य क्या है जिसकी आवृत्ति श्रेणी में अधिकतम हो–

(अ) समान्तर माध्य

(ब) मध्यका

(स) बहुलक

(द) उपर्युक्त सभी

3. तैयार कपड़े के औसत आकार के लिए उपयुक्त माध्य है –

(अ) मध्यका

(ब) बहुलक

(स) समान्तर माध्य

(द) उपरोक्त से कोई नहीं

4. यदि निम्न समंकमाला में बहुलक ज्ञात करना हो तो बहुलक वर्ग की निचली सीमा होगी –

x	f
0-9	2
10-19	5
20-29	16
30-39	12
40-49	4

(अ)19 (ब) 19.5

(स) 20 (द) 29.5

5. किस माध्य में चरम मूल्यों का न्यूनतम प्रभाव होता है–

(अ)समान्तर माध्य (ब) गुणोत्तर माध्य

(स) मध्यका (द) बहुलक

अतिलघूत्तरात्मक

1. 'राजस्थान का औसत आदमी 7 नम्बर का जूता पहनता है यह कथन किस सांख्यिकीय माध्य को इंगित करता है ?
2. सतत श्रेणी में बहुलक मूल्य ज्ञात करने का सामान्य सूत्र लिखिये।
3. बहुलक की परिभाषा दीजिए।
4. बहुलक ज्ञात करने की कौन सी विधियां है ?
5. बहुलक ज्ञात करने का वैकल्पिक सूत्र बताइयें

लघूत्तरात्मक

1. यदि मध्यका 21 है और समान्तर माध्य 20 है तो बहुलक ज्ञात किजिए।
2. बहुलक में 'घनत्व परीक्षण' का प्रयोग किन परिस्थितियों में किया जाता है ?
3. यदि बहुलक वर्ग (50–60) हो तथा $f_1=40$, $f_0=25$ तथा $f_2=20$ है तो बहुलक ज्ञात कीजिए।
4. समूहन विधि को समझाइये।
5. बहुलक के उपयोग बताइये।

निबन्धात्मक

1. निम्न सारणी से समूहन विधि द्वारा बहुलक ज्ञात कीजिए :

केन्द्रीय आकार	आवृत्ति
15	5
25	9
35	13
45	21
55	20
65	15
75	8
85	3

2. निम्न समंको से बहुलक ज्ञात कीजिए ?

आकार	आवृत्ति
8	3
10	7
12	12
14	28
16	10
18	9
26	6

3. निम्न सारणी से बहुलक तथा Q_1 व Q_3 की गणना कीजिए :

आय (रू.)	व्यक्तियों की संख्या
100-200	15
100-300	33
100-400	63
100-500	83
100-600	100

उत्तरमाला

(1) अ (2) स (3) ब (4) ब (5) द

सन्दर्भ ग्रंथ

1. S.C.Gupta & V.K. Kapoor: Fundamentals of Mathematical Statistics, Published by Sultan Chand and Sons
2. एस.पी.सिंहः सांख्यिकीः सिद्धान्त एवं व्यवहार, एस. चन्द
3. कैलाशनाथ नागरः सांख्यिकी के मूल तत्व, मीनाक्षी प्रकाशन

अध्याय 4.1

प्राचीन भारतीय आर्थिक अवधारणाएं
(Ancient Indian Economic Concepts)

पश्चिमी विद्वानों का सामान्य मत यह रहा है कि भारत में कोई व्यवस्थित अर्थशास्त्रीय चिंतन परंपरा नहीं रही है तथा भारतीय चिंतन मूल रूप से आध्यात्मिक, सामाजिक तथा कुछ सीमा तक राजनैतिक रहा है, उसमें आर्थिक पक्षों को कोई स्थान नहीं मिला है। वे कौटिल्य के अर्थशास्त्र को अर्थचिंतन की एक मात्र पुस्तक मानते रहे हैं। जबकि कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारतीय अर्थ चिंतन की अंतिम पुस्तक है। आर्थिक विचारों को वस्तुतः सभी प्राचीन ग्रंथों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रमुख रूप से चारों वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद सामवेद) ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ (मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति) पुराण (विष्णु पुराण, भागवत पुराण, अग्नि पुराण), महाकाव्य (रामायण व महाभारत), नीतियाँ (चाणक्य नीति, बृहस्पति नीति, विदुर नीति, शुक्र नीति), बौद्ध व जैन दर्शन आदि में आर्थिक विचार मिलते हैं। वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ है अतः विश्व में अर्थशास्त्रीय चिंतन परंपरा भारत में सबसे अधिक प्राचीन रही है। इस अध्याय में प्राचीन साहित्य में वर्णित आवश्यकता उपभोग, पर्यावरण का वैदिक स्वरूप एवं धनार्जन से संबंधित अवधारणाओं का वर्णन किया गया है।

आवश्यकता की अवधारणा
(Concept of Wants)

मनुष्य अपने जीवन में प्रत्येक क्षण किसी न किसी आवश्यकता की अनुभूति करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी प्रकार की आवश्यकता मनुष्य के जीवन में उपस्थित रहती है। मानव अपनी इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रयास करता है अर्थात आवश्यकताएं ही आर्थिक क्रियाओं को जन्म देती हैं।

आवश्यकताओं का अभिप्राय (Meaning of Wants)– आधुनिक अर्थशास्त्र में ''प्रभावपूर्ण इच्छा'' (Effective Desire) को ही आवश्यकता कहा जाता है। प्रभावपूर्ण इच्छा के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है–(1)किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा (2)इच्छा को संतुष्ट करने हेतु पर्याप्त साधनों का होना तथा (3)साधनों को खर्च करने की तत्परता का होना। आवश्यकता की इस धारणा के आधार पर एक व्यक्ति की खाने की आवश्यकता तब तक आवश्यकता नहीं बन पाती है जब तक भोजन प्राप्त करने के लिए उसके पास साधन (धन) नहीं है। एक भूखे व्यक्ति की रोटी, कपड़ा व मकान की आवश्यकता वास्तविक है पर आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार किसी साधनहीन व्यक्ति की आवश्यकता को आवश्यकता नहीं कह सकते पर भारतीय विद्वानों के अनुसार साधनहीन व्यक्ति की भी आवश्यकता होती है।

प्राचीन भारतीय चिंतन में ''समग्र सुख'' की आशा की गई है। शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का संपूर्ण सुख ही 'समग्र सुख' कहलाता है जिसे पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने 'चतुर्विध सुख' की संज्ञा दी है। इस सुख इच्छा से ही व्यक्ति प्रयत्न, कार्य, (कर्म या पुरुषार्थ) करता है, तब सुःख की इच्छा ही आवश्यकता का रूप धारण कर लेती है। काम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए ही मनुष्य निरंतर आर्थिक क्रियाओं में सलग्न रहता है। यजुर्वेद में कहा गया है कि सुख से बढ़कर और कुछ भी शेष नहीं है। सुख के लिए ही धर्म व अर्थ में प्रवृति होती है। सब काम ही सुख के लिए किए जाते हैं। सुख ही सबसे परम श्रेष्ठ पदार्थ है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मनुष्य की चार तरह आवश्यकताएं होती है।

इच्छा एवं आवश्यकता – भगवान महावीर के अनुसार इच्छा आकाश के समान अनंत होती है। यह धार्मिक व अर्थशास्त्रीय दृष्टि से सत्य है। मांग से आवश्यकता का क्षेत्र अधिक होता है तथा इच्छा का क्षेत्र आवश्यकता के क्षेत्र से बड़ा होता है। सभी इच्छाएं आवश्यकताएं नहीं हो सकती परंतु सभी आवश्यकताएं इच्छाएं होती हैं। इच्छाएं नैसर्गिक होती है जबकि आवश्यकताएं भौगोलिक परिस्थिति, सामाजिक रीति रिवाज, शारीरिक अपेक्षा, धार्मिक भावना, आर्थिक साधन आदि द्वारा निर्धारित होती है। इच्छा आवश्यकता तथा मांग का क्षेत्र निम्न चित्र–1 से स्पष्ट

है।

चित्र–1

आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाले तत्व (Fectors affecting wants)

1. **व्यक्ति की आर्थिक स्थिति –** आवश्यकता सर्वप्रथम आर्थिक स्थिति द्वारा निर्धारित होती है। गरीब की आवश्यकता धनी व्यक्ति की तुलना में कम होती है। गरीब मात्र प्राथमिक आवश्यकताओं को ही पूरा कर पाता है जबकि धनी प्राथमिक आवश्यकताओं के साथ विलासी आवश्यकताओं को भी पूरा करता है।

2.. **धार्मिक कारण –** धार्मिक भावनाओं से भी आवश्यकताएं प्रभावित होती है, व्यक्ति जिन नैतिक आदर्शों को मानता है उन्ही के आधार पर वह अपनी आवश्यकताओं का निर्माण करता है। धार्मिक व्यक्ति की आवश्यकताएं संतुलित एवं भौतिक मनोवृति वाले व्यक्ति की आवश्यकताएं बहुत अधिक होती है।

3. **लोभ भावना** – आवश्यकता का निर्धारण लोभ की भावना से भी तय होता है। महावीर स्वामी कहते हैं कि लाभ से लोभ बढ़ता है जैसे–जैसे लाभ बढ़ता जाता है वैसे–वैसे लोभ भी बढ़ता जाता है।

4. **आर्थिक विकास का स्तर** – मनुष्य धनवान होकर फिर राज्य की इच्छा करते हैं और राज्य प्राप्त होने पर देवत्व की इच्छा करते हैं और देवत्व प्राप्त होने पर फिर इन्द्रत्व लाभ की आशा करते हैं अर्थात विकास के साथ–साथ आवश्यकता बढ़ती जाती है।

प्राथमिक आवश्यकताएं – सभी प्राचीन ग्रंथों में मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं – अन्न, वस्त्र, मकान, चिकित्सा तथा शिक्षा का विस्तार से वर्णन मिलता है। शरीर पोषणार्थ अर्थ की आवश्यकता प्रत्यक्ष है। सभ्यता की समस्त रचना अर्थाधीन है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से प्रथम स्थान भोजन की आवश्यकता को माना गया है। मनुस्मृति तथा शुक्रनीति में अन्न, वस्त्र, कपड़ा, मकान, शिक्षा आदि के उपभोग के साथ अति उपभोग को अस्वास्थ्यकार आयुनाशक तथा लोक निन्दित माना है। उपभोग धन होने पर फटे हुए मैले कपड़े नहीं पहनना चाहिए तथा आवास ऐसी जगह पर होना चाहिए जहां धान्य, फल–फूल, वृक्षों आदि उपभोग्य वस्तु की कमी न हो तथा आजीविका के साधन (खेती, व्यापार आदि) सुलभ हो। महाभारत व रामायण में प्रजा की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं व्यवस्था का दायित्व राजा का माना हैं।

आवश्यकताओं के सामान्य लक्षण/विशेषताएं (General Characteristics of wants)

आधुनिक अर्थशास्त्र में यह वर्णित है कि मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित होती है तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन सीमित है। आवश्यकताओं की तुलना में साधनों की सीमितता तथा कुछ आवश्यकताएं अतृप्त होने से मनुष्य दुःखी होता है। आवश्यकताओं के संदर्भ में यही अवधारणा हजारों वर्ष पूर्व भारतीय ग्रंथों में कही गई है। ईशोपनिषद में कहा गया है कि स्वाधीनता का होना या आवश्यकता का होना और उससे संतुष्ट करने की सामग्री का न होना ही दुःख है। यदि उन्हें संतुष्ट करने के साधन उपलब्ध होंगे तो सुख (संतुष्टि) होगा और यदि संतुष्टि की सामग्री नहीं होगी तो भारी दुख होगा। कठोपनिषद में कहा गया है मनुष्य कितना ही धन प्राप्त कर ले कभी उस धन से इच्छाएं तृप्त नहीं होती है जितना धन मिलता जाता है उतनी ही इच्छा बढ़ती जाती है। सौ वाला सहस्त्र में सुख समझकर सहस्त्र की इच्छा करता है तो सहस्त्राधीश लक्ष्य की इच्छा करता है और लक्ष पति करोड़पति होने की इच्छा करता है। धन मनुष्य की आवश्यकता न होकर इच्छा है जो कि कभी भी पूर्ण नहीं होती। उपभोग की इच्छा कभी भी उपभोग से संतुष्ट नहीं होती। जिस प्रकार घी डालने से अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती है वैसे ही उपभोग करने से इच्छा और भी अधिक बढ़ती जाती है। हितोपदेश में कहा गया है कि जिस वस्तु की इच्छा की जाती है, उसी से और इच्छा बढ़ती हैं। इच्छाएँ चक्र की पंक्ति की भांति बढ़ती चली जाती है, उनकी कभी तृप्ति नहीं हो पाती है। मनुष्य की आशा समुद्र के समान है जो कभी भरता नहीं है। संसार में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो मनुष्य की आवश्यकताओं का पेट भर सके। आवश्यकताएं असीमित ही नहीं होती वरन एक आवश्यकता पूर्ण होती है तब दूसरी नई आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। विश्वामित्र के अनुसार मनुष्य की कामनाएं कभी भी पूर्ण नहीं होती। मनुष्य की एक कामना पूर्ण होती है तो नई कामना उत्पन्न होकर पुनः उसे

बाण के समान बीधने लगती है। उपर्युक्त वर्णन से प्राचीन भारतीय चिंतन में आवश्यकताओं के निम्न लक्षण प्राप्त होते हैं–

1. आवश्यकताएं असीमित होती हैं।
2. आवश्यकताओं की तुलना में उनकी संतुष्टि के साधन सीमित होते हैं।
3. आवश्यकताओं को उपलब्ध संसाधनों से संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। इसलिए मनुष्य दुःखी रहता है।
4. कुछ आवश्यकताएं आवर्ती होती है अर्थात कुछ आवश्यकताएं ऐसी होती है जिनकी पूर्ति करने के कुछ समय बाद पुनः उत्पन्न हो जाती है।
5. आवश्यकताएँ सामाजिक, आर्थिक स्थिति, धार्मिक भावना आदि से प्रभावित होती हैं। एक भौतिक मनोवृति वाले व्यक्ति की अपेक्षा धार्मिक व्यक्ति तथा अमीर की अपेक्षा गरीब की आवश्यकताएँ कम होती है।
6. आवश्यकताएं विकास के साथ–साथ बढ़ती जाती है।

आवश्यकताओं की पूर्ति एवं अधिकतम संतुष्टि

आवश्यकता की पूर्ति होने पर ही मनुष्य को अधिकतम संतुष्टि या सुख की प्राप्ति होती है। वैदिक साहित्य में उत्तम, न्यायोचित एवं स्वयं द्वारा अर्जित धन से ही आवश्यकताओं को पूर्ण कर सुख की कामना की गई है। वेदों में विविध प्रकार के धन से आवश्यकताओं को संतुष्ट कर सुखी होने की कामना की गई है ताकि दरिद्रता हमसे दूर भागे तथा अन्न, वस्त्र, घोड़े, रथ, स्वर्ण आदि प्राप्त कर हम जीवन भर सुख भोगते रहे। आवश्यक धन की कभी कमी नहीं रहे। सभी सुखों की पूर्ति के लिए पर्याप्त धन हो क्योंकि दरिद्रता से आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं हो सकती। मनुष्य की भौतिक सुख की आपूर्ति पूर्णतः अर्थ से ही संभव है। यजुर्वेद में आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न वस्तुओं पर धन व्यय करने के बाद पुनः धन प्राप्त करने तथा पूर्व प्राप्त धन को पुनः धनोत्पत्ति में लगाने की कामना की गई है। संतोष ही परम सुख है। जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम भोजन, वस्त्र, मकान आदि सभी मनुष्यों को प्राप्त होने चाहिए।

(B) उपभोग की अवधारणाएँ (Concepts of Consumption)

उपभोग का अर्थ – अर्थशास्त्र में उपभोग का अर्थ उस क्रिया से लिया जाता है जिससे उपभोक्ता की किसी आवश्यकता विशेष की संतुष्टि होती है। व्यक्ति की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रत्यक्ष एवं अंतिम प्रयोग ही उपभोग कहलाता है। वास्तव में उपभोग ही अर्थव्यवस्था का आधार है। उपभोग की इच्छा या आवश्यकता के कारण ही वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग उत्पन्न होती है। इसी मांग के कारण ही उत्पादन के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। मांग की पूर्ति के लिए ही उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय तथा वितरण किया जाता है। प्राचीन साहित्य में उपभोग का सीधा सम्बंध समाज में उत्पादित वस्तुओं की खपत (मांग) से रहा है। वस्तु का उपभोग उसकी मांग पर निर्भर माना गया है। शुक्र उपभोग का अर्थ बताते हुए लिखते हैं कि धान्य, वस्त्र, गृह, बगीचा, गाय, विद्या तथा राज्य आदि के उपार्जन के लिए और धन आदि की प्राप्ति के लिए तथा इन सभी की रक्षा के लिए जो व्यय किया जाता है उसे 'उपभोग' कहा जाता है। शुक्र ने सोना, रत्न, चांदी, सिक्के रखने के स्थान, रथ, घोड़े, गाय, हाथी, ऊंट तथा इन्हें रखने वाले लोगों के स्थान, अनाज, अस्त्र, शास्त्र, शास्त्र आदि के रखने के स्थान तथा मंत्री, वैद्य, रसोईया, शिल्पी आदि के जो स्थान हैं उन सभी की गणना उपभोग के अंदर की है। इन सभी पर होने वाले व्यय को उपभोग व्यय कहाँ है।

उपभोग की विभिन्न अवधारणाएं –प्राचीन भारतीय साहित्य में उपभोग संबंधित विभिन्न अवधारणाओं को हम संयमित उपभोग, सह उपभोग एवं समान उपभोग आदि में बांटकर अध्ययन कर सकते हैं।

1. संयमित उपभोग की अवधारणा (Concept of Balanced Consumption)– प्राचीन साहित्य में स्वंय द्वारा अर्जित अर्थ का इच्छा पूर्ति के लिए न्यून तथा संयमित उपभोग का संदेश मिलता है। जीवन रक्षा के लिए जितने आहार की आवश्यकता हो उतना ही अन्न ग्रहण करना चाहिए। संयमित उपभोग पर भारतीय वांड्मय में इसलिए जोर दिया गया है कि मनुष्य की संपूर्ण आवश्यकताओ की संतुष्टि असंभव है। अतः कामनाओं की तृप्ति को असंभव मानकर एवं संपत्ति द्वारा अमृत्व की प्राप्ति को व्यर्थ जानकार व्यक्ति को उपभोग में संयम रखना चाहिए। इशोपनिषद् में कहा गया है कि ''हे मनुष्य तू किसी के धन की इच्छा मत कर क्योंकि धन तो किसी का नहीं है जो उसकी इच्छा की जाए।'' जीवन निर्वाह हेतु विषय सामग्री का एकत्रण व उपभोग इच्छानुसार न होकर आवश्यकतानुसार अर्थात न्यूनतम करना ही न्यायोचित है। महाभारत में लिखा है

कि पुरुषार्थ चतुष्ट्य के संपादन के लिए ग्रहस्थ अर्थ संचय करें, परंतु मनुष्य का अधिकार केवल उतने ही धन पर हैं, जितने से उसका पेट भर जाए, इससे अधिक संपत्ति को जो ग्रहण करता है वह चोर है एवं दंड का पात्र हैं। मुद्रा अर्जन तथा धन संग्रह कभी भी दंडनीय नहीं है परंतु गलत तरीके से कमाया गया ध न और आवश्यकताओं से अधिक धन संग्रह दंडनीय है। खाद्यान्नों का संग्रह अनैतिक एवं अधार्मिक कार्यों से नहीं करना चाहिए। स्कंदपुराण के अनुसार मुद्रा अर्जन तथा धन संग्रह कभी भी दंडनीय नहीं है परंतु गलत तरीके से कमाया धन तथा आवश्यकताओं से अधिक धन संग्रह दंडनीय है। आचार्य शुक्र अधिक धन व्यय करने वाले व्यक्ति को राज्य से निकालने का निर्देश देते हैं। कौटिल्य ने तो ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले तथा धन का अनुचित व्यय करने वाले व्यक्ति को रोकने का दायित्व राजा का माना है। इस प्रकार संयमित उपभोग के संबंध में निम्न बातें उल्लेखनीय है –

1. मनुष्य की सभी आवश्यकताओं की संतुष्टि असंभव है।
2. उपभोग इच्छानुसार नहीं होकर आवश्यकतानुसार अर्थात न्यूनतम होना चाहिए।
3. स्वयं द्वारा अर्जित धन से ही उपभोग करना चाहिए, दूसरे से उधार ले कर उपभोग करना अनुचित है।
4. वस्तुओं पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं मानकर समाज का अधिकार मानना चाहिए और त्याग का दृष्टिकोण रखते हुए समाज कार्य के लिए अपने जीवन को चलाए रखने की दृष्टि से ही वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए।

2. सह उपभोग की अवधारणा (Concept of Co-Consumption)– प्राचीन साहित्य में व्यक्तियों को परस्पर वस्तुओं को बांटकर उपभोग करने का निर्देश दिया गया है। ऐश्वर्य, वैभव या संपत्ति परमात्मा की देन है। अतः इसे बांट कर उपभोग करें। जो अकेला उपभोग करता है वह पापी है। महाभारत में कहा गया है कि ''पृथ्वी पर जो कुछ वस्तु है उसमें मेरा कुछ भी नहीं है अर्थात इसमें जैसा मुझे अधिकार है वैसा ही दूसरों का भी है।'' उपार्जित धन का स्वजनों, पूंजी निर्माण, धार्मिक तथा अन्य कल्याणकारी कार्यों पर व्यय कर शेष धनधान्य का ही उपभोग करना चाहिए। अथर्ववेद में लिखा है–

षतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर।
कर्तस्य कार्यऽस्य चेह स्फार्ति समावह। अथर्ववेद 3/45/5

अर्थात हे मनुष्य तू सौ हाथों से धन प्राप्ति कर और हजारों हाथ वाला बन कर उस धन को व्यय कर। इस भावना से ही मनुष्य को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो सकती है और संपूर्ण राष्ट्र का भी सुख बढ़ सकता है। मनु, शुक्र, विष्णु, याज्ञवल्क्य के धर्मसूत्रों के अनुसार मनुष्य को अतिथियों, नौकरों, असहाय व्यक्तियों, पशु पक्षियों को खिलाकर उपभोग करना चाहिए। कौटिल्य तो एक कदम और भी आगे बढ़ जाते हैं, उन्होंने उन लोगों को दंडित करने का प्रावधान किया है जो बच्चों, माता पिता, विधवाओं, पुत्रियों का भरण पोषण नहीं करते। व्यक्तिगत उन्नति के स्थान पर सामुदायिक उन्नति के उद्देश्य की प्राप्ति में सलग्न व्यक्ति की उन्नति होती है। अथर्ववेद में समान उपभोग का निर्देश दिया गया है। सभी लोगों का खान–पान समान हो, सभी को अन्न, धन तथा उन्नत संरक्षण मिले जिससे सबकी उन्नति हो।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।।

अर्थात यह मेरा है, यह पराया है, ऐसे विचार निम्न कोटि के व्यक्ति करते हैं। उच्च चरित्र वाले व्यक्ति संपूर्ण संसार को ही अपना परिवार मानते हैं। 'वसुधैव कुटुंबकम' का मंत्र विश्व बंधुत्व की शिक्षा देता है। संयमित, मर्यादित, आवश्यकतानुसार तथा सहउपभोग के उपकरण 'दान' तथा 'यज्ञ' की अवधारणा है। वर्णाश्रम व्यवस्था में ग्रहस्थ आश्रम ही सभी लोगों का जीविकोपार्जन करता है। जैसे मां का आश्रय लेकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेकर अन्य आश्रमवासी जीवित रहते हैं। जो व्यक्ति सत्पात्रों को दान देता है, उसी व्यक्ति को संपत्ति का वास्तविक स्वामी माना गया है। धन दान से जितना सुरक्षित रहता है, उतना संग्रह से नहीं परंतु अतिदान का निषेध किया गया है क्योंकि स्वयं या उसके आश्रित भूखे मरे और अन्य लोगों को संपूर्ण सामग्री दान करें यह अनुचित है, दान में मनुष्य की आवश्यकता देखनी चाहिए तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही दान देना चाहिए।

उपभोग संबंधी प्रमुख बातें – व्यक्ति का उपभोग संयमित, न्यायोचित तथा मर्यादित हो इसके लिए प्राचीन अर्थचिंतको द्वारा उपभोग की आचार संहिता का निर्माण किया गया था, जिसके प्रमुख बिंदु निम्नांकित है –

1. न्यायोचित साधनों से प्राप्त धन का ही उपभोग–

व्यक्ति को उचित तरीके से कमाए हुए धन से ही नीतिपूर्वक उपभोग करना चाहिए। कृषि, व्यापार, वाणिज्य आदि क्रियाओं का मूल उद्देश्य मानव के अभावों को दूर करके उन्हें सुखी बनाने में दिखाई देता है पर अन्याय से उपार्जित धन द्वारा उपभोग व्यर्थ है।

2. **अकेले सुख उपभोग का निषेध –** व्यक्ति को अकेले उपभोग नहीं करना चाहिए। जीविका रहित गरीब लोगों को बिना खिलाए उपभोग नहीं करना चाहिए।

3. **संयमित उपभोग स्वास्थ्य वर्धक** – चाणक्य तथा मनु कहते हैं कि संयमित उपभोग स्वास्थ्य, आयु के लिए लाभदायक है। मनुष्य का अधिकार उतने पर है जिससे उसकी भूख मिट जाए।

4. **उपभोग में नैतिकता** – मनु वस्तुओं के उपभोग में नैतिकता को प्रमुख स्थान देते हैं। वस्तुओं को चुराकर उपभोग करने वाले पर दंड का प्रावधान किया गया है। शुक्र जुआ, शराब, आदि व्यसनों के उपभोग को अनुचित मानते है।

5. **अतिउपभोग का निषेध –** शुक्राचार्य लिखते हैं कि जो मनुष्य उपभोग के संबंध में ज्यादा आशा लगाए रहते हैं, उनके लिए ब्रह्माण्ड के अंदर उपलब्ध वस्तुए भी उनकी इच्छा पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होती। अतः संयमित उपभोग ही सर्वोपरि है परंतु भिक्षावृत्ति तथा दरिद्रता को जीवित अवस्था में ही मृत्यु के समान माना गया है।

6. **कर्जा आधारित उपभोग का निषेध** – प्राचीन अर्थचिंतन में स्व–उपार्जित तथा स्व–स्वामित्व धन से ही विधिपूर्वक औषधिवत् व्यय करने का निर्देश दिया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि मुझे किसी धनवान के समक्ष अपनी दरिद्रगाथा न कहनी पड़े। मुझे आवश्यक धन की कभी कमी नहीं खटके। दरिद्रता हमसे दूर भागे। हम ऋणरहित उषाओं में जीवित रहे और अन्न प्राप्ति कर सुख पावे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ऋण नहीं लिया जाता था। विपत्ति पड़ने पर उपभोग हेतु ऋण लिया जाता था पर उसे जल्दी ही चुकाने का निर्देश दिया गया है।

7. **कृपणता का निषेध** – प्राचीन भारतीय चिंतन में संयमित उपभोग पर बल दिया गया है तथा कृपणता (कंजूसी) का विरोध किया गया है। कृपणता मनुष्य को नंगा कर देती है। कंजूस के हाथों में पहुंचे धन का मनुष्य को कोई लाभ नहीं होता। कृपण का धन चूहों द्वारा एकत्रित किए गए धान्य के तुल्य होता है। इससे उपार्जनकर्त्ता को कोई सुख प्राप्त नहीं होता है। अतः कंजूस प्रवृत्ति को त्याग कर ही उपभोग करना चाहिए। कृपणता तथा अदानशीलता का अनवरत पुरजोर शब्दों में विरोध भारतीय दर्शन में इसलिए किया गया है कि कृपणता समाज में प्रभावी मांग को कम करती है, बेरोजगारी को बढ़ावा देती है तथा समाज में न्यायपूर्ण वितरण के उद्देश्यों को नष्ट करती है।

8. **खाद्यान्नों का संग्रहण बनाम उपभोग** – खाद्यानों का संग्रहण अपनी आवश्यकताओं से अधिक नहीं होना चाहिए तथा संग्रहण एक न्यूनतम अवधि के लिए ही उचित है, यदि अपनी आवश्यकताओं से अधिक संग्रह हो जाए तो अतिरिक्त खाद्यान्नों को जरुरतमंद लोगों में वितरित कर देना चाहिए। समुंद्र में संग्रहित पानी पीने योग्य नहीं होता जबकि समुंद्र में बादलों से स्वच्छ पानी बरसता है। संग्रह अनेक समस्याओं को जन्म देता है क्योंकि संग्रह पर राजा, संबंधियों व चोरों की निगाह रहती है परंतु राजा द्वारा संग्रहण आवश्यक हैं क्योंकि सेवकों का भरण पोषण करने, अकाल, सूखा, बाढ़ आदि से उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिए खाद्यान्नों का संग्रह आवश्यक है।

(C) धनार्जन एवं धनार्जन की आचार सहिंता (Code of Conduct of Earning money)

सुख की प्राप्ति की दिशा में मानवीय प्रयत्नों को ध्यान में रखते हुए भारतीय अर्थचिंतकों ने मनुष्य के पुरुषार्थ को चार श्रेणियों में रखकर मानव जीवन को अनुशासित करने का प्रयत्न किया है। भारतीय परंपरानुसार चार पुरुषार्थ माने गए हैं–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। धर्म, अर्थ और काम का ही व्यक्ति के सामाजिक जीवन से संबंध है क्योंकि मोक्ष तो अंतिम लक्ष्य तथा सभी बंधनों से मुक्त हैं। अर्थपुरुषार्थ का प्रयोग धन के रूप में

ही किया गया है। अर्थ के बिना धर्म तथा काम सिद्ध नहीं होते हैं इस जगत की गति और स्थिति का सूत्रधार अर्थ ही हैं। अर्थ के बिना लोकयात्रा का रथ चल नहीं सकता।

अर्थो ही मूल सर्वस्य (चाणक्य) मनुष्य की सुख सुविधाओं का मूल धर्म को माना है और धर्म का मूल है 'अर्थ'। सुखस्य मूल धर्मः। धर्मस्य मूलमः अर्थः। चाणक्य सूत्र

धन से आशय (Meaning of wealth) – 'अर्थ' शब्द ऋग् धातु से निष्पन्न है जिसका अभिप्राय है – गति अर्थात जिससे जीवन गतिमान होता है, वही अर्थ है। धन शब्द भी अर्थ का पर्याय माना गया है। वेदों के महान भाष्यकार यास्काचार्य कहते हैं कि ''धन वह है जो सबको संतुष्ट और प्रसन्न करता है। यह समस्त पदार्थों के विनिमय का साधन है, इसलिए अर्थ को 'वित्त' भी कहा गया है। रघुवंश के अनुसारः 'जो दुख में मनुष्य को सांत्वना देता है, कार्यों में प्रेरणा एवं स्वावलंबन प्रदान करता है वह धन है।'' वेदों में धन (अर्थ) का अभिप्राय संपत्ति, वैभव (Prosperty, wealth) तथा मुद्रा से लगाया गया है। शुक्र के अनुसार कौड़ी से लेकर रत्न आदि द्रव्य है। पशु, धन्य, वस्त्र से लेकर तृण पर्यन्त की संज्ञा धन है। इस प्रकार प्राचीन समय में धन की परिसीमा में सभी धातुओं के सिक्के, रत्न, पशुधन, अन्न, आदि शामिल है।

धन के स्रोत – भारतीय वांग्मय में भूमि, कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय तथा उद्योग को अर्थ के मुख्य स्त्रोत माने गए हैं। विश्वधरा कर्म भूमि है यहां सभी कार्य अर्थमूलक माने गए हैं। अर्जुन महाभारत में कहते हैं कि कृषि, वाणिज्य, पशुपालन तथा भांति भांति के शिल्पादि – ये सब अर्थधारा के स्त्रोत है। शुक्राचार्य ने किसी भी कार्य का सहारा लेकर धनार्जन करने की सलाह दी है। विद्या उपार्जन, शूरता, कृषि करके ब्याज पर ऋण देकर, दुकानदारी या संगीत कला के द्वारा या किसी भी वृति का सहारा लेकर मनुष्य को धन कमाना चाहिए। धनार्जन करते समय निम्न पांच बातों का ध्यान अनिवार्य माना गया हैं – (1) जिससे अन्य प्राणियों को पीड़ा नहीं पहुंचे। (2) अपने शरीर को अनुचित कष्ट नहीं पहुंचे। (3) गलत साधनों से अर्जित न हो। (4) सदा स्वअर्जित साधनों से प्राप्त किया जाए। (5) उसके उपार्जन से स्वाध्याय में बाधा नहीं पहुंचे।

धनार्जन के उद्देश्य एवं महत्ता (Objectives & Importance of Earning) अर्थ मानव जीवन की मूल आवश्यकता है। इसके बिना मानव शरीर ही जीवित नहीं रह सकता। मनुष्य के समस्त सामाजिक कर्तव्य और उसके दायित्वों का संपादन अर्थ से संभव होता है। अर्थ में सभी गुण समाहित है। धनवान व्यक्ति के अवगुण भी गुण माने जाते हैं जिसके पास धन है, उसके कई मित्र है। धनहीन मनुष्य को उसके बंधु भी छोड़ देते हैं। महाभारत में धन की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि 'अर्थ' उच्चतम धर्म है, प्रत्येक वस्तु अर्थ पर निर्भर है, अर्थ संपन्न लोग सुखी रह सकते हैं, निर्धन व्यक्ति मृत समान है।'' प्राचीन भारतीय चिंतन में अर्थ की महत्ता को निम्न बिंदुओं में रखा जा सकता है –

1. **अर्थ का जीवन में स्थान** – अर्थ किसी भी कार्य की पूर्णता का साधन है। अर्थ के बिना किसी भी कार्य का उद्योग बालू (मिट्टी) से तेल निकालने के समान है। भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि 'व्यक्ति अर्थ का दास हैं, अर्थ किसी का दास नहीं है, यह सही बात है कि मैं भी कौरवों के अर्थ से बंधा हुआ हूं।' अर्थ परिश्रम का फल है। रामायण में धन का महत्व बताते हुए कहा गया है कि केवल धनवान व्यक्ति ही बहादुर,ज्ञानी और सब गुणों से सम्पन्न माना जाता है। धनवान व्यक्ति ही अच्छे परिवार से विद्वान, अच्छा वक्ता तथा सुंदर माना जाता है। सभी गुण मुद्रा पर ही निर्भर होते हैं। मनुष्य की परेशानियां मुद्रा द्वारा ही दूर होती है। अर्थ के बिना जीवनयापन असंभव है।
2. **अर्थ जीवन दृष्टि** – जीवन में अर्थ पहले आया, फिर अर्थ को नियंत्रित करने हेतु धर्म की उत्पत्ति हुई। धर्म को अर्थ का नियंत्रक माना जाता है। अतः भारतीय धर्मशास्त्रों में सदा शुद्ध, न्यायोचित धनोपार्जन को ही अनुमोदन किया गया है। धर्म और काम अर्थ के ही दो अवयव है तथा अर्थ द्वारा ही धर्म और काम की सिद्धि होती है।
3. **अर्थ परमार्थ** – मनुष्य के सभी कार्य अर्थमूलक है और स्वंय अर्थ का मूल साधन है – श्रम। कृषि, वाणिज्य, शिल्पादि अर्थ प्राप्ति के साधन है जो सभी श्रम साध्य है। अर्थ के बिना इस पृथ्वी पर मनुष्यों के धर्म, काम, स्वर्गगमन और प्राणयात्रा का निर्वाह नहीं हो सकता। धन से ही धर्म, कामसिद्धि, स्वर्ग, विद्याध्ययन आदि सिद्ध होते हैं।
4. **भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख के लिए** – भौतिक

अर्थ से ही आध्यात्मिक अर्थ अर्थात मोक्ष सहित सभी पुरुषार्थ पूर्ण होते हैं। धन से ही धर्म की वृद्धि होती है। धन से ही धर्म का स्त्रोत उत्पन्न होता है क्योंकि सभी धार्मिक कार्यो में धन की आवश्यकता होती है।

5. **देश की सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए –** देश की सुरक्षा एवं समृद्धि भी अर्थ पर ही आश्रित है। महाभारत में कहा गया है कि 'राजा का मूल कोष ही है' क्योंकि कोष के द्वारा राजा कर्मचारियों का भरण–पोषण, दान–दक्षिणा, हाथी, घोड़े का क्रय, दुर्ग की मरम्मत, वाणिज्य, धर्म, अर्थ, और काम की सिद्धि करता है। खजाना सेना का मूल है और सेना ही सब धर्मों की रक्षा का मूल है। अग्निपुराण में भी अर्थ को राज्य की समृद्धि व सुरक्षा का साधन माना गया है।

धन के भेद
(Types of Wealth)

बृहस्पति, नारद, विष्णु आदि ने धन (मुद्रा) को तीन भागों में विभाजित किया है–

1. **शुक्ल धन (White Money) –** विद्या, वीरता, पौरोहित्य आदि उचित वृत्ति से कमाया तथा उसकी वृद्धि शुक्ल धन के अंतर्गत शामिल है।
2. **सबल धन (Brinded Money) –** कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा द्वारा प्राप्त धन सबल या राजस धन कहलाता है।
3. **कृष्ण धन (Black Money) –** धूर्तता, मिलावट, चौरी, जुआ, छलकपट, डकैती, ब्याज आदि से प्राप्त धन को कालाधन कहा गया है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के धनों में से जिस धन को लेकर मनुष्य कर्म करता है उसे उसी प्रकार का फल मिलता है काली मुद्रा को दंडनीय माना गया है।

रिश्वतखोरी या भ्रष्टाचार – भारतीय अर्थचिंतन में रिश्वतखोरी को विनिमय का एक विलक्षण रास्ता माना गया है जिसमें काली मुद्रा लगी रहती है। समस्त लेन–देन गुप्त तथा भययुक्त होते हैं। लेन–देन में कोई उचित मापदंड नहीं होता। जैन लेखक सोमदेव ने लिखा है कि ''रिश्वत सब पापों का द्वार है जो रिश्वतखोरी मे संलग्न है वे संपन्न व्यक्तियों द्वारा खरीदे जा सकते हैं। जिस राज्य में ऐसे लोगों को प्रश्रय मिलता है तो उस राज्य के नागरिक खुशहाल व समृद्ध नहीं हो सकते।

धन के उपयोग (Utilization of Wealth) अर्थप्राप्ति के साथ–साथ उसका उचित उपयोग भी अनिवार्य है, अन्यथा वह अर्थ से अनर्थ बन जाएगा जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए घातक है। भृर्तहरि के अनुसार धन का दान, उपभोग एवं नाश के लिए होता है, जो व्यक्ति न तो स्वयं उपभोग करता है, न ही दूसरों को दान देता है, तो उसके धन की तीसरी गति अर्थात 'नाश' होती है।

महाभारत में धन के पांच उपयोग बतलाएं है –

1. धार्मिक कार्यों के लिए – मनुष्य का वास्तविक धन वही है जिसका समाज लाभ उठा सके अन्यथा वह वैभव किस काम का है जिसे रोग के समान व्यक्ति स्वंय अकेला ही भोगे। इसलिए कहा गया है कि सौ में एक शूर, सहस्त्रों में एक विद्वान तथा शत सहस्त्रों में एक वक्ता मिलता है, पर दाता तो शायद ही मिलता है।
2. आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए – मनुष्य को मर्यादित उपभोग करना चाहिए। धन का त्यागपूर्वक उपभोग ही श्रेष्ठ धन माना गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि 'ऐश्वर्य, संपत्ति परमात्मा की देन है अतः इसे बांटकर ही उपभोग करना चाहिए, जो संपत्ति का अकेला उपभोग करता है विपत्ति में उसकी कोई साथ नहीं होता।
3. पूंजी निर्माण या विनियोग के लिए,
4. यश प्राप्ति एवं कल्याणकारी कार्यों के लिए, तथा
5. स्वजनों के लिए।

धनार्जन की आचार सहिंता (Code of Conduct of Earning Wealth)– धनार्जन की आचार संहिता से तात्पर्य उन नियमो से है जिनकी पालना प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाते समय करनी चाहिए। अतः जीविकोपार्जन के लिए ध्यान में रखी जाने वाली बातों को ही धनार्जन की आचार संहिता का नाम दिया गया है–

1. **धर्म मार्ग से धनार्जन –** प्राचीन भारतीय विद्वानों ने न्याय तथा धर्मपूर्वक धनार्जन को ही उचित माना है। धर्माधारित अर्थाजन टिकाऊ होता है तथा समृद्धि का मूल मंत्र है। धर्म का एक पैसा, चोरी या अधर्म के एक हजार रुपए से अच्छा माना गया है। यजुर्वेद में 'सुपथाराये' अर्थात जो धन हम प्राप्त करना चाहते हैं

वह सही रास्ते से प्राप्त हो, उसे उचित माना गया है। महर्षि दयानंद सरस्वती कहते हैं कि, 'अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र में पूरी तरह सामंजस्य होना चाहिए। अर्थशास्त्र यदि संपत्ति की व्याख्या कर उसे अर्जित करने की बात कहता है तो धर्मशास्त्र उस संपत्ति का सदुपयोग सिखाता है।

2. **धन संग्रह में संयमी –** मनु के अनुसार मनुष्य को संतोष धारण कर संयमी बनना चाहिए। उसे यथासंभव अपने परिवार की तथा रक्षा के साथ यज्ञ आदि के लिए आवश्यक धन से अधिक की इच्छा नहीं करनी चाहिए क्योंकि संतोष सुख का कारण है तथा असंतोष दुख का कारण है। जितना धन मिलता है उतनी ही इच्छा बढ़ती जाती है। धन मनुष्य की आवश्यकता न होकर तृष्णा है जो कभी समाप्त नहीं होती है।

3. **आवश्यकतानुसार धनोपार्जन** – व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र करने का ही अधिकार है उससे अधिक नहीं। वैदिक संस्कृति में आवश्यकतानुसार धनार्जन को ही आदर्श माना गया है जिसमें विश्वबंधुत्व तथा पारस्परिक सहयोग को प्रथम कर्तव्य माना गया है। आवश्यकतानुसार धनार्जन की महत्ता को निम्न दोहा और अधिक स्पष्ट करता है –

साई इतना दीजिए जामे कुटुमम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय।।

4. **धनार्जन के प्रति अनासक्ति भाव** – मनुष्य अर्थ का स्वामी न होकर दास ही न बन जाए इसलिए प्राचीन चिंतन परंपरा में त्याग की भावना अथवा अनासक्तिपूर्वक उपभोग की सलाह दी गई है। जगत भोगों का साधन है। इसी में और इसके द्वारा मनुष्य भोग भोगता है परंतु वही उपभोग सार्थक है, जिसमें त्याग भावना का समावेश हो। इसलिए मर्यादित उपभोग को धर्म का अंग माना गया है।

5. **धनार्जन में इच्छा–परिमाण व्रत की पालना –** गीता में कहा गया है कि पृथ्वी पर जितने धान, जौ, स्वर्ण, पशु आदि है, वे सब भी एक पुरुष की कामनाओं को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः ऐसा समझकर शांत हो जाना चाहिए। महावीर स्वामी के अनुसार गृहस्थी अपरिग्रही नहीं हो सकता, गृहस्थ चलाने के लिए भिक्षाजीवी भी नहीं हो सकता। अतः उसके लिए उन्होंने इच्छा–परिमाण परिग्रह के सीमाकरण का सुझाव दिया। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः आवश्यकताओं को समाप्त नहीं किया जा सकता। अतः उन्होंने मध्यमार्ग के रूप में इच्छा–परिमाण व्रत का प्रतिपादन किया जिसमें आवश्यक सुविधा की श्रेणी की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ विलासी श्रेणी की इच्छाओं का दमन आवश्यक बताया है।

6. **आय की तुलना में कम व्यय करना** – शुक्र कहते हैं कि ज्ञान की बात यह है कि आय की तुलना में व्यय कम हो। बुद्धिमान व्यक्ति को थोड़े से कार्य के लिए अधिक धन व्यय नहीं करना चाहिए।

7. **स्वयं के परिश्रम व प्रयत्नों से धनार्जन –** भारतीय साहित्य में इस बात पर काफी जोर दिया गया है कि अपनी पारिवारिक, सामाजिक तथा धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को स्वयं के प्रयत्न एवं परिश्रम से ही धनार्जन करना चाहिए। यह विचार हमें विदेशी निर्भरता एवं विदेशी ऋणो से बचाकर स्वावलंबी अर्थतंत्र विकसित करने की ओर संकेत देता हैं।

8. **पर्यावरण सरंक्षण पर ध्यान** – आज जीव–जंतुओं, पेड़–पौधों को नष्ट करके उत्पादन बढ़ाने को आर्थिक विकास का नाम दिया जा रहा है। महाभारत तथा मनुस्मृति में स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए ऐसे माध्यम ही अपनाने चाहिए जिससे प्राणियों को बिल्कुल भी कष्ट न हो अर्थात धनार्जन तो करना चाहिए परंतु वनस्पति व प्राणियों को खतरा न हो। अथर्ववेद में धरती मां से प्रार्थना की गई है कि हे मां अपने ऊर्जा भंडार से ऐसी शक्ति दीजिए जिससे हम प्रतिष्ठा के साथ जी सके। हमें ऐसा पर्यावरण दीजिए जो हमेशा हमारे जीवन के लिए उपयुक्त हो। इस प्रकार धर्माधारित धनार्जन ही समृद्धि का मूल मंत्र है। यह अर्थाजन टिकाऊ होता है तथा सदा सुख प्रदान करता है। ऐसे अर्थार्जन को

मनुष्य संयम से व्यय करता है जिससे व्यक्ति एवं देश में समृद्धि आती है।

(D) पर्यावरण का वैदिक स्वरूप (Vedic Concept of Environment)

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ने विश्व के अस्तित्व के लिए नए संकट पैदा कर दिया है। अपनी सुख सुविधाओं को जुटाने में लगे मनुष्य को शायद यह आभास पहले नहीं था कि इन भोगों की कीमत इतनी महंगी पड़ सकती है। प्रकृति की संपूर्ण व्यवस्थाओं को नकारने से पहले जब उसे अपनी भावी पीढ़ी का अस्तित्व खतरे में दिखाई देने लगा तो आज उसे पर्यावरण सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील होना उसकी मजबूरी हो गई है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से हमें यह संदेश मिलता है कि हम हमारे स्वार्थ के लिए पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करें तथा पर्यावरण का संरक्षण करे।

पर्यावरण एवं आर्थिक विकास (Environment & Economic Development) –बह्माण्ड में प्रत्येक जीवधारी को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रकृतिदत्त वातावरण एवं स्वच्छ पर्यावरण की नितांत आवश्यकता होती है। अतः वातावरण को प्रदूषित करना पेड़ की जिस शाखा पर बैठे हैं उसी को काटना है। परिणामस्वरुप जीवन के अस्तित्व को नरक में धकेलने से कम नहीं है। पर्यावरण वह धुरी है जिस पर समस्त मानवीय क्रियाएं टिकी हुई है। वर्तमान में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में भूमि, जल एवं वायु ही प्रदूषित नहीं हुए हैं अपितु पारिस्थितिक संतुलन भी अव्यवस्थित हो गया है। आज संसाधनों का अंधाधुंध उपयोग, विकास कार्यकमों में पर्यावरण पक्ष की उपेक्षा, आधुनिकीकरण, बढ़ती जनसंख्या आदि से पर्यावरण संतुलन बिगड़ गया है। इसका प्रभाव वातावरण के तापमान में वृद्धि (ग्रीन हाउस प्रभाव) ओजोनपरत का ह्रास, लुप्त होती प्रजातियां, अम्लीय वर्षा, बढ़ता जल तथा भूमि प्रदूषण है। विकास तथा पर्यावरण के बीच संघर्ष नहीं है बल्कि विकास के नाम पर हुई उस मात्रात्मक वृद्धि प्रक्रिया से है जो पर्यावरण पक्ष की उपेक्षा करती है। आज विकास की अवधारणा में धर्म, काम और मोक्ष की अपेक्षा कर एकमात्र अर्थ को ही महत्व देने का परिणाम है – पर्यावरण प्रदूषण। विकास एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत पर्यावरण में सामंजस्य बनाये रखना भी निहित है। विकास के नाम पर कुछ भी किया जाने पर उससे पर्यावरण में बिगाड़ न आए, उसे ही विकास की संज्ञा दी जा सकती है क्योंकि संतुलित पर्यावरण में ही आर्थिक विकास की अवधारणा निहित है।

प्रकृति एवं पर्यावरण (Nature & Environment)

प्रकृति एवं पर्यावरण एक दूसरे के पूरक है। यदि प्रकृति को पर्यावरण तथा पर्यावरण को प्रकृति कहकर विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि कुछ सीमा तक दोनों एक ही है। मानव के परिवेश में जलवायु, मिट्टी, सूर्य का प्रकाश, वन, पर्वत, वायु, प्राणी और विविध वनस्पतियों का सामीप्य रहता है। मानव के आसपास के इसी परिवेश को वेदों में पर्यावरण कहा गया है। एतरेय उपनिषद में कहा गया है कि यह संसार पांच तत्वों – पृथ्वी, पानी, सूर्य, वायु तथा आकाश से बना हुआ है, जब इन पांचों के प्राकृतिक संतुलन में परिवर्तन होता है तो पर्यावरण प्रदूषण उत्पन्न होता है। पर्यावरण में विद्यमान तत्वों की मात्रा तथा गुणवत्ता में निश्चित अनुपात में अधिक अंतर आना ही पर्यावरण असंतुलन या पर्यावण प्रदूषण है।

पर्यावरण के प्रति चेतना –वैदिक दृष्टिकोण से कहें तो जब पृथ्वी, जल, वायु, आदि में किसी प्रकार की विकृति, अशुद्धि, अपवित्रता या अस्वच्छता होती है तो वह प्राणियों के लिए दुख का कारण बन जाती है। यजुर्वेद में पर्यावरण प्रदूषण के प्रति मनुष्य को सचेत करते हुए कहा गया है कि ''हे मनुष्य! वायु, जल, वनस्पतियों और प्राणियों में संतुलन बने रहने से संपूर्ण सृष्टि अपनी साम्य अवस्था में रहती है। जब इन अवयवों का संतुलन बिगड़ जाता है तो इसमें रहने वाले प्रत्येक जीव–जंतु, पेड़–पौधे, और मनुष्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः पर्यावरण के इन तत्वों को मत छेड़ना, इनका संतुलन बनाए रखना अन्यथा तेरा जीवन असंभव हो जाएगा।'' वैदिक साहित्य में प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए प्राकृतिक साधनों के उच्छृंखल दोहन की अनुमति नहीं दी गई है। प्रकृति अपनी पद्धति से क्षति की पूर्ति करती रहती है। वेदो में प्रकृति के प्रति अगाध श्रद्धा का वर्णन है। सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरुप माना गया है। सोम, वरुण, अश्वनी, सरस्वती, पृथ्वी, गौ आदि जिनका संबंध मनुष्य के आर्थिक जीवन एवं पर्यावरण से रहा है उन्हें देव स्वरुप माना गया है जल को भी देवता माना गया है। सरोवरों में नहाने से पहले यह परंपरा थी कि एक कंकड़ मारकर सो रही गंगा को जगाया जाता था, फिर उसका

चरण स्पर्श किया जाता था। वन के बिना भारतीय संस्कृति की कल्पना असंभव सी लगती है क्योंकि मनुष्य का तीन चौथाई जीवन (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम) वन में ही व्यतीत होता था। वैदिक संस्कृति में जीवन तो है, जीव+वन अर्थात जहां वन है वही जीवन है। अथर्ववेद में वनस्पतियों के सतत उपयोग के साथ–साथ उनकी जड़ को न काटने का आदेश है। वनों को जलाने एवं नष्ट करने वालों को दंडित करने का प्रावधान किया गया हैं। मत्स्यपुराण में वृक्ष की महिमा का जो वर्णन प्राप्त होता है शायद वृक्षों के प्रति ऐसी अप्रतिम अनुराग की छाया विश्व की किसी भी संस्कृति में दुर्लभ है।

दश कूपसमावापी, दश वापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रः दसपुत्रसमोद्रुमः।।

अर्थात् लोक कल्याण की दृष्टि से दस कुओं के समान एक बावड़ी का महत्व है, दस बावड़ी के समान एक तालाब का, दस तालाबों के सम्मान एक पुत्र का और दस पुत्र के समान एक वृक्ष का महत्व है। इसका अभिप्राय यह है कि दस पुत्र अपने जीवन काल में जितना लाभ पहुंचाते हैं उतना लाभ एक वृक्ष देता है। इसी भाव से प्रेरित होकर 1730 ईस्वी में भाद्रपद शुक्ला, दशमी के दिन खेजड़ी गांव (जोधपुर) में **अमृता देवी** की अगवाई में 363 विश्नोई समुदाय के लोगों ने पेड़ों की सुरक्षा के लिए राजा के सैनिकों के सामने बलिदान का ऐसा गौरवशाली उदाहरण प्रस्तुत किया है जो इस धरती पर न कभी हुआ है और न ही शायद कभी होगा।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार एवं पर्यावरण संरक्षण (Types of Pollution & Conservation of Environment) – भारतीय प्राचीन साहित्य में पर्यावरण प्रदूषण के निम्न रूप मिलते हैं – 1.भूमि प्रदूषण 2. जल प्रदूषण 3. वायु प्रदूषण 4. आकाश प्रदूषण 5. समय प्रदूषण 6. दिशा प्रदूषण 7. बुद्धि प्रदूषण 8. गर्मी प्रदूषण। यहां हम भूमि, जल तथा वायु प्रदूषण के स्त्रोत एवं उनके बचाव के उपाय जो वैदिक चिंतन में प्राप्त होते हैं उनका संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

(अ) भूमि प्रदूषण – प्राचीन भारतीय भूमि को अपनी मां मानते थे क्योंकि अनेक प्रकार की औषधियां, अनाज, पेड़ आदि भी इसी से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य का जीवन पृथ्वी पर ही निर्भर है। भूमि का उपयोगी से अनुपयोगी होना ही भूमि प्रदूषण है। भूमि की सतह को प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए मल–मूत्र खुले में नहीं त्यागना चाहिए क्योंकि इसमें खेत, पानी आदि दूषित होते है। इसके अलावा कटे हुए बाल, नाखून तथा बेकार वस्तु को जुते हुए खेतों, बगीचों, पानी के स्रोतों, खुली हवा में नहीं डालना चाहिए। अथर्ववेद में कहा गया हैं कि विद्वान, बुद्धिमान, बलशाली तथा परोपकारी सज्जनों को इस धरती की सुरक्षा प्राणपण से करनी चाहिए ताकि जनजन को मातृ भूमि का स्नेह और आनंद मिलता रहे। जीवनदायी औषधियां देने वाली हे, धरती मां, हमें ऐसा पर्यावरण दीजिए जो हमेशा हमारे जीवन के लिए उपयुक्त हो। भूमि के जिस स्थान पर मैं खनन करूं वहा शीघ्र ही हरियाली छा जाये।

(ब) जल प्रदूषण – पृथ्वी की उत्पत्ति और मानव सभ्यता के विकास की कहानी जल के बिना अधूरी है। बिना जल के जीव जगत की कल्पना असंभव है। वर्तमान में कागज, कपड़ा, चीनी, रंगाई–छपाई, रसायन, खाद्य विनिर्माण आदि उद्योगों, रासायनिक खादों, कीटनाशकों तथा डिटरजेंटों से जल प्रदूषित हो रहा है। जल प्रदूषित होने से केवल मनुष्य अनेक रोगों से ही ग्रस्त नहीं होते वरन् भूमि की उत्पादन क्षमता में गिरावट होने से कृषि उत्पादन में भी कमी होती है। जल की उपयोगिता को देखकर ही मनुष्य ने अपने निवास सदैव किसी नदी, तालाब, झील, के समीप बनाये हैं। प्राचीन सभ्यताएं नदियों के किनारे ही विकसित हुई है। बिना जल के कृषि संभव नहीं है। जल को वेदों में प्राणों का रक्षक एवं कल्याणकारी माना गया है। अतः इसे शुद्ध रुप में प्रयोग करने तथा इसे किसी प्रकार से प्रदूषित नहीं करना चाहिए। मनु के अनुसार पानी में अपवित्र पदार्थ, विष, मल मूत्र आदि डालकर प्रदूषित नहीं करना चाहिए। वेदों में जितना धरातल पर पानी की शुद्धता पर जोर दिया गया है उतना ही बादलों के जल की स्वच्छता पर भी ध्यान दिया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि हम यज्ञ द्वारा आकाशीय जल को शुद्ध करने का प्रयत्न करें। यज्ञ का धूम आकाश में जाकर फैल जाता है, बादल के निचले तल पर ठहर जाता है। उसमें स्थित कार्बन कणों पर पानी

की बूंदे जमकर भारी होने से बरसती है। यज्ञ धूम मिला पानी उपयोगी बन जाता है इससे जल शुद्ध होता है तथा फसल भी निरोग रहती है।

(स) वायु प्रदूषण – मनुष्य बिना भोजन और जल के कुछ दिन या कुछ घंटे जीवित रह सकता है लेकिन बिना वायु के कुछ क्षण भी जीवित नहीं रह सकता है। पृथ्वी के वायुमंडल में प्राकृतिक तौर पर 79 प्रतिशत नाइट्रोजन, 20.09 प्रतिशत ऑक्सीजन तथा शेष कार्बन डाईऑक्साइड, आर्गन, नीओन, हिलीयम, ओजोन आदि गैसे होती हैं। हमारे स्वस्थ जीवन के लिए इन सभी का एक निश्चित अनुपात में पाया जाना अत्यंत आवश्यक है। इस अनुपात में असंतुलन का अर्थ है वायु का अशुद्ध होना। प्राचीन भारतीय विद्वान वायु प्रदूषण के प्रति सजग थे। शुद्ध हवा, अच्छे स्वास्थ्य, प्रसन्नता एवं दीर्घायु का स्त्रोत है। शुद्ध वायु मनुष्य को रोगों से बचाती है और बल प्रदान करती है। वेदो में वायु को जीवन का मुख्य आधार कहा गया है।

प्राचीन समय में आज की भांति वायु प्रदूषित करने के कारक–जनसंख्या औद्योगिकीकरण, परिवहन के साधन मुख्य कारक नहीं थे। उस समय मानव निर्मित प्रदूषण कम था। जलवायु परिवर्तन होने पर कीटाणु स्वास्थ्य को प्रभावित करते थे। ये कीटाणु जब हवा से पृथ्वी पर आते थे तो हवा प्रदूषित होती थी। वेदो में पर्यावरणीय घटकों की शुद्धता के लिए हमें महत्वपूर्ण उपाय प्राप्त होता है। वह उपाय हैं**–यज्ञ**। यज्ञ आध्यात्मिक उपासना का साधन होने के साथ–साथ पर्यावरण को शुद्ध करने, उसे कीटाणु रहित तथा प्रदूषण रहित रखने का अप्रतिम साधन है। भारतीय संस्कृति की यह शैली रही है कि उसमें जीवन के जिन मूल्यों को श्रेष्ठ या आवश्यक माना जाता है उन्हें धार्मिक और पुण्य के साथ जोड़ दिया जाता है जिससे लोग इनका अनिवार्य रुप से पालन करते हैं। वेदों में पर्यावरणीय तत्वों को यज्ञों की आहुतियों से युक्त कर उसे शुद्ध रखने का निर्देश दिया गया है। यजुर्वेद में कहा गया है कि यज्ञ की आहुतियों से हवा, जल तथा आकाश के हानिकारक तत्व नष्ट हो जावे, अग्नि में दूषित पदार्थ न जलावे, जल में दूषित पदार्थ न डालें, पीने के लिए औषधिवत शुद्ध जल का प्रयोग करें। यज्ञ को एक विज्ञान माना गया है। यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियां नष्ट नहीं होती अपितु अपना स्वरुप बदल कर सूक्ष्म एवं व्यापक होकर लाभदायक होती है। यज्ञ के तत्व तीव्र होकर वायु, जल, पृथ्वी और आकाश में प्रवेश होकर उनके प्रदूषण को नष्ट करते हैं। पर्यावरण की दृष्टि से हमारा सर्वाधिक रक्षक मित्र–वृक्ष है। वृक्ष ऐसा नीलकंठ शिव है तो स्वयं विषपान (जहरीला कार्बन डाईऑक्साइड) करके हमें अमृत (ऑक्सीजन) प्रदान करता है। यजुर्वेद में पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए बड़े–बड़े पेड़ लगाकर रोग से बचने के उपाय बताए गए हैं क्योंकि पेड़ों से वायु शुद्ध रहती है। वृक्ष परमहितकारी है, ये प्रदूषण को अवशोषित करते हैं अतः इनको काटना अनुचित है। यजुर्वेद में ऋषि राजा को निर्देश देता है कि हे राजन! आप अपने राज्य के प्रत्येक स्थानों में जल और वनस्पतियों को हानि मत पहुंचाओ तथा ऐसे कार्य करो जिससे जल और वनस्पतियां हमें सतत रुप से मिलती रहे। इस प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरण, उसके प्रदूषण तथा प्रदूषण से बचाव के बारे में पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। पर्यावरण से संबंधित सभी पक्षों को देवता स्वरुप प्रदान कर उनसे मंगल तथा कल्याण की कामना की गई है। पर्यावरण के रक्षण वृक्षों तथा नदियों को भी देवता स्वरुप मानकर उनकी पूजा का विधान किया गया हैं ताकि लोग उन्हें शुद्ध रखें तथा उनकी सुरक्षा करें। यज्ञ तथा वृक्षों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण पर बल दिया गया है। अथर्ववेद में ऋषि कहता है कि यदि हम अपने लिए वनस्पतियों और ओषधियों को काटकर पृथ्वी को सताते है। तो पृथ्वी हमें अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भंयकर तूफानों द्वारा नष्ट कर देगी। दुर्गा सप्तशती में मानव एवं प्रकृति दोनों के संबंध में यह स्पष्ट कहा गया है कि जब तक पृथ्वी वृर्क्षो तथा जंगलों से समृद्ध रहेगी तब तक यह मनुष्यों का पोषण करती रहेगी। वैदिक साहित्य में प्रकृति के शोषण के स्थान पर प्रकृति के दोहन पर बल दिया गया है। हमारी यह मान्यता रही है कि हमे प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितना वह पुनः उत्पन्न हो सके। मानव यदि प्रकृति से प्रेम करे तो यह पृथ्वी ही स्वर्ग के समान हो सकती है, पृथ्वी का महत्व स्वर्ग से अधिक है पृथ्वी स्वर्ग की सुषमा का आधार है।

महत्वपूर्ण बिंदु

- **आवश्यकता की अवधारणा** – जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी प्रकार की आवश्यकता मनुष्य के जीवन में उपस्थित रहती हैं। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य अनेक प्रयास करता है।

- **आवश्यकता का अभिप्राय** – शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का संपूर्ण सुख 'समग्रसुख' कहलाता है। सुख की इच्छा से ही व्यक्ति कार्य करता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मनुष्य की चार आवश्यकताएं होती हैं।
- **आवश्यकता को प्रभावित करने वाले तत्व –** आवश्यकता को व्यक्ति की आर्थिक स्थिति, धार्मिक कारण, लाभभावना तथा आर्थिक विकास का स्तर प्रभावित करता है।
- **प्राथमिक आवश्यकताएं** – अन्न, वस्त्र, मकान, चिकित्सा तथा शिक्षा मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएं होती हैं।
- **आवश्यकताओं के लक्षण** – मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित होती है तथा उनकी पूर्ति के साधन सीमित होते हैं। अतः सभी आवश्यकताएं संतुष्ट नहीं होने से मनुष्य दुःखी होता है। कुछ आवश्यकताएं बार–बार उत्पन्न होती हैं।
- **आवश्यकताओं की पूर्ति एवं अधिकतम संतुष्टि** – वैदिक साहित्य के अनुसार उत्तम, न्यायोचित, स्वंय द्वारा अर्जित धन से आवश्यकताओं को पूर्ण कर अधिकतम संतुष्टि या सुख की प्राप्ति होती है।
- **उपभोग की विभिन्न अवधारणाएं –** (अ) संयमित उपभोग की अवधारणा – उपभोग इच्छानुसार नही होकर आवश्यकतानुसार अर्थात न्यूनतम करना ही न्यायोचित है। (ब) सहउपभोग की अवधारधणा – ऐश्वर्य, वैभव व सम्पति परमात्मा की देन है, अतः इसे अकेला उपभोग न करके बांटकर ही उपभोग करना चाहिए।
- **उपभोग की आचार सहिंता** – (अ) न्यायोचित साधनों से प्राप्त धन का उपभोग, (ब) अकेले सुख उपभोग का निषेध, (स) संयमित उपभोग स्वास्थ्यवर्धक, (द) उपभोग में नैतिकता, (य) अतिउपभोग का निषेध, (र) कर्जाधारित उपभोग का निषेध, (ल) कृपणता का निषेध
- **धनार्जन एवं धनार्जन की आचारसहिंता**

1. **धन का अभिप्राय** – धन वह धन है जो सब को प्रसन्न व संतुष्ट करता है। यह सभी पदार्थों के विनिमय का साधन है। शुक्र ने कौड़ी से लेकर रतन, धन–धान्य, पशु, मुद्रा आदि को धन की संज्ञा दी जाती है।
2. **अर्थ के स्त्रोत** – कृषि, भूमि, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग, पशुपालन व शिल्पकार्य अर्थ के स्त्रोत है।
3. **धनार्जन के भेद** – (1) शुक्ल धन, (2) सबल धन, (3) कृष्ण धन।
4. **धन के उपयोग** – (1) धार्मिक कार्यों के लिए (2) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, (3) विनियोग के लिए, (4) कल्याणकारी कार्यों के लिए, (5) स्वजनों के लिए।
5. **धनार्जन की आचारसहिंता** – (1) धर्म मार्ग से धनार्जन (2) धन संग्रह में संयमी (3) आवश्यकतानुसार धनोपार्जन (4) धनार्जन के प्रति अनासक्ति का भाव, (5) धनार्जन में इच्छा–परिमाण व्रत की पालना, (6) आय की तुलना में कम व्यय करना, (7) स्वयं के परिश्रम व प्रयत्नों से धनोपार्जन, (8) पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान।

- **प्रकृति एवं पर्यावरण** – प्रकृति एवं पर्यावरण एक दूसरे के पूरक है। पर्यावरण में विद्यमान तत्वों की मात्रा तथा गुणवत्ता में निश्चित अनुपात से अधिक अंतर आना ही पर्यावरण प्रदूषण हैं।
- **पर्यावरण के प्रति चेतना** – वैदिक साहित्य में प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए प्राकृतिक साधनों के उच्छृंखल दोहन की अनुमति नहीं दी गई है। सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरुप माना गया है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वनों की रक्षा तथा जल को दूषित न करने का भाव दिया गया है।
- **पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार एवं पर्यावरण सरक्षण**– (अ) भूमि प्रदूषण (ब) जल प्रदूषण (स) वायु प्रदूषण।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वृक्षों की रक्षा के लिए पहला बलिदान देने वाली अमृता देवी का सम्बन्ध था।
   (अ) जयपुर, (ब) खेजडी (जोधपुर)

(स) उदयपुर (द) कोटा

2. विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ हैं –
(अ) वेद (ब) बाइबिल
(स) कुरान (द) उपनिषद

3. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन के अनुरूप आवश्यकताओं की निम्न में से कौन सी विशेषता नहीं है –
(अ) आवश्यकता असीमित है
(ब) आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन सीमित है
(स) आवश्यकताएं बार–बार उत्पन्न होती हैं
(द) सभी आवश्यकताओं की संतुष्टि संभव हैं

4. वर्णाश्रम व्यवस्था में सभी लोगों का जीविकोपार्जन करता है –
(अ) ब्रह्मचारी (ब) गृहस्थ
(स) वानप्रस्थी (द) सन्यासी

5. वैदिक वाङ्मय के अनुसार व्यक्ति का उपभोग नहीं होना चाहिए –
(अ) संयमित उपभोग (ब) न्यायोचित उपभोग
(स) सहउपभोग (द) अर्मयादित उपभोग

6. लोक कल्याण की दृष्टि से दस कुओं के बराबर महत्व दिया गया है –
(अ) बावड़ी को (ब) तालाब को
(स) पुत्र को (द) वृक्ष को

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'समग्र सुख' किसे कहते हैं ?
2. मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएं कौन–कौन सी है ? नाम लिखिए।
3. मनुष्य को अधिकतम संतुष्टि कब प्राप्त होती हैं ?
4. चाणक्य के अनुसार धर्म का मूल क्या है ?
5. मनुष्यों की रक्षा के लिए अपना बलिदान करने वाली महिला का नाम बताइये।
6. वेदों में उल्लेखित पर्यावरण प्रदूषण से बचाने के लिए दो प्रमुख उपायों को बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय चिंतन में वर्णित आवश्यकताओं के प्रमुख लक्षणों को स्पष्ट कीजिए
2. प्राचीन भारतीय साहित्य में कृपणता (कंजूसी) का विरोध क्यों किया गया है ?
3. व्यक्ति को अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रहण क्यों नहीं करना चाहिए ?
4. धनार्जन करते समय कौन–कौन सी बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए?
5. महाभारत के अनुसार धन के उपयोग कौन–कौन से हैं ?
6. प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित उपभोग की आचार संहिता को बताइये।
7. वायु प्रदूषण का अर्थ बताइये।
8. प्रकृति तथा पर्यावरण में वैदिक सम्बन्ध को बताइये।
9. प्राचीन ग्रन्थों में वृक्षों को इतना महत्व क्यों दिया गया है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. संयमित उपभोग की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. सहउपभोग की अवधारणा को समझाइए।
3. प्राचीन भारतीय चिंतन में वर्णित धनार्जन की आचार संहिता का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित पर्यावरण संरक्षण पर एक लेख लिखिए।
5. ''पर्यावरण का वैदिक स्वरूप आज के युग में पर्यावण प्रदूषण के निवारण हेतु प्रासंगिक है।'' इसकी व्याख्या कीजिए।
6. वेदो में वर्णित पर्यावण के प्रति चेतना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला

(1)ब (2)अ (3)द (4)ब (5)द (6)अ

अध्याय–4.2

कौटिल्य के आर्थिक विचार
(Economic Ideas of Kautilya)

आचार्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रणेता माने गये हैं। कौटिल्य को चाणक्य, विष्णुगुप्त आदि नामों से जाना जाता है। चूंकि कौटिल्य की विचारधारा परम्परागत आदर्शवाद के विरोध में भौतिकवाद पर जोर देती है जो तत्कालीन धर्माचार्यो को उचित प्रतीत नहीं हुई इसीलिए उन्होंने कुटिलता का पुट देने के लिए उन्हें कौटिल्य नाम दे दिया। नन्दवंश का नाश कर चन्द्रगुप्त को राज्य सिंहासन पर बैठाकर राजवंश की स्थापना करने वाले आचार्य कौटिल्य ने समकालीन आर्थिक समस्याओं और अर्थव्यवस्था पर जितना अधिक चिंतन किया, उतना किसी अन्य आचार्य ने नहीं किया। उन्होंने आर्थिक नियमों के प्रतिपादन में जिन तर्को का प्रयोग और उल्लेख किया है, वे आज की परिस्थितियों में लागू किये जा सकते है। अर्थशास्त्र में विभिन्न विषयों पर जो विचार वर्णित है वे निम्नलिखित है :–

कौटिल्य का अर्थशास्त्र
(Kautilya's Arthashastra)

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन चिन्तन की नीतिशास्त्र परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। जैन ग्रन्थों एवं पुराणो (भागवत पुराण, वायु पुराण, मतृस्य पुराण व ब्राह्मण पुराण) के अनुसार हम यह कह सकते है कि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना 321 एवं 300 ई.पू. के बीच में किया। वे मूलतः अर्थशास्त्री (Economist) नहीं थे बल्कि एक दार्शनिक, कूटनीतिज्ञ एवं विचारक थे। यह ग्रन्थ हमें तत्कालीन समय की उन आर्थिक व्यवस्थाओं व अवधारणाओं के बारे में जानकारी प्रदान करता है जिन्हें हम वर्तमान में भी लागू कर सकते है। इस ग्रन्थ में कुल 15 अधिकरण 150 अध्याय, 180 विषय एवं 6000 लोक है।

अर्थ एवं अर्थशास्त्र की परिभाषा (Definition of wealth & economics)

कौटिल्य ने ज्ञान की शाखाओं को 'विद्या' नाम दिया है तथा यह स्पष्ट किया है कि जिससे किसी विशेष संदर्भ में उचित–अनुचित, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ज्ञान होता हो उसे 'विद्या' कहते है। उन्होंने ज्ञान की चार शाखाओं का वर्णन किया है–त्रयी, वार्त्ता, आन्वीक्षिकी व दण्डनीति। वार्त्ताशास्त्र में कृषि, पशुपालन, उद्योग और व्यापार को प्रधानता दी है जिससे भौतिक उपलब्धियों और सम्पत्ति आदि का अर्जन होता है। आन्वीक्षिकी वह मापदण्ड माना है जिसके द्वारा राजनीतिक एवं भौतिक उद्देश्य के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों को संतुलित किया जा सके।

कौटिल्य ने अर्थ, धर्म और काम के आधार पर ही मानव जीवन को विभक्त किया है और इन तीनों में से उन्होंने अर्थ को प्रधानता दी, क्योंकि बिना अर्थ के किसी प्रकार की क्रिया संभव नहीं हो सकती है। कौटिल्य ने धर्म पर अर्थ को प्रधानता दी है। वे कहते है कि ''सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है और अर्थ का मूल राज्य है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में धर्म तथा काम दोनों ही क्रियाएं अर्थ पर निर्भर बताई गयी है। कौटिल्य का कहना है कि ''संसार में धन ही वस्तु हैं, धन के अधीन धर्म और काम है।'' उनके अनुसार जिस प्रकार ज्ञान को प्रतिक्षण प्राप्त किया जाता है, ठीक उसी प्रकार धन को भी कण–कण करके प्राप्त करना चाहिए। धन की प्राप्ति हमेशा ही लाभदायक है अगर उसको एक अच्छी पत्नी, अच्छे पुत्र अथवा अच्छे मित्र के पोषण के लिए या धर्मार्थ उस उद्देश्य से प्राप्त किया जाए। अतः कौटिल्य ने उस धन अर्जन को न्याय संगत बताया है जो उचित प्रकार से अर्जित किया जाता है।

कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में कृषि, पशुपालन और व्यापार को वार्त्ता कहा है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है '' **मनुष्यों के व्यवहार या जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि का नाम ही अर्थ हैं। ऐसी भूमि को प्राप्त करने, विकसित करने (या पालन पोषण करने) के उपायों को निरूपण करने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र कहलाता है।''** अर्थशास्त्र की इतनी सटीक और स्पष्ट परिभाषा कौटिल्य से पूर्व विश्व में आज तक

किसी भी विद्वान ने नहीं दी हैं वे आगे लिखते है कि यही अर्थशास्त्र धर्म, अर्थ और काम में प्रवत्त करता है उसकी रक्षा करता है।

सार्वजनिक वित्त
(Public Finance)

कौटिल्य के अनुसार राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह समय–समय पर उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों तथा राज्य व्यवस्था के लिए आय की अधिकाधिक वृद्धि करे क्योंकि राज्य के सभी कार्य कोष पर निर्भर करते हैं। जिस राजा का कोष रिक्त हो जाता है वह नगरवासियों तथा ग्रामवासियों को चूसने लगता है। कौटिल्य की सार्वजनिक वित्त व्यवस्था सही अर्थो में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से जुडी हुई थी। उन्होंने शांति व्यवस्था एवं न्याय के अतिरिक्त राज्य के चार उद्देश्य बताए हैं –

(1) अप्राप्त को अर्जित करना,

(2) प्राप्त की रक्षा करना,

(3) रक्षित का संवर्द्धन करना, तथा

(4) सर्वद्धित को प्रजा के कल्याण के लिए प्रयुक्त करना अर्थात करो से प्राप्त आमदनी को प्रजा के कल्याण हेतु व्यय करना। कौटिल्य कहते है कि वित्त से धर्म की रक्षा होती है अतः राजकोष भरा रहना चाहिए। कोष के बिना राज्य न तो विकास कर सकता है और न उन्नति।

(1) **सार्वजनिक आय** (Public Income) कौटिल्य ने दण्डनीति को त्रयी, वार्त्ता और आन्वीक्षिकी के भलीभांति कियान्वयन के लिए उत्तरदायी माना है।

राजकीय आय के स्रोत–कौटिल्य द्वारा बताये गये राजकीय आय के स्रोत निम्नलिखित है –

i. विभन्न प्रकार के भूमि कर, शहरों में मकान कर, आकस्मिक कर आदि।

ii. बाजार में बेची जाने वाली वस्तुओं पर कर, आयात–निर्यात कर,

iii. मार्ग कर, नहर कर तथा लादने वाली भारी गाड़ियों पर कर,

iv. कलाकार कर, मत्स्य कर,

v. द्यूतकर तथा नशीली वस्तुओं पर कर

vi. सम्पत्ति कर, वनोत्पादन कर, खान कर, नमक आदि वस्तुओं पर एकाधिकारिक कर,

vii. श्रमिक कर,

viii. आकस्मिक आय कर,

ix. ऋण पर ब्याज,

x. खैराती कर,

xi. जुर्माना

xii. राज्य के लाभ

xiii. घोड़ो, ऊन, हाथीकर, फल एवं वृक्ष कर, कुछ प्रमुख करों का विवरण निम्न प्रकार है –

1. **भूमिकर –** कृषि राज्य आय का प्रमुख स्रोत थी। समाज के लोग जितनी भूमि अपने अधिकार में रखकर उत्पादन करते थे, उसके बदले में राजा को उत्पादन का 1/6 भाग कर के रूप में देते थे। राज्य के अधिकारी समाहर्त्ता, गोप, स्थानिक आदि राजकीय आय प्राप्त करते थे। इन सभी के अपने–अपने क्षेत्र बंटे हुए थे। कर का भुगतान नकद तथा वस्तुओं के रूप में किया जाता था।

2. **शुल्क –** शुल्क (चुंगी) राज्य के बाहर या भीतर लाने या ले जाने वाली वस्तुओं पर लगायी जाती थी। शुल्क चौकियों पर लिया जाता था। चुंगी लेने वाले अधिकारी को 'शुल्काध्यक्ष' कहा जाता था जो चुंगी–घरो का निर्माण कर अपने सहायकों द्वारा चुंगी वसूल कर राजकोष में जमा कराता था। कौटिल्य ने शुल्क के तीन विभाग किए है–ब्राह्य, अभ्यांतर, तथा आतिथ्य। अपने देश में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर जो चुंगी ली जाए वह ब्राह्य कहलाती है, दुर्ग व राजधानी के भीतर उत्पन्न वस्तुओं के शुल्क को 'अभ्यातंर' तथा विदेश से आने वाले माल की चुंगी को 'आतिथ्य' कहा जाता है।

3. **खनन से प्राप्त आय –** कौटिल्य के अनुसार राज्य की भूमि पर राज्य का अधिकार है अतः भूगर्भ पदार्थो से कर प्राप्त करने का अधिकार राजा को है। खान का अध्यक्ष शंख, वज्र, मणि, मुक्ता तथा सभी प्रकार के क्षारों की उत्पत्ति व विक्रय की व्यवस्था करता था। विदेश से आयातित नमक पर छठा भाग कर लेना चाहिए। धातुओं की चोरी करने वाले व्यक्ति पर चोरी का आठ गुना दण्ड लगाना चाहिए। रत्नों की चोरी करने पर प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए।

4. **मार्ग कर** – कौटिल्य के अनुसार राजा को अपने अन्तःपाल (सीमा के रक्षकों) के माध्यम से व्यापारियों से मार्ग कर वसूलना चाहिए। व्यापार के सामान से भरी एक गाडी पर 1¼ पण, पशु पर 1/2 पण, छोटे पशुओं पर 1/4 पण तथा मनुष्य के कंधे पर ढ़ोये गये सामान पर एक माष कर लगता था।

5. **पशु कर** – मुर्गे और सूअर पालने वाले उनकी आय का आधा हिस्सा राज्य को कर के रूप में देवें। भेड़–बकरी पालने वाले छठा हिस्सा, गाय, भैंस, गधा एवं ऊट पालने वाले आय का दसवां हिस्सा राज्य को कर देवें।

6. **आपातकालीन कर** – राज्य पर विपदा आने पर कौटिल्य ने आपातकालीन करों के लिए विधान किया है। कौटिल्य के अनुसार कोष खाली होने पर राजा धनिकों पर कर लगा सकता है। विपत्ति के समय राजा, व्यापारियों, वैश्याओं, पशुपालकों से विशेष याचना करके धन ले सकता है।

करारोपण के नियम (Connons of Taxation) – कौटिल्य के अर्थशास्त्र में करारोपण के अनेक नियमों का वर्णन है जो कर की दर, राशि, वसूली का ढंग और कर लगाने के तरीकों से सम्बन्धित है।

1. **उचित समय पर कर वूसली** – कौटिल्य के अनुसार कृषि से कर तभी वसूला जाना चाहिए जब फसल पकी हो। राजा को असमय कर लगाकार धन संग्रह नहीं करना चाहिए।

2. **उचित एवं न्यायपूर्ण करारोपण** – राजा अपनी मनमानी से कर वूसली नहीं करे। आपत्ति के समय राजा कोभारी कर लगाने के लिए प्रजा से स्नेहपूर्वक तथा एक ही बार कर लेना चाहिए तथा अनुपजाऊ भूमि पर तो भारी कर लगाना ही नहीं चाहिए। राजा को प्रजा से कर कोयला बनाने के लिए वृक्ष को जड सहित काटने वाले की भांति न होकर पुष्प संचय करने वाले माली की नीति का अवलम्बन करना चाहिए।

3. **सामर्थ्य के अनुसार करारोपण** – कौटिल्य के अनुसार सभी व्यक्तियों से उनकी हैसियत के अनुसार कर लेना चाहिए।

4. **वित्तीय अनुशासन को प्रमुखता** – कौटिल्य अपव्यय के विरोधी थे। उनका मत था कि प्रजा से जितना कर लिया जाए वह सम्पूर्ण धन राजकोष में जमा होना चाहिए। कौटिल्य राज्य कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में कहते है कि ''जैसे जीभ पर रखे हुए मधु या विष का स्वाद लिए बिना नही रहा जाता, उसी प्रकार धन एकत्र करने वाला अधिकारी भी धन लिए बिना नहीं रह सकता। आकाश में उड़ने वाले पक्षी की गति का पता लगाया जा सकता है पर गुप्तरूप से धन का अपहरण करने वाले राज्य कर्मचारी का पता नहीं लगाया जा सकता है। अतः अच्छी तरह परीक्षा करके ही राजस्व कर्मचारी नियुक्त करने चाहिए।''

(B) सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure) – एक और जहां अर्थशास्त्र में राजकीय आय के स्त्रोतों का उल्लेख है वहीं दूसरी ओर आचार्य कौटिल्य ने सार्वजनिक व्यय का भी विवेचन किया है। सार्वजनिक व्यय की प्रमुख मदों में धार्मिक कार्य, अधिकारियों के वेतन एवं पेंशन का भुगतान, सैन्यशक्ति का संगठन, कारखानों का प्रबंध, श्रमिकों के वेतन का भुगतान, कृषि पर व्यय, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना,सड़कों व नहरों का निर्माण, जंगलों की सुरक्षा पर व्यय, पशुओं पर व्यय, राजकीय गृहकार्यो का प्रबंध आदि को शामिल किया गया है।

(C) बचत की अवधारणा (Concept of Savings) – कौटिल्य ने बचत की अवधारणा को भी प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार राज्य के आय–व्यय का भलीभांति हिसाब करने पर जो शेष रहता है वह धन 'नीवी' (बचत) कहलाता है। बचत दो प्रकार की होती है (1) प्राप्त (2) अनुवृत। प्राप्त वह है जो राजकीय खजाने में जमा हो (वास्तविक बचत)। अनुवृत वह है जो खजाने में जमा किया जाने वाला हो (प्रत्याशित बचत)।

(D) आय व्यय का लेखांकन (Accounting of Income and Expenditure) – कौटिल्य के अनुसार सार्वजनिक आय–व्यय का लेखा रखना राजा के लिए अनिवार्य है। उनके अनुसार कोषाध्यक्ष को नगर या जनपद से प्राप्त होने वाली आय की अच्छी

तरह जानकारी होनी चाहिए। यदि उससे पिछले सौ वर्ष की आय का लेखा जोखा पूछा जाए तो तत्काल ही वह उसकी समुचित जानकारी दे सके। बचे हुए धन को सदा कोष में दिखाता रहे। राजा को कोष पर सर्व प्रथम ध्यान देना चाहिए। उनके अनुसार आय – व्यय निरीक्षक अक्षपटल (एकाउन्टेन्ट्स ऑफिस) का निर्माण करावें, आय व्यय के लेखों की नियमित व्यवस्था करावें। सभी कार्यालयों के अध्यक्ष आषाढ के महीने में वर्ष की समाप्ति पर प्रधान कार्यालय में आकर हिसाब का मिलान कर राजकीय आय–व्यय व बचत को प्रजाजनों को समझाए। आय–व्यय रजिस्टर में माह, पक्ष एवं दिन, काल, लेखक का नाम तथा लेने वाले का नाम अंकित हो। इसी प्रकार व्यय का लेखा भी तैयार करावें तथा अंत में नीवी (बचत या शेष) का पूर्ण विवरण तैयार रखना चाहिए। उन्होंने राजकीय आय–व्यय में गड़बड़ी करने पर लेखाधिकारियों को दण्डित करने का प्रावधान किया है। उनके अनुसार प्राप्त आय को रजिस्टर में न चढाना, नियमित कर को रिजस्टर में चढाकर भी खर्च न करना और प्राप्त बचत के संबंध में मुकर जाना, यह तीन प्रकार का 'अपहार' कर चुराने वाला (Abejilment) है। अपहार के द्वारा राजकोष को हानि पंहुचाने वाले अध्यक्ष को हानि से बारह गुना दण्डित करना चाहिए। इस प्रकार कौटिल्य की कर प्रणाली में विविधता, समानता, न्यायशीलता, लोचशीलता आदि सभी गुण विद्यमान थे तथा कर से प्राप्त आय को कल्याणकारी कार्यों पर व्यय करने का प्रावधान भी किया था।

कृषि व्यवस्था
(Agriculture System)

कौटिल्य ने अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में कृषि को विशेष महत्व दिया है। उनके अनुसार राजा को अच्छा कृषि अधिकारी नियुक्त करना चाहिए जो अनाज, फलों, सब्जियों, कपास आदि का अच्छा बीज उनकी फसलों के लिए उचित समय पर इकट्ठा करे। जिस भूमि पर कृषि न हो सके वहां पशुओं के लिए चारागाह आदि बनवा दिए जाने चाहिए। कौटिल्य के अनुसार मौसम के अनुरूप बीज होने चाहिए। उत्पादन बढ़ाने के लिए खेतों में घी, शहद, दूध का खाद वनस्पतियों में डालने का धर्मशास्त्रों में वर्णन किया गया है। वे कपास, आम आदि के बीजों को गोबर के साथ मिलाकर फिर बोने की सलाह देते हैं। उनके अनुसार खेती में गंदा खाद नहीं डालना चाहिए तथा उत्तम खाद का ही प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई – कौटिल्य के अनुसार राज्य को नदियों पर बांध, तालाब बनाकर सिचांई की व्यवस्था करनी चाहिए। कौटिल्य के अनुसार नदी, झील, तालाब तथा कुओं से सिचांई करने पर उपज का चौथा भाग सिचांई कर के रूप में राजा को देना चाहिए। उन्होंने बांधो व नहरों को नुकसान पहुंचाने वालों को दण्ड देने की व्यवस्था का प्रतिपादन भी किया है।

कृषि ऋण व सहायता – कौटिल्य राजा को निर्देश देते है कि वह अन्न, बीज, बैल आदि के लिए किसानों को धन आदि देकर सहायता करें तथा फसल कटने के बाद उधार ली गयी रकम व वस्तुओं को प्राप्त करें। योग्य तथा अच्छे किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए राजा को 'ऋण पर अनुदान' भी देना चाहिए। उनके अनुसार किसानों को स्वास्थ्य वृद्धि तथा रूग्णता निवारण हेतु सीमित धन देना चाहिए ताकि वे धन– धान्य में वृद्धि करके राजकोष में वृद्धि करें।

पशुपालन – अर्थशास्त्र में गो, भैंस आदि पालतू पशुओं की देखरेख के लिए 'गोध्यक्ष' नामक अधिकारी की नियुक्ति का वर्णन मिलता हैं। पशुओं के चरने के लिए गोचर भूमि का उल्लेख किया गया है। पशुओं को चराने वाले ग्वालों के लिए मजदूरी निर्धारित की गयी थी। प्रत्येक पशु के लिए एक–एक पण वार्षिक पारिश्रमिक का निर्धारण किया गया है। कौटिल्य पशुधन की प्रधानता को देखते हुए उनके खाने पीने के प्रबंध से लेकर उन्हें क्षति पहुंचने वालों के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही के विधानों का उल्लेख करते हैं।

मजदूरी निर्धारण व्यवस्था एवं सामाजिक सुरक्षा
(Wage determination system & social security)–

कौटिल्य ने विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए श्रमिकों की मजदूरी तथा उनके कल्याण हेतु अनेक प्रावधानों का प्रतिपादित किया है। उन्होंने विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वाले मजदूरों को दो भागों में विभक्त किया था। (1) कुशल मजदूर (2) अकुशल मजदूर। कुशल–अकुशल श्रमिकों को कार्य के अनुसार वेतन दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार यदि एक धरण चांदी को नई वस्तु बनायी जाए तो श्रमिक को एक 'माषक' वेतन दिया जाना चाहिए, सोने की बनवाई के लिए

8 वां हिस्सा वेतन दिया जाए तथा विशेष कारीगरी करने पर दुगनी मजदूरी दी जावें। कौटिल्य के अनुसार जिन श्रमिकों का वेतन पहले से तय नहीं हो उन्हें उनके कार्य तथा समय के अनुसार वेतन दिया जाना चाहिए। सूत व्यवस्था के अध्यक्ष नियत कार्यकाल तथा निश्चित वेतन के अनुसार ही कारीगरों को कार्य पर नियुक्ति करे और सूत की मोटाई तथा गुणवत्ता के अनुसार ही महिला मजदूरों की मजदूरी निश्चित करे।

मजूदरी निर्धारण के सिद्धान्त

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मजदूरी निर्धारण के अनेक सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य की वेतन निर्धारण की अवधारणा गतिशील अवधारणा थी जिस कारण उन्होंने अलग–अलग व्यवसायों, कार्यो व श्रमिकों की उत्पादकता के आधार पर अलग–अलग निमयों की व्यवस्था की।

1. **मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त (Cost of Living theory of wages) –** कौटिल्य कहते है कि एक मजदूर की मजदूरी इतनी पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए कि जिससे वह अपने आपको शारीरिक सुविधाएं दे सके और अपने मालिक की सेवा पूरे उत्साह व निष्ठा के साथ कर सके तथा वह किसी प्रकार के लालच एवं असंतुष्टि से मुक्त रह सके। कौटिल्य का यह विधान मजदूरी के जीवन निर्वाह सिद्धान्त की और संकेत करता है।

2. **मजूदरी की योग्यता व कार्यकुशलता का सिद्धान्त (Ability theory of wages)–** अलग–अलग मजदूरी की योग्यता अलग–अलग होती है। कुशल व अकुशल मजदूरों की मजदूरी एक समान नही दी जा सकती है। कौटिल्य राजा को सुझाव देते हैं कि राजा को विशेष योग्यता वाले सरकारी कर्मचारियों को उनके ज्ञान व विशेषीकरण के आधार पर मजदूरी व भत्ते निर्धारित करने चाहिए।

3. **मजदूरी का उत्पादकता का सिद्धान्त (Productivity theory of wages) –** कौटिल्य स्पष्ट रूप से कहते है कि मजदूर का वेतन उसके द्वारा किए गये उत्पादन की मात्रा तथा उस उत्पादन में लगे समय के अनुपात में होना चाहिए। केवल उसी कार्य का वेतन मिलना चाहिए जो मजदूर द्वारा किया जा चुका हो। सूत कातने वाले को मजदूरी सूत की मोटाई, किस्म अर्थात उत्पादन की गुणवत्ता देखकर देनी चाहिए। वे सरकारी कर्मचारियों को भी योग्यता एवं कार्यक्षमता के अनुरूप कम या अधिक वेतन देने का विधान करते हैं।

4. **वेतन का प्रथागत सिद्धान्त (Customary theory of wages) –** कुछ ऐसे व्यवसाय थे जिनमें मजदूरी निर्धारण का कोई निश्चित नियम नही था ऐसे व्यवसायों में प्रथा के अनुसार नकद या वस्तु के रूप में मजदूरी दी जानी चाहिए। कौटिल्य कहते है कि कारीगर, नट, चिकित्सक, वकील, नौकर को वैसा ही वेतन दिया जाए जैसा कि अन्यत्र दिया जाता है अथवा जो भी वेतन कुशल पुरूष निश्चित कर दे।इसके अलावा कौटिल्य ने कार्य संस्कृति पर भी बल दिया है। उनके अनुसार यदि कोई श्रमिक वेतन लेकर भी कार्य नहीं करे तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिए। कौटिल्य लिखते है कि वेतन कार्य करने का दिया जाता है खाली बैठने का नहीं। कार्य पर उपस्थिति मात्र से ही मजदूरी नही दी जानी चाहिए। ठीक से कार्य नही करने वाले मजदूरों की सात दिन की मजदूरी दबाए रखनी चाहिए। इतने पर भी वह ठीक से कार्य नहीं करे तो उसका कार्य दूसरों को दे देना चाहिए अर्थात कार्य से हटा देना चाहिए।

5. **मजदूरी का भागेदारी सिद्धान्त (Share theory of wages) –** कुछ ऐसे व्यवसाय जहां पर पहले से ही मजदूरी की दर निर्धारित नहीं की जा सकती हो वहा एक ऐसी परम्परा रही है कि मजदूर को उत्पादनों से एक निश्चित हिस्सा दिया जाता था। चाणक्य के अनुसार किसान का नौकर अनाज का, ग्वाले का नौकर घी का तथा बनिए का नौकर अपने द्वारा व्यवहार की हुई वस्तुओं का दसवां हिस्सा ले, बशर्ते उनका वेतन पहले तय नहीं हुआ हों। कौटिल्य के अनुसार राज्य द्वारा कर्मचारियों के वेतन निर्धारण के लिए राज्य की आवश्यकता, धर्म तथा नैतिकता, सेवा योग्य वेतन, राज्य के प्रति निष्ठा, नौकरों के गुण, कार्य का सम्पादन आदि कारको को ध्यान में रखना चाहिए तथा कभी भी राज्य को अपनी आय का एक चौथाई भाग से अधिक वेतन मद पर व्यय नहीं करना चाहिए।

सामाजिक सुरक्षा प्रावधान (Provisions of social security) – कौटिल्य ने न केवल मजदूरी को कार्य एवं उत्पादकता से जोड़ा तथा कार्य संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन किया बल्कि मजदूरों के कल्याण तथा सुरक्षा हेतु अनेक योजनाओं का प्रावधान भी किया है। जिन मजदूर कल्याणकारी योजनाओं का कौटिल्य ने विवेचन किया है उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित है –

1. **पेंशन योजना –** कौटिल्य के अनुसार यदि कार्य करते हुए किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाए तो उसका वेतन पेंशन के रूप में उसके पुत्र–पत्नि को दिया जाना चाहिए। पेंशन के अलावा राजा को मृत कर्मचारी के बच्चों, वृद्धों तथा बीमार व्यक्तियों को आर्थिक सहायता के अलावा उनके घरों में मृत्यु, बीमारी या बच्चा होने पर उनकी आर्थिक सहायता करनी चाहिए। कौटिल्य का यह प्रावधान सरकार के अपने कर्मचारियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण को इंगित करता है।
2. **अवकाश के नियम –** कौटिल्य कहते हैं कि यदि त्यौहारों या छुट्टी वाले दिनों में महिला मजदूरों से कताई बुनाई का कार्य करवाया जाता है तो उन्हें भोजन, दाल, तथा सामान के अलावा अतिरिक्त मजदूरी का भुगतान किया जाना चाहिए। मजदूर आकस्मिक कार्य आने पर, बीमार होने पर या किसी विपत्ति में फंसने पर आकस्मिक अवकाश ले सकता है अथवा अपनी एवज में किसी दूसरे व्यक्ति को भेजकर छुट्टी ले सकता है।
3. **गरीब तथा असहायों को रोजगार में प्राथमिकता –** कौटिल्य ने यह प्रावधान किया था कि विधवा, अपाहिज महिलाएं, कलाकार आदि को कताई बुनाई के कार्यों में राजा को प्राथमिकता से रोजगार देना चाहिए। कौटिल्य ने कताई बुनाई कार्य में ओवर टाईम का भी प्रावधान किया था। कारीगरों के परिवार के सदस्य अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते थे। नौकरों को यथोचित वेतन प्राप्त होना चाहिए। स्थायी व अस्थायी कर्मचारियों की योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार कम या अधिक वेतन प्राप्त होना चाहिए। कर्मचारियों के वेतन तथा भत्तों के संबंध में राजा को बारीकी से विचार करना चाहिए।

श्रमिक संघ (Labour Unions) – कौटिल्य ने विभिन्न संघो का उल्लेख करते हुए उन्हे अत्यन्त शक्तिशाली बताया है। उन्हें श्रेणी, कुल, गण या संघ नामो से पुकारा जाता था। इन संघो के माध्यम से राज्य की आर्थिक एवं गैर आर्थिक क्रियाओं पर विचार किया जाता था। ये संघ अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करते थे। उन्हें हम आधुनिक श्रमिक संगठनों के रूप में देख सकते है। कौटिल्य ने संघो के मुख्यतः निम्न प्रकार बताए है – (1) बुनकर (2) खान कार्यकर्ता संघ (3) पाषाण कलाकारी (4) बढईगिरी (5) पुरोहित (6) गायक (7) न्यूनतम कलाकार (8) क्रय–विक्रयकर्त्ता (9) सेवा संघ आदि।

व्यापार एवं वाणिज्य
(Trade & Commerce)

विनिमय व्यवस्था – कौटिल्य के अनुसार विनिमय वस्तुओं तथा मुद्रा दोनों के माध्यम से होता था। किसी वस्तु के बदले दूसरी वस्तु को लेने की प्रक्रिया को वस्तु विनिमय कहते है। कौटिल्य के अनुसार एक अनाज देकर उसके बदले दूसरा अनाज लेना लाभकारी वस्तु विनिमय (परिवर्तक) कहलाता है। कौटिल्य ने मौद्रिक विनिमय का भी वर्णन किया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में चार प्रकार की मुद्राओं का वर्णन किया है (i) सोने के सिक्के (ii) कार्षापण या पण या धरण (चांदी का) (iii) मानक तांबे का तथा (iv) कांकणी तांबे का। उन्होंने सभी मुद्राओं को दो श्रेणियों बांटा है–प्रथम कोटि में कोष प्रवेश्य मुद्राएं आती थी, सम्पूर्ण राज कार्यो में इन्हीं मुद्राओं का प्रयोग होता था। द्वितीय कोटि में व्यावहारिक मुद्राएं थी। जनता का साधारण लेनदेन इन्ही मुद्राओं द्वारा हो सकता था। परन्तु ये राजकीय कोष में प्रवेश नही कर सकती थी। मुद्रा निर्माण केवल सरकारी टकसाल में होता था। कोई भी व्यक्ति अपनी धातु टकसाल में ले जाकर अपने लिए मुद्राएं बनवा सकता था। इसके लिए निश्चित शुल्क देना पड़ता था। टकसाल के अधिकारियों के नाम 'सौवर्णिक' तथा 'लक्षणाध्यक्ष' थे।

व्यापार की सुविधा के लिए उचित मुद्रा व्यवस्था एवं नाम तौल की व्यवस्था की गयी थी। कौटिल्य ने द्रव्य के दो कार्य माने है (1) विनिमय का माध्यम एवं (2) कोष में धन जमा करने के लिए विधि ग्राह्य माध्यम। बांटो पर चिन्ह लगे हुए होते थे। उन्होंने 16 प्रकार के तराजुओं का उल्लेख किया है।

कौटिल्य ने सोना–चांदी, भारी वस्तुओं, लम्बाई नापने, वस्त्र नापने आदि का वर्णन किया गया है। माप और तौल की जांच के लिए राजा को सरकारी अधिकारी 'पौतवाध्यक्ष' की नियुक्ति करनी चाहिए।

वस्तुओं की कीमत निर्धारण (Price determination of goods and services) – कीमत निर्धारण के क्षेत्र में कौटिल्य ने न्यायपूर्ण अथवा उचित कीमत की अवधारणा का प्रतिपादित किया है। उन्होंने न्यायपूर्ण कीमत में वस्तु की लागत तथा उचित लाभ को शामिल किया है। न्यायपूर्ण कीमत न तो समाजवादी अर्थव्यवस्था की तरह उत्पादक की प्रेरणा को कम करती है और न ही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तरह उपभोक्ता की जेब पर भार डालती है। यदि कीमत लागत से नीची रहती है तो उत्पादक उत्पादन करना बंद कर देंगे तो बेरोजगारी फैलेगी, दूसरी तरफ कीमते उंची होने पर उपभोक्ता मांग कम देंगे। अतः दोनो ही स्थितियों में उत्पादन में कमी होने पर बेरोजगारी बढेगी। कौटिल्य के अनुसार वस्तुओं की कीमत का निर्धारण राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी' पण्याध्यक्ष' तथा 'संस्थाध्यक्ष को करना चाहिए। वस्तुओं की कीमत के निर्धारण के लिए कौटिल्य पण्याध्यक्ष (वाणिज्य के अध्यक्ष) को सुझाव देते हैं कि उसे यह पता लगाना चाहिए कि वस्तु की मांग बाजार में है या नहीं। कौटिल्य कहते हैं कि कीमतों में उच्चावचन मांग व पूर्ति से जुड़ा हुआ है। वस्तु की कीमत में वृद्वि मांग बढ़ने से होती है तथा वस्तुओं की पूर्ति बढने से कीमतें घटती हैं। इस प्रकार कौटिल्य वस्तु के मूल्य निर्धारण में मांग व पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या के साथ राजकीय नियन्त्रण की भी व्यवस्था करते है। कौटिल्य के अनुसार वस्तुओं की कीमत को कई तत्व प्रभावित करते हैं। समाज, वेतन, परिवहन व्यय, किराया आदि व्ययों का प्रतिदान तय कर वस्तुओं का मूल्य तय करें। कौटिल्य के अनुसार संस्थाध्यक्ष (बाजार अध्यक्ष) को अन्य तत्वों के साथ समाज का भी ध्यान रखना चाहिए। वे सुझाव देते हैं कि दूध, सब्जियां आदि शीघ्रनाशक वस्तुओं को जितना जल्दी हो सके किसी भी कीमत पर किसी भी स्थान पर तथा किसी भी मूल्य पर बेच देना चाहिए क्योंकि ये वस्तुएं शीघ्र नष्ट हो जाती है। कौटिल्य कहते है कि यदि व्यापारियों तथा मजदूरों की तरफ से कीमतें बढती है तो यह न्याय सिद्धान्त के विपरीत है। अतः वस्तुओं की कीमत का निर्धारण देश तथा समय के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए।

बाजार की व्यवस्थाएं तथा उनका नियमन – कौटिल्य विश्व का प्रथम चितंक था जिसने बाजार को नियमित करने के लिए विस्तृत एवं सुनियोजित योजना प्रस्तुत की। उन्होंने मिलावट व धोखाधड़ी से बचाने, तस्करी व कालाबाजारी से बचाने, आगामी विक्रय को रोकना, सामान बेच देने के बाद सामान नहीं देना आदि अव्यवस्थाओं को रोकने के लिए पांच प्रकार के अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया–

1. **पण्याध्यक्ष –** यह अधिकारी वस्तुओं का मूल्य निर्धारण एवं उनकी गुणवत्ता को देखता था तथा व्यापारियों की क्रियाओं पर निगरानी रखता था।
2. **शुल्काध्यक्ष –** यह राज्य में व्यापारियों से चुंगी वसूलने, माल पर मोहर लगाने तथा माल की तौल व बिक्री आदि का कार्य करता था।
3. **संस्थाध्यक्ष** – मिलावट को रोकने, घटिया वस्तुओं की बिक्री तथा कम तौल करने वालों को दण्डित करता था।
4. **पौतवाध्यक्ष** – इसका मुख्य कार्य तौल व माप जारी करना था।
5. **अन्तःपाल –** राज्य के अन्दर तथा विदेशों मे आने जाने वाले माल की निगरानी का कार्य करता था। कौटिल्य ने मिलावट को रोकने के लिए भारी जुर्माने का प्रावधान किया है। उनके अनुसार अधिकृत व्यक्ति ही खाद्यान्नों का संग्रहण या व्यापार कर सकता है तथा वस्तुओं का विक्रय बाजार में ही होना चाहिए उत्पादन स्थान पर नहीं। कौटिल्य ने उत्पादकों को संरक्षण देने के लिए यह भी व्यवस्था की है कि यदि कभी मांग की तुलना में पूर्ति अधिक हो जाए तो बाजार अध्यक्ष को संग्रह करके बेचना चाहिए। कौटिल्य कहते है कि यदि व्यापारी आपस में मिलकर किसी वस्तु को अनुचित कीमतों पर खरीदे या बेचे तो उनमें प्रत्येक पर एक –एक हजार पण जुर्माना किया जाए। व्यापारियों द्वारा सट्टेबाजी व मुनाफाखोरी करके लाभ कमाने पर उन्होंने लाभ के नियतन का सुझाव दिया है। उनका कहना है कि घरेलू वस्तुओं पर 5 प्रतिशत तथा विदेशी वस्तओं पर 10 प्रतिशत से अधिक लाभ नहीं लेना चाहिए। इससे अधिक लाभ लेने पर 200 पण दण्ड का विधान किया है।

व्यापार – कौटिल्य कहते हैं कि राज्य में उत्पन्न वस्तुओं की बिक्री का प्रबंध एक निश्चित स्थान पर होना चाहिए जबकि विदेशों में उत्पन्न वस्तुओं का विक्रय अनेक स्थानों पर करना चाहिए ताकि जनता को कष्ट ना हो। अनेक स्थानों पर बेची जाने वाली वस्तुओं को व्यापारी एक ही मूल्य पर बेचे। व्यवसायियों को राज्य का पूर्ण संरक्षण होना चाहिए। कौटिल्य विदेशों से ऐसी वस्तुएं आयात करने के पक्ष में थे जो आवश्यक थी। अतः वे विदेशी व्यापार पर करों में छूट के साथ राज्य द्वारा ऋण देने का विधान भी करते हैं। समुद्र से होने वाले जल मार्गो को कौटिल्य ने 'समानपथ' तथा समुद्र से आने जाने वाले जहाजों को 'प्रवहण' नाम दिया है।

कौटिल्य ने राज्य व्यापार को प्रधानता दी पर राज्य व्यापार को जनता के हित में व्यवस्थित किया था। आयात निर्यात को प्रोत्साहित करने की नीति के साथ कौटिल्य ने कुछ वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने का विधान किया। उनके अनुसार अस्त्रशस्त्र, अश्व तथा अन्न आदि का निर्यात वर्जित है तथा इन वस्तुओं का आयात निःशुल्क एवं कर मुक्त था। कौटिल्य के अनुसार व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य को जल व स्थल मार्ग और बड़े–बड़े बाजारों या मण्डियों का निर्माण करना चाहिए। राज्य व्यापारिक मार्गो पर व्यापारियों की सुरक्षा करे। बड़े–बड़े नगरों का निर्माण कर वहां बिक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह करके उनके क्रय विक्रय का प्रबंध करना चाहिए। कौटिल्य ने व्यापार से प्राप्त लाभ को भी निर्धारित किया था। कौटिल्य ने कीमतों के निर्धारण तथा क्रय–विक्रय की गतिविधियों को एक महत्वपूर्ण दिशा दी है जिससे आम लोगो पर अनावश्यक भार नही पडे तथा उन्हे नुकसान नहीं उठाना पडे। आवश्यक वस्तुएं लोगो को उचित कीमतों पर बिना परेशानी प्राप्त होती रहे।

महत्वपूर्ण बिन्दू

- कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रणेता माने गये है उन्हें चाणक्य, विष्णुगुप्त आदि नामों से भी जानते हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ लिखा।
- अर्थशास्त्र की रचना का काल 321 एवं 300 ई.पू. के बीच माना जाता है।
- कौटिल्य ने ज्ञान की चार शाखाओं में वार्त्ता (अर्थशास्त्र) को अधिक महत्व दिया है जिसमें कृषि, पशुपालन, उद्योग एवं व्यापार को प्रधानता दी गयी है।
- कौटिल्य ने धर्म, अर्थ तथा काम में अर्थ को प्रधानता दी है।
- करारोपण के नियम–उचित समय पर वसूली, कर निर्धारण में मनमानी का निषेध, सामर्थ्य के अनुरूप कर, वित्तीय अनुशासन को प्रधानता।
- कृषि राज्य आय का प्रमुख स्रोत थी। लगान उत्पादन का 1/6 भाग राजा को दिया जाता था।
- शुल्क लेने वाले अधिकारी को 'शुल्काध्यक्ष' कहा जाता था। कौटिल्य ने शुल्क के तीन भाग किए है–बाह्य,अभ्यान्तर एवं आतिथ्य।
- सार्वजनिक व्यय की मदों में धार्मिक कार्य, अधिकारियों का वेतन, कृषि पर व्यय, सड़कों व नहरों का निर्माण, जंगलों की सुरक्षा पर व्यय, पशुओं पर व्यय शामिल है।
- कृषि व्यवस्था–कृषि की देखभाल के लिए कृषि अधिकारी की नियुक्ति, खाद्य, सिंचाई, कृषि ऋण व सहायता तथा ऋणों पर अनुदान की व्यवस्था।
- मजदूरी का नियम व सामाजिक सुरक्षा–मजदूरी निर्धारण सिद्धांत, उत्पादकता का सिद्धांत, वेतन का प्रथागत सिद्धांत, मजदूरी का भागेदारी सिद्धांत।
- सामाजिक सुरक्षा प्रावधान–पेंशन योजना, अवकाश के नियम, गरीब तथा असहायों को रोजगार में प्राथमिकता।
- वाणिज्य–व्यापार – विनिमय व्यवस्था वस्तुओं की कीमत का निर्धारण, राजा द्वारा नियुक्ति पण्याध्यक्ष तथा संस्थाध्यक्ष अधिकारियों द्वारा होना चाहिए। कीमत निर्धारण में मांग व पूर्ति के अलावा सरकार द्वारा राजकीय नियंत्रण की व्यवस्था हो।
- बाजार की अव्यवस्थाओं के नियमन हेतु अधिकारियों की नियुक्ति जैसे पण्याध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष, अन्तःपाल, शुल्काध्यक्ष।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. कौटिल्य द्वारा वर्णित ज्ञान की किस शाखा में आर्थिक विषयों का अध्ययन किया –
(अ) त्रयी

(ब) वार्त्ता

(स) आन्वीक्षिकी

(द) दण्डनीति ( )

2. कौटिल्य ने धर्म का मूल किसे कहा है–

(अ) अर्थ (ब) काम

(स) मोक्ष (द) कोई नहीं ( )

3. योग्य तथा अच्छे किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य द्वारा किस सहायता की व्यवस्था की है–

(अ) सिंचाई व्यवस्था

(ब) अच्छे बीजों की व्यवस्था

(स) ऋण पर अनुदान

(द) अच्छे पशुओं की व्यवस्था ( )

4. कौटिल्य की शासन व्यवस्था में मिलावट रोकने, घटिया वस्तुओं की बिक्री तथा कम तौल करने वालों पर निगरानी निम्न में से कौनसा अधिकारी रखता है–

(अ) पण्याध्यक्ष (ब) अन्तःपाल

(स) पौतवाध्यक्ष (द) संस्थाध्यक्ष ( )

5. कौटिल्य के अनुसार विदेशों से आयातित माल पर सामान्यतः वस्तु की लागत का कितना हिस्सा चुंगी के रूप में लिया जाना चाहिए –

(अ) 1/4 भाग (ब) 1/5 भाग

(स) 1/6 भाग (द) 1/8 भाग ( )

6. कौटिल्य ने देश में उत्पादित वस्तुओं पर लाभ की दर निशिचित की थी –

(अ) 5% (ब) 10%

(स) 15% (द) 20% ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य ने वार्ता में किन किन आर्थिक क्रियाओं को शामिल किया है ?
2. कौटिल्य के बताए गये शुल्क के तीन विभागों के नाम लिखिए।
3. कौटिल्य के अनुसार बचत (नीवीं) का अर्थ बताइए।
4. कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित पेंशन योजना के प्रावधानों को समझाइए।
5. कौटिल्य के अनुसार राज्य को आयातित माल पर उसकी लागत का कितना हिस्सा चुंगी लेनी चाहिए।
6. कौटिल्य के अनुसार कृषि पर अनुदान कब दिया जाना चाहिए।
7. कौटिल्य ने बाजार की अव्यवस्थाओं के नियमन के लिए किन–किन अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य के मत में वस्तु की कीमत को प्रभावित करने वाले तत्व कौन–कौन से हैं ? नाम बताइए।
2. कौटिल्य द्वारा लिखित पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में वर्णित व्यापार के नियमों को स्पष्ट कीजीए।
3. कौटिल्य द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषा को समझाइए।
4. कौटिल्य द्वारा बताए गये राजकीय आय के स्रोतों को बताइए।
5. कौटिल्य की कर व्यवस्था में करारोपण के नियमों कोसमझाइए।
6. कौटिल्य के मत में अपहार का तात्पर्य क्या है ?
7. कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित कर्मचारियों के अवकाश के नियमों को समझाइये।
8. कौटिल्य द्वारा वर्णित श्रम संघो के मुख्य प्रकार बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य की सार्वजनिक वित व्यवस्था को समझाइए।
2. कौटिल्य के अनुसार शुल्क किसे कहते हैं तथा उनके द्वारा प्रतिपादित शुल्क के निमयों को स्पष्ट किजिए।
3. कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्तों एवं सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों को समझाइए।
4. कौटिल्य के राजकीय आय–व्यय सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट किजिए।
5. कौटिल्य के बाजार संगठन तथा मापतौल की व्यवस्था पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
6. कौटिल्य ने बाजार की अव्यवस्थाओं के नियमन हेतु कौन–कौन से प्रावधान किए थे। समझाइए।

उत्तरमाला

(1)ब (2)अ (3)स (4)द (5)ब (6)अ

संदर्भ ग्रंथ

1. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्: गैरोटा चोरखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
2. वैदिक साहित्य में अर्थपुरूषार्थः राणा अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

अध्याय–4.3

पं. दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचार
(Economic Ideas of Pt. Deen Dayal Upadhaya)

पंडित दीनदयाल उपाध्याय सादा जीवन, उच्च विचार, सरल व्यवहार तथा कर्मठता की साक्षात मूर्ति थे। पंडित जी का जन्म राजस्थान में जयपुर अजमेर रेलमार्ग पर धनकिया गांव में उनके नाना श्री चुन्नीलाल शुक्ला के घर में हुआ। उनके नाना धनकिया के स्टेशन मास्टर थे। उनके माता–पिता का निधन बाल्यकाल में हो गया था अतः उनका पालन पोषण उनके मामा श्री राधारमण शुक्ला ने किया। पंडितजी ने सीकर के कल्याण हाईस्कूल से हाईस्कूल की परीक्षा दी और अजमेर बोर्ड में प्रथम श्रेणी में प्रथम रह कर स्वर्णपदक प्राप्त किया। उनके बाद पंडितजी ने राजस्थान के बिरला कालेज से बी.ए. प्रथम श्रेणी में उतीर्ण की तथा उन्हें दो स्वर्ण पदक प्राप्त हुए। कानपुर के सनातन धर्म कॉलेज से बी.ए. प्रथम श्रेणी से उतीर्ण किया।

पूंजीवादी एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं से त्रस्त विश्व को उन्होंने एकात्मक मानव दर्शन का सिद्धान्त दिया जो न केवल व्यक्ति जीवन से लेकर सम्पूर्ण मानव जाति का चिंतन है अपितु मानवेत्तर प्रकृति तथा उससे भी आगे जाकर समग्र रूप से टोह लेने वाला चिंतन है।

पं. दीनदयाल ने अपने अल्पकालीन जीवन में राष्ट्रीय जीवन व राष्ट्रीय समस्याओं से संबंधित कई लेख एवं पुस्तकें लिखी। उनकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं– (1) चन्द्रगुप्त मौर्य (2) जगदगुरू शंकराचार्य (3) जनसंघ सिद्धान्त और नीति (4) अखण्ड भारत (5) अमेरिकी अनाज पी.एल. 480 (6) भारतीय अर्थनीति (7) बेकारी की समस्या और उसका हल (8) एकात्मक मानववाद (9) टैक्स या लूट (10) राष्ट्र जीवन की समस्याएं (11) विश्वासघात

पं. दीनदयाल ने एकात्मक मानववाद, एकात्मक अर्थनीति, पूंजीवाद, समाजवाद, विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था, मशीनीकरण का निषेध, सहकारी खेती का निषेध, विदेशी पूंजी, अर्थ संस्कृति आदि विषयों पर अपने विचार प्रकट किये है। उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्मक अर्थनीति की विवेचना से पूर्व उनके द्वारा विश्व को दिये गये 'एकात्म मानवदर्शन' के विचार को समझना आवश्यक है।

एकात्म मानव दर्शन
(Intergrated human philosophy)

एकात्म मानव दर्शन का अर्थ है – मानव जीवन तथा सम्पूर्ण प्रकृति के एकात्म संबंधो का दर्शन। यह एक ऐसा जीवन दर्शन है जो मनुष्य का विचार केवल 'आर्थिक मानव' के एकांगी दृष्टिकोण से न करते हुए जीवन के समग्र पहलुओं का तथा मानव के अन्य मानवों एवं मानवेत्तर सृष्टि के साथ परस्पर पूरक एकात्म सम्बन्धों को भी ध्यान में रखकर समृद्व, सुखी जीवन की दिशा दर्शाता है। एकात्म मानव दर्शन भारतीय संस्कृति का जीवन दर्शन है जो शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा से युक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चतुर्विध पुरूषार्थो की साधना करने वाले दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। इन चतुर्विध पुरूषाथों से पूर्ण मानव ही एकात्म मानव दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। एकात्म मानव दर्शन में परिवार संस्था का बहुत महत्व है क्योंकि व्यक्ति को 'अहम' से 'वयम्' की ओर ले जाने अर्थात समष्टि जीवन का पहला पाठ परिवार में ही दिया जाता है। उपाध्याय जी के अनुसार व्यक्ति के बिना समष्टि की कल्पना करना असंभव है और समष्टि के बिना व्यक्ति का मूल्य शून्य है। व्यक्ति की भांति समाज के लिए अर्थ पुरूषार्थ की आवश्यकता होती है। पर्याप्त मात्रा में अर्थ का उत्पादन न हो तो समाज का योगक्षेम सुचारू ढंग से नहीं चलेगा। अर्थ का अभाव या प्रभाव जब समष्टिगत होता है तब समष्टि के सामने भी अनेक समस्याएं खड़ी हो जाती है। हमारे यहां व्यक्ति एवं समाज का अस्तित्व, सुख–दुख, हित–अहित न केवल एक दूसरे से जुड़े हुए है अपितु एक दूसरे पर निर्भर भी है। यहाँ व्यक्तिगत जीवन एवं समष्टिगत जीवन का आपस में तालमेल रखने के उद्देश्य से आश्रम व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था का निर्माण किया था।

एकात्म दर्शन (Integrated philosophy)– पाश्चात्य जीवन दर्शन एवं भारतीय जीवन दर्शन में व्यक्ति एवं समष्टि के बीच

संबंधों के बारे में काफी विरोधाभास है। पाश्चात्य विचारधाराएं अधिकांशतः प्रतिक्रिया के रूप में उद्धित हुई। रोम के धर्मपीठ के एकाधिकारवाद की प्रतिक्रिया के रूप में लोकतंत्र का उदय हुआ तथा लोकतंत्र की अंगुली पकड़कर पैदा हुए पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में समाजवाद तथा कम्युनिज्म का जन्म हुआ। पाश्चात्य लोगों ने व्यक्ति जीवन के ही नहीं, समष्टि जीवन के परिवार, राष्ट्र, विश्व, मानव आदि वृहत घटकों का विचार पृथक–पृथक किया है। पाश्चात्य विचारधारा से केन्द्रित वृत समूहों की आकृति को चित्र–1 से स्पष्ट किया गया है। इस आकृति के केन्द्र में एक बिन्दु है उसे व्यक्ति माने और उस बिन्दू के चारों ओंर के वृत को परिवार चक्र, इससे बाहर बडे चक्र को जातीय समुदाय, उससे आगे राष्ट्र, मानवता तथा विश्व मानव के चक्र बनाये गये है। इस संकेन्द्री सूचना में व्यक्ति केन्द्र बिन्दू है तथा सभी वृत एक दूसरे से विलग है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता, सभी एक दूसरे से संबंधित है। मानव जीवन का इस प्रकार टुकडों में विचार करने की पद्धति के कारण ही आज हम देखते है कि विश्व मानचित्र से साम्यवाद लगभग समाप्त हो गया है तथा पूंजीवाद व्यवस्था में परिवार संस्था समाप्त हो गयी हैं।

चित्र – 1 संकेन्द्री रचना

चित्र– 2 अखण्ड मडंलाकार रचना

नैतिक मूल्यों का संकट खड़ा हो गया है, अमर्यादित उपभोग तथा विश्व भर में केन्द्रित औद्योगिकरण की वजह से पर्यावरण की समस्या खड़ी हो गयी है। मानव एकता का विचार केवल भारतीय संस्कृति ने किया है। हमारे यहां न केवल मानव एकता विचार हुआ है बल्कि सम्पूर्ण प्राणीमात्र तथा चराचर सृष्टि की एकता का विचार हुआ है। यही इस विविधता में एकता का प्रमुख सूत्र है। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है जिसे सर्पिल या मंडलाकार रचना की संज्ञा दी गयी हैं। इसमें प्रत्येक मण्डल उससे आगे व पीछे के मण्डल से संबंध रख कर ही विकसित होता है। इस रचना का प्रारंभ व्यक्ति से होता है। व्यक्ति के बाद परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता तथा विश्वमण्डल तथा आगे परमेष्ठी तत्व के मण्डल तक पहुंचता है। परमेष्ठी तत्व का मण्डल अपने में सभी मण्डलों को समा लेता है। परमेष्ठी तत्व स्वंय भी अन्य मण्डलों में व्याप्त रहता है, क्योंकि परमेष्ठी तत्व सर्वातीत, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी और सर्वमय भी है। यही सर्वन्तर्यामी, सर्वव्यापी परम तत्व की एकात्म मानव दर्शन की आत्मा है। इस प्रकार एकात्म मानव दर्शन एक पूरा जीवन दर्शन है जिसे चित्र–2 से स्पष्ट किया गया है।

एकात्म अर्थ नीतिः एक तीसरा विकल्प (Integrated economic policy : a third choice)– प्रत्येक र्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अपने नागरिकों को समृद्ध एवं सुखी जीवनयापन की सुविधाएं प्रदान करना रहा है। आर्थिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए ये अर्थव्यवस्थाएं जी तोड़ कर पीछे पड़ी हुई है। इस विवशता ने कई तरह के आविष्कारों को जन्म दिया है, आर्थिक साधनों के कई स्रोतों का पता लगा है तथा उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है। आर्थिक समृद्धि की दौड़ में कई अर्थव्यवस्थाएं तो आगे निकल गयी तथा कई पिछड़ गयी। परन्तु अति समृद्धिशाली व अभावग्रस्त दोनों ही अर्थव्यवस्थाएं अलग–अलग तरह की समस्याओं से ग्रस्त हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु पश्चिमी देशों में पूंजीवाद तथा साम्यवादी विचारधाराएं पनपी। पूंजीवाद अपने मूलरूप में आज कहीं भी अस्तित्व में नहीं है तथा साम्यवाद व समाजवाद अपने कई रूप बदलता हुआ विश्व मानचित्र से लगभग समाप्त हो गया है। पूंजीवाद चार सिद्धान्तों पर खडा हुआ है–

1. अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for existence)
2. सर्वोत्तम का अस्तित्व (Survival of the fittest)
3. प्रकृति का शोषण (Exploitation of nature)
4. व्यक्तिगत अधिकार (Individual rights)

उपाध्याय के अनुसार इन चारों सिद्धान्तों के आधार पर पूंजीवाद का विकास हुआ। पूंजीवाद के विकास में एडमस्मिथ एवं कीन्स के विचारों का काफी योगदान रहा। एडमस्मिथ एक जगह लिखते हैं कि ''कभी किसी का भला मत करो भला करना ही है तो तब करो जब ऐसा करने से तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होता है।'' कीन्स ने कहा ''आने वाले कम से कम सौ वर्षो में यदि सच्चाई का उपयोग नही है और असत्य ही उपयुक्त है तो हमे चाहिए कि सच को झूठ और झूठ को ही सच मानलें। अधिकाधिक धन प्राप्त करने की भूख, अधिकाधिक लाभ अर्जित करने की स्पर्धा और उसके लिए बरती जाने वाली दक्षता ही आने वाले कुछ समय के लिए हमारे देवता हैं।'' एडमस्मिथ एवं कीन्स के विचारों ने 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' तथा 'सर्वोत्तम का अस्तित्व' जैसे सिद्धान्तों के कारण पूंजीवादी देशों में जीवन को काफी प्रतिस्पर्धापूर्ण बना दिया। प्रत्येक व्यक्ति कहीं दूसरों से पिछड़े न रह जाय, इस डर से रात–दिन मशीन की तरह काम करने लगा जिससे लोगों के जीवन में रक्तचाप, तनाव, हृदय रोग आदि बढ़ गये है। लोगों को नींद लेने के लिए कम्पोज लेनी पड़ती है। जितनी हत्याएं, बलात्कार, तलाक एवं आत्महत्याएं पूंजीवादी देशों में हो रहे है उतने ये अपराध अन्य देशों में घटित नहीं होते है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के दुष्परिणामों की प्रतिक्रिया में ही मार्क्सवादी अर्थचिंतन सामने आया। 1917 की रूसीक्रांति के बाद यह कहा गया कि यह एक अत्यंत वैज्ञानिक विचारधारा है जिसके सामने सभी विचारधाराएँ समाप्त हो जायेगी और एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जो समतायुक्त एवं सभी प्रकार के शोषण से मुक्त होगा। पर बड़ी मुश्किल से 70 वर्ष बाद ही साम्यवाद का यह महल ढह गया और विश्व मानचित्र से लगभग समाप्त हो गया। भारत में राजनीतिक स्वतंत्रता के 68 वर्ष बाद भी गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, स्फीति, भुगतान असंतुलन आदि कई समस्याएं न केवल विद्यमान है अपितु समय के साथ साथ बढ़ती जा रही है। पं. दीनदयाल जी ने कहा है कि विश्व आज भीषण संभ्रम के चौराहे पर खड़ा है। इस चक्रव्यूह से उसे छुडा सकने वाला क्या कोई तीसरा विकल्प है?

पं. दीनदयाल ने बड़े ही आत्मविश्वास से कहा है कि 'भारतीय संस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत एकात्म अर्थनीति ही ऐसा तीसरा विकल्प बन सकता है। आज पश्चिमी अर्थशास्त्र विज्ञान अधिकाधिक विचार कर मानव की केवल भौतिक समृद्धि बढ़ाने की दिशा में ही सोचता है। अर्थनीति का विचार करते समय आर्थिक बातों के साथ ही कुछ अनार्थिक बातों का भी विचार करना पड़ता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने इन आर्थिकेत्तर बातों पर कोई विचार ही नहीं किया। प्रो. जे. एस. मिल के अनुसार ''यह नहीं कहा जा सकता है कि सभी आर्थिक प्रश्नों का केवल अर्थशास्त्र के आधार पर ही समाधान ढूढ़ा जा सकता है। अनेक आर्थिक प्रश्न ऐसे होते है जिनके महत्वपूर्ण राजनीति व नैतिक पक्ष भी होते है, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।'' आज उसे भौतिक समृद्धि के साथ मानसिक स्वास्थ्य एवं संतोष प्राप्त करा देने वाली संजीवनी की उसे तलाश है। पं. दीनदयाल द्वारा प्रस्तुत एकात्म मानव दर्शन तथा उसके अन्तर्गत एकात्म अर्थनीति में से एक संजीवनी को अनुभव किया जा सकता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा' में अर्थनीति की विवेचना करते हुए एकात्म मानव के अर्थायाम की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'समाज से अर्थ का अभाव व प्रभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को ''अर्थायाम'' कहा गया है। उनके अर्थनीति संबंधित विचार निम्न प्रकार हैं –

(1) **भारतीय संस्कृति में अर्थ –** भारतीय संस्कृति में सदा से ही धर्म को आधारभूत पुरूषार्थ माना गया है और धर्म के आधार पर ही आर्थिक नवनिर्माण के लिए ढ़ांचे की आवश्यकता हैं। वेदों की व्याख्या में धर्म के 12 लक्षणों में श्रम को धर्म का पहला लक्षण बताया है। श्रम को अधिकार देना राज्य का मूलभूत कर्त्तव्य है। अतः श्रम का अधिकार (Right to Work) मनुष्य का सवैंधानिक अधिकार है। राज्य का पहला कर्त्तव्य हैं कि प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता व क्षमता के अनुसार काम करने का अवसर दें। इसी आधार पर पं. दीनदयाल उपाध्याय पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण के संदर्भ में सदैव यह आग्रह करते रहे कि हमें अपना आयोजना लक्ष्य घोषित करना चाहिए 'सबको काम'। इस अवसरो में किसी प्रकार का भेदभाव, न जाति का, न रंग का और न लिंग का होने दे। राष्ट्र के पुननिर्माण की जो भी योजना बना दी जाएं उसका उद्देश्य सभी को काम दिलाना होना चाहिए।

(2) **धन का मनोविज्ञान –** पं. दीनदयाल जी का मत है

कि धन का अभाव मनुष्य को चोर बनाता है। समाज में अर्थ का अभाव अथवा अभावमूलक नियोजन समाज में अधर्म को धर्म बना देता है, वैसे ही अर्थ का प्रभाव भी धर्म का नाश कर देता है इसीलिए वे यह मत प्रतिपादित करते है कि समाज के मानदण्ड ऐसे बनाए जाए कि हर वस्तु पैसे से न खरीदी जा सके। पैसे से ही मूल्य आंकने का परिणाम यह होगा कि दुर्बल की रक्षा ही नहीं हो पायेगी। शरीर शक्ति में दुर्बल, अपनी बुद्धि का उपयोग कर, धूर्तता से धन कमाकर, अपनी रक्षा का मूल्य चुकायेगा (घूसखोरी होगी)। श्रम का रूपये पैसे में मूल्य आंकना असंभव है। श्रम तथा पारिश्रमिक दोनों का अर्थशास्त्र के क्षेत्र में घनिष्ठ संबंध होने पर भी व्यवहार जगत के लिए सर्वमान्य एवं सर्वोत्कृष्ट मूल्य सिद्धान्त निश्चित करना न तो सरल है और न उपादेय ही। श्रम की प्रतिष्ठा उससे मिलने वाले अर्थ के कारण नहीं, अपितु उसके धर्मत्व से है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को दिया गया पारिश्रमिक उसके द्वारा किए श्रम का प्रतिपादन नहीं वरन् उसके 'योगक्षेम' की व्यवस्था है।

(3) **स्वामित्व का सवाल –** व्यक्तिवाद तथा समाजवाद के विचारधारात्मक संघर्ष ने एक नवीन आयाम को जन्म दिया है कि संपत्ति पर व्यक्ति का अधिकार हो अथवा सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो। उपाध्याय सम्पति के स्वामित्व के लिए व्यक्ति व समाज के द्वंद्व को ही गलत मानते हैं। वे कहते हैं कि हर व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है अतः वह समाज की सम्पत्ति के एक हिस्से का 'न्यासी' या 'संरक्षक' है। व्यक्ति स्वयं समाज पुरूष का अंग है अतः वह स्वयं ही समाज की धरोहर है। इसलीए सम्पत्ति पर अमोघ अधिकार तो समाज का ही है। निजी सम्पत्ति के अधिकार के नाम पर समाज के कुछ लोगों के हाथ में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण या सम्पत्ति के सामाजिक अधिकार के नाम पर, राज्य में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को वे समान रूप से गलत मानते हैं। उपाध्याय सम्पति पर न तो व्यक्ति का अमर्यादित स्वामित्व स्वीकार करते हैं और न ही अमर्यादित राज्याधिकार। वे स्वामित्व केंद्रीकरण के खिलाफ हैं अतः वे विकेन्द्रित राज्य व विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था के समर्थक हैं। व्यष्टि व समष्टि के साझेपन में ही मानवता का सुख अन्तर्निहित है अतः सम्पत्ति पर साझा अधिकार ही उपाध्याय के एकात्म मानववाद का दर्शन है।

(4) **पूंजीवाद एवं समाजवाद निषेध –** उपाध्याय कुछ व्यक्तियों के हाथों मे असीमित उत्पादन के सामर्थ के केन्द्रीकरण के प्रबल विरोधी थे। पूंजीवाद की प्रवृति वित्तीय सत्ता को कुछ हाथों में केन्द्रीकृत कर देने की है। यह केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ही पश्चिम के औद्योगिकरण को पनपाती है। उपभोगवाद तथा आर्थिक मानव की पूंजीवादी कल्पनाओं ने आर्थिक जीवन एवं मानव को विभक्त कर दिया है। श्रम एवं आनन्द के बीच एक गहरी खाई पैदा कर दी है। एक स्वतंत्र जुलाहे को समाप्त कर उसे विशाल कारखाने का मजदूर बना दिया गया है। बाजार के स्थान पर विभागीय स्टोर्स, दर्जी के स्थान पर रेडीमेट कपड़ा लाकर रख दिया गया है। आर्थिक क्षेत्र में यह एक प्रकार की डिक्टेटरशिप है। प्राप्त शक्ति तथा प्रचारतंत्र के सहारे उत्पादको के स्वामी सामान्यजन को उसके अधिकार से वंचित करते है। अतः यह आवश्यक है कि उत्पादन के सामर्थ्य की मर्यादा निश्चित की जाए जो कि विकेन्द्रीकरण से ही संभव है। पूंजीवादी व्यवस्था समाज में प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है, सम्यक जीवन का नियोजन नही करती समाज के सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट कर उसे उपभोगवाद के दुश्चक्र में फंसाकर लोलुप बनाती है। श्रम एवं आनन्द के बीच एक गहरी सच्चाई पैदा कर दी है। यंत्र को मनुष्य का सहयोगी बनाने के बजाय उसे यंत्र का पुर्जा बना दिया है।

समाजवाद व्यक्तिवाद के अतिवाद का निषेध करता है। व्यक्ति को अव्यवस्था की ही उपज मानता है। उपाध्याय मानते हैं कि समाजवाद में केन्द्रीकरणवादी पूंजीवादी के सब दोष विद्यमान रहते है। केन्द्रीकरण की प्रवृति मनुष्य के कर्त्तव्य भाव को मारती है उससे 'मजदूर' का भाव जगाती है। मजदूरी का भाव मजबूरी का भाव है, उसमें कर्ता का सम्मान एवं कर्त्तव्य का सुख नहीं रहता।

(5) **आर्थिक लोकतंत्र –** उपाध्याय लोकतंत्र को केवल राजनीतिक जीवन का आयाम नहीं मानते, उनका मत है कि 'प्रत्येक का–वोट' जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निष्कर्ष है वैसे ही 'प्रत्येक को काम' यह आर्थिक प्रजातंत्र का मापदण्ड हैं। काम प्रथम तो जीविका उपार्जनीय हो तथा दूसरे, व्यक्ति को उसे चुनने की स्वतंत्रता हो यदि काम के बदले में राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग से नहीं मिलता हो तो उसके काम की गिनती बेगार में होगी। अतः इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन, न्यायोचित वितरण तथा सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है। पूंजीवाद व समाजवाद के निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के विवाद को उपाध्याय गलत मानते है। इन दोनो ने ही स्वरोजगार क्षेत्र (self employed sector) का गला घोटा है।

आर्थिक लोकतंत्र के लिए यह आवश्यक है – स्वरोजगार क्षेत्र का विकास करना। इसके लिए विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था आवश्यक है।

(6) भारी औद्योगीकरण का निषेध – बडे उद्योगों के उत्पादन के केन्द्रीकरण के कारण तथा मांग एवं पूर्ति पर यंत्रवाद के हावी हो जाने के कारण बडे उद्योग तानाशाही प्रवृति वाले व अमाननीय हो जाते है। उपाध्याय भारी उद्योगों के खिलाफ थे। वे भारी उद्योगों को निम्न कारणों से उन्हें अमानवीय व तानाशाही प्रवृति वाले मानते हैं।

1. इससे भारतीय समाज में समरसता भंग होगी।
2. ये स्वतंत्र उत्पादक शिल्पी के पूरक नहीं वरन् प्रतिकूल हैं।
3. ये प्रत्येक को काम के लक्ष्य के प्रतिकूल हैं तथा प्रौद्योगिक बेरोजगारी बढ़ाते है।
4. ये पूंजी प्रधान है जो भारतीय उत्पादक के सामर्थ्य के बाहर है।
5. इनकी आयात निर्भरता बहुत है जो हमारे भुगतान संतुलन पर भारी बोझा डालते है।
6. इनका बहुत सामाजिक मूल्य चुकाना पड़ता है। शहरीकरण के कारण स्वास्थ्य, आवास, जलापूर्ति आदि की भारी समस्याएं पैदा होती है।
7. इनकी उत्पादन व प्रबंध प्रणाली जटिल है।
8. कृषि व उद्योगों के बीच शोषणकारी व दलाल निकायों को जन्म देते हैं।
9. एक स्थान पर केन्द्रित होने के कारण इससे सार्वदेशिक एवं विस्तृत विकास के मार्ग में बाधा पहुंचाती है।
10. बडे उद्योगों की लॉबी इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि जो देश की राजनीति पर ही कब्जा कर लेते है।
11. बडे उद्योग समाज में विषमता का सृजन कर वर्ग संघर्ष की स्थितियों का निर्माण करते है। इन सबके अलावा बड़े उद्योगों का एक खतरनाक पक्ष यह है कि बड़े उद्योगपतियों की विदेशी पूंजी निवेशकों से सहज ही उनकी दोस्ती हो जाती है। उनका मत है कि हमारे देश को विदेशी पूंजी के बल पर औद्योगीकृत नहीं किया जाना चाहिए। विदेशी पूंजी के राजनीतिक प्रभाव के अलावा आर्थिक प्रभाव भी अशुभ होते है। विदेशी पूंजी का विनियोग स्वदेशी श्रम का शोषण करता है।

(7) अपरमात्रिक उद्योग नीति – उपाध्याय भारी उद्योगों के विरूद्ध होते हुए भी स्वस्थ औद्योगीकरण के विकास के समर्थक थे। अतः वे अपरमात्रिक अर्थात उत्पादन में स्वावलम्बन से कुछ अधिक उत्पन्न करने वाली उद्योग नीति के पक्ष में थे। उद्योग नीति के निम्न पहलू होने चाहिएः–

1. वह सबको काम देने में सहायक हो।
2. उत्पादन के केन्द्रीकरण के बजाय विकेन्द्रीकरण मे सहायक हों।
3. वह भारत की कृषि ग्राम व्यवस्था के लिए पूरक हो।
4. वह गांवो से प्रतिभा पलायन नहीं होने दें।
5. मानव मूल्यों के प्रति घातक प्रभाव वाली न हो।
6. जन श्रम प्रधान नीति हो, यंत्र प्रधान नहीं।
7. उसका विकास पारस्परिक उत्पादक कारीगर व शिल्पी के औजारों के आधार पर हो।

(8) विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था – उपाध्याय के अनुसार अर्थव्यवस्था का आधार हमारे ग्राम तथा जनपद होने चाहिए। ग्रामों को उजाड़ने वाला आर्थिक नियोजन अन्ततः भारत को उजाड़ने वाला सिद्ध होगा। जो व्यवस्थाएं भारी उद्योगों व केन्द्रीकरण के दुश्चक्र मे एक बार फंस गई उसे वापस लौटाना कठिन है।

उनके अनुसार उत्पादक वस्तुएं बड़े उद्योग तैयार करे तथा उपभोग वस्तुएं छोटे उद्योगो द्वारा बनाई जाए। उपाध्याय इस बात से सहमत नहीं हैं, कि छोटे उद्योग आर्थिक दृष्टि से किफायती नहीं होते है। सत्य तो यह है कि किफायती बड़े पैमाने पर उत्पादन से नहीं, अधिक उत्पादन के कारण होती है। अगर हम इतिहास देखें तो ब्रिटेन मे बड़े पैमाने पर कपड़ा तैयार होने पर भी भारत का कपड़ा वहां जाकर सस्ता पड़ता था। जापान की जो वस्तुएं सस्ती बाजार में आकर बाकी माल को निकाल देती है, बड़े कारखानों में नहीं, घरों में बनती है। यदि छोटे उद्योगों की असुविधा दूर कर दी जाए तो बड़े उद्योगों को जो अतिरिक्त सुविधाएं मिलती हैं वे न मिले, तो निश्चित ही छोटे उद्योग बाजी मार ले जाऐंगे। बड़े उद्योगों की किफायतों को भ्रमपूर्ण मानते हुए इनके बारे में उपाध्याय के निम्न विचार हैः–

1. बड़े उद्योगों को किफायतें उचित प्रतियोगिता के कारण नहीं, बल्कि उसे दबाकर डाका डालने वाली व्यापारिक क्रियाओं से प्राप्त होती है।
2. बड़े उद्योग बहुधा मजदूरों का शोषण करते है।
3. एक बार बाजार का आधिपत्य स्थापित करने के बाद उनकी औद्योगिक कुशलता की प्रेरणा नष्ट हो जाती है।
4. ये उद्योग इतने बड़े है कि इनका आर्थिक दृष्टि से संचालन नहीं किया जा सकता हैं। विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था में छोटे व कुटीर उद्योग अर्थव्यवस्था के मेरूदण्ड होंगे, पर उनके अनुसार बड़े उद्योगों की एकदम अवहेलना भी नहीं की जा सकती है। अतः वे बड़े उद्योगों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं, लेकिन उसमें आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए। वे इस बात से सहमत नही थे कि छोटे उद्योग आर्थिक दृष्टि से किफायती नही होते। उनका मत है कि बड़े उद्योगों की किफायत एक भ्रम है वास्तविक किफायती छोटे उद्योागों में ही होती है।

(9) कृषि – पं. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारी राष्ट्रीय आय में लगभग 60 प्रतिशत उत्पादन कृषि से ही प्राप्त होता है। लगभग 70 प्रतिशत लोग कृषि क्षेत्रों से ही अपनी आजीविका प्राप्त करते है। अतः उनके मत में कृषि विकास को सुदृढ़ किए बिना देश का औद्योगीकरण नहीं हो सकता। क्योंकि भारत का किसान केवल अनाज एवं उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल का उत्पादक ही नहीं है वरन् कारखानों के निर्मित माल का बड़ा ग्राहक भी है। हमे खाद्यान्न उत्पादन में स्वावलम्बी बनना चाहिए और स्वावलम्बन कृषि को वरीयता देने से ही हासिल हो सकता है। कृषि में बहुत थोड़ी पूंजी लगाकर अधिक लोगो को रोजगार देने की क्षमता है। उन्होंने इसके लिए बड़ी बांध परियोजनाओं के स्थान पर छोटे–छोटे बांधो को अधिक उपयुक्त माना है। उनके अनुसार छोटी परियोजनाओं के रोके गये पानी में से 95 प्रतिशत पानी खेती के काम आ सकता है जबकि बड़ी बांध परियोजनाओं का केवल 55 प्रतिशत पानी का ही उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा बड़ी बांध परियोजनाएं मुख्यतः पूंजी प्रधान होती है, विदेशों से आयातित सामग्री, तकनीक व साधनों पर निर्भर करती है। इन बड़े बांधों से पानी निकासी भी ठीक ढंग से नहीं हो पाती है। अपनी 'भारतीय अर्थनीति' पुस्तक मे उन्होंने 1951–56 तक के काल में विभिन्न बांध परियोजनाओं के कारण कृषि उत्पादन में हुई वृद्धि की सांख्यिकीय जानकारी प्रस्तुत की है उससे स्पष्ट है कि बड़ी बांध परियोजनाओं पर बजट में स्वीकृत राशि में से 92 प्रतिशत राशि खर्च होकर भी कृषि उत्पादन केवल 47 प्रतिशत बढ़ा जबकि छोटी बांध परियोजनाओं पर उसी अवधि में 63 प्रतिशत खर्च होकर खेती का उत्पादन 91 प्रतिशत बढ़ा। उपाध्याय जी का मत है कि लगातार रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से खेत की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है अतः इनका प्रयोग गोबर आदि की खाद के साथ मिलाकर सीमित मात्रा में करना चाहिए। गोबर को जलाने के बजाय उसे गोबर गैस संयत्र लगाकर ईंधन और खाद के रूप में दोहरा उपयोग करना चाहिए। ऐसा करने से गांवो की ईंधन की समस्या भी हल हो जायेगी और रासायनिक उर्वरकों के कारण होने वाली भूमि का क्षरण भी रूक जायेगा। पं. दीनदयाल सहकारी कृषि के विरूद्ध थे।

उनका विश्वास था कि इसकी परिणति सामुदायिक खेती में होगी, भूमि का आज का स्वामी भूमिहीन मजदूर बन जायेगा एवं लोकतंत्र की अपेक्षा तानाशाही प्रवृति मजबूत होगी। सहकारी खेती हमारे अधिक से अधिक उत्पादन करने के लक्ष्य के विरूद्ध भी जायेगी।

उपाध्याय के अनुसार किसान को उसकी कृषि उपज का उचित मूल्य मिलना ही चाहिए। खेती से उपजने वाले माल तथा कारखाने में तैयार होने वाले माल के मूल्यों में समानता न होने के कारण छोटे उद्योगों एवं श्रमिकों पर त्याग करने की विवशता जबरन लादी जाती है।

(10) विदेशी पूंजी एवं रूपये का अवमूल्यन – हमारे देश में श्रम शक्ति तथा कच्चा माल विपुल मात्रा में उपलब्ध है परन्तु औद्योगिक विकास के लिए पूंजी की कमी है। विदेशी पूंजी मुख्यतः तीन तरह से प्राप्त होती है –

1. विदेशी पूंजीपतियो से व्यक्तिगत रीति से,
2. अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से तथा 3. विदेशी सरकारों से। यह पूंजी ऋण के रूप में अथवा उद्योगों में भागीदारी के माध्यम से प्राप्त होती है।

रूपये का अवमूल्यन जब बाह्यतावश किया जाता है तो उसका परिणाम केवल आयात तक ही सीमित नहीं रहता वरन् उत्पादन, मूल्यों, औद्योगीकरण तथा आर्थिक विषमता पर उसके दूरगामी प्रभाव होता है, वे अपनी पुस्तक 'अवमूल्यन एक महापतन' में लिखते है कि जून 1966 में रूपये का अवमूल्यन विदेशी राजनीतिक दबाव मे किया गया।

विदेशी पूंजी के साथ हमें विवश होकर विदेशों की उत्पादन प्रणाली भी स्वीकार करनी पड़ती है। विदेशी उत्पादन प्रणाली एवं साधन सामग्री के कारण स्वदेशी विज्ञान एवं अनुसंधान कार्य पिछड गये और देश की विदेशों पर निर्भरता बढ़ती गयी।

(11) अर्थ संस्कृति – उपाध्याय के अनुसार मानव जीवन में उत्पादन, वितरण तथा उपभोग ये तीन कृतियां उसके आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है। अनियंत्रित या असंयमित उपभोग, वितरण में विषमता व लूट को प्रेरित करता है, उत्पादन की कोई मर्यादा नहीं होती, यह असांस्कृतिक जीवन है। उपाध्याय की अर्थ संस्कृति का सूत्र है– अपरमात्रिक उत्पादन, समान वितरण तथा संयमित उपभोग।

उपभोग की आवश्यकता एवं अपेक्षित बचत के लिए पर्याप्त उत्पादन को अपरमात्रिक उत्पादन कहते है, यह उत्पादन की मर्यादा है। वितरण ऐसा होना चाहिए कि रोटी, कपडा, मकान, पढाई और दवाई–ये पांच आवश्यकताएं प्रत्येक व्यक्ति की पूरी होनी चाहिए। अधिकतम और न्यूनतम आय का नियत अनुपात नहीं बिगड़ना चाहिए। संयमित उपभोग से तात्पर्य है स्वस्थ शरीर की आवश्यकता के अनुकूल उपभोग। उपभोग में संयम तथा सादा जीवन भारतीय अर्थव्यवस्था का प्राण है। आर्थिक अभाव तथा प्रभाव, दोनों ही उपभोग को असंयमित करते है। अतः अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो जीवन के अर्थायाम की सम्पूर्ति करे।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

- उपाध्याय ने पूंजीवादी एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं से त्रस्त विश्व को एकात्म मानव दर्शन का सिद्धान्त दिया जो न केवल व्यक्ति जीवन से लेकर सम्पूर्ण मानव जाति का चिंतन है अपितु मानवेत्तर प्रकृति एवं उससे आगे जाकर समग्र रूप से टोह लेने वाला चिंतन है।
- एकात्म मानव दर्शन का अर्थ है कि मानव जीवन तथा सम्पूर्ण प्रकृति के एकात्म संबंधो का दर्शन।
- भारतीय संस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत एकात्म अर्थनीति पूंजीवाद व साम्यवाद के विकल्प रूप में तीसरा विकल्प बन सकता है।
- भारतीय संस्कृति में धर्म को आधारभूत पुरूषार्थ माना गया है और धर्म के आधार पर आर्थिक नव निर्माण के लिए ढ़ांचे की आवश्यकता है।
- उपभोगवाद, स्पर्धावाद व वर्ग संघर्ष, इन सबका आधार अनियंत्रित उपभोग है।
- सम्पति पर उपाध्याय न तो व्यक्ति का अमर्यादित स्वामित्व स्वीकार करते हैं और न ही अमर्यादित राज्याधिकार। वे विकेन्द्रित राज्य व विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक थे।
- 'प्रत्येक को वोट' जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निष्कर्ष है, वैसे ही 'प्रत्येक को काम' यह आर्थिक

प्रजातंत्र का मापदण्ड है।

- उपाध्याय भारी उद्योगों के विरूद्ध होते हुए भी स्वस्थ औद्योगिकरण के विकास के समर्थक थे।
- अर्थव्यवस्था का आधार हमारे ग्राम और जनपद होने चाहिए। उपाध्याय की विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था में छोटे व कुटीर उद्योग अर्थव्यवस्था के मेरूदण्ड होंगे।
- बड़ी बांध परियोजनाओं के स्थान पर छोटी बांध परियोजनाएं अधिक उपयोगी तथा कम पूंजी से ज्यादा लाभ प्रदान करती है।
- मानव जीवन में उत्पादन, वितरण तथा उपभोग–ये तीन कृत्तियां उसके आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है।
- विदेशी पूंजी का विनियोग स्वदेशी श्रम का शोषण करता है।
- उपाध्याय की अर्थ संस्कृति का सूत्र है– अपरमात्रिक उत्पादन, समान वितरण तथा सयंमित उपयोग।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. उपाध्याय के अनुसार भारतीय संस्कृति का जीवन दर्शन है –
   (अ) पूंजीवादी दर्शन
   (ब) एकात्म मानव दर्शन
   (स) साम्यवादी दर्शन
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )
2. उपभोगवाद, स्पर्धावाद व वर्ग संघर्ष का आधार है –
   (अ) अनियंत्रित उपभोग
   (ब) अपरमात्रिक उत्पादन
   (स) असमान वितरण
   (द) समाजवाद ( )
3. उपाध्याय भारी उद्योागों के खिलाफ थे, क्योंकि –
   (अ) ये प्रत्येक बड़े काम के लक्ष्य के प्रतिकूल है।
   (ब) इनकी उत्पादन व प्रबंध प्रणाली जटिल है।
   (स) ये पूंजी प्रधान है।
   (द) उपर्युक्त सभी ( )
4. निम्न में से किस सिद्धान्त का संबंध पूंजीवाद से नहीं है –
   (अ) अस्तित्व के लिए संघर्ष
   (ब) सर्वोत्तम का अस्तित्व
   (स) प्रकृति का शोषण
   (द) सर्वे भवन्तु सुखिनः ( )
5. पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने विचारों में कृषि को विशेष महत्व दिया क्योंकि –
   (अ) हमारी राष्ट्रीय आय का 60 प्रतिशत भाग कृषि से प्राप्त होता है
   (ब) उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध करवाती है
   (स) देश खाद्यान्न उत्पादन में स्वावलम्बी हो सकता है।
   (द) उपर्युक्त सभी ( )
6. उपाध्याय के अनुसार निम्न में से कौन सी कृति आर्थिक जीवन को नियंत्रित नहीं करती है –
   (अ) उत्पादन
   (ब) वितरण
   (स) उपभोग
   (द) राजस्व ( )
7. उपाध्याय की अर्थ संस्कृति का सूत्र निम्न में से नहीं है –
   (अ) अपरमात्रिक उत्पादन
   (ब) समान वितरण
   (स) संयमित उपभोग
   (द) असमान वितरण ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पं. दीनदयाल उपाध्याय ने विश्व को कौनसा सिद्धान्त दिया जो सम्पूर्ण मानव जाति का चिंतन है ?
2. एकात्म मानव दर्शन का अर्थ बताइए।
3. पूंजीवाद जिन चार सिद्धान्तों पर खडा है, इनके नाम बताइए।
4. पं. दीनदयाल उपाध्याय सहकारी कृषि के विरूद्ध क्यों थे ? कारण बताइए।
5. अपरामत्रिक उत्पादन किसे कहते हैं
6. उपाध्याय की अर्थ संस्कृति का सूत्र बताइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. एकात्म दर्शन की पश्चिमी व भारतीय संन्दर्भ में विवेचना कीजिए।
2. उपाध्याय के सम्पति पर स्वामित्व संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. उपाध्याय की अपरमात्रिक उद्योग नीति को समझाइए।

4. उपाध्याय बड़ी बांध परियोजना की तुलना में छोटी बांध परियोजनाओं को महत्व क्यों देते थे ?
5. उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'अर्थ संस्कृति' का सूत्र बताइए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं. दीनदयाल उपाध्याय भारी उद्योगों को अमानवीय व तानाशाही प्रकृति का मानते थे। कारण बताइए।
2. उपाध्याय की विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा को समझाइए।
3. उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन को समझाइए।
4. उपाध्याय की एकात्म अर्थनीति को समाझाइए।
5. उपाध्याय की अर्थनीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किजिए।

उत्तरमाला

(1) ब (2) अ (3) द (4) द (5) द (5) द (6) द (7) द

संदर्भ ग्रंथ

1. महेश चन्द शर्मा : दीनदयाल उपाध्याय : कृतित्त्व एवं विचार, वसुधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली
2. शरद कुलकर्णी : प. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, एकात्म अर्थनीति
3. दीनदयाल उपाध्यायः भारतीय अर्थनीतिः विकास एक दिशा, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ
4. एकात्मक दर्शनः दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली
5. दीनदयाल उपाध्याय, अवमूल्यन एक महापतन

अध्याय–4.4

जे.के. मेहता के आर्थिक विचार
(Economic Ideas of J.K. Mehta)

भारतीय आध्यात्मिक परम्परा के अनुशीलनकर्त्ता व उसकी महान परम्परा के परिप्रेक्ष्य में अर्थशास्त्र के विश्व प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री जे.के. मेहता का जन्म 25 दिसम्बर, 1901 को मुम्बई में राजनंद गांव में हुआ। जे.के. मेहता का पूरा नाम जमशेद केर खुशरो मेहता था। मेहता की प्रारम्भिक शिक्षा राजनंद गांव में हुई। हाईस्कूल पास करने के बाद इलाहाबाद में गणित, अंग्रेजी तथा अर्थशास्त्र विषयों के साथ स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। 1925 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम. ए. करने के बाद वहीं शोधकार्य में संलग्न हो गए। 1927 में उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र विभाग में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। मेहता आजीवन अर्थशास्त्र के अध्ययन–अध्यापन से जुड़े रहे और सम्पूर्ण अवधि में लेखन कार्य में संलग्न रहे। उनकी गिनती ऐसे अर्थशास्त्रियों में की जाती है जिन्होंने अर्थशास्त्र की परिभाषा, प्रतिनिधि फर्म, व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र, राजस्व, अर्थशास्त्र के विकास आदि से सम्बन्धित जो विचार व्यक्त किए हैं जिनके कारण उनकी गिनती प्रमुख अर्थशास्त्रियों में की जाती है।

प्रो. मेहता ने अर्थशास्त्र विषय से सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखी हैं, उनके द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तकें निम्न प्रकार है –

1- Ground work of Economics
2- Public finance
3- Studies in Advanced Economic Theory
4- Economics of Growth
5- Principles of Exchange
6- Foundations of Economics
7- Macro Economics

प्रो. जे.के. मेहता भारतीय सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र के प्रवर्तक एवं संस्थापक कहे जाते हैं। उनका चिन्तन मौलिक एवं भारतीय परम्पराओं के अनुकूल है। उनके विचारों के समर्थक एवं आलोचक दोनों ही देखने को मिलते है। प्रो. मेहता के आवश्यकता विहीनता दृष्टिकोण को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा व क्षेत्र
(Definition and Scope of Economics) –

मेहता ने अर्थशास्त्र को नया दृष्टिकोण देने का प्रयत्न किया है जो कि पाश्चात्य देशों के अर्थशास्त्रियों से भिन्न है और भारतीय संस्कृति एवं परम्परा के अनुकूल है। उन्होंने भारतीय दर्शन एवं साधु संन्यासियों तथा युग पुरूषों के विचारों को अर्थशास्त्र की परिभाषा की व्याख्या का आधार बनाया है। वे कहते है कि भारतीय ऋषि, मुनियों तथा महात्माओं ने यह बताया है कि मनुष्य को सच्चा सुख अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम करने में है। हमारे महापुरूषों ने हमें यह शिक्षा दी है कि व्यक्ति को सदाचार एवं सादगी से अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए क्योंकि सच्चा सुख अपनी आवश्यकताओं को कम करके ही प्राप्त हो सकता है न कि आवश्यकताओं को बढ़ाकर।

प्रो. मेहता इसी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए स्पष्ट करते हैं कि मानव व्यवहार जो कि अर्थशास्त्र की विषय वस्तु है, मस्तिष्क के असंतुलन की स्थिति का परिणाम है। इस मानसिक बेचेनी का कारण है कि मनुष्य के ऊपर बाह्य शक्तियों का प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की आवश्यकताओं तथा संतुष्ट करने वाले उपलब्ध साधनों के बीच बहुत बड़ी खाई होती है। मानसिक असंतुलन इसी खाई का परिणाम है। मानवीय मस्तिष्क असंतुलन को ना पंसद करता है। अतः वह संतुलन की प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है। असंतुलन की स्थिति की चेतना दुःख है तथा चेतना के असंतुलन की स्थिति में कमी या संतुलन की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने को सुख कहा जा सकता है। इस प्रकार दुःख का निवारण ही सुख है। अधिकतम सुख की प्राप्ति हेतु दुःख को न्यूनतम करना होगा।

प्रो. मेहता के अनुसार मानसिक स्व के असंतुलन से दुःख की अनुभूति होती है तथा इस असंतुलन के निवारण से सुख की अनुभूति होती है। इस प्रकार संतुलन की प्राप्ति हमारी

मूलभूत आवश्यकता है। संतुलन स्थिति की प्राप्ति हेतु दो मार्ग है – प्रथम मार्ग के अन्तर्गत मस्तिष्क की इच्छानुसार वातावरण परिवर्तित किया जाए। वस्तुतः यह साधनों के उपयोग से सम्बन्धित है। द्वितीय मार्ग के अनुसार मस्तिष्क को इस प्रकार ढाला जाए कि वह वातावरण से व्याकुल ही न हो। प्रो. मेहता ने आध्यात्मवादी दृष्टिकोण के कारण उपर्युक्त दो संभव मार्गो मे से द्वितीय मार्ग को चुना। उनका मत था कि साधनों के समुचित उपयोग के माध्यम से मस्तिष्क के असंतुलन को कुछ समय के लिए तो दूर किया जा सकता है पर पूर्ण संतुलन की प्राप्ति इसके द्वारा असंभव है क्योंकि प्रथम मार्ग से असंतुलन दूर करने की प्रक्रिया नये असंतुलन को उत्पन्न करती है एक आवश्यकता की संतुष्टि दूसरी आवश्यकता को जन्म देती है।

प्रो. मेहता के अनुसार अर्थशास्त्री सभी आधारभूत नियमों के अन्तर्गत मानवीय साधनों को इस प्रकार निर्दिष्ट करते है कि अधिकतम संतुष्टि की प्राप्ति हो सके। प्रो. मेहता ने द्वितीय मार्ग का अनुसरण किया तथा अधिकतम संतुष्टि या सुख की प्राप्ति के स्थान पर प्रसन्नता (Happiness) पर बल दिया। मनुष्य प्रसन्नता का अनुभव तभी करते है जब न तो कोई दुःख है न ही कोई आवश्यकता और न ही किसी प्रकार का कोई असंतुलन है। यह स्थिति समस्त आवश्यकताओं से मुक्ति की स्थिति है। आवश्यकता विहीनता के लिए मानव व्यवहार का वास्तविक लक्ष्य है।

मेहता के इस दृष्टिकोण की मुख्य बातें निम्नलिखित है –

1. मानव व्यवहार मस्तिष्क की बैचेनी अथवा असंतुलनहीनता का परिणाम है।
2. संतुलन स्थापित करने का मार्ग मस्तिष्क को शिक्षित करना है।
3. अंतिम लक्ष्य सुख प्राप्त करना है।
4. अधिकतम सुख इच्छा रहित अवस्था में है।
5. आवश्यकता विहीनता की स्थिति धीरे–धीरे प्राप्त करना।

प्रो. मेहता का आवश्यकता विहीनता दृष्टिकोण उनके द्वारा प्रदत्त अर्थशास्त्र की परिभाषा में समाहित है।

मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र की परिभाषा– प्रो. मेहता ने महात्मा गांधी के 'सादा जीवन उच्च विचार' का पालन करते हुए अर्थशास्त्र की परिभाषा दी है। प्रो. रॉबिन्स ने चुनाव की समस्याओं को आर्थिक समस्या बताया था। जबकि मेहता ने यह बताया है कि आवश्यकता को न्यूनतम करना ही आर्थिक समस्या है। मेहता की अर्थशास्त्र की परिभाषा निम्न प्रकार है – ''अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो उस मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है जो कि आवश्यकता विहीनता स्थिति के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए प्रयत्न करता है।''

मेहता की परिभाषा से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र, आवश्यकता विहीनता स्थिति की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले समस्त मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। यह मानव को आवश्यकता के बंधन से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। आवश्यकताओं से मुक्ति एक साथ प्राप्त नहीं की जा सकती। इसकी प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम निम्नस्तरीय आवश्यकताओं की अपेक्षा उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। आवश्यकता विहीनता की स्थिति में जहां न दुःख है न सुःख है वरन् प्रसन्नता ही प्रसन्नता है। यह स्थिति हमें निर्वाण का उच्च मार्ग प्रशस्त करती है। निर्वाण एक आधारभूत लक्ष्य है।

आवश्यकता विहीनता का सिद्धान्त (Principle of wantlessness)–आवश्यकता अनन्त है, असीमित है और जैसे ही एक आवश्यकता की पूर्ति की जाती है तत्काल ही दूसरी आवश्यकता जन्म ले लेती है। अतः मेहता ने भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ 'संतोष परमं सुखम्' का अनुसरण करते हुए आवश्यकता विहीनता को अन्तिम ध्येय माना है। संतोष की इस स्थिति को ही मेहता ने अर्थशास्त्र में आवश्यकता विहीनता की स्थिति माना है।

प्रो. मेहता की आवश्यकता विहीनता की स्थिति क्रियाहीनता की स्थिति नहीं है। उन्हीं के शब्दों में 'आवश्यकता विहीनता का आशय क्रियाविहीनता कदापि नहीं है जब हम आवश्यकता विहीनता की नीति का अनुसरण करते है, तो आर्थिक क्रियाएं रूक नही जाती है। वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन व उपभोग में आवश्यकता विहीनता के आदर्शानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। इस स्थिति का आशय यह नहीं है कि हम खाना पीना बंद कर दें और न ही आय अर्जन नहीं करने से है। यह सभी कार्य जो कि आवश्यक है स्वार्थहीन उद्देश्य से करने हैं।

प्रो. जे.के. मेहता ने आवश्यकता विहीनता को गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के परिपेक्ष्य में भी प्रस्तुत किया है तथा इसे समस्त समस्याओं का अन्त माना है। प्रो. मेहता के शब्दों में 'यदि हम सभी प्रसन्नता के सही मार्ग का अनुसरण कर लें तो

राज्य का कार्य यदि समाप्त नही होगा तो बहुत बड़ी सीमा तक कम हो जायेगा। निर्धनों के कल्याण हेतु धनी वर्ग पर कर लगाने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। यह भी आवश्यक नहीं होगा कि किसी भी व्यक्ति को एक सीमा से अधिक धन प्राप्त करने से रोका जाए।'' गांधीजी की इच्छा थी कि धनी व्यक्ति धन अर्जित करे तथा इसका उपयोग स्वयं के साथ गरीबों के कल्याण के लिए भी करे।

आवश्यकताओं का दर्शन – प्रो. मेहता के अनुसार आवश्यकताओं के सन्दर्भ में अब तक दो सर्वमान्य तथ्य उभर कर आये है– 1. एक आवश्यकता की संतुष्टि दुःख दूर करती है तथा 2. एक आवश्यकता को संतुष्ट करते की प्रक्रिया नई आवश्यकता को जन्म देती है। यह अचेतन आवश्यकताओं के चेतन होने की स्थिति है। प्रो. मेहता के आवश्यकता के दर्शन को निम्न दो शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. **चेतन एवं अचेतन आवश्यकताएं –** प्रो. मेहता के अनुसार जब एक आवश्यकता की पूर्ति की जाती है तो निश्चित ही संतुष्टि की प्राप्ति होती है। यह सुख या संतुष्टि की प्राप्ति दुःख निवारण की प्रक्रिया के रूप में होती है। यह इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि आवश्यकता के विद्यमान रहने या उसके संतुष्ट न कर पाने की स्थिति में दुःख की अनुभूति होती है जो कि मस्तिष्क की चेतना का प्रतीक है, मेहता के अनुसार यही चेतन आवश्यकता है।

प्रो. मेहता के अनुसार कुछ आवश्यकताएं ऐसी होती है जिनकी वर्तमान में हमे अनुभूति होती है परन्तु दुःख का निवारण नही होता। दुःख का निवारण इसलिए नहीं होता है क्योंकि ये मस्तिष्क की चेतन अवस्था में विद्यमान ही नहीं होती है। यह अचेतन आवश्यकताएं हैं। यह चेतन को पूरा करने पर अस्तित्व में आती है। मेहता के अनुसार अचेतन आवश्यकताओं की अनायास पूर्ति सुखदायक है। एक व्यक्ति जिसने न कभी सिनेमा के विषय में सुना, न कभी देखा है तो निश्चय ही उसकी इसे देखने की चेतना आवश्यकता नही होगी और न ही इसके अभाव में दुःख की अनुभूति होगी। लेकिन फिर भी यदि वह सिनेमा देखता है तो निश्चय ही आनंदित होगा। इस प्रकार अचेतन आवश्यकता की पूर्ति धनात्मक योगदान प्रदान करेगी। लेकिन एक बार अचेतन आवश्यकता की संतुष्टि हो जाने के बाद पुनः वह चेतन आवश्यकता के रूप में हमारे समक्ष आ जाती है। इस प्रकार आवश्यकता विहीनता के अन्तर्गत दोनों प्रकार की आवश्यकताओं को समान रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए।

2. **धनी व निर्धन की आवश्यकताएं –** यह कहा जाता है कि एक औसत निर्धन व्यक्ति एक औसत धनी व्यक्ति के समान सुखी नही है। इसलिए निर्धन व्यक्ति दया का पात्र है। प्रो. मेहता ने इस तथ्य का सशक्त शब्दों में खंडन किया है। उनके अनुसार इस दया के वितरण तथा धन के मध्य विपरीत सम्बन्ध का कोई वैज्ञानिक न्याय नही है अर्थात निर्धन व्यक्ति निर्धनता के कारण दया का पात्र है इस बात का कोई वैज्ञानिक या न्याय सम्मत आधार नहीं है। प्रो. मेहता के मत में एक निर्धन व्यक्ति की ईच्छाएं एक धनी व्यक्ति की तुलना में कम होती है तथा वह अपनी न्यून आय के माध्यम से न्यून आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है। उसकी कुछ आवश्यकताएं ही संतुष्ट हुए बिना रह जाती है। दूसरी और धनी व्यक्ति की आवश्यकताएं अधिक होती है तथा अधिक लाभ के उपरान्त भी उसकी आवश्यकताएं बिना संतुष्ट हुए रह जाती है जो कि धनी के दुःख का कारण है यद्यपि यह सत्य है कि निर्धन व्यक्ति की संतुष्ट आवश्यकताएं धनी व्यक्ति की तुलना में बहुत कम होती है परन्तु उसकी आवश्यकता की तीव्रता अधिक होती है।

प्रो. मेहता ने धनी व निर्धन के जीवन स्तर की तुलना यथार्थ रूप में की है। उनके अनुसार जीवन स्तर के प्रति धनी व निर्धन दोनों की आवश्यकताएं समान संख्या में नही होती, उच्च जीवन स्तर के उपरान्त भी धनी व्यक्ति की आवश्यकताओं की विशाल संख्या के कारण धनी व्यक्ति की काफी आवश्कताएं असंतुष्ट रह जाती है तथा उन्हें दुःख की अनुभूति होती है। जीवन स्तर के प्रति निर्धन वर्ग की आवश्यकताएं अचेतन अवस्था में होती है और ये अचेतन आवश्यकताएं दुःख का कारण कदापि नहीं है।

इसी संदर्भ में मेहता का कहना है कि धनी व निर्धन दोनों के लिए धन की सीमान्त उपयोगिता समान नही होती। निर्धन व्यक्ति के लिए धन की सीमान्त उपयोगिता अधिकांश परिस्थितियों मे धनी व्यक्ति की तुलना में अधिक होती है। निर्धन व्यक्ति की प्रसन्नता का स्तर धनी व्यक्ति की तुलना में

अधिक होता है। लेकिन इसका यह आशय कदापि नहीं है कि निर्धन व्यक्ति पर धनी व्यक्ति की तुलना में अधिक कर लगाया जाए। कर भार तो धनी व्यक्ति पर ही अधिक होना चाहिए। इस संदर्भ में दो तथ्य उतरदायी है–प्रथम, धनी व्यक्ति के लिए धन की सीमान्त उपयोगिता तुलनात्मक दृष्टि से कम होती है। द्वितीय, धनी व्यक्ति की, कर लगने पर असंतष्ट आवश्यकताओं की तीव्रता निर्धन व्यक्ति की असंतुष्ट आवश्यकताओं की तुलना में कम होती है।

प्रो. मेहता के अनुसार कर का निर्धारण त्याग की मात्रा के अनुसार होना चाहिए और उपर्युक्त दानों तथ्यों के आधार पर धनी व्यक्ति पर अधिक मात्रा में कर लगाया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रो. मेहता ने आवश्यकताओं की दार्शनिक विवेचना कर सामाजिक न्याय की स्थापना व अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति हेतु कर निर्धारण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।

प्रो. मेहता का कहना है कि व्यक्ति को वास्तविक सुख अपनी इच्छाओं अथवा आवश्यकताओं को बढ़ाने में नहीं वरन् उन्हे कम करने में निहित है। व्यक्ति के पास साधन सीमित होते है, और इन सीमित साधनों से भी आवश्यकताओं की तृप्ति करना संभव नहीं है। जब आवश्यकताओं या इच्छाओं की संतुष्टि नहीं होती तो व्यक्ति को पीड़ा का अनुभव होगा। अतः अधिकतम सुख इच्छाओं को घटाकार ही प्राप्त किया जा सकता है। मेहता के अनुसार आवश्यकताओं का निरन्तर उत्पन्न होना दुःख का कारण है। जब आवश्यकताएं शून्य होगी तो मनुष्य को दुःख नही होगा और वास्तविक सुख की अनुभूति होगी तथा उसका मानसिक संतुलन बना रहेगा।

मेहता का कहना है कि अर्थशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य आवश्यकता विहीनता की अवस्था तक पहुंचने का मार्ग दिखाना है। मानव व्यवहार का अंतिम लक्ष्य सुख प्राप्त करना है। इस विचार को ठीक प्रकार से समझने के लिए संतुष्टि तथा सुख के बीच अन्तर को हमें स्पष्ट समझ लेना चाहिए। संतुष्टि वह अनुभव है जो किसी आवश्यकता या इच्छा की तृप्ति के पश्चात् मिलती है पर उसे सुख नही मिलता। अतः मेहता के अनुसार इच्छा रहित आवश्यकता में, जबकि मस्तिष्क पूर्ण संतुलन में होता है, उसे सुख कहा जा सकता है। अर्थशास्त्र का लक्ष्य इसी सुख को प्राप्त करना है। अधिकतम सुख आवश्यकताओं की वृद्वि में नही वरन् उन्हें कम करने में है।

इस संदर्भ में मेहता का सुझाव है की मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आवश्यकताओं को धीरे–धीरे कम करे प्रथम, उन इच्छाओं को त्याग देना चाहिए जिंहें पूर्ण करने में असमर्थ है। इससे केवल वही इच्छाऍं शेष रह जाएगी जिनकी पूर्ति करने में मनुष्य समर्थ है। इस प्रकार आवश्यकताओं को अपने साधनों की सीमा तक व्यय करना चाहिए और यह प्रयत्न हमारे अंतिम लक्ष्य, आवश्यकता विहीनता की स्थिति तक पहुंचने की दिशा में पहला कदम होगा। अंतिम लक्ष्य तो यह है कि आवश्यकता अनुभव ही न हो और इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मनुष्य को धीरे–धीरे प्रयत्न करना चाहिए।

विशुद्ध व व्यावहारिक अर्थशास्त्र
(Pure and Applied Economics)

प्रो. मेहता ने अर्थशास्त्र को विशुद्ध व व्यवहारिक दोनों ही रुप में प्रस्तुत किया है। मेहता के शब्दों में, यह कहना पर्याप्त होगा कि विशुद्ध विज्ञान के अंतर्गत हम सामान्य सिद्धांत का अध्ययन करते हैं जबकि व्यावहारिक विज्ञान के अंतर्गत हम दिए हुए ढांचे में उपर्युक्त सिद्धांतों का परीक्षण करते है। चूंकि अर्थशास्त्र की विषय वस्तु मानव व्यवहार का अध्ययन है अतः विशुद्ध अर्थशास्त्र इस व्यवहार से शासित सिद्धांतों का अध्ययन करता है। यह विशुद्ध अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन ''साधनों की सीमितता'' के निश्चित दृष्टिकोण के अंतर्गत करता है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र में हम यह देखते हैं कि ये सिद्धांत मानव क्रियाओं के विशिष्ट क्षेत्र में किस प्रकार लागू होते है।

मेहता के अनुसार विशुद्ध अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम कल्याण के क्षेत्र में अधिक होते हैं जबकि व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम संसार के क्षेत्र में होते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विशुद्ध अर्थशास्त्र के अंतर्गत मस्तिष्क अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं। व्यावहारिक अर्थशास्त्र का अध्ययन अंतिम ध्येय की प्राप्ति है और होना चाहिए। यह सामान्य सिद्धांतों का प्रयोग करता है तथा यह देखता है कि किस प्रकार निश्चित व्यावहारिक क्षेत्र के अंतर्गत कार्य करते हैं।

प्रो. मेहता ने आवश्यकता विहीनता की प्राप्ति को अंतिम ध्येय बताया है। यह अंतिम ध्येय प्रसन्नता का द्योतक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति व्यावहारिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य तथा विशुद्ध अर्थशास्त्र इसकी प्राप्ति का साधन है। विशुद्ध अर्थशास्त्र एवं व्यावहारिक अर्थशास्त्र दोनों का अध्ययन अंतिम ध्येय की प्राप्ति हेतु आवश्यक है।

प्रो. मेहता ने विशुद्ध एवं व्यावहारिक अर्थशास्त्र के मध्य अंतर को ओर अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि "विशुद्ध अर्थशास्त्र के अंतर्गत सिद्धांत शामिल किए जा सकते हैं तथा व्यवहारिक अर्थशास्त्र के अंतर्गत नियम शामिल किए जा सकते है।"

व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र
(Micro Economics and Macro Economics)

प्रो. मेहता के अनुसार एक समाज के अंतर्गत बहुत सी इकाइयां समाहित है। अर्थशास्त्र विज्ञान इन इकाइयों के व्यवहार से जुड़ा है। मेहता के मत में तकनीकी भाषा में अर्थशास्त्र के अंतर्गत उपभोग व उत्पादन के नियम समाहित है यदि एक अर्थशास्त्री को व्यक्ति के व्यवहार का पूर्ण ज्ञान है तथा वातावरण से संबंध पूर्ण जानकारी है तो निश्चय ही वह बता सकता है कि व्यक्ति कितना कार्य करेगा, कितनी मात्रा में वह उत्पादन करेगा, कितनी मात्रा में बेचेगा, कितनी मात्रा में खरीदेगा, कितनी मात्रा में बचत करेगा और कितनी मात्रा में उपभोग करेगा आदि।

उपर्युक्त विवरण के अंतर्गत प्रस्तुत एक इकाई के व्यवहार का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र है, इसे व्यष्टि या सूक्ष्म अर्थशास्त्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसकी एक विशिष्ट इकाई सभी कार्यों को मिलाकर एक साथ रखने पर सापेक्ष रूप में बहुत छोटी होती है यह हमें उस स्थिति की जानकारी प्रदान करती है जिसमें एक इकाई संतुलन की स्थिति में होती है। समस्त इकाइयों का एक साथ अध्ययन व्यक्तिगत अर्थशास्त्र में नहीं होकर समष्टिगत अर्थशास्त्र में किया जाता है।

प्रो. मेहता के अनुसार व्यक्ति समाज में रहते हैं अतः अर्थशास्त्र समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन की उपेक्षा नहीं कर सकते उसे एक का नहीं वरन समस्त व्यक्तियों (All the individuals) का अध्ययन करना चाहिए।

स्थैतिक, विकासात्मक व प्रावैगिक अर्थशास्त्र
(Static, Developmental & Dynamic Economics)

1. **स्थैतिक अर्थशास्त्र** (Static Economics) हम संतुलन की स्थिति से यह निश्चित करते हैं कि उत्पादन के प्रत्येक साधन का क्या अंश होगा। सभी उत्पादित वस्तुओं की क्या कीमत होगी व उपभोग की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की क्या मात्रा होगी। जब हम आर्थिक प्रणाली के अंतर्गत इस संतुलन की स्थिति की प्राप्ति की प्रत्याशा करते हैं व उसका अध्ययन करते हैं तो उसे स्थैतिक अर्थशास्त्र के रूप में जाना जाता है। यह अध्ययन समय बिंदु (Point of Time) से सम्बद्ध होता है।
2. **प्रावैगिक अर्थशास्त्र** (Dynamic Economics) जब प्रारंभिक समंक में कोई परिवर्तन नहीं होता, समायोजनों की प्रक्रिया द्वारा अंतिम स्थिति प्राप्त की जा सकती है और यदि हम चाहे तो ऐसा मार्ग अपना सकते हैं जिसके द्वारा पूर्ण संतुलन प्राप्त किया जा सके। यह अध्ययन प्रावैगिक अर्थशास्त्र कहा जाता है जिसके अंतर्गत समयानुसार समायोजन की प्रक्रिया की व्याख्या की जाती है। यह अध्ययन समय बिंदु के स्थान पर समय अवधि (Period of time) से संबंधित होता है।
3. **विकासात्मक अर्थशास्त्र** (Developmental Economics) विकासात्मक अर्थशास्त्र के अंतर्गत एक दी हुई अवधि में उत्तरोत्तर प्राप्त होने वाली संतुलन की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। यह संतुलन की स्थिति असंतुलन के अंतिम स्थिति की प्राप्ति हेतु है जो समयावधि के अंत में प्राप्त होती है उनके विचार में, उनका विकासशील अर्थशास्त्र टिन्बर्गन के आर्थिक प्रावैगिक अर्थशास्त्र के समान है।
4. **उपयोगिता की मापनीयता** (Measurement of Utility) प्रो. मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र एक विज्ञान है अतः हमें उपयोगिता के मात्रात्मक स्वरुप की व्याख्या करना आवश्यक हैं। उन्होंने उपयोगिता के मात्रात्मक मापन पर बल दिया हैं उन्होंने उपयोगिता के मापन के संबंध में निम्न तथ्य प्रस्तुत किए है।

1. उपयोगिता एक भाववाचक पदार्थ है।
2. उपयोगिता स्थिर नहीं रहती, यह समय–समय पर बदलती रहती है।
3. संतुष्टि को मुद्रा के द्वारा मापा जा सकता है। अतः उपयोगिता को अमापनीय कहना गलत है।

प्रो. मेहता के अनुसार सत्य यह है कि उपयोगिता के संदर्भ में चाहे गणनावाचक दृष्टिकोण (मार्शल का दृष्टिकोण) हो या क्रम वाचक दृष्टिकोण (हिक्स व ऐलन) का दृष्टिकोण हो, उपयोगिता मापनीय है।

कल्याण का अर्थशास्त्र (Welfare Economics) प्रो. मेहता के अनुसार कल्याण का अर्थशास्त्र वस्तुतः सामाजिक कल्याण का अर्थशास्त्र ही है। व्यक्तियों का समूह ही समाज है अतः

सामाजिक कल्याण निश्चय ही व्यक्तिगत कल्याण से सम्बद्ध है। सामाजिक कल्याण व्यक्तियों के मस्तिष्क में निवास करता हैं। मनुष्य का कल्याण दिए हुए किसी समय पर संतुष्टि की मात्रा से है जो वह उस समय आनंद उठाता है, द्वारा मापा जाता है। सामाजिक कल्याण के एक मानसिक व मनोवैज्ञानिक अवधारणा होने के कारण इसका कोई वस्तुपरक माप तो नहीं किया जा सकता लेकिन हम एक स्थिति के अंतर्गत सामाजिक कल्याण की तुलना दूसरी स्थिति से कर सकते हैं और बता सकते हैं कि किस स्थिति में सामाजिक कल्याण अधिक है और नीति–निर्माताओं को इस अति उपयोगी ज्ञान की आवश्यकता होती हैं।

लगान (Rent)– प्रो. मेहता ने लगान को आय नहीं माना है। उनके अनुसार, लगान लागत के ऊपर एक अतिरेक है मेहताजी की दृष्टि में जब एक उत्पादन का साधन केवल एक ही विशिष्ट उपयोग में लाया जाता है तो उसको समस्त आय प्रकृति से एक अतिरेक ही है। उनके अनुसार यह असंभव है कि कोई साधन निरपेक्ष रूप में केवल एक ही विशिष्ट उपयोग में प्रयुक्त होता है। अतः किसी साधन की विशिष्टता व अतिविशिष्टता के मध्य अंतर समझना आवश्यक है। यह अंतर किसी साधन के विशिष्ट होने या अतिविशिष्ट होने के साथ जुड़ा हुआ है। जिस साधन की विशिष्टता का गुण जितना अधिक होगा उस साधन को उतना ही अधिक अतिरेक या लगान प्राप्त होगा।

प्रो. मेहता के अनुसार अतिरेक या लगान या साधन की विशिष्टता एक सापेक्ष मूल्य है। निरपेक्ष मूल्य नहीं है। प्रो. मेहता ने लगान के संदर्भ में निम्न तथ्य निरपेक्ष रुप में प्रस्तुत किए हैं –

1. लगान एक सापेक्ष अवधारणा है न की एक निरपेक्ष अवधारणा।
2. प्रत्येक प्रकार की आय लगान या अतिरेक के रूप में प्रकट हो सकती है।
3. प्रत्येक प्रकार की आय के अंतर्गत अतिरेक का तत्व पाया जाता है।
4. इस अतिरेक का मात्रात्मक माप इस बात पर निर्भर करता है कि लगान को एक साधन के लगान के रूप में ले रहे हैं या लगान वाले साधन के विशिष्ट उपयोग के रूप में ले रहे हैं।
5. लगान साधन की विशिष्टता का ही परिणाम है।

लाभ (Profit)– प्रो. मेहता के अनुसार लाभ साहसी को जोखिम वहन करने के बदले में प्राप्त होने वाला प्रतिफल है। यह प्रावैगिक स्थिति में ही प्राप्त होता है। लाभ जोखिम वहन करने के बदले में या असामान्य या अप्रत्याशित प्राप्ति के रूप में ही होता है स्थैतिक स्थिति में लगान प्राप्त नहीं होता हैं। प्रावैगिक स्थिति के अंतर्गत अल्पकाल हो या दीर्घकाल, लाभ की प्राप्ति होती है लाभ सदैव अनिश्चित व अप्रत्याशित होता है।

ब्याज (Interest)– प्रो. मेहता ने ब्याज को पूंजी के अर्जन के रूप में परिभाषित किया जो इसकी सीमांत उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती हैं। पूंजी की आय का निर्धारण, उपयोग में पूंजी की अंतिम इकाई की उत्पादकता से होता है, पूंजी की राशि उपलब्ध पूर्ति द्वारा होती हैं। उपलब्ध पूर्ति पूंजी निर्माण की लागत द्वारा होती है या प्रतीक्षा की लागत द्वारा और समय अधिमान द्वारा त्याग की लागत से होती हैं।

सार्वजनिक वित्त (Public Finance) – प्रो. मेहता ने सार्वजनिक वित्त की परिभाषा के साथ इसके प्रत्येक अंग पर विचार प्रस्तुत किए हैं। सावर्जनिक वित्त पर प्रो. मेहता के विचारों को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. **सार्वजनिक वित्त की परिभाषा** (Definition of Public Finance) – प्रो. मेहता के अनुसार सार्वजनिक वित्त किसी सार्वजनिक संस्था के वित्तीय संबंधो से संबंद्ध है। मेहता ने स्पष्ट किया हैं कि सार्वजनिक शब्द का आशय राज्य से हैं। यह राज्य के वित्तीय संसाधन व इसके उपभोग का अध्ययन करता है।
2. **सार्वजनिक आय** (Public Income) **–** प्रो. मेहता के अनुसार आय साधन है तथा सार्वजनिक वस्तु साध्य हैं। सार्वजनिक व्यय हेतु सार्वजनिक आय प्राप्त की जाती है। सार्वजनिक व्यय निश्चित ही समाज के लिए लाभप्रद है तथा दूसरी और सार्वजनिक आय से लोगों को उपभोग में कमी करनी पड़ती हैं। अतः यदि इसका विशुद्ध परिणाम कल्याण में वृद्धि से हैं तो निश्चित ही राज्य द्वारा किया गया यह कार्य न्यायोचित होगा। प्रो.मेहता ने सार्वजनिक आय को चार भागों में वर्गीकृत किया हैं – 1. कर 2. शुल्क 3. ड्यूटीज 4. विविध स्रोत जैसे–उपहार, दंड, विशेष निर्धारण आदि।
3. **सार्वजनिक व्यय** (Public Expenditure) **–** प्रो. मेहता के अनुसार सावर्जनिक व्यय का सार्वजनिक

वित्त में वही स्थान है जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में उपभोग का है। यह राज्य द्वारा समाज को समर्पित सेवाओं के रूप में एक साधन है। जिस प्रकार व्यक्ति अपनी आय को खर्च करता है उसी प्रकार राज्य भी अपनी आय को खर्च करता है। प्रो. मेहता ने सार्वजनिक व्यय को नवीन रुप में दो भागों में विभाजित किया हैं –

(अ) **स्थिर व्यय** (Constant Expenditure) – स्थिर सार्वजनिक व्यय वह व्यय है जो जनता द्वारा इस सेवा के उपभोग कम करने पर यह कम नहीं होता तथा अधिक उपभोग करने पर बढता नहीं है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण प्रतिरक्षा व्यय है जो व्यक्तिगत उपभोग के आधार पर निश्चित नहीं होता है।

(ब) **परिवर्तनशील व्यय** (Variable Expenditure) – यह वह व्यय है जो व्यक्तियों द्वारा सेवा के उपभोग द्वारा प्रभावित व निर्धारित होता है। यदि सेवा का अधिक उपयोग किया जाता है तो सावर्जनिक व्यय बढ़ जाता है और सार्वजनिक सेवा का उपभोग कम किया जाता है तो सार्वजनिक व्यय कम हो जाता है। डाकघर सेवाओं पर व्यय, नागरिक अदालतो पर व्यय, सार्वजनिक उपकर्मों पर व्यय इस व्यय का उदाहरण हैं।

5. सार्वजनिक ऋण (Public Debt) – मेहता के अनुसार जब व्यक्ति मुद्रा उधार लेना प्रारंभ करता है तो वह उसकी आदत बन जाती है। वह अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखें बिना ऐसा करता है यही व्यय राज्यों के संदर्भ में भी व्याप्त रहता है। सरकार द्वारा ऋण् लेना एक आदत बन जाती है और यह एक गंभीर खतरा है।

प्रो. मेहता के अनुसार एक राष्ट्र का सार्वजनिक ऋण इसकी अर्थव्यवस्था को दो प्रकार से प्रभावित करता है –

(अ) जब सरकार द्वारा आय सृजन हेतु ऋण लिया जाता है तो जनता अपने बजट का समायोजन करती है। जब सरकार कर लगाती है तो जनता कर चुकाने के लिए अपने व्यय में कटौती करती है लेकिन जब उतनी ही मात्रा में राज्य द्वारा ऋण के रूप में वसूल की जाती है तो जनता सामान्यतया खर्च में कटौती नहीं करती है वरन् अपनी पुरानी व वर्तमान बचत द्वारा जारी ऋण पर क्रय करती है। यह सार्वजनिक ऋण का प्रथम व शीघ्र प्रभाव है।

(ब) द्वितीय प्रभाव सार्वजनिक ऋण का दूरगामी प्रभाव है। यह इस तथ्य से सम्बद्ध है कि सार्वजनिक ऋण का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। सार्वजनिक ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों में किए जाने पर ही सार्वजनिक व्यय का लाभकारी प्रभाव संभव है।

मेहता के दृष्टिकोण की सीमाएं (Limitations of Mehta's Approach)– दर्शन तथा नीतिशास्त्र विशेषकर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के दृष्टिकोण से मेहता के विचार अनुकूल प्रतीत होते हैं। फिर भी भौतिकवादी युग में उनके दृष्टिकोण की आलोचना की गई है जो निम्नलिखित है –

1. मेहता का दृष्टिकोण मान लेने पर अर्थशास्त्र का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। यदि सभी व्यक्ति आवश्यकताओं को न्यूनतम करके आवश्यकता विहीनता की स्थिति में पहुंच जाएंगे तो अर्थव्यवस्था में कोई आर्थिक क्रिया नहीं होगी। जब कोई आर्थिक क्रिया नहीं होगी तो अर्थशास्त्र ही समाप्त हो जाएगा।
2. मेहता के विचार कल्पना पर आधारित है – इच्छाओं से मुक्ति पाना एक साधारण व्यक्ति के वश में नहीं है। साधारण जीवन में व्यक्ति यह कभी नहीं सोचता कि अधिकतम सुख उसे आवश्यकताओं को कम करने में हैं। वह यह समझता है दुख और सुख तो जीवन के दो आवश्यक अंग है जो संसार में लगे ही रहते हैं पर आज के भोतिकवादी युग में मेहता का दृष्टिकोण कल्पना पर आधारित है।
3. प्रो. मेहता ने अर्थशास्त्र को केवल आदर्श विज्ञान माना है जो उचित नहीं है क्योंकि अर्थशास्त्र आदर्श विज्ञान होने के साथ–साथ वास्तविक विज्ञान भी है।
4. आलोचकों का विचार है कि मेहता ने इच्छा और आवश्यकता को एक ही समझ कर भारी भूल की है। इच्छा और आवश्यकता को दो अलग–अलग अर्थो में लिया जाता है एक बीमार व्यक्ति के लिए दवा एक आवश्यकता है चाहे वह व्यक्ति उस दवा को लेने का इच्छुक हो अथवा नहीं तथा उसके पास इस दवा रूपी आवश्यकता पूर्ति के साधन हो या नहीं।
5. मेहता द्वारा अर्थशास्त्र की परिभाषा स्वयं एक

परिभाषा नहीं होकर धार्मिक उपदेश का वर्णन करती है। मेहता के काल्पनिक मनुष्य द्वारा आवश्यकता विहीनता की स्थिति को प्राप्त करना एक सामाजिक एवं व्यावहारिक व्यक्ति के लिए संभव नहीं है।

महत्वपूर्ण बिंदु

- प्रो. मेहता भारतीय सैद्धांतिक अर्थशास्त्र के प्रवर्तक एवं संस्थापक कहे जाते हैं। उनका चिंतन मौलिक एवं भारतीय परंपराओं के अनुकूल है।
- मनुष्य को सच्चा सुख अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम करने में हैं बढ़ाने में नहीं। मनुष्य की आवश्यकताओं तथा संतुष्ट करने वाले उपलब्ध साधनों के बीच बढ़ी खाई होती है। मानसिक असंतुलन इसी खाई का परिणाम है।
- समस्त दुःखों का मूल कारण आवश्यकता है। जब तक आवश्यकता असंतुष्ट रहती है दुःख विद्यमान रहता है और उसके निवारण की प्रक्रिया संतुष्टि या सुख उत्पन्न करती है।
- आवश्यकता विहीनता की स्थिति क्रियाहीनता की स्थिति नहीं है।
- मेहता के अनुसार आवश्यकताएं चेतन तथा अचेतन दो प्रकार की होती है। जिन आवश्यकताओं के विद्यमान रहने या संतुष्ट न होने पर दुख की अनुभूति होती हैं उन्हें चेतन आवश्यकताएं कहते हैं तथा कुछ आवश्यकता ऐसी होती है जिनकी वर्तमान में हमें अनुभूति होती है परंतु दुख का निवारण नहीं होता, इन्हें अचेतन आवश्यकता कहते हैं।
- एक निर्धन व्यक्ति की आवश्यकताएं धनी व्यक्ति की तुलना में कम होती है वह अपनी न्यून आय के माध्यम से न्यून आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है। दूसरी और धनी व्यक्ति की आवश्यकताएं अधिक होती है तथा अधिक लाभ के उपरांत भी उसकी कुछ आवश्यकताएं बिना संतुष्ट हुए रह जाती है जो कि धनी व्यक्ति के दुःख का कारण है।
- अर्थशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य आवश्यकता विहीनता की अवस्था तक पहुंचने का मार्ग दिखाना है। मानव व्यवहार का अंतिम लक्ष्य सुख प्राप्त करना है।
- विशुद्ध अर्थशास्त्र के अंतर्गत सिद्धांत शामिल किए जा सकते हैं तथा व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अंतर्गत नियम शामिल किए जा सकते हैं।
- एक इकाई के व्यवहार का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र है जबकि समस्त इकाइयों का एक साथ अध्ययन समष्टिगत अर्थशास्त्र में किया जाता है।
- स्थैतिक अर्थशास्त्र समयाबिंदु से सम्बद्ध होता है जबकि प्रावैगिक अर्थशास्त्र समय अवधि से संबंधित होता है।
- मेहता ने उपयोगिता के मात्रात्मक मापन पर बल दिया है, संतुष्टि को मुद्रा द्वारा मापा जा सकता है।
- लगान लागत के ऊपर एक अतिरेक है। जिस साधन की विशिष्टता का गुण जितना अधिक होगा उस साधन को उतना ही अधिक अतिरेक या लगान प्राप्त होगा।
- लगान साधन की विशिष्टता का ही परिणाम है
- लाभ साहसी को जोखिम वहन करने के बदले में प्राप्त होने वाला प्रतिफल है। यह प्रावैगिक स्थिति में ही प्राप्त होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रो. मेहता के अनुसार मनुष्य को सच्चा सुख प्राप्त होता है –
   (अ) आवश्यकताओं को बढ़ाने में
   (ब) आवश्यकताओं को स्थिर रखने पर
   (स) आवश्यकताओं को न्यूनतम करने में
   (द) उपर्युक्त में से कोई नही ( )
2. प्रो. मेहता के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क पूर्ण संतुलन में कब रहता है –
   (अ) इच्छा रहित अवस्था में,
   (ब) कम इच्छाओं की स्थिति में,
   (स) अधिक इच्छाओं की स्थिति में,
   (द) कुछ इच्छाओं की पूर्ति मे ( )
3. प्रो. मेहता के अनुसार आर्थिक समस्या कौनसी है –
   (अ) चुनाव की समस्या
   (ब) आवश्यकताओं को न्यूनतम करने की
   (स) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधन जुटाने की
   (द) धन वृद्धि की ( )

4. प्रो. मेहता के अनुसार एक इकाई के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है
(अ) व्यष्टि अर्थशास्त्र में
(ब) समष्टि अर्थशास्त्र में
(स) कल्याणवादी अर्थशास्त्र में
(द) विकासात्मक अर्थशास्त्र मे ( )

5. प्रो. मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र का जो अध्ययन समयाबिंदु के स्थान पर समय अवधि से संबंधित है, उसे कहा जाता है –
(अ) व्यष्टि अर्थशास्त्र
(ब) कल्याणकारी अर्थशास्त्र
(स) समष्टि अर्थशास्त्र
(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

6. प्रो. मेहता के अनुसार उपयोगिता में निम्न में से कौन सा गुण नहीं पाया जाता है –
(अ) उपयोगिता एक भाव वाचक पदार्थ है
(ब) उपयोगिता स्थिर नहीं रहती
(स) मुद्रा द्वारा मापनीय है
(द) उपयोगिता अमापनीय है ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रो. मेहता के अनुसार समस्त दुखों का मूल कारण क्या है ?
2. प्रो. मेहता के अनुसार चेतन आवश्यकताओं का अर्थ बताइए।
3. प्रो. मेहता के अनुसार करों का निर्धारण किस प्रकार होना चाहिए ?
4. प्रो. मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य बताइए।
5. प्रो. मेहता के अनुसार कौन सी आवश्यकताओं के संतुष्ट नहीं होने पर दुःख की अनुभूति होती है।
6. प्रो. मेहता के अनुसार कल्याण का अर्थ बताइए।
7. प्रो. मेहता के अनुसार लगान का अर्थ बताइए।
8. प्रो. मेहता के अनुसार ब्याज कैसे निर्धारित होता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रो. मेहता की आवश्यकता विहीनता दृष्टिकोण की प्रमुख बातें बताइए।
2. प्रो. मेहता की आवश्यकता विहीनता की स्थिति को गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में समझाइए।
3. मेहता के अनुसार धनी व निर्धन की आवश्यकताओं में अंतर को स्पष्ट कीजिए।
4. प्रो. मेहता के अनुसार विशुद्ध एवं व्यावहारिक अर्थशास्त्र में अतर स्पष्ट कीजिएं।

निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रो. मेहता के आवश्यकता विहीनता दृष्टिकोण की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. प्रो. मेहता द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषा को बताइए तथा उनके द्वारा प्रस्तुत आवश्यकता विहीनता दृष्टिकोण को समझाइए।
3. प्रो. मेहता के अनुसार चेतन तथा अचेतन आवश्यकताओं को समझाइए।
4. प्रो. मेहता के विशुद्ध एवं व्यावहारिक अर्थशास्त्र संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
5. प्रो. मेहता के व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र संबंधी विचारों को बताइए।
6. प्रो. मेहता के लाभ, ब्याज एवं लागत संबंधी विचारों को लिखिए।
7. प्रो. मेहता के सावर्जनिक वित्त संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला

(1) स (2) अ (3) ब (4) अ (5) द (6) द

संदर्भ ग्रंथ

1. J.K. Mehta : Advanced economic theory
2. J.K. Mehta : Lectures on modern economics
3. J.K. Mehta : Fundamental of economics

अध्याय 1.1

स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था
(Indian Economy on the eve of independence)

(कृषि उद्योग, आधारभूत संरचना की स्थिति)
(Position of Agriculture, Industry and infrastructure)

स्वतत्रंता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था नामक इस अध्याय का मूल उद्देश्य आपको भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए आर्थिक विकास में परिवर्तन की स्थिति से अवगत कराना है। इसमें स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं/स्थितियों का अध्ययन करेंगे।

ब्रिटिश काल से पूर्व भारत की अपनी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था थी। प्रत्येक गांव, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न तथा आत्मनिर्भर थे। हालांकि लोगों की आजीविका तथा सरकार की आय का मुख्य स्रोत कृषि ही थी, फिर भी देश में विभिन्न प्रकार विनिर्माणकारी गतिविधियाँ होती थी। गांवों में तीन वर्ग थे – कृषक,दस्तकार तथा सेवक। इसमें किसानों का स्थान सबसे ऊपर था। दस्तकार सालभर तक किसानों के विभिन्न कार्य करते थे और बदले में किसान उन्हें फसल कटने पर अनाज देते थे। सेवकों का कार्य लगान वसूल करके सरकार को देना था। उस समय भारतीय कृषि पर्याप्त रूप से विकसित थी, किसान कृषि कार्यों में सर्वाधिक कुशल थे तथा कृषि उत्पादकता भी उन्नत थी अर्थात् भूमि खाद्यान्नों के रूप में सोना उगलती थी। क्योंकि भारत सूती, रेशमी वस्त्र, चावल, जूट, शक्कर, मसाले आदि कृषि वस्तुओं का निर्यात करता था। जिससे भारत को सोना मिलता था।

कृषि के साथ–साथ उद्योगों का भी विकास हो चुका था। सूती व रेशमी वस्त्र, धातु आधारित तथा बहुमूल्य मणिरत्न से सम्बन्धित शिल्पकलाओं के उत्कृष्ट केन्द्र के रूप में भारत विश्व भर में सु–विख्यात हो चुका था। भारतीय वस्तुऐं विश्व के बाजारों में प्रतिष्ठा की वस्तुऐं बनी हुयी थी। इन वस्तुओं के निर्यात से भारत को सोना, चांदी तथा बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते थे। 17वीं शताब्दी में भारत को दुनिया का सबसे धनी देश माना जाता था। इस समय भूमि श्रम अनुपात, श्रम के अनुकूल था, जोतों का आकार बड़ा था, प्रतिव्यक्ति उत्पादन व उत्पादकता भी अधिक थी, भारतीय अर्थव्यवस्था को सोने की चिड़िया का नाम दिया गया। इसी कारण कालान्तर में विदेशी व्यापारी भारत में व्यापार के उद्देश्य से आते रहे। इसी क्रम में ब्रिटिश इस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी भारत से व्यापार प्रारम्भ कर दिया। लेकिन इस कम्पनी की व्यापारिक नीतियों शोषणकारी व दोषपूर्ण थी। व्यापार के साथ–साथ राजनैतिक हस्तक्षेप करके भारत को उपनिवेश बना लिया। ब्रिटिश शासन का मुख्य उद्देश्य इंग्लैण्ड में तेजी से विकसित हो रहे उद्योगों के लिए भारत को एक कच्चे माल का निर्यातक बनाना था। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्थ का आर्थिक शोषण होता रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारतीय अर्थव्यवस्था का पतन हो गया।

स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति
(Indian economy on the eve of independence)

भारत का अतीत गौरवपूर्ण रहा है ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था उन्नतशील एवं समृद्ध अर्थव्यवस्था थी लेकिन ब्रिटिश शासन की शोषण एवं दोषपूर्ण आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप देश का आर्थिक शोषण हुआ तथा देश के संसाधनों के निकास से भारतीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक पतन हो गया। ब्रिटिश शासकों द्वारा बनायी गयी आर्थिक नीतियों का उद्देश्य भारत का आर्थिक विकास न होकर इंग्लैण्ड के आर्थिक हितों का संरक्षण तथ संवर्धन करना था। इन नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल स्वरूप बदल गया। भारत कच्चे माल का निर्यात तथा इग्लैण्ड के निर्मित माल का आयातक बन गया। जिससे देश का औद्योगिक विकास अवरूद्ध हो गया। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 2 प्रतिशत से भी कम थी।

उक्त दोषपूर्ण आर्थिक एवं राजनैतिक नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था निर्धन, गतिहीन, पिछड़ी हुई, निष्क्रिय एवं कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था, अर्द्धसामंती, अविकसित अर्थव्यवस्था में बदल गयी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति को निम्न क्षेत्रों की स्थिति से स्पष्ट किया जा सकता है।

(अ) कृषि क्षेत्र की स्थिति (Position of agriculture)

ब्रिटिश शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था बनकर रह गयी। देश की लगभग 85 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कृषि पर ही निर्भर थी। लेकिन कृषि का विकास गतिहीन बना रहा, कृषि उत्पादकता में कमी आयी। कृषि में तकनीकी सुधार नहीं हुआ, कृषि मानव श्रम तथा पशुओं पर निर्भर रही। सिंचाई के साधनों का कोई सुधार नहीं हुआ जिससे किसान अकाल, सूखे से प्रभावित रहे। अर्थात् ब्रिटिश शासन ने कृषि में कोई व्यापक सुधर नहीं किये जिससे भारतीय कृषि के विकास में गतिहीनता आ गयी। कृषि में गतिहीनता के कारणों को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता हैः–

(क) भू–व्यवस्था प्रणाली (Land System)– ब्रिटिश सरकार ने भारतीय कृषि क्षेत्र में जमींदारी व्यवस्था, जागीरदारी व्यवस्था, महालबाडी व्यवस्था आदि प्रणालियों को लागू कर दिया। जिससे मध्यस्थ वर्ग का जन्म हुआ। इन मध्यस्थों के द्वारा कृषि उपज का अधिकांश भाग लगान के रूप में किसानों से हड़प लिया जाता था।

भूमि का स्वामित्व मध्यस्थों के पास था, ये ऊँचे लगान पर भूमि लेकर कृषि कार्य कराते थे। लगान की मात्रा इतनी अधिक थी कि किसानों के पास खाने लायक अनाज भी शेष नहीं बच पाता था। जिससे किसान आर्थिक व स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर बनते गये। जमींदारों की रूचि तो अधिक से अधिक लगान वसूल कर सरकार को खुश करने में थी। अतः कृषि व कृषक दोनों की दुर्दशा हो गयी। कृषकों की प्रेरणा का ह्रास हो गया।

भारत में भूधारण प्रणालियां (Land holding systems)– ब्रिटिश काल में भूधारण की तीन प्रणालियांः– जमींदारी प्रथा, महालबाड़ी प्रथा तथा रैयतबाड़ी प्रथा थीः–

1. **जमींदारी प्रथाः–** जमींदारी प्रथा का जन्म ब्रिटिश काल में हुआ। इससे पूर्व भूमि पर किसानों का स्वामित्व था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरल कार्नवालिस ने आय बढ़ाने के लिए भारत में कृक्षि क्षेत्र की भूमि का मालिकाना हक जमीदारों को दिया तथा लगान एकत्रित करने का दायित्व सौपा।

जमींदारी प्रथा के दोषः– जमींदारी प्रथा कृषि विकास तथा सामाजिक न्याय दोनो ही दृष्टि से अनुपयुक्त रही, कृषि के विकास में बाधाएं आयी। कृषि में आधुनिकीकरण का अभाव रहा, किसानों में निवेश करने के लिए कोई प्रेरणा नही थी तथा वे परम्परागत ढ़ंग से कृषि को करने लगे।

(i) मध्यस्थो की बड़ी संख्याः– जमींदारी प्रथा में सरकार व किसान के बीच बहुत सारे मध्यस्थों का जन्म हुआ।

(ii) जमींदारी प्रथा शोषण आधारित थी– इसमें जमींदारों को किसानों से मनमाना लगान वसूलने का अधिकार था। लगान की दर लगभग 34 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक थी।

(iii) जमींदार किसानों से लगान के साथ–साथ बेगार भी लेते थे। किसानों से भेंट/नजराना भी लेते थे। जमीदार से ऋण ले लेने पर तो किसान की स्थिति दास जैसी हो जाती थी।

2. **महालबाड़ी प्रथाः–** महालबाड़ी व्यवस्था विलियम बैटिक द्वारा आगरा व अवध में लागू की गयी बाद में मध्यप्रदेश व पंजाब में भी लागू किया गया। महालबाड़ी व्यवस्था में मालगुजारी की दृष्टि से सम्पूर्ण गांव इकाई होता था। बन्दोबस्त द्वारा गांव के लिए निर्धारित मालगुजारी को सरकार के पास जमा कराने का दायित्व गांव के मुखिया का होता था। मुखिया गांव के सभी भूमि धारियों से लगान वसूल करता था। इसमें भू सम्पत्ति का स्वामित्व सामूहिक अथवा सामाजिक था। इस प्रथा में बन्दोबस्त की अवधि, मालगुजारी का निर्धारण भिन्न–भिन्न स्थानों पर अलग–अलग था।

3. **रैयतबाड़ी व्यवस्थाः–** इस व्यवस्था में रैयत या किसान ही भूमि का स्वामी होता था तथा किसान व सरकार के बीच कोई मध्यस्थ नही था। इसमें बन्दोबस्त अस्थायी होता था। रैयत के स्वामित्व की जोतो के लिए मालगुजारी अलग–अलग तय की जाती थी। रैयतबाडी व्यवस्था में भी किसानों की स्थिति अच्छी

नही रही। ब्रिटिश शासको के लालच ने रैयतों को आर्थिक तथा शारीरिक दोनो ही दृष्टि से बर्बाद कर दिया।

(ख) तकनीकी का निम्न स्तर (Low technology level)– दोषपूर्ण भू–स्वामित्व प्रणाली के साथ–साथ कृषि में तकनीकी का स्तर भी कमजोर व पिछड़ा हुआ था। कृषकों की आर्थिक स्थिति कमजोर थी, परम्परागत तरीकों से ही कृषि कार्य किए जाते थे। उच्च किस्म के बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाईयाँ, कृषि यंत्रों, सिंचाई के साधनों व कृषि साख का अभाव था। जिसके कारण कृषि उत्पादन व उत्पादकता का स्तर घटता गया।

(ग) राजस्व व्यवस्था (Revenue system) – राजस्व व्यवस्था की शर्तों के द्वारा भी जमींदारों ने किसानों का अति शोषण किया। राजस्व की निश्चित राशि सरकार के कोष में जमा कराने की तिथियाँ पूर्व निर्धारित होती थी। इन शर्तों के अनुसार लगान जमा नही करवाने वाले जमींदारों से उनके अधिकार छीन लिए जाते थे। अतः जमींदार किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करने में प्रयासरत रहते थे।

उक्त कारणों को किसानों व कृषि की दुर्दशा को बढ़ाने में बड़ा योगदान रहा।

ब्रिटिश काल में खाद्यान्नों की उत्पादकता में तो कमी आयी लेकिन गैर खाद्यान्न फसलों की उत्पादकता में वृद्धि के प्रमाण मिलते हैं। देश के कुछ क्षेत्रों में व्यावसायिक कृषि के कारण नकदी फसलों की उत्पादकता में वृद्धि हुई। लेकिन इस उच्च उत्पादकता का लाभ भारतीय किसानों को नहीं मिल पाया, क्योंकि इन्हें खाद्यान्न फसलों के स्थान पर नकदी फसलों का उत्पादन करना पड़ता था जिनका प्रयोग इग्लैण्ड के उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में किया जाता था। वे कृषि फसलें जिनका प्रयोग औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जाता है उसे नकदी फसलें कहते हैं। कुछ किसानों ने खाद्यान्न फसलों के स्थान पर नकदी फसलें उगाना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन अधिकांश काश्तकारों/किसानों के पास कृषि क्षेत्र में निवेश तथा सुधार करके कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए न तो पर्याप्त संसाधन थे न आधुनिक तकनीक थी और ना ही कोई प्रेरणा।

(ब) औद्योगिक क्षेत्र की स्थिति
(Position of industrial sector)

कृषि की भांति ही ब्रिटिश शासन काल में औद्योगिक विकास भी अवरूद्ध रहा। देश की विश्व प्रसिद्ध शिल्पकलाओं का पतन हो गया। अंग्रेजों ने भारत में आधुनिक औद्योगिक आधार की रचना नहीं होने दी। भारत में इस वि–औद्योगिकीकरण के पीछे अंग्रेजों का दोहरा उद्देश्य था। एक तो वे भारत को इग्लैण्ड में विकसित हो रहे आधुनिक उद्योगों के लिए कच्चे माल का निर्यातक बनाना चाहते थे तथा दूसरा वे अपने निर्मित माल के लिए भारत को विस्तृत बाजार बनाना चाहते थे। अतः अंग्रेजों ने भारत को सदैव कृषि प्रधान देश ही बनाये रखना चाहा। भारत के पुराने घरेलू उद्योगों को नष्ट कर दिया तथा आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं किया, जिससे देश की अधिकांश लोग बेरोजगार हो गये।

यद्यपि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में कुछ आधुनिक उद्योगों की स्थापना होने लगी लेकिन उनकी उन्नति बहुत ही धीमी रही। प्रारम्भ में भारत में सूती वस्त्र तथ पटसन उद्योगों का विकास हुआ। सूती वस्त्र मिलें भारतीय उद्यमियों के द्वारा लगायी गयी थी जो देश के पश्चिमी क्षेत्र (महाराष्ट्र तथा गुजरात) में स्थित थी। पटसन उद्योग विदेशियों के द्वारा लगाये गये जो केवल बंगाल प्रांत तक सीमित रहे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लोहा और इस्पात उद्योग का विकास हुआ। 1907 में टाटा आयरन स्टील कम्पनी (TISCO) की स्थापना हुई। दूसरे विश्व युद्ध के बाद चीनी, सीमेंट, कागजआदि उद्योगों की स्थापना हुयी।

लेकिन भारत में भावी औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित करने वाले पूंजीगत उद्योगों की स्थापना नहीं हो पायी। वे उद्योग जो मशीनों औजारों तथा कलपुर्जों का निर्माण करते हैं उन्हें पूंजीगत उद्योग कहते हैं। अतः भारत में औद्योगिक विकास अवरूद्ध रहा इसके निम्न कारण हैं:–

1. भारतीय शिल्पकारों को नष्ट कर दिया तथा औद्योगिक विकास पर रूकावटें डाल दी।
2. भारतीय कारीगरों पर अत्याचार किये उन्हें मजदूर बना दिया।
3. भारतीय माल पर आयात शुल्क लगाकर भारतीय वस्तुओं के निर्यातों को घटा दिया।
4. सूती वस्त्र उद्योगों पर 5 प्रतिशत उत्पादन शुल्क लगाकर

हतोत्साहित किया। लोहा, इस्पात उद्योग के विकास में भी कई बाधाऐं डाली।

5. उक्त नीतियों से भारत में औद्योगिकीकरण को विशेष प्रेरणा नहीं मिली।
6. अंग्रेजों ने भारत में 'स्वतंत्र व्यापार नीति' थोप दी तथा इंग्लैण्ड में संरक्षण की नीति लागू की जिससे भारत को नुकसान हुआ।
7. जहाजरानी उद्योग को भी भेदभावपूर्ण नीति अपनाकर हतोत्साहित कर दिया।
8. देश में उपभोग्य वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना हुई तथ पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का अभाव रहा। जिसमें इन वस्त्र आयातों पर निर्भर रहा।
9. भारत का औद्योगिक ढांचा असंतुलित, अविकसित तथा प्रतिकूल हो गया।
10. विश्व प्रसिद्ध शिल्पकलाओं का पतन हो गया तथा देश के लघु उद्योग बंद हो गये। स्वदेशी उद्योगों का पतन हुआ।
11. आधुनिक और बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना नही हो पायी।
12. औद्योगिकीकरण वित्तीय व विकास संस्थाओं की स्थापना नहीं हुई।
13. औद्योगिक विकास के लिए औद्योगिक नीति बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया।
14. ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनायी गयी वस्तु उत्पादन, व्यापार और सीमा शुल्क की प्रतिबंधकारी नीतियों का भारत के विदेशी व्यापार की दशा व दिशा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप भारत कच्चे माल जैसे रेशम, कपास, ऊन, चीनी, नील, पटसन आदि का निर्यातक बनकर रह गया। तथा इंग्लैण्ड की पूंजीगत वस्तुओं का आयातक बन गया।

(स) आधारभूत संरचना की स्थिति (Position of Infrastructure)

आधरभूत संरचना में अर्थव्यवस्था में उपलब्ध सभी संसाधनों को शामिल करते हैं। अर्थव्यवस्था का आर्थिक विकास देश के भौतिक तथा मानवीय संसाधनों की मात्रा तथा उनकी गुणवत्ता पर निर्भर करता हैं यदि देश की आधारभूत संरचना मजबूत होती है तो उस देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से होता है। आधारभूत संरचना को दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं – आर्थिक तथा सामाजिक।

1. **आर्थिक आधारभूत संरचना (Economic infrastrucutre) :–** आर्थिक आधारभूत संरचना के अन्तर्गत देश के भौतिक संसाधनों, सिंचाई, परिवहन, ऊर्जा, संचार सुविधाऐं, बैंकिंग, तकनीकी ज्ञान आदि को सम्मिलित किया जाता है।

ब्रिटिश शासन काल के अन्तर्गत देश में आर्थिक आधारभूत संरचना का विकास हुआ। अंग्रेजी शासकों ने सड़कों, रेलों, पत्तनों, जल परिवहन तथा डाक–तार आदि संसाधनों का विकास किया। लेकिन इसका उद्देश्य भारतीय लोगों को अधिक सुविधाऐं प्रदान करना नहीं था। इन साधनों का विकास तो वे स्वयं अपने देश के उद्योगों के हितों को पूरा करने के लिए किये थे। ब्रिटिश शासन काल से पूर्व बनी भारत में सड़कें आधुनिक यातायात के साधनों के लिए उपयुक्त नहीं थी। अतः अंग्रेजों ने भारत में सड़क परिवहन का विकास किया, इसका उद्देश्य भी देश में उनकी सेनाओं के आवागमन की सुविधा तथा देश के विभिन्न अंगों से कच्चे माल को निकटतम रेल्वे स्टेशनों, या पत्तनों तक पहुंचाने में सहायता/सुविधा उपलब्ध कराना मात्र था। जिससे कि भारतीय कच्चे माल को आसानी से इंग्लैण्ड भेजा जा सके तथा ब्रिटिश निर्मित माल को भारतीय बाजारों में पहुंचाया जा सके।

लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का विकास नहीं किया गया। अतः ग्रामीण क्षेत्रों तक माल पहुंचाने में सक्षम सभी मौसमों में उपयोग होने वाले सड़क मार्गों का अभाव ही बना रहा। वर्षाकाल में तो यह समस्या और भी अधिक हो जाती थी। इस प्रकार प्राकृतिक आपदाओं एवं अकाल की स्थिति में ग्रामीण लोगों का जीवन कठिनाइपूर्ण हो जाता था।

1850 में अंग्रेजों ने भारत में रेलों का आरम्भ कर दिया था। यहीं उनका भारतीय अर्थव्यवथा के लिए सबसे महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। लेकिन इन रेलों का विकास के लिए अंग्रेजों ने भारतीय किसानों पर लगान की मात्रा को बढ़ाकर संसाधन जुटाये। जिससे किसानों पर कर भार बढ़ गया और उनकी आर्थिक दशा कमजोर हो गयी। रेलों का विकास भी अंग्रेजों के द्वारा भारत का हित करने के लिए नहीं किया था उनका उद्देश्य था कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों से कच्चे माल को आसानी से तथ शीघ्रता से इंग्लैण्ड में पहुंचाना एवं इंग्लैण्ड में

निर्मित माल को भारतीय बाजारों में बेचना था।

रेलों के विकास ने भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को दो प्रकार से प्रभावित किया एक तो इनसे लोगों को आसानी से लम्बी यात्राऐं करने का अवसर प्राप्त हुआ तथा दूसरा भारतीय कृषि के व्यावसायीकरण को बढ़ावा मिला। लेकिन कृषि के व्यावसायीकरण का भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता के स्वरूप पर विपरीत प्रभाव पड़ा। भारतीय निर्यात में वृद्धि हुयी लेकिन इसके लाभ भारतीयों को नहीं मिले जिससे देश को आर्थिक हानि हुयी।

रेल व सड़क परिवहन के साथ–साथ ब्रिटिश शासन काल में समुद्री जलमार्गों के विकास पर भी ध्यान दिया गया। लेकिन ये प्रयास संतोषजनक नही थे, क्योंकि आंतरिक जलमार्ग लाभकारी सिद्ध नही हुए। जैसे उड़ीसा की तटवर्ती नहर। जिसका निर्माण सरकारी कोष से किया गया था, यह रेल मार्ग से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पायी क्योंकि नहर के समानान्तर रेलमार्ग था। अंततः इस जलमार्ग को छोड़ दिया गया।

ब्रिटिश शासनकाल में डाक व तार सेवाओं का भी विकास हुआ। भारत में विकसित की गयी मंहगी तार व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य देश में कानून व्यवस्था को बनाये रखना था तथा डाक सेवाऐं सामान्य लोगों को सुविधाऐं प्रदान कर रही थी लेकिन ये अपर्याप्त थी।

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व भारत में बैंकिंग विकास काफी धीमा रहा। 1870 तक भारत में केवल 2 ही संयुक्त पूंजीवाले बैंक थे जो बढ़कर 20वीं सदी के प्रारम्भ तक 9 हो गये लेकिन 1913 में बैंकिंग संकट के कारण कई भारतीय बैंक फेल हो गये। बैंकिंग प्रणाली के अल्पविकास के कारण भारतीय उद्यमियों को वित्तीय सुविधाऐं नहीं मिल पायी तथा ब्रिटिश नियंत्रित बैंकों ने भारतीय उद्यमियों को वित्तीय सुविधा नहीं दी पर ब्रिटिश नियंत्रित उद्योगों को वित्तीय साधन उपलब्ध करवाये। अतः ब्रिटिश काल के दौरान आर्थिक विकास में बैंकिंग क्षेत्र का विशेष योगदान नहीं रहा। R.B.I. अधिनियम 1934 के तहत 1 अप्रेल 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना की गयी। इस बैंक ने नोट निर्गमन तथा साख–नियंत्रण का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

2. **सामाजिक आधारभूत संरचना (Social Infrastructure)** - सामाजिक आधारभूत संरचना के अन्तर्गत देश के मानवीय संसाधनों को शामिल किया जाता है। इन मानवीय संसाधनों में जनसंख्या, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि का अध्ययन किया जाता है। ब्रिटिश शासन काल में सर्व प्रथम भारत की जनगणना 1881 में हुयी थी इसके अनुसार उस समय भारत की जनसंख्या 25.4 करोड़ थी। इसके बाद भारत में प्रति 10 वर्ष के अन्तराल में जनगणना होती रही। 1921 से पूर्व भारत जनांकिकीय संक्रमण के प्रथम सोपान में था (जन्मदर व मृत्युदर दोनों ही उच्च थी) तथा 1921 से भारत द्वितीय सोपान (मृत्युदर घटती है तथा जन्मदर उच्च बनी रहती है) में प्रवेश किया। अतः इस समय भारत की जनसंख्या का आकार विशाल नहीं था तथा जनसंख्या वृद्धि दर भी अधिक नहीं थी।

सामाजिक विकास के सूचक भी बहुत अच्छी स्थिति में नहीं थे। साक्षरता दर 16 प्रतिशत से भी कम थी इसमें महिला साक्षरता तो मात्र 7 प्रतिशत ही थी। जन स्वास्थ्य सुविधाऐं आम लोगों के लिए दुर्लभ थी जहाँ ये सुविधाऐं उपलबध थी वहां भी ये पर्याप्त नहीं थी। इन स्वास्थ्य सुविधाओं का अत्यन्त अभाव था। इसलिए इस समय संक्रामक रोगों का प्रकोप था जिससे सकल मृत्युदर उच्च थी। विशेष रूप से शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक थी (लगभग 218 प्रति हजार थी)।

जीवन प्रत्याशा का स्तर भी केवल 32 वर्ष ही था। गरीबी व बेरोजगारी की बहुत अधिक समस्या थी अतः ब्रिटिश शासन काल में सामाजिक आधारभूत संरचना/जनसंख्या की दशा बहुत दयनीय थी।

औपनिवेशिक शासकों ने उच्च जन्म दर, उच्च मृत्यु दर, उच्च शिशु मृत्यु दर, निम्न जीवन प्रत्याशा, निम्न साक्षरता निम्न स्वास्थ्य सुविधाओं आदि समस्याओं के निवारण के कोई प्रयास नहीं किये।

ब्रिटिश शासनकाल में भारत का अल्प विकास (Under Development of India during British Rule)

आर्थिक विकास के लिए देश की वास्तविक राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय का बढ़ना आवश्यक होता है। जब किसी देश की प्रति व्यक्ति आय स्थिर होती है तो वहां आर्थिक गतिहीनता की स्थिति आ जाती है। किसी देश की प्रतिव्यक्ति आय का घटना इस बात का सूचक माना जाता है कि उस देश

की अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई रही हैं। राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय के आंकड़ो के अलावा हम देश में गरीबी का विस्तार, गरीबी का स्वरूप, वास्तविक मजदूरी, जनसंख्या का व्यावसायिक विवरण, कृषि कार्यों में तकनीकी सुधार, औद्योगिक विकास आदि में परिवर्तन के आधार पर भी देश की आर्थिक विकास की स्थिति का अध्ययन कर सकते हैं। ब्रिटिश काल में भारत में आर्थिक विकास नहीं हुआ लेकिन इसकी पुष्टि के लिये विश्वसनीय आंकड़ों का अभाव हैं। अतः हमें विभिन्न तथ्यों के आधार पर ही आर्थिक अल्प विकास का निष्कर्ष निकालना होगा–

1. **राष्ट्रीय आय (National Income)** – भारत में स्वतंत्रता से पूर्व राष्ट्रीय आय के आंकड़े व्यवस्थित रूप से एकत्रित नहीं किये जाते थे क्योंकि ब्रिटिश शासक यह नहीं चाहते थे कि भारतीय लोगों को भारतीय अर्थव्यवस्था की गतिहीनता की जानकारी मिले तथा ब्रिटिश शासकों की भारत के आर्थिक विकास में कोई रूचि भी नही थी, लेकिन ब्रिटिश शासनकाल में भी कुछ अर्थशास्त्रियों ने राष्ट्रीय आय व प्रतिव्यक्ति आय के अनुमान लगाये। सबसे पहले राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का अनुमान दादा भाई नारोजी के द्वारा लगाया गया। उन्होने 1876 में ब्रिटिश भारत के लिए वर्ष 1867–68 की राष्ट्रीय आय के अनुमान दिये।

2. **गरीबी का आकार व स्वरूप (Nature and extent of Poverty)** – किसी भी देश की गरीबी का आकार व स्वरूप का बड़ा होना अल्पविकास का सूचक माना जाता है। दादा भाई नारौजी का कथन ''देश लगातार गरीब और पंगु बनता जा रहा है।'' इस बात को सिद्ध करता है कि गरीबी के कारण आर्थिक विकास नही हो पाया। जनता की भुखमरी की शोचनीय स्थिति का वर्णन उस समय के लेखन में देखने को मिलता है। उस समय विश्वसनीय आंकड़ो का अभाव था इस कारण तत्कालीन समय में गरीबी का आकार क्या था, तय कर पाना कठिन हैं।

3. **वास्तविक मजदूरी का स्तर व प्रवृत्तियाँ (Level and Trends in Real Wages)** – आर्थिक विकास के निर्धारण में वास्तविक मजदूरी का स्तर तथा प्रवृत्तियां भी अहम कारक होता है। ब्रिटिश काल में इससे सम्बन्धित आंकड़ों का अभाव पाया जाता है। राधाकमल मुखर्जी ने अपने स्तर पर सभी प्रकार से ऐतिहासिक सामग्री को एकत्रित करके (संयुक्त प्रांत और वर्तमान में उत्तरप्रदेश के लिए) 1600 से 1938 तक के वास्तविक मजदूरी के सूचकांक तैयार किये।

इन सूचकांकों के आधार पर कहा जा सकता है कि 1807 की तुलना में 1938 में कुशल और अकुशल दोनों ही तरह के श्रमिकों की मजदूरी कम थी। परन्तु 1916 से 1928 के बीच तो स्थिति इतनी खराब थी कि इन वर्गो के श्रमिको की मजदूरी 1807 की तुलना में आधी से भी कम थी।

4. **जनसंख्या का व्यावसायिक आधार पर वितरण (Occupational Structure)** – अर्थव्यवस्था में उत्पादन सम्बन्धी प्रक्रिया को ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि श्रम की उत्पादकता कृषि के बजाय विनिर्माण उद्योगों और सेवा क्षेत्र में अधिक होती है। इसी कारण देश में जनसंख्या के व्यावसायिक आधार पर वितरण से आर्थिक विकास का अनुमान लगाया जाता है। जिन देशों में कृषि मुख्य व्यवसाय होती है वो अल्पविकसित माने जाते हैं और जब जनसंख्या कृषि से उद्योगों, यातायात, व्यापार एवं बैंकिंग आदि क्षेत्रों की तरफ जाने लगती है तो माना जाता है कि देश में आर्थिक विकास हो रहा है। जब किसी देश की अधिकांश जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय कृषि हो तथा उद्योग, सेवा क्षेत्र के पक्ष में किसी भी प्रकार परिवर्तन ना हो तो कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था का विकास नहीं हो रहा है। जब जनसंख्या उद्योगों व सेवा क्षेत्र से कृषि की ओर जाने लगते है तो स्पष्ट है कि उस देश की अर्थव्यवस्था पीछे की ओर जा रही है। इस क्रम में अनेक अर्थशास्त्रियों ने कार्य किया और 1881 से 1951 के बीच अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर थी। अर्थशास्त्रियों के अनुमान के अनुसार 1881 में लगभग 61 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं उससे सम्बन्धित व्यवसायों पर लगी थी जो 1951 तक आते–आते 72 प्रतिशत हो गई। यही ब्रिटिश शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्प विकास के ठोस प्रमाण के रूप में है।

5. **कृषि में तकनीकी सुधार का अभाव (Lack of Technological Improvement)** – ब्रिटिश काल में भारतीय कृषि में कोई तकनीकी सुधार नहीं हुआ, अंग्रेजों के शासन काल में शक्ति के साधन के रूप में बैल और मुख्य औजार के रूप में लकड़ी का हल ही खेती में काम आते थे। अधिकांश लोग जीवन निर्वाह के लिए खेती में ही काम काम करते थे। जब भी कहीं भी आंशिक रूप से खेती का व्यावसायीकरण हुआ, उससे ना तो ग्रामीण जीवन पर असर पड़ा और ना ही किसान की आर्थिक स्थिति सुधरी। 19वीं शताब्दी में तो अकाल के कारण मरने वालों की संख्या लाखों में थी। अकालों की अधिकता कृषि के अल्प विकास का प्रमाण माना जा सकता है। एक लम्बे समय तक अंग्रेजों का शासन रहा परन्तु कृषि क्षेत्र में सिंचाई की व्यवस्था में सुधार करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। केवल 20वीं शताब्दी में कुछ नहरों का निर्माण किया गया, इससे कृषि में कुछ फायदा तो मिला लेकिन कृषि में कोई ऐतिहासिक परिवर्तन नहीं हुआ।

6. **औद्योगिक व्यवस्था का कमजोर होना (Weak Industrial structure)** – अंग्रेजी शासन काल सें पहले, भारत में दस्तकारी का कार्य ही उन्नत स्थिति में था लेकिन जब से ब्रिटिश शासन शुरू हुआ तो अंग्रेजों की नीति के अनुसार लगातार दस्तकारी उद्योग का ह्रास हुआ क्योंकि इग्लैण्ड के कारखानों में बना कपड़ा और दूसरी वस्तुएं भारतीय बाजारों में बिकने लग गई। बड़ी संख्या में कपड़ा उद्योग चौपट होने लगा। इसी के साथ बड़ी संख्या में भारत में लोहा गलाने का काम भी कमजोर पड़ गया जिससे धातु उद्योग व कपड़ा उद्योग दोनों में ही बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो गई तथा इस काम को करने वाले लोग अकुशल मजदूर बन कर रह गये। 19वीं शताब्दी के बाद के वर्षों में सूती कपड़ा और जूट उद्योग विकसित हुए लेकिन इसके साथ बड़े रूप में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया शुरू नहीं हो सकी। 1947 में जब अंग्रेज भारत से चले गये तब भी देश की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था थी।

सारांश में अंग्रेजों का शासनकाल लगभग 200 वर्षों तक रहा। इस अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था में अल्प विकास ही हुआ। अंग्रेजों के शासन काल में भारत की अर्थव्यवस्था में अल्प विकास होने के प्रभावों के रूप में प्रति व्यक्ति आय की स्थिरता, गरीबी में वृद्धि, कृषि का परम्परागत स्वरूप, श्रमिकों की मजदूरी में गिरावट, दस्तकारियों का पतन, अपर्याप्त औद्योगिक विकास माना जाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था गतिहीन, अर्द्ध सामंती, पिछड़ी एवं कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था बन गयी। अतः इस समय भारतीय अर्थव्यवस्था की निम्न विशेषताऐं थी–

1. **अल्पविकसित अर्थव्यवस्था –** स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित अर्थव्यवस्था थी। इसमें प्रतिव्यक्ति आय का स्तर निम्न था, औद्योगिक विकास की स्थिति निम्न थी। कृषि पर निर्भरता अधिक थी व आधारभूत संरचना पिछड़ी हुयी थी। आयातों पर निर्भरता अधिक थी एवं गरीबी, बेरोजगारी व निरक्षरता आदि सामाजिक चुनौतियां विद्यमान थी।

2. **गतिहीन अर्थव्यवस्था** – स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की गति अवरूद्ध हो गयी थी, कृषि उत्पादन व उत्पादकता कम हुयी, विकास की दर घटी, शोषण की प्रवृति बढ़ी तथा भारतीय उद्योगों का पतन हो गया। तकनीकी विकास अवरूद्ध हो गया।

3. **अर्द्ध सामंती अर्थव्यवस्था** – ब्रिटिश सरकार ने भारत में कृषि क्षेत्र में जमींदारी प्रथा, जागीरदारी प्रथा तथा महालबाड़ी आदि भू–स्वामित्व की प्रथाओं को प्रोत्साहन दिया तथा अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी व्यवस्था को अपनाया। इसके परिणामस्वरूप मध्यास्थों का जन्म हुआ और मध्यस्थों ने ही किसानों का शोषण किया तथा भारतीय कुशल कारीगारों, किसानों को वेतनभोगी मजदूर, नौकर बना दिया।

4. **पिछड़ी अर्थव्यवस्था –** ब्रिटिश काल में संसाधनों के अत्यधिक शोषण के परिणामस्वरूप उत्पादन

क्षमता में गिरावट आयी। आधुनिक उद्योग पिछड़ गये, सामाजिक तथा आर्थिक आधारभूत संरचना का ह्रास हुआ।

5. **विभाजन का प्रभावः–** 15 अगस्त 1947 को देश का भारत तथा पाकिस्तान में विभाजन हो गया। विभाजन के फलस्वरूप भारत के हिस्से में 77 प्रतिशत तथा 82 प्रतिशत जनसंख्या आयी। विभाजन कृषि की दृष्टि से भारत के पक्ष में नही रहा लेकिन औद्योगिक दृष्टि से पक्ष में रहा लेकिन औद्योगिक कच्चा माल उत्पादित करने वाला उपजाऊ क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया।

ब्रिटिश काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्पविकास, पिछड़ेपन व गतिहीनता के कारण

1. ब्रिटिश काल में भारत के विकास विरोधी आर्थिक व राजनीतिक नीतियां भू–धारण प्रथाएं तथा लगान वसूली।
2. उद्योगों का पतन– भारतीय उद्योगों में शिल्पकारी का पतन हुआ।
3. दोषपूर्ण व्यापारिक नीतियां–भारत विरोधी व्यापार नीति।
4. स्वार्थपूर्ण आधारित संरचना का विकास
5. सामाजिक सूचकों का पिछड़ापन– शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव।

निष्कर्ष – स्वतंत्रता प्राप्ति तक लगभग 200 वर्षों के ब्रिटिश शासन का प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र को दुष्प्रभावित कर चुका था। कृषि क्षेत्र में श्रमाधिक्य, निम्न उत्पादकता तथा निम्न तकनीकी स्तर से ग्रसित था।

औद्योगिक क्षेत्र आधुनिक औद्योगिकरण का विकास, संवर्धन तथा सार्वजनिक निवेश में वृद्धि की मांग कर रहा था।

विदेशी व्यापार केवल इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति को पोषित कर रहा था।

आधारभूत संरचना में उन्नयन प्रसार तथा जनोन्मुखी विकास की आवश्यकता थी और व्यापक गरीबी व बेरोजगारी प्रभावी नीतियों की मांग कर रही थी। देश में सामाजिक/आर्थिक चुनौतियाँ बहुत अधिक थी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- ब्रिटिश काल से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से सम्पन्न अर्थव्यवस्था थी।
- ब्रिटिश काल की आर्थिक नीतियों, व्यापारिक नीतियों के उद्देश्य भारतीय हितकारी नहीं थे।
- ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का उद्देश्य इंग्लैण्ड के आर्थिक हितों का संरक्षण व संवर्धन करना था।
- भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में बदल गयी थी।
- ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के कारण भारतीय कृषि का विकास गतिहीन हो गया तथा कृषि उत्पादकता घट गयी।
- भारतीय कृषि में भू–धारण प्रणालियाँ – जमीदारी, जागीरदारी आदि प्रथाओं का जन्म हुआ।
- ब्रिटिशी व्यापारिक नीतियों के दोहरे उद्देय – भारत को कच्चे माल का निर्यातक तथा निर्मित माल का आयातक बनाना रहा।
- ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनायी गयी नीतियों के कारण भारत की प्रसिद्ध हस्तकला उद्योगों का पतन हुआ तथा आधुनिक उद्योगों का विकास नहीं हो पाया।
- देश की सामाजिक आधारभूत संरचना का विकास अवरूद्ध हो गया।
- ब्रिटिश सरकार ने देश की आर्थिक आधारभूत संरचना रेल, सड़क, जल परिवहन, डाक तार आदि सुविधाओं का विकास किया लेकिन इन प्रयासों में उनका अपना स्वार्थ निहित था।
- ब्रिटिश काल में भारतीय अर्थव्यवस्था गतिहीन, अर्द्धसामंती, पिछड़ी अर्थव्यवस्था बन गयी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ब्रिटिश काल से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था थी–
   (अ) सम्पन्न (ब) पिछड़ी
   (स) अर्द्धसामंती (द) अविकसित ( )
2. स्वतन्त्रता से पूर्व आजीविका का मुख्य स्रोत था–
   (अ) कृषि (ब) व्यापार
   (स) कुटीर उद्योग (द) सेवा ( )
3. कौनसी शताब्दी में भारत को सबसे अधिक धनी देश माना जाता था?
   (अ) 15वीं (ब) 16वीं
   (स) 17वीं (द) 18वीं ( )

4. स्वतन्त्रता के समय अधिकांश भूमि का स्वामित्व था–
(अ) किसानों के पास (ब) जागीरदारों के पास
(स) मजदूरों के पास (द) उपरोक्त सभी ( )

5. भारत में रेल पटरियों को बिछाने का काम 1853 में शुरू हुआ–
(अ) ब्रिटिश उपनिवेश काल में
(ब) मुगलशासकों के काल में
(स) राजाओं के शासन काल में
(द) आजादी के बाद ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में भारत कौनसे माल का निर्यातक बनकर रह गया?
2. 19वीं शताब्दी में सूती वस्त्र मिलें कहाँ पर लगायी गई?
3. 1870 तक भारत में संयुक्त पूंजी वाले बैंकों की संख्या कितनी थी?
3. ब्रिटिश शासन काल में सर्वप्रथम जनगणना कौनसे सन् में हुई थी?
5. स्वतन्त्रता के समय भारत में भू–व्यवस्था प्रणाली कौन–कौन सी थी?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वतन्त्रता के समय भारत में औद्योगिक स्थिति को स्पष्ट करो?
2. स्वतन्त्रता के समय भारत में आर्थिक आधारभूत संरचना पर अपने विचार प्रकट कीजिए?
3. ब्रिटिश शासन काल में भारत में आयात–निर्यात की स्थिति को समझाइये?
4. स्वतन्त्रता के समय भारत में आधारभूत सामाजिक संरचना की स्थिति को स्पष्ट करें?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल के समय कृषि व्यवस्था, औद्योगिक व्यवस्था के विकास में अंग्रेजों की नीति का विस्तार से वर्णन करिये?
2. स्वतन्त्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो?

उत्तरमाला

1. (अ) 2. (अ) 3. (स) 4. (ब) 5. (अ)

संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, 2013, एन.सी.ई.आर.टी, राजस्थान पाठ्यपुस्तक मण्डल, अध्याय – प्रथम।
2. मिश्रा, पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय प0हा0, संस्करण 14, 2002, अध्याय–4.

अध्याय 2.1

आर्थिक नियोजन
(Economic Planning)

आर्थिक नियोजन का विचार विश्व में सर्वप्रथम सोवियत संघ द्वारा अपनाया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय नेताओं ने भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को अपनाने के साथ ही देश को विकास के पथ पर ले जाने के लिए आर्थिक नियोजन को औजार के रूप में अपनाया।

आर्थिक नियोजन का अर्थ
(Meaning of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन से तात्पर्य उस विधि से है जिसमें केन्द्रीय योजना अधिकारी देश के साधनों को ध्यान में रखते हुए निश्चित समय में पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक कार्यक्रमों तथा नीतियों को लागू करता है। दूसरे शब्दों में एक निश्चित समय अवधि के भीतर लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा अर्थव्यवस्था का आयोजित नियंत्रण तथा निदेशन ही आर्थिक नियोजन है। योजना आयोग के अनुसार 'आर्थिक नियोजन का अर्थ है स्वीकृत राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार देश के साधनों का विभिन्न विकासात्मक क्रियाओं में प्रयोग करना।'

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपनाया गया है जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व तथा बाजार शक्तियों के स्वतंत्र क्रियाकलाप की विशेषताओं का एकत्रण किया गया हैं इस व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र को सशक्त बनाने के साथ–साथ निजी स्वामित्व सम्पतियों तथा प्रजातांत्रिक व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान की गई।

भारत में नियोजन का विकास
(Development of Planning in India)

1. भारत में सर्वप्रथम सर एम. विश्वेश्वरैया ने 1934 में 10 वर्षीय योजना बनाई, इन्होंने अपनी पुस्तक 'Planned Economy for India' में आर्थिक नियोजन के बारे में बताया इसलिए इन्हें भारतीय नियोजन का पिता कहा जाता हैं। 1944 में बम्बई के आठ उद्योगपत्तियों ने मिलकर 15 वर्षीय बॉम्बे प्लान तैयार किया जिसे 'टाटा – बिरला प्लान' भी कहा गया। इनके अतिरिक्त क्रांतिकारी नेता एम.एन राय द्वारा जन योजना (1944) तथा समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण ने सर्वोदय योजना का निर्माण 1950 में किया।
2. स्वतंत्रता से पूर्व जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन 1938 में किया गया। समिति ने सुझाव दिया कि समस्त आधारभूत उद्योगों पर राज्य का नियंत्रण होना चाहिए और आगामी दस वर्षों में जनता के जीवन–स्तर को दुगुने स्तर पर ले जाना अपना लक्ष्य रखा।
3. आजादी के पश्चात् भारत को विकास योजना के पथ पर ले जाने के लिए 1950 में योजना आयोग का गठन किया गया जिसे देश में उपलब्ध प्राकृतिक तथा भौतिक संसाधनों का आकलन कर योजना निर्माण का कार्य सौंपा गया।

भारतीय योजनाओं में आगामी पाँच वर्षीय लक्ष्यों के साथ–साथ बीस वर्षीय दीर्घकालिक लक्ष्य भी निर्धारित किये गये, इस दीर्घकालिक योजना को परिप्रेक्ष्यात्मक योजना (Perspective Plan) कहते हैं।

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
(Objectives of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक विकास इस रफ्तार से होना चाहिए कि इसका प्रतिफल आम जनता अनुभव कर सके। दूसरे शब्दों में, आयोजन का उद्देश्य आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करना रहा है। इस हेतु भारतीय आयोजकों ने उद्देश्यों को दो प्रमुख भागों में बांटा है:–

(अ) दीर्घकालिक या सामान्य उद्देश्य
(Long Time or Common Objective)

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने की अवधि लगभग 20 वर्ष रखी गयी है। इन उद्देश्यों में प्रमुखतः संवृद्धि, पूर्ण–रोजगार, समानता, आत्मनिर्भरता, आधुनिकीकरण आदि शामिल थे। आइए

इन उद्देश्यों को विस्तार से जानने का प्रयास करें।

1. **संवृद्धि (Growth)** – संवृद्धि से अभिप्राय देश में वस्तुओं व सेवाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि से है। अर्थात् उत्पादक वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन भंडार में वृद्धि करना जैसे – मशीनों, औजारों, बैंकिग, परिवहन आदि का विस्तार करना। आर्थिक शब्दावली में संवृद्धि से तात्पर्य सकल घरेलू उत्पादन (GDP) में होने वाली निरन्तर वृद्धि से लिया जाता है। सकल घरेलू उत्पाद का अर्थ किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष की समयावधि में उत्पादित समस्त अंतिम वस्तुओं व सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के योग से है। सकल घरेलू उत्पादन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से होने वाले उत्पादन से प्राप्त होता है। इन विभिन्न क्षेत्रों में प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र तथा तृतीयक क्षेत्र शामिल है। अर्थव्यवस्था में विकास के साथ–साथ सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का हिस्सा कम होता जाता है और द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र का हिस्सा बढ़ता जाता है।

2. **पूर्ण रोजगार (Full Employment)** – भारत के आर्थिक नियोजन में एक महत्वपूर्ण दीर्घकालीन लक्ष्य पूर्ण रोजगार को प्राप्त करना रखा गया। पूर्ण रोजगार वह स्थिति है जिसमें काम करने के योग्य सभी लोगों को काम मिलना चाहिए जो काम करने के लिए तैयार है। यह पंचवर्षीय योजनाओं का एक सामाजिक उद्देश्य था। जिसका तात्पर्य है कि विकास में धनी तथा गरीब वर्गों की समान भागीदारी हो।

3. **समानता (Equility)** – आर्थिक संवृद्धि का लाभ यदि कुछ मुट्ठीभर लोगों को ही प्राप्त होता है तो यह संवृद्धि अर्थहीन होगी। ऐसी स्थिति में धनी वर्ग अधिक धनी तथा निर्धन वर्ग अधिक निर्धन बनकर रह जायेगा जिससे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अतः आर्थिक समानता को नियोजन में एक महत्वपूर्ण लक्ष्य बनाया गया। संवृद्धि, आत्मनिर्भरता, आधुनिकीकरण के लक्ष्य तब ही फलीभूत हो सकते हैं।

4. **आत्मनिर्भरता (Self Reliance)** – आर्थिक आयोजन अपनाने के समय भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी खाद्यान्नों का आयात करता था, आधारभूत उद्योगों का विकास न के बराबर होने की वजह से बड़ी मात्रा में परिवहन उपकरण, बिजली संयंत्र, मशीनी औजार, भारी इंजिनियरिंग वस्तुओं और पूंजीगत पदार्थों का विदेशों से आयात करना पड़ता था। विकसित देश अपनी मजबूत सौदाकारी शक्ति का प्रयोग कर, अल्पविकसित देशों से अपनी वस्तुओं की ऊँची कीमतें वसूल करते थे। किसी देश को अपनी संवृद्धि व आधुनिकीकरण को आगे बढ़ाने के लिए खाद्यान्न व मशीनरी में आत्मनिर्भर बनना होगा, साथ ही विदेशी सहायता को भी कम करना होगा। भारतीय नियोजन में आत्मनिर्भरता को प्रमुख लक्ष्य के रूप में अपनाया गया। आत्मनिर्भरता का तात्पर्य है, जिन वस्तुओं का उत्पादन देश में संभव हो सकता है उनका आयात कम करना और अन्ततः बंद करना।

5. **आधुनिकीकरण (Modernization)** – भारतीय आर्थिक नियोजन में लक्ष्य रखा गया कि परम्परागत तकनीकी के स्थान पर आधुनिक तकनीकी का प्रयोग किया जाये। आधुनिक तकनीकी की तात्कालिक आवश्यकता कृषि क्षेत्र तथा डेयरी उद्योग में महसूस की गई। इस हेतु देश में शोध और विकास पर अधिक जोर दिया गया। छठी पंचवर्षीय योजना में सर्वप्रथम आधुनिकीकरण के उद्देश्य को प्रमुखता से इंगित किया गया, और कहा गया कि आधुनिकीकरण शब्द आर्थिक क्रिया के रूप में अनेक ढांचागत और संस्थागत परिवर्तनों की ओर संकेत करता है। इससे उत्पादन का ढांचा बदलेगा, उत्पादक क्रियाओं में विविधता आएगी, तकनीकी विकास होगा और संस्थागत परिवर्तन होंगे। इन सबसे भारतीय अर्थव्यवस्था सामन्ती–उपनिवेशवादी से आधुनिक और स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में बदल जायेगी।

आर्थिक आयोजन में इस तरह अनेक लक्ष्य निर्धारित किए गए। जिनमें से उपर्युक्त लक्ष्यों को दीर्घकालिक लक्ष्यों के रूप में निर्धारित किया गया क्योंकि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अधिक समयावधि की आवश्यकता थी। इन्हें किसी एक पंचवर्षीय योजना में प्राप्त नहीं किया जा सकता था।

पंचवर्षीय योजनाओं का संक्षिप्त परिचय (Introduction of five year plans)

पहली पंचवर्षीय योजना (First Five Year Plan) – इस योजना की अवधि 1951 से 1956 तक थी। इस योजना

में देश विभाजन व दूसरे विश्व युद्ध से अर्थव्यवस्था में पैदा हुए असंतुलनों को दूर करना लक्षित किया गया। इस योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता कृषि उत्पादन में वृद्धि करना था। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए परिवहन व संचार के साधनों का विस्तार करना तथा सिंचाई की व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना में सर्वाधिक संसाधन परिवहन एवं संचार व्यवस्था के लिए उपलब्ध कराए गए जो कि कुल योजना परिव्यय का 26.4 प्रतिशत था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में काफी हद तक सफल रही। अर्थव्यवस्था काफी सुदृढ़ व स्थिर हो गयी, देश में खाद्यान्न उत्पादन की स्थिति सुधर गई, मूल्य–स्तर में कमी आयी आदि।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan) – इस योजना की समय अवधि 1956 से 1961 तक रही। इस योजना में एक ऐसी प्रणाली को अपनाने का प्रयास किया गया जिससे समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो सके। इसमें बुनियादी एवं भारी उद्योगों के विकास पर अधिक जोर दिया गया। इस योजना में कुल संसाधनों का 20.1 प्रतिशत उद्योग व खनन पर खर्च किया गया। योजना में अन्य उद्देश्य रोजगार के अवसरों में तीव्र वृद्धि करना, आय एवं सम्पत्ति की असमानताओं को कम करना निर्धारित किया गया। इस योजना में लोहा व इस्पात, अलौह धातु, कोयला, सीमेन्ट, भारी रसायन व अन्य उद्योगों के विकास पर जोर दिया गया। इसमें अपनाई गई रणनीति के कारण ही इस योजना को **'भारत का आर्थिक संविधान'** कहा जाता है। इस योजना का मॉडल प्रो. पी.सी. महालनोबिस द्वारा तैयार चार क्षेत्रीय विकास मॉडल था।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (Third Five Year Plan) – इस योजना की समयावधि 1961 से 1966 तक रही। इस योजना की प्रमुख रणनीति आत्मनिर्भर एवं स्वयंस्फूर्त अर्थव्यवस्था का निर्माण करना था ताकि सतत् विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इस योजना के तात्कालिक उद्देश्य थे 1. राष्ट्रीय आय में पांच प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर प्राप्त करना 2. खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना तथा उद्योगों व निर्यातों की जरूरतों को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि करना 3. बुनियादी उद्योगों का विस्तार करना तथा 4. रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना व असमानता को कम करना।

इस योजना में कृषि क्षेत्र पर व्यय को दूसरी योजना की तुलना में बढ़ाकर दुगुना कर दिया गया जिसका कारण कृषि उत्पादन को दुगुना करना था। इस योजना में भी सर्वाधिक व्यय परिवहन व संचार पर किया गया जो कि कुल योजना परिव्यय का 24.6 प्रतिशत था। इस मद पर अधिक व्यय करने का कारण आधारभूत ढांचे का विकास करना था ताकि उद्योग व कृषि क्षेत्र को आधार प्रदान किया जा सके।

तीन वार्षिक योजनाएं (Three Annual Plan) – तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत को 1962 में चीन तथा 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध झेलना पड़ा, साथ ही तीसरी योजना के अंतिम वर्षों में भयंकर सूखे व अकाल की स्थिति, मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation) करना आदि परिस्थितियों के कारण चौथी पंचवर्षीय योजना समय पर शुरू नहीं की जा सकी। उक्त कारणों की वजह से हमें तीन एक–वर्षीय (1966–69) योजनाएं बनानी पड़ी, जिन्हें आर्थिक नियोजन के इतिहास में 'योजना अन्तराल' (Plan Holiday) के नाम से जाना जाता है।

चौथी पंचवर्षीय योजना (Fourth Five Year Plan) इस योजना की समयावधि 1969 से 1974 निर्धारित की गई। इस योजना को समय पर लागू नहीं करने का कारण संसाधनों की कमी था। इस योजना की कार्य रणनीति स्थिरता के साथ विकास तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था। इस हेतु योजना में निम्न लक्ष्य निर्धारित किए गए:– 1. कीमत स्थिरता प्राप्त करना 2. आत्मनिर्भरता प्राप्त करना व विदेशी निर्भरता को कम करना 3. समाज के निम्न वर्गों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराना 4. औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार करना 5. आधारभूत संरचना का विकास करना 6. समानता व सामाजिक न्याय प्रदान करने वाले कार्यक्रमों को बढ़ावा देना। इस योजना में भी सर्वाधिक व्यय परिवहन व संचार सुविधाओं पर किया गया। ऊर्जा क्षेत्र की बढ़ती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए द्वितीय स्थान ऊर्जा क्षेत्र को दिया गया।

पांचवी पंचवर्षीय योजना (Fifth Five Year Plan) इस योजना की समयावधि 1974 से 1979 रखी गयी। इस योजना की मुख्य रणनीति गरीबी निवारण एवं आत्मनिर्भरता की प्राप्ति था। इस हेतु समाज के कमजोर वर्गों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना लक्षित किया गया। 1975 में श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया गया। इस योजना में सर्वाधिक व्यय उद्योग क्षेत्र पर निर्धारित

करके, उसे उच्च प्राथमिकता दी गई। इसमें मुद्रास्फीति पर नियंत्रण और आर्थिक स्थिरता हासिल करने को भी उच्च प्राथमिकता दी गई। इसका एक उद्देश्य राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर हासिल करना भी था। पांचवी पंचवर्षीय योजना अपनी अवधि की चार वार्षिक योजनाएं पूरी कर पायी। इसके बाद तय किया गया कि पांचवी योजना को 1978–79 की वार्षिक योजना को पूरा करने के साथ ही समाप्त कर दिया जाए।

एकवर्षीय योजना (One Year Plan) :– 1977 में जनता पार्टी की सरकार सत्ता में आयी और उसने पांचवी पंचवर्षीय योजना को एक वर्ष पूर्व समाप्त करके 1978 से 1983 के लिए एक चक्रीय योजना (Rolling Plan) लागू की। इस योजना में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक वर्ष की योजना को समायोजित किया जाता है। इसमें प्रत्येक वर्ष के लिए तीन योजनाऐं बनाई जाती है। एक चालू वर्ष के लिए, दूसरे मध्यमकालीन स्वरूप की तथा तीसरी दीर्घकालीन योजना। परन्तु, जनता पार्टी की सरकार अपना कार्यकाल पूरा न कर सकी और इस योजना को नई सरकार ने 1980 में समाप्त कर दिया।

छठी पंचवर्षीय योजना (Sixth Five Year Plan) इस योजना की समयावधि 1980 से 1985 थी। इस योजना का सर्वप्रमुख उद्देश्य गरीबी को दूर करना था। इस योजना की रणनीति यह तय की गई कि एक साथ कृषि और उद्योग दोनों के बुनियादी ढांचे को मजबूत किया जाए। इस बात पर बल दिया गया कि सभी क्षेत्रों में बेहतर व्यवस्था, कार्यक्षमता और सघन निगरानी के जरिए व्यवस्थित तरीके से परस्पर जुड़ी समस्याओं का निराकरण किया जाए। इसके साथ ही इस पर भी जोर दिया गया कि जनता की सक्रिय भागीदारी से स्थानीय स्तर पर विकास की विशेष परियोजनाएं तैयार की जाएं तथा तेजी से व प्रभावी ढंग से उन्हें पूरा किया जाएं। इस योजना में सर्वाधिक व्यय ऊर्जा क्षेत्र पर 28.1 प्रतिशत (कुल व्यय राशि का) किया गया, दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र परिवहन व संचार को रखा गया। इस योजना में औसत विकास दर 5.2 प्रतिशत तय की गई थी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (Seventh Five Year Plan)

इस योजना की समयावधि 1985 से 1990 रखी गयी। इस योजना की प्रमुख रणनीति रोजगार संवर्द्धन, उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाना था। इस योजना में नीतियों और कार्यक्रमों पर बल दिया गया। इसका लक्ष्य अनाजों के उत्पादन में वृद्धि, रोजगार के अवसरों और उत्पादकता का विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय की मूलभूत अवधारणाओं के तहत् बढ़ना था। इस योजना के दौरान अनाजों के उत्पादन में 3.23 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो पूर्व वर्षों से अधिक थी। इसका कारण अच्छा मौसम, विभिन्न प्रमुख निर्धारित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन तथा सरकार और किसानों का समन्वित प्रयास रहा। बेरोजगारी और साथ ही गरीबी दूर करने के लिए पहले से चल रहे कार्यक्रमों के अलावा जवाहर रोजगार योजना जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए। इस योजना में भी सर्वाधिक व्यय 30.5 प्रतिशत ऊर्जा क्षेत्र के लिए रखा गया।

वार्षिक योजनाएं (Annual Plan) केन्द्र में तेजी से बदलते राजनीतिक परिस्थितियों के कारण आठवीं पंचवर्षीय योजना समय पर शुरू नही की जा सकी। जून 1991 में बनी नई केन्द्र सरकार ने तय किया कि आठवीं पंचवर्षीय योजना एक अप्रैल 1992 से शुरू होगी और 1990–91 तथा 1991–92 के लिए अलग वार्षिक योजनाएं मानी जाएंगी। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1990–95) को दृष्टिगत करते हुए तैयार की गई इन वार्षिक योजनाओं में मुख्य रूप से अधिकतम रोजगार प्रदान करने और सामाजिक परिवर्तन पर बल दिया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (Eight Five Year Plan)

इस योजना की समयावधि 1992 से 1997 थी। इस योजना की प्रमुख कार्य रणनीति रोजगार के समुचित अवसर उपलब्ध कराना था। इस योजना को ढाँचागत समायोजन और दीर्घ स्थितिकरण नीतियों को शुरू करने के तुरन्त बाद शुरू किया गया। इन नीतियों की जरूरत 1990–91 के दौरान भुगतान संतुलन (Blance of payment) तथा मुद्रास्फीति (Inflation) की बिगड़ती स्थिति के कारण पड़ी थी। आठवीं पंचवर्षीय योजना में इन नीतिगत सुधारों पर ध्यान दिया गया। इस योजना में भी सर्वाधिक संसाधन ऊर्जा क्षेत्र को उपलब्ध करवाएं गए जो कि कुल परिव्यय (Outlay) का 26.6 प्रतिशत था। इस योजना में विकास की दर 5.6 प्रतिशत लक्षित थी जबकि इसकी प्राप्ति 6.5 प्रतिशत रही। आठवीं पंचवर्षीय योजना में मानव विकास पर विशेष बल दिया गया। इसके लिए रोजगार सृजन, जनसंख्या नियंत्रण, साक्षरता, शिक्षा, स्वास्थ्य,

पेयजल उपलब्ध कराना, पर्याप्त मात्रा में खाद्य आपूर्ति, आधारभूत संरचना का विकास आदि को प्राथमिकता दी गई।

नवीं पंचवर्षीय योजना (Ninth FiveYear Plan)

इस योजना की समयावधि 1997 से 2002 थी। इसकी प्रमुख कार्य रणनीति 'सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक संवृद्धि' थी। योजना का लक्ष्य प्रतिवर्ष 6.5 प्रतिशत की सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि–दर हासिल करना था। इसमें सात बुनियादी न्यूनतम सेवाओं पर बल देना तय हुआ। इन सेवाओं के लिए केन्द्रीय सहायता का प्रावधान किया गया था ताकि समयबद्ध तरीके से आबादी को लाभ पहुँचाया जा सके। इन सेवाओं में:–

(i) शुद्ध पेयजल,
(ii) प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता,
(iii) सबके लिए प्राथमिक शिक्षा,
(iv) बेघर गरीबों के लिए घर,
(v) बच्चों के लिए पोषक आहार,
(vi) सभी गांवों और बस्तियों के लिए सड़क,
(vii) सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को बेहतर बनाना।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (Tenth five year plan)

इस पंचवर्षीय योजना की समयावधि 2002 से 2007 रखी गयी। इस योजना की प्रमुख कार्य रणनीति जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाना था। दसवीं योजना में विकास दर 8 प्रतिशत लक्षित की गई, इस हेतु प्रतिव्यक्ति आय को दस वर्षों में दुगुना करना लक्ष्य रखा गया। इस योजना में कुछ विशिष्ट लक्ष्य (Specific targets) निर्धारित किए गये, जो निम्नलिखित है:–

(i) वर्ष 2007 तक गरीबी का अनुपात 26 प्रतिशत से घटाकर 21 प्रतिशत करना;
(ii) जनसंख्या वृद्धि दर की आगामी दसवर्षीय वृद्धि–दर को 16.2 प्रतिशत करना;
(iii) बढ़ती श्रम–शक्ति के लिए लाभप्रद रोजगार की व्यवस्था करना;
(iv) साक्षरता व मजदूरी में लिंग–असमानता को 50 प्रतिशत तक घटाना;
(v) साक्षरता दर को 2007 तक पहुँचाकर 75 प्रतिशत करना;
(vi) शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate) को 1999–2000 के 72 से घटाकर 2007 में 45 तक लाना
(vii) प्रसूति मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate) को 1999–2000 के चार से घटाकर 2007 में 2 तक पहुँचाना;
(viii) सभी गांवों में पेयजल उपलब्ध कराना;

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (Eleventh Five Year Plan)

इस योजना की समयावधि 2007 से 2012 तक रही। इस योजना की कार्य रणनीति **'अधिक तीव्र ओर ज्यादा समावेशी विकास'** को बनाया गया। योजना अवधि के दौरान 9 प्रतिशत विकास दर का लक्ष्य रखा गया जिसे योजना की समाप्ति तक बढ़ाकर 10 प्रतिशत करना था। इस हेतु योजना में 27 मुख्य लक्ष्य तय किए गए जिन्हें 6 मुख्य वर्गों में बांटा गया। (i) गरीबी, (ii) शिक्षा, (iii) स्वास्थ्य, (iv) स्त्रियां तथा बच्चें, (v) आधारिक संरचना तथा (vi) पर्यावरण।

इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) के लिए नई प्राथमिकताएं तय की गई। ये प्राथमिकताएं कृषि क्षेत्र में फिर से नई ऊर्जा का संचार करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यक अधोसंरचना का निर्माण करने, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं को विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों तक पहुँचानें, कमजोर वर्गों के जीवन निर्वाह की स्थितियों में सुधार लाने और उन्हें अधिक आर्थिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए कार्यक्रम शुरू करने से संबंधित हैं। इस योजना में पंचायती राज संस्थाओं पर अन्य योजनाओं की तुलना में कहीं अधिक विश्वास व्यक्त किया गया। ग्यारहवीं योजना में कुल परिव्यय में से सर्वाधिक व्यय सामाजिक सेवाओं (32.6%) पर किया गया।

पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियां (Achievements of Five Year Plans)

आर्थिक आयोजन के 62 वर्षों के इतिहास में हमनें कुछ क्षेत्रों में उपलब्धियां अर्जित की। इसके साथ ही हमें असफलताएं भी देखनी पड़ी और कुछ नयी समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ। भारत में आर्थिक नियोजन के दौरान हासिल की गई उपलब्धियों को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं:–

1. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि** (Growth in National Income) – योजना काल में आर्थिक वृद्धि–दर में लक्ष्यों के अनुरूप वृद्धि हुई।

योजना	लक्ष्य	वास्तविक
पहली योजना	2.1	4.2

दूसरी योजना	4.5	4.2
तीसरी योजना	5.6	2.6
चौथी योजना	5.7	3.2
पांचवी योजना	4.4	4.9
छठी योजना	5.2	5.4
सातवीं योजना	5.0	5.5
आठवीं योजना	5.6	6.7
नौवीं योजना	6.5	5.5
दसवीं योजना	8.0	7.5
ग्यारहवीं योजना	9.0	7.8

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में विकास दर औसतन लगभग 3.5 प्रतिशत बनी रही जिसे प्रो. राजकृष्णा ने 'हिन्दू विकास दर' (Hindu Growth Rate) का नाम दिया जो कि हिन्दू धर्म की पुरातनवादी परम्पराओं के अनुरूप स्थिर रही। छठी पंचवर्षीय योजना के बाद वृद्धि दर में वृद्धि हुई जो कि विकास का शुभ लक्षण था, परन्तु नौंवी पंचवर्षीय योजना में यह पुनः कम हो गयी। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में अब तक की सर्वाधिक वृद्धि दर 7.8 प्रतिशत प्राप्त की गयी।

2. **कृषि क्षेत्र में विकास** (Development in Agriculture Sector) – योजनाकाल के 62 वर्षों के दौरान सरकार ने प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के दौरान कृषि एवं सिंचाई पर कुल परिव्यय का 20 प्रतिशत से अधिक खर्च किया। 1950 में खाद्यान्न का उत्पादन 5.40 करोड़ टन से बढ़कर 2013–14 में 26 करोड़ 48 लाख टन हो गया। इस प्रकार खाद्यान्न उत्पादन में लगभग 5 गुना वृद्धि हुई। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर 4 प्रतिशत लक्षित थी जो हमें लक्ष्य से कम 3.3 प्रतिशत प्राप्त हुई हैं। कृषि सिंचित क्षेत्र, उर्वरकों का प्रयोग, उन्नत बीजों का प्रयोग, कृषि में आधुनिकीकरण इत्यादि सभी घटकों में योजनाकाल के दौरान वृद्धि हुई।

3. **उद्योगों में वृद्धि** (Growth in Industries) – आर्थिक आयोजन के दौरान कुल परिव्यय का उद्योगों पर बड़ा व्यय किया गया है। आयोजनकाल के प्रारंभिक वर्षों के दौरान औद्योगिक विकास की दर अधिक रही, परन्तु बाद में यह विकास दर घटने लगी। इस दौरान लोहा व इस्पात, एल्यूमिनियम, इंजीनियरी वस्तुएं, रसायन, उर्वरक और पेट्रोलियम उत्पादों में वृद्धि हुई।

4. **भुगतान संतुलन** (Balance of payment) –योजनाकाल के दौरान विकासात्मक नीतियों के लिए अधिक वित्त की आवश्यकता थी, फलतः घाटे का बजट बनाना शुरू किया गया। यह घाटा लगातार बढ़ता गया, जिसे पूरा करने के लिए मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation) किया गया, जिसका भुगतान संतुलन पर विपरीत प्रभाव पड़ा। भारत का व्यापार शेष केवल दो वर्षों 1972–73 तथा 1976–77 को छोड़कर अन्य वर्षों में प्रतिकूल ही रहा। योजनाकाल के दौरान विदेशी विनिमय रिजर्व में वृद्धि हुई, यह दिसम्बर 2015 में बढ़कर 351.62 बिलियन डॉलर हो गया।

5. नियोजनकाल के दौरान जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy) 1951 में 32 वर्ष थी जो बढ़कर 2010–14 में 67.9 वर्ष हो गयी।

6. इनके अतिरिक्त नियोजन काल के दौरान आर्थिक आधारिक संरचना व सामाजिक आधारिक संरचना का तेजी से विकास, भारत में एक विशाल शिक्षा प्रणाली का विकास, बचत व निवेश की दरों में वृद्धि होना भी संभव हुआ।

भारतीय नियोजन की असफलताएं (Shortcomings of Planning)

1. **निर्धनता को समाप्त करने में विफलता –** नियोजन के दौरान अपनाई गई समाजवादी विकास की प्रमुख रणनीति लोगों को न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराना था। इसके लिए पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विभिन्न कार्यक्रम चलाए गए, पांचवी पंचवर्षीय योजना में 'गरीबी हटाओं कार्यक्रम' चलाया गया और 'गरीबी हटाओं' का नारा दिया गया। परन्तु, आज भी देश की लगभग एक–चौथाई जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इस बारे में आकलन किया हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के 61वें दौर के अनुसार 1999–2000 में 26.1 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे थी। सुरेश डी. तेन्दुलकर

समिति की रिपोर्ट के अनुसार 2004–05 में देश की 37. 2 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे थी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के 68वें दौर के अनुसार 2011–12 में 21.9 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे थी। इस प्रकार निर्धनता आज भी देश के सामने एक विकट समस्या बनी हुई है।

2. **रोजगार में धीमी वृद्धि–दर–** नियोजनकाल के दौरान विकास के साथ–साथ बेरोजगारी भी बढ़ी हैं। हालांकि योजनाकाल के दौरान बेरोजगारी दूर करने के अनेक कार्यक्रम चलाए गए, परन्तु सभी कार्यक्रम नाकाफी सिद्ध हुए। प्रथम योजना में बेरोजगारों की संख्या 53 लाख थी, यह 1993–94 में बढ़कर 7.49 मिलियन और 2011–12 में 10.84 मिलियन हो गई। देश में बेरोजगारी व अल्परोजगार की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अतः सरकार द्वारा चलाए गये कौशल विकास कार्यक्रम तथा स्वरोजगार से सम्बन्धित कार्यक्रम इस दिशा में सार्थक सिद्ध हो सकते हैं।

3. **आय व धन की असमानताओं में वृद्धि –** आयोजन के प्रारम्भ में आय की विषमताएं व्यापक रूप से फैली हुई थी, अतः आयोजन के दौरान इसे दूर करने का प्रयास किया गया। इस हेतु अनेक युक्तियां अपनायी गयी। परन्तु, सभी अध्ययनों से यह निष्कर्ष सामने आया कि नियोजनकाल में धनी वर्ग को आर्थिक सुधारों का अधिक मौका मिला है और आर्थिक शक्ति एक विशिष्ट वर्ग के पास केन्द्रित हो गयी हैं। देश की 10 प्रतिशत जनसंख्या के पास 90 प्रतिशत संसाधनों का संकेन्द्रण है जबकि 90 प्रतिशत जनसंख्या के पास 10 प्रतिशत संसाधन ही उपलब्ध हैं। यह असमानता की खाई लगातार बढ़ती ही जा रही है। 2004–05 से 2009–10 के बीच 10 राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 18 राज्यों के शहरी क्षेत्रों में आय असमानताओं में वृद्धि हुई हैं।

4. **औद्योगिक विकास की अपर्याप्तता –** किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का आधार औद्योगिक विकास होता है। देश में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आधारभूत उद्योगों के विकास को सर्वाधिक महत्व दिया गया। परन्तु इसके पश्चात् कुल योजना परिव्यय में उद्योगों का अंश लगातार घटता गया जिससे उद्योगों का विकास अवरूद्ध हो गया। देश के कुछ हिस्से अधिक निवेश के कारण औद्योगिक दृष्टि से विकसित हो गए। जबकि कुछ क्षेत्रों में आज भी औद्योगिक विकास की स्थिति नगण्य है। उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक निवेश, कच्चा माल, तकनीकी, मशीनरी और आधारभूत ढांचा आवश्यक है जिसकी देश में कमी है। नियोजनकाल के दौरान काली अर्थव्यवस्था (Black Economy) का दायरा भी बढ़ता गया। 2008 में यह 640.7 बिलियन डॉलर आकलित की गयी जो उस वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का 50 प्रतिशत थी।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि नियोजनकाल के दौरान देश को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा जिससे योजनाओं द्वारा वांछित लक्ष्य की प्राप्ति न की जा सकी। परन्तु नियोजन काल के दौरान देश की सकल घरेलू उत्पत्ति, प्रतिव्यक्ति आय, जीवन–स्तर, साक्षरता दर आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई हैं।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना
(Twelfth Five Year Plan)

बारहवीं पंचवर्षीय योजना की समयावधि 1 अप्रेल 2012 से 31 मार्च 2017 तक निर्धारित थी। इस योजना की प्रमुख कार्य रणनीति **''तीव्रतर, धारणीय तथा और अधिक समावेशीय संवृद्धि''** (Faster, Sustainable and more Inclusive Growth) को बनाया गया। बारहवीं योजना में इस बात को पूर्णतः स्वीकार किया गया कि विकास का उद्देश्य हमारी जनता की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में व्यापक सुधार करना है। हालांकि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जी.डी.पी. का तीव्र विकास अनिवार्य जरूरत है। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्वीकृत बारहवीं योजना के दृष्टिकोण–पत्र में योजना काल में जीडीपी में 9 प्रतिशत औसत वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

इस योजना का मसौदा राज्यों की सलाह–मशविरा के आधार पर तैयार किया गया था ताकि नीति निर्धारण प्रक्रिया में राज्यों व विभिन्न संगठनों को शामिल किया जा सके। यह बदलते आर्थिक पर्यावरण की आवश्यकता थी कि राज्यों को अधिक वित्तीय स्वायता व आर्थिक मजबूती दी जाये ताकि समावेशी विकास की संकल्पना को पूरा किया जा सके। बारहवीं योजना के 'तीव्रतर, धारणीय तथा ओर अधिक समावेशीय

संवृद्धि' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए 25 मूल संकेतक निर्धारित किए गए है, जिनमें से मुख्य संकेतक निम्न हैं –

1. सकल घरेलू उत्पाद में 8 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त करना (पूर्व में यह 8.2 प्रतिशत थी)।
2. कृषि क्षेत्र में 4.0 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त करना।
3. विनिर्माण क्षेत्र में 10.0 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त करना।
4. बारहवीं योजना के अंत तक प्रति व्यक्ति उपभोग गरीबी (Comsumpation Poverty) में 10 प्रतिशत बिन्दु की कमी करना।
5. प्रत्येक राज्य के लिए एक औसत वृद्धि दर तय की जानी अपेक्षित है जो ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना से अधिक हो।
6. गैर–कृषि क्षेत्र में 5 करोड़ नए रोजगार के अवसर सृजित करना।
7. बारहवीं योजना के अंत तक, स्कूल शिक्षा के औसत वर्षों की संख्या को बढ़ाकर 7 वर्ष करना।
8. नवजात शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate-IMR) को कम करके 25 तथा मातृमृत्यु दर (Maternal Mortality Rate-MMR) को कम करके प्रति 1000 जीवित जन्म पर 1 तक लाना।
9. शिशु लैंगिंक अनुपात (Child Sex Ratio) को योजना के अंत तक सुधार कर 950 तक करना।
10. कुल प्रजनन दर (Total Fartility Rate-TFR) को योजना के अंत तक 2:1 तक लाना।
11. आधारिक संरचना में निवेश का योजना के अंत तक सकल घरेलू उत्पाद के 9 प्रतिशत तक पहुँचाना।
12. योजना के अंत तक कुल सिंचित क्षेत्र को 90 मिलियन हैक्टयर से बढ़ाकर 103 मिलियन हैक्टेयर तक पहुँचाना।
13. बारहवीं योजना के दौरान हरित क्षेत्र में प्रति वर्ष 1 मिलियन हैक्टेयर की वृद्धि करना।
14. 90 प्रतिशत परिवारों तक योजना के अंत तक बैंकिग सेवायें पहुँचाना।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना के कुल परिव्यय में से सर्वाधिक आंवटन सामाजिक सेवाओं के लिए 32.6 प्रतिशत किया गया। इसके पश्चात् कृषि क्षेत्र को द्वितीय क्रम पर रखा गया। योजना में समावेशिता की धारणा के अन्तर्गत गरीबी निवारण में समावेशिता, वर्ग समानता, क्षेत्रीय समानता, शक्तिकरण में समानता के रूप में समावेशिता को स्वीकार किया गया। धारणीयता के अन्तर्गत पर्यावरण की धारणीयता को स्वीकार करके पर्यावरण प्रदूषण और ग्रीन हाउस गैसों (Green House Gases) के बढ़ते प्रभाव से जलवायु परिवर्तन के खतरें की ओर ध्यान आकर्षित किया गया।

योजना आयोग (Planning Commission) स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश को विकास के पथ पर ले जाने के लिए एक स्थायी निकाय की आवश्कता महसूस की गई जो नियोजन से संबंधित सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उठा सकें, जैसे योजना निर्माण, संसाधनों की उपलब्धता, कार्यान्वयन तथा पुनरीक्षण आदि। 15 मार्च 1950 को इस क्रम में योजना आयोग की स्थापना एक गैर–संवैधानिक तथा गैर–वैधानिक निकाय के रूप में की गई। यह एक सलाहकारी निकाय है जो भारत सरकार को विभिन्न आर्थिक मुद्दों पर सलाह देता है। यह आर्थिक विकास के लिए एक 'विचारक मंडल' (Think Tank) है। जिसका पदेन अध्यक्ष (Ex-officio Chairman) प्रधानमंत्री है। अध्यक्ष के अतिरिक्त इसमें एक उपाध्यक्ष तथा 6 सदस्य केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के पदेन सदस्य तथा आयोग में एक सदस्य सचिव होता है। सदस्यों की संख्या बढ़ायी जा सकती है।

राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council-NDC) राष्ट्रीय विकास परिषद एक गैर–संवैधानिक निकाय है, जो योजना आयोग एवं विभिन्न राज्यों के बीच समन्वय की कड़ी का काम करता है। के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में गठित योजना सलाहकार परिषद ने एक ऐसे संगठन की स्थापना की संस्तुति की थी, जिसमें विभिन्न प्रदेशों, रियासतों तथा अन्य हितों का प्रतिनिधित्व हो सके। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में यह कहा गया है कि जहां संघीय ढाँचें के अन्तर्गत राज्यों को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त रहती है वहां इस तरह के संगठन की आवश्यकता होती है जो समय–समय पर योजना के मूल्यांकन हेतु प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्रियों को एक अवसर प्रदान कर सकें।

सरकार ने 6 अगस्त 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन किया जिसका पदेन अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है तथा योजना आयोग का सचिव, इसका भी सचिव होता है। इसके अन्य सदस्यों में राज्यों के मुख्यमंत्री, केन्द्रीय मंत्रीपरिषद के सभी सदस्य, केन्द्र प्रशासित प्रदेशों के प्रशासक तथा योजना आयोग के सदस्य शामिल होते हैं।

राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्य

1. राष्ट्रीय योजना के निर्माण व साधनों के निर्धारण के लिए पथ–प्रदर्शक सूत्र निश्चित करना।
2. योजना आयोग द्वारा तैयार की गई राष्ट्रीय योजना पर विचार करना तथा उसे अंतिम रूप देना।
3. राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक व आर्थिक नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना।
4. समय–समय पर योजनाओं के कार्यान्वयन का पुनःनिरीक्षण करना।

नीति आयोग

(National Institution for Transforming India-NITI)

विश्व में बदलते आर्थिक वातावरण के अनुरूप भारत को विकास के पथ पर बढ़ने के लिए राज्यों को अधिक स्वायता देने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी, ताकि राज्य भी अपनी नीतियों के अनुरूप विकास योजनाओं का निर्माण कर सके और विकास के पथ पर आगे बढ़ सके। इस दिशा में केन्द्र सरकार ने कदम उठाते हुए **'योजना आयोग' को समाप्त कर, उसके स्थान पर 'नीति आयोग' की स्थापना 1 जनवरी 2015 को की।** नीति आयोग नीति संबंधित निर्णय लेने वाला एक 'विचार–संगठन' (Think-Tank) है जो राज्यों को नीतियों के निर्माण व निर्णयों में बराबर भागीदार बनाता है। यह आयोग राज्यों को युक्ति संगत व तकनीकी सलाह प्रदान करेगा। इसका उद्देश्य नीतियों को निचले स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक उनका समग्रीकरण करना है।

सरकार ने सत्ता में आने से पूर्व अपने एजेंड़े में 'योजना से नीति की ओर' का आह्वान किया था। क्योंकि भारत में पिछले 65 वर्षों के दौरान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी तथा जनसांख्यिकीय परिवर्तन बड़े पैमानें पर हुए है। अतः नीति आयोग की आवश्यकता पर जोर देते हुए वित्त मंत्री ने कहा कि ''65 वर्ष पुराने योजना आयोग का औचित्य अब समाप्त हो चुका है। उसकी आवश्यकता सरकारी आधिपत्य वाली अर्थव्यवस्था में तो थी परन्तु अब बदलते हुए हालात में नहीं। भारत एक विविधीकृत अर्थव्यवस्था है और उसके विभिन्न राज्य आर्थिक विकास के अलग–अलग चरणों में हैं। इन सब राज्यों की अपनी–अपनी शक्तियां व कमजोरियां हैं। इस संदर्भ में सबके लिए एक ही दृष्टिकोण वाले आर्थिक आयोजन का कोई अर्थ नहीं हैं। इस प्रकार की व्यवस्था रखने पर भारत विश्व स्तर पर, प्रतिस्पर्धात्मक गुणवत्ता प्राप्त नहीं कर पायेगा।''

नीति आयोग के पदेन अध्यक्ष भारत के प्रधानमंत्री होगें। इसके अतिरिक्त एक उपाध्यक्ष तथा सभी सदस्य पूर्णकालिक होगें, अंशकालिक सदस्यों की संख्या अधिकतम 2 होगी, पदेन सदस्यों की संख्या चार होगी जिनकी नियुक्ति प्रधानमंत्री द्वारा मंत्रिपरिषद में से की जायेगी। पूर्ण कालिक सदस्यों में प्रशासी परिषद (राज्यों के मुख्यमंत्री व संघीय क्षेत्रों के उप–राज्यपाल) तथा क्षेत्रीय परिषद के सदस्य शामिल हैं। नीति आयोग का प्रथम उपाध्यक्ष राजस्थान के डॉ. अरविंद पानगडिया को बनाया गया है।

नीति आयोग अन्त्योदय, समावेश, गांव, जनसंख्यात्मक लाभ, जन सहभागिता, अभिशासन तथा धारणीयता के मार्गदर्शक सिद्धान्तों पर कार्य करेगा। नीति आयोग द्वारा किए जाने वाले कार्यों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं:–

1. एक ऐसी प्रशासक व्यवस्था की स्थापना करना जिसमें सरकार की भूमिका 'सहायक' (Enabler) की हो।
2. नीति आयोग सहकारी व प्रतियोगिता पूर्ण संघवाद के सिद्धान्त पर कार्य करेगा अर्थात् यह केन्द्र से राज्य की ओर नीति के स्थान पर सतत् केन्द्र–राज्य नीति पर कार्य करेगा।
3. नीति आयोग विभिन्न चुनौतियों का समाधान केन्द्र–राज्यों के सामंजस्य तथा विभिन्न मंत्रालयों में सामंजस्य स्थापित करके करेगा।
4. यह विश्व स्तर पर होने वाली संगोष्ठियों में भारत की अहम व प्रभावी भूमिका की सुनिश्चितता तय करेगा।
5. भारत की उद्यम–क्षमता तथा वैज्ञानिक व बौद्धिक कुशलता का पूरा प्रयोग करना।
6. लिंग असमानताओं, जाति के आधार पर असमानताओं तथा आर्थिक असमानताओं को दूर करना।
7. नीति आयोग, नीति एवं कार्यक्रमों को डिजायन करने में केन्द्र व राज्यों को परामर्श प्रदान करेगा।
8. नीति आयोग सरकार द्वारा संचालित नीतियों एवं कार्यक्रमों की निगरानी एवं मूल्यांकन करेगा।

9. प्रत्येक भारतीय को इज्जत की जिन्दगी गुजारने का एक सुअवसर प्रदान करना तथा गरीबी को समाप्त करना।

इस प्रकार नीति आयोग सहयोगात्मक संघवाद (Cooperative Federalism) पर जोर देता है। इसकी भूमिका 'विचार–संगठन' की होगी जो सरकार को निष्पक्ष व सही राय देने में सक्षम होगा। नीति आयोग केन्द्र सरकार के 'बंद दफ्तरों' से बनाई जाने वाली नीतियों के स्थान पर, स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर बनाई जाने वाली नीतियों के लिए रास्ता तैयार कर सकता है।

निष्कर्षः– भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सोवियत संघ से प्रेरणा लेकर आर्थिक आयोजन अपनाया गया। इसके अन्तर्गत पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को एक निश्चित समयावधि में दिए गए संसाधनों के आधार पर प्राप्त करना तय किया गया। भारत में आर्थिक नियोजन के दौरान अल्पकालिक व दीर्घकालिक लक्ष्य निर्धारित किए गए जिन्हें विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया गया। इन योजनाओं के माध्यम से कृषि–क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, सेवा–क्षेत्र सभी में वृद्धि दर्ज की गई है। हालांकि हमें इस दौरान कुछ असफलतायें भी देखने को मिली हैं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, राजकोषीय घाटा, कर्जभार में वृद्धि आदि। भारत में योजनाओं के निर्माण का कार्य पूर्व में योजना आयोग करता था जिसे समाप्त करके उसके स्थान पर नीति आयोग को यह कार्य सौंपा गया है जो कि स्थानीय स्तर से केन्द्र–स्तर तक के लिए योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करेगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- आर्थिक नियोजन से तात्पर्य उस विधि से है जिसमें केन्द्रीय योजना अधिकारी देश के संसाधनों को ध्यान में रखते हुए निश्चित समय में पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक कार्यक्रमों तथा नीतियों को लागू करता है। भारत में नियोजन का जनक सर एम. विश्वेरवरैया को माना जाता है।
- आर्थिक आयोजन के अन्तर्गत संवृद्धि, पूर्ण रोजगार, समानता, आत्मनिर्भरता तथा आधुनिकीकरण को दीर्घकालीन लक्ष्यों के रूप में निर्धारित किया गया।
- भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरूआत 1 अप्रैल 1951 को की गई।
- प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र, द्वितीय में उद्योग क्षेत्र जबकि तीसरी योजना में आत्मनिर्भरता तथा पांचवी योजना में गरीबी निवारण को प्रमुख कार्य रणनीति के रूप में अपनाया गया।
- 1966–69 के दौरान तीन एक वर्षीय योजनाएं बनाई गई जिन्हें 'योजना अवकाश' कहा गया।
- 1978–1983 के लिए जनता सरकार द्वारा चक्रीय योजना (Rolling Plan) लागू की गई।
- नवीं पंचवर्षीय योजना में सात बुनियादी न्यूनतम सेवाओं पर अधिक बल दिया गया।
- 12वीं पंचवर्षीय योजना की समयावधि 2012–17 तक रखी गई है, इसकी प्रमुख कार्यरणनीति 'तीव्रतर, धारणीय तथा ओर अधिक समावेशीय संवृद्धि' को बनाया गया।
- भारत में पंचवर्षीय योजना को बनाने के लिए 1950 में योजना आयोग का गठन किया गया था, जिसे समाप्त करके 1 जनवरी 2015 से यह कार्य नीति आयोग को सौंप दिया गया है।
- नीति आयोग सहकारी सहयोगात्मक संघवाद के आधार पर कार्य करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. राष्ट्रीय नियोजन समिति का अध्यक्ष कौन था ?
(अ) सर, एम. विश्वैश्वरेया
(ब) दीन दयाल उपाध्याय
(स) जवाहर लाल नेहरू
(द) फिरोज शाह मेहता ( )

2. योजना आयोग का गठन किया गया–
(अ) 1950 (ब) 1949
(स) 1951 (द) 1952 ( )

3. योजना अवकाश का काल था–
(अ) 1965–68 (ब) 1966–69
(स) 1967–70 (द) 1964–67 ( )

4. नीति आयोग का अध्यक्ष होता है–
(अ) राष्ट्रपति (ब) प्रधानमंत्री
(स) वित्त मंत्री (द) वाणिज्य मंत्री ( )

5. आठवीं पंचवर्षीय योजना का काल रहा था–

(अ) 1990–95 (ब) 1991–96

(स) 1992–97 (द) 1993–98 ( )

6. निम्न में से गलत सुमेलित है–

योजना	वर्ष
(अ) जन योजना	1944
(ब) सर्वोदय योजना	1950
(स) बॉम्बे प्लान	1945
(द) नियोजन समिति	1938 ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय नियोजन का पिता किसे कहा जाता है ?
2. "Plannced Economy for India" पुस्तक का लेखक कौन है ?
3. संवृद्धि से क्या तात्पर्य है ?
4. परिप्रेक्ष्यात्मक योजना किसे कहते हैं ?
5. दूसरी पंचवर्षीय योजना किस मॉडल पर आधारित थी ?
6. गरीबी हटाओं का नारा कौनसी पंचवर्षीय योजना में दिया गया था ?
7. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का शीर्षक वाक्य क्या था ?
8. नीति आयोग का पूरा नाम क्या है ?
9. नीति आयोग के प्रथम उपाध्यक्ष का नाम बताइये ?
10. भारतीय नियोजन के दीर्घकालिक उद्देश्य बताइये ?
11. राज्यवार विकास के लक्ष्य कौनसी पंचवर्षीय योजना में तय किए गए ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आर्थिक नियोजन का क्या आभिप्राय है ?
2. भारतीय नियोजन के ऐतिहासिक पक्ष को बताइये ?
3. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना को संक्षेप में दर्शाइए ?
4. नवीं पंचवर्षीय योजना में किन बुनियादी न्यूनतम सेवाओं पर बल दिया गया ?
5. 'योजना अवकाश' से आप क्या समझते हैं ?
6. 'रोलिंग प्लान' से आपका क्या आभिप्राय है ?
7. मिश्रित अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं ?
8. राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्यों का उल्लेख कीजिए ?
9. योजना आयोग को समाप्त करके नीति आयोग का गठन किया गया। इसकी क्या आवश्यकता थी ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. 12वीं पंचवर्षीय योजना का वर्णन कीजिए ?
2. नीति आयोग का सविस्तार उल्लेख कीजिए ?
3. आर्थिक नियोजन के दीर्घकालीन लक्ष्यों का उल्लेख कीजिए ?
4. 1990 से पूर्व अपनाई गई पंचवर्षीय योजनाओं का परिचय दीजिए ?
5. आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों एवं विफलताओं को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला

(1) स (2) अ (3) ब

(4) ब (5) स (6) स

संदर्भ ग्रंथ

- Planning Commission, First Five Year Plan, Government of India
- भारत 2014, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
- भारत 2015, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
- रमेश सिंह, Mc Graw Hill Education-2015
- दत्त एवं सुंदरम, एस. चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0लि0,
- आर्थिक समीक्षा 2016–17, भारत सरकार।

अध्याय 2.2

कृषिगत विकास
(Agricultural Development)

प्राचीन काल से भारत कृषि प्रधान देश रहा हैं यहाँ से कृषिगत निर्गतों का विश्व में निर्यात किया जाता था। भारतीय कृषि–उत्पाद विश्व में अपनी उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध थे जैसे – ढ़ाका की मलमल, भारतीय मसालें, जूट, वस्त्र आदि। स्वतंत्रता से पूर्व लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका का मुख्य साधन कृषि था।

भारत की कृषि उत्कृष्टता को देखकर पश्चिमी देशों के व्यापारियों ने भारत की ओर रूख किया। भारत में व्यापार करने के लिए आये विभिन्न देशों यहां अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया, जिनमें से अधिकतर असफल हुए परन्तु अंग्रेज अपनी कूटनीतिक चालों तथा फूट डालो और राज करों कि नीति के कारण अपनी उपनिवेशवादी नीति में सफल हो गये। ब्रिटिश शासकों की औपनिवेशिक नीतियों के परिणामस्वरूप कृषि–क्षेत्र का कोई विकास नहीं हुआ उन्होंने देश के उत्कृष्ट वस्त्र केन्द्रों को नष्ट करने के लिए भारत को कच्चे माल का निर्यातक तथा इंग्लैण्ड में बने हुए निर्मित माल का आयातक बना दिया। कृषि क्षेत्र में लगान वसूली की सुविधा के लिए उन्होंने मध्यस्थ वर्ग को जन्म दिया जिसने किसानों का निम्नतर स्थिति तक शोषण किया। कृषि को 'जीवन–निर्वाह' का साधन बना दिया गया।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्व (Importance of Agriculture in Indian Economy)

स्वतंत्रता के पश्चात् औद्योगिक विकास के संगठित प्रयास के बावजूद आज भी भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका का मुख्य साधन कृषि बना हुआ है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के समग्र महत्व को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं:–

1. **राष्ट्रीय आय में कृषि का महत्व (Importance of Agriculture in National Income)** – भारत में राष्ट्रीय आय के आंकड़े केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार 1950–51 में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 56.6 प्रतिशत था जो क्रमिक रूप से कम होकर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 15.2 प्रतिशत रह गया। यह हिस्सा 2016–17 में 17.32 प्रतिशत रह गया है। हम कह सकते है कि स्वतंत्रता के समय कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का राष्ट्रीय आय में हिस्सा काफी अधिक था जो धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। यह विकासात्मक अर्थव्यवस्था का संकेत है।

विकास के साथ–साथ राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा धीरे–धीरे कम होता जाता है जैसा कि विकसित देशों में देखने को मिलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह 2–3 प्रतिशत, फ्रांस में 7 प्रतिशत, ऑस्ट्रेलिया में 7 प्रतिशत जबकि पिछड़ी व अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का योगदान काफी अधिक रहा है।

2. **रोजगार में कृषि का योगदान (Contribution of Agriculture in Employment)** – भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का इतना अधिक महत्व है कि भारत की कार्यशील जनसंख्या की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या आज भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि पर आजीविका के लिए निर्भर करती है। कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाएं जैसे मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, पशु पालन आदि में अत्यधिक रोजगार संभावनाएं होने के कारण इन पर जनसंख्या का अधिक हिस्सा निर्भर है।

आजीविका के लिए कृषि पर जनसंख्या की निर्भरता अधिक है परन्तु इनकी औसत आय गैर–कृषि क्षेत्रों की तुलना में बहुत कम है। इसके लिए भारत के नीति निर्धारकों को अत्यधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि यह चिन्ता का प्रमुख विषय है।

3. **औद्योगिक विकास में कृषि का महत्व (Importance of Agriculture in Industrial Development)** – भारत में कृषि का महत्व औद्योगिक विकास के

कारण भी रहा है। हमारे प्रमुख उद्योगों को कृषि द्वारा कच्चा माल उपलब्ध कराया जाता है जैसे चाय उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, वनस्पति तथा बागान उद्योग प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। इनके अतिरिक्त चावल कूटना, हाथ करघा बुनाई, तेल निकालना, साबुन बनाना, खाद्य पदार्थों से सम्बन्धित कार्य आदि अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर होते हैं। वर्तमान में खाद्य–प्रसंस्करण (Food Processing) उद्योग तेजी से विकसित हो रहा है जो कि पूर्णतया कृषि पर निर्भर करता है। जिससे आय तथा रोजगार दोनों में वृद्धि हो रही है।

4. **विदेशी व्यापार में कृषि का महत्व (Importance of Agriculture in Foreign Trade)** – भारत द्वारा विदेशों को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में कृषिगत वस्तुऐं मुख्य रही हैं – चाय, तम्बाकू, गर्म मसालें, सूखे मेवे, तेल निकालने के बीज आदि। इससे हमें विदेशी मुद्रा का अर्जन होता है और विदेशी मुद्रा कोष भण्डार में वृद्धि होती है।

5. **आर्थिक नियोजन में कृषि का महत्व (Importance of Agriculture in Economic Planning)** – भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व अन्य कारणों से भी रहा है। कृषि भारतीय परिवहन व्यवस्था का मुख्य आधार है क्योंकि रेल–परिवहन तथा सड़क–परिवहन द्वारा अधिकतर कृषि वस्तुओं की ढुलाई की जाती है। इसके अतिरिक्त यदि फसल अच्छी होती है तो किसानों की क्रय शक्ति बढ़ जाती है जिससे वे उद्योगजनित वस्तुओं की मांग करते है परिणामतः उद्योगों की प्रगति को बढ़ावा मिलता हैं। यदि फसल खराब होती है तो व्यापार में मंदी आ जाती हैं। सरकार के वित्त के साधन अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ कृषि पर निर्भर करते हैं।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और कृषि की सम्पन्नता पर ही भारतीय अर्थव्यवस्था की समृद्धि निर्भर करती है। कृषि लोगों की आय व रोजगार का प्रमुख साधन बना हुआ है। विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि रोजगार के प्रमुख साधन के रूप में स्थापित हैं।

भूमि सधार
(Land Reform)

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व अत्यधिक होने के बावजूद भारतीय कृषि आज भी पिछड़ी बनी हुई हैं। औपनिवेशिक शासन के दौरान किसानों का अत्यधिक शोषण किया गया जिससे किसानों की दशा दयनीय तथा कृषि की दुर्दशा हो गयी। अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी लगान वसूली की जमींदारी, रैयतवाड़ी व महलवारी प्रथायें किसानों की निर्धनता, दयनीयता तथा कृषि के पिछड़ेपन का कारण रही।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कृषि एवं कृषक दोनों की दशा को सुधारनें के अनेक प्रयास किये गये। इस क्रम में कृषि की दशा में सुधार हेतु भू–सुधार किये गये। भू–सुधार के अन्तर्गत निम्न कदम उठाये गये–

(क) बिचौलियों की समाप्ति
(ख) काश्तकारी सुधार
(ग) जोतों का सीमा निर्धारण
(घ) कृषि का पुर्नगठन

(क) बिचौलियों की समाप्ति (Abolition of Intermediaries) – स्वतंत्रता से पूर्व भारत की गतिहीनता का प्रमुख कारण कृषि क्षेत्र की गतिहीनता को माना गया। कृषि क्षेत्र की गतिहीनता का मुख्य अस्त्र जमींदार या मध्यस्थ था जिसे ब्रिटिश सरकार का सहयोग व समर्थन प्राप्त था। कृषि विकास हेतु स्वतंत्रता के पश्चात् इनका उन्मूलन करना आवश्यक माना गया। इसके तहत् कुछ राज्यों में प्रथम पंचवर्षीय योजना से पूर्व ही कानूनों का निर्माण किया गया। परन्तु उनका पालन प्रथम पंचवर्षीय योजना में किया गया। जिन राज्यों में भूमि का रिकॉर्ड व प्रशासनिक मशीनरी पहले से उपलब्ध थी उनमें स्थायी बंदोबस्त करना मुश्किल नहीं था परन्तु जिन राज्यों में भूमि का रिकार्ड उपलब्ध नही था उन राज्यों में इसे लागू करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ा। जैसे–बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, सौराष्ट्र आदि। इसके अन्तर्गत औपनिवेशिक शासन द्वारा लागू की गई जमींदारी, रैयतवाड़ी तथा महलवाड़ी प्रणालियों को समाप्त किया गया, इस हेतु अनेक कानूनों का

निर्माण किया गया। इससे काश्तकार तथा सरकार का सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया।

(ख) काश्तकारी सुधार (Tenancy Reforms) – इसके तहत काश्तकारी व्यवस्था में अनेक सुधार किये गये। काश्तकारी व्यवस्था से तात्पर्य उस प्रणाली से है जिसमें भूमि का मालिक स्वयं खेती न करके काश्तकारों को पट्टे पर दे देता है। सरकार द्वारा काश्तकारी व्यवस्था के अन्तर्गत निम्न सुधार किये गयेः–

(i) लगान का नियमनः– ब्रिटिश शासन काल में काश्तकारों पर लगान का अत्यधिक बोझ था। विद्वानों के मतानुसार यह कुल उपज का 30 से 80 प्रतिशत तक था। जिससे किसानों द्वारा जी–तोड़ मेहनत करने के बाद भी उनका गुजर–बसर नही हो रहा था। अतः स्वतंत्रता के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना में सिफारिश की गई की अधिकतम लगान कुल उत्पादन का 1/5 या 1/4 से अधिक नहीं होना चाहिए।

(ii) काश्त–अधिकारों की सुरक्षाः – काश्तकारों को भूमि से बेदखल करने से रोकने के लिए अनेक कानूनों का निर्माण किया गया। इन कानूनों का उद्देश्य काश्तकारों की बेदखली को रोकना, भू–स्वामी को भूमि खुद–काश्त के लिए ही लौटाने, भूमि भू–स्वामी को लौटाने की स्थिति में भी काश्तकार के पास कुछ भूमि छोड़ना आदि थे।

(iii) काश्तकारों को भूमि का मालिकाना अधिकार देना अर्थात् किसान जिस भूमि पर खेती करता था उसका उसे मालिक बनाना। इस हेतु विभिन्न राज्यों में कानूनों का निर्माण किया गया। पश्चिम बंगाल, कर्नाटक तथा केरल में अन्य राज्यों की तुलना में अधिक सफलता मिली।

(ग) जोतों का सीमा निर्धारण (Consolidation of Holdings)– इसके अन्तर्गत सरकार द्वारा जोतों की उच्चतम सीमा का निर्धारण किया गया। दूसरें शब्दों में किसी व्यक्ति या परिवार द्वारा रखी जाने वाली कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित की गई। जिससे खेतिहर किसानों को खेत उपलब्ध करवाये जा सके। भारत में जोतों का आकार स्वतंत्रता से पूर्व अत्यधिक छोटा था। भारत में सीमांत जोत अधिक पायी जाती है। जिन पर उपज की तुलना में लागत अधिक आती है। देश में जोतों का उपविभाजन (Sub-Division) तथा उपखण्डन (Fragmentation) विभिन्न कानूनी, सामाजिक, आर्थिक तथा जनांकिकीय कारणों से हुआ है। इन कारणों से भूमि छोटे–छोटे टुकड़ों में बंट गई, इनमें मुख्यतः निजी सम्पत्ति का अधिकार, उत्तराधिकार का नियम, जनसंख्या का अत्यधिक दबाव, संयुक्त परिवार का विघटन, बंटई प्रथा तथा महाजन व साहूकारें की भूमिका प्रमुख हैं। उपखण्डन एवं उपविभाजन की समस्या के निदान हेतु जोतों की चकबन्दी की गई। चकबन्दी से तात्पर्य किसानों को गांव में विभिन्न स्थानों पर बिखरे हुए खेतों की जगह एक ही स्थान पर खेत उपलब्ध कराना हैं।

जोत	निर्धारण	कुछ जोतों का प्रतिशत (2010–11)
सीमांत जोत	1 हैक्टेयर से कम	67.0
लघु/छोटी जोत	1 हैक्टेयर से 2 हैक्टेयर	17.9
अर्द्धमध्यम जोत	2 हैक्टेयर से 4 हैक्टेयर	10.1
मध्यम जोत	4 हैक्टेयर से 10 हैक्टेयर	4.3
बड़ी जोत	10 हैक्टेयर से अधिक	0.8

(घ) कृषि का पुर्नगठन (Reorganisation of Agriculture)– इसके अन्तर्गत सरकार द्वारा जोतों के उप–विभाजन व अपखण्डन की समस्या के समाधान हेतु चकबन्दी की व्यवस्था लागू की गई। चकबन्दी के अन्तर्गत गांव में किसान के बिखरें हुए खेतों की जगह एक ही स्थान पर खेत उपलब्ध करवाये गये।

भूमि सुधारों के अन्तर्गत सरकार द्वारा लागू किये गये कानूनों से आंशिक सफलता ही मिल पायी। जमींदारों ने कानूनों की कमियों का फायदा उठाकर स्वयं को किसान घोषित कर दिया अथवा न्यायालय में भू–सुधार कानूनों को चुनौती देकर, इनको लागू करने में होने वाली देरी का फायदा उठाकर भूमि के पट्टे अपने रिश्तेदारों के नाम से जारी करवा लिये। देश के सभी क्षेत्रों में इन सुधारों को समान रूप से लागू नहीं किया जा सका।

कृषिगत उत्पादकता (Agricultural Productivity)

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए भारतीय कृषि का विकास भी आवश्यक है। इसके लिए कृषि को प्राथमिकता

क्रम में सबसे पहले महत्व दिया जाना चाहिए, चूंकि विकासशील देशों में उद्योगों के विकास की अभिप्रेरणाएं (Motivations) कम होती है। इसलिए कृषि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि करने का प्रयास किया जाना चाहिए। भारत का मुख्य खाद्यान्न चावल है द्वितीय स्थान पर गेहूँ हैं।

कृषि उत्पादकता का अभिप्राय प्रति हैक्टेयर उत्पादकता से है। कृषि उत्पादन की उत्पादकता प्रवृत्तियों को हम निम्न तालिका से समझ सकते हैं–

फसल	वर्ष 1950–51		वर्ष 2015–16	
	उत्पादन	उत्पादकता	उत्पादन	उत्पादकता
चावल	206	668	1043	2404
गेहूँ	64	665	935	3093
ज्वार	55	353	44	925
बाजरा	26	288	81	1164
दालें	84	441	165	652
खाद्यान्न	508	552	2522	2056
तिलहन	62	481	254	968
कपास	30	88	301	432
जूट	33	1043	99	2399

टिप्पणीः–

1. उत्पादन 'लाख टन' में कपास व जूट के लिए उत्पादन 'लख गांठ' में है। कपास के लिए एक गांठ = 170 किलोग्राम। जूट के लिए एक गांठ = 180 किलोग्राम।
2. उत्पादकता किलोग्राम प्रति हैक्टेयर में है।

स्रोत– Sixth five year plan, Government of India, Economicv Survey 2016-17, Volume II, Government of India, Economic Survey 1980-81.

तालिका से स्पष्ट है कि चावल का उत्पादन 1950–51 में 206 लाख टन से बढ़कर 2015–16 में लगभग पांच गुना 1065 लाख टन हो गया। इसी अवधि में गेहूँ उत्पादन 64 लाख टन से बढ़कर 935 लाख टन (लगभग 15 गुना) हो गया। कुल खाद्यान्न उत्पादन 508 लाख टन से बढ़कर 2522 लाख टन (लगभग 5 गुना) हो गया। इस अवधि के दौरान खाद्यान्न फसलों में गेहूँ का उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा। मोटे अनाजों के उत्पादन में संतोषजनक वृद्धि नहीं हुई और इनका उत्पादन लगभग स्थिर बना रहा।

गैर–खाद्यान्न फसलों में तिलहन के उत्पादन में लगभग 5 गुना वृद्धि हुई जबकि इसी अवधि में कपास का उत्पादन लगभग 12 गुना बढ़ा। गैर–खाद्यान्न फसलों में कपास उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई।

प्रति हैक्टेयर उत्पादकता कुल खाद्यान्नों के लिए 1950–51 में 552 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर से बढ़कर 2013–14 में 2101 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर हो गई। इसका कारण 70 के दशक में अपनायी गई नई कृषि रणनीति थी जिसमें सिंचाई, उर्वरक, मशीनीकरण, उन्नत बीजों के प्रयोग पर बल दिया गया था। इसी अवधि में गेहूँ की उत्पादकता 665 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर से बढ़कर 3093 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर तथा चावल की उत्पादकता 668 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर से बढ़कर 2404 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर हो गई। इसी प्रकार गैर–खाद्यान्न फसलों में कपास की उत्पादकता 88 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर से बढ़कर 432 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर हो गई। दालों की उत्पादकता में प्रतिवर्ष औसत रूप से एक प्रतिशत की वृद्धि हुई।

अतः देश में खाद्यान्नों की प्रति हैक्टेयर उत्पादकता इन 64 वर्षों में लगभग चार गुना, तिलहन में लगभग तीन गुना, चावल में लगभग चार गुना, कपास में लगभग ढाई गुना रही। सभी फसलों की उत्पादकता में असमान प्रवृतियाँ पाई गई तथा संभाव्य–उत्पादकता के अनुकूल किसी भी फसल की प्रवृति नहीं रही।

निम्न उत्पादकता के कारण (Causes of Low Productivity)

1. कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का अत्यधिक दबाव है। गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध न होने के कारण यह दबाव निरन्तर बढ़ रहा है।
2. भारत में गांवों का सामाजिक वातावरण रूढिवादिता, भाग्यवादिता, अंधविश्वासी, अज्ञानी आदि से ग्रस्त होने के कारण कृषि की उत्पादकता निम्न बनी हुई है।
3. भारत में जोत का आकार छोटा है जिससे उस पर कृषि लागत अधिक रहती है और उत्पादकता का स्तर कम है। 85 प्रतिशत जोतें सीमांत जोत के रूप में विद्यमान है।
4. सरकार द्वारा भू–स्वामित्व प्रणाली के लिए बनाये गये

कानूनों से किसानों को कोई विशेष लाभ प्राप्त न हो पाया। आज भी जमींदार, रसूखदार, महाजन आदि का अस्तित्व बना हुआ है।

5. किसानों द्वारा आज भी पिछड़ी कृषि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

6. आजादी के 67 वर्षों पश्चात् भी 53 प्रतिशत भूमि वर्षा पर आश्रित है अर्थात् सिंचाई सुविधा का पर्याप्त विस्तार नहीं हो पाया है।

7. भारत में किसानों के लिए फसल–मूल्य (Crop Value) प्रेरणादायक नहीं है जिसके कारण किसान उत्पादन में वृद्धि करने के लिए तैयार नहीं हो पाते।

सरकार को कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए आवश्यक प्रयास करने चाहिए। इस हेतु भूमि सुधारों का क्रियान्वयन, कृषिगत आगतों का उचित मात्रा में प्रयोग, साख व विपणन सुविधाओं की उपलब्धता, फसलों के लिए उचित कीमत–नीति को लागू किया जाना चाहिए। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में यह उल्लेखित किया गया है कि कृषित भूमि की सीमितता के कारण भविष्य में कृषि उत्पादकता पर अधिक जोर दिया जाना आवश्यक है। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत रखकर ग्यारहवीं योजना में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (National Food Security Mission - NFSM) लागू किया गया था।

कृषिगत आगतें (Agricultural Inputs)

कृषिगत उत्पादन एवं उत्पादकता कृषिगत आगतों पर निर्भर करती है। कृषि विकास के लिए विकासशील व पिछड़े देशों में इन आगतों का अभाव पाया जाता है परन्तु इनका उचित मात्रा में प्रयोग व सही प्रबन्धन करके कृषिगत उत्पादन व उत्पादकता को तेजी से बढ़ाया जा सकता है। कृषिगत आगतों में सिंचाई, उर्वरक, उन्नत किस्म के बीजों तथा कीटनाशकों का प्रयोग आदि को शामिल किया जाता है।

1. **उर्वरक (Fertilizers)**—कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि करने के लिए रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बढ़ाना आवश्यक है। भारत की भूमि में विविधता पायी जाती है और यह विभिन्न क्षेत्रों में फसलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त है, परन्तु इसमें नाइट्रोजन और फास्फोरस तत्वों की कमी पायी जाती है। इनका प्रयोग कार्बनिक खाद के साथ करने पर फसल उत्पादन तीव्रता से बढ़ता है। अतः खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के लिए उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ाना उचित है। हरित क्रांति के पश्चात् उर्वरकों के उपभोग में वृद्धि हुई है। भारत में नाइट्रोजन (N) तथा फास्फोरस (P) उर्वरकों का ही उत्पादन होता है, पोटाश (K) के लिए हम पूर्णतया आयात पर निर्भर हैं।

2. **सिंचाई (Irrigation)** – भारतीय कृषि मानसून पर आधारित है, कृषिगत उत्पादन को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण आगत सिंचाई है। यदि फसलों को सही समय पर, पर्याप्त मात्रा में पानी मिलता है तो उत्पादकता को बढ़ाना संभव हैं।

(क) लघु सिंचाई परियोजना – जिन सिंचाई परियोजनाओं का कृषि कमाण्ड क्षेत्र 2000 हैक्टेयर से कम होता है उन्हें लघु सिंचाई परियोजनाओं में शामिल किया जाता है।

(ख) मध्यम सिंचाई परियोजना – जिन सिंचाई परियोजनाओं का कृषि कमाण्ड क्षेत्र 2000 हैक्टेयर से 10000 हैक्टेयर के मध्य होता है उन्हें मध्यम सिंचाई परियोजनाओं में शामिल किया जाता है।

(ग) बड़ी सिंचाई परियोजना – जिन सिंचाई परियोजनाओं का कृषि कमाण्ड क्षेत्र 10,000 हैक्टेयर से अधिक होता है उन्हें बड़ी सिंचाई परियोजनाओं में शामिल किया जाता हैं।

सिंचाई के साधन (Modes of Irrigation) – भारत में प्राचीन काल से ही सिंचाई के साधनों के रूप में तालाब, बावड़ियाँ, कुएँ, नहरें, टांके, जोहड आदि का प्रयोग किया जाता रहा है। वर्तमान अध्ययन के लिए हम सिंचाई के साधनों को प्रमुख रूप से तीन भागों में बाँटते हैं।

(क) नहरों से सिंचाई – नहरों द्वारा वर्ष 2010–11 में शुद्ध सिंचित भूमि क्षेत्र के 24.6 प्रतिशत भाग पर सिंचाई की जाती रही हैं। नहरों द्वारा सिंचाई प्रमुखतः पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा दक्षिणी भारत में कुछ राज्यों में की जाती है। भारत की प्रमुख नहरों में शारदा नहर, ऊपरी गंगा नहर तथा निचली गंगा नहर, सरहिंद नहर, इंदिरा गांधी नहर व कावेरी, कृष्णा, गोदावरी नदियों से निकाली गई नहरें हैं।

(ख) तालाबों से सिंचाई – तालाबों द्वारा दक्षिण भारत के

राज्यों तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, केरल, कर्नाटक आदि में सिंचाई की जाती है। तालाबों द्वारा 2010–11 में शुद्ध सिंचित क्षेत्र में 3.1 प्रतिशत का योगदान था।

(ग) **कुओं से सिंचाई** – कुओं में सतही कुएँ तथा नलकूप शामिल होते हैं। कुओं द्वारा सिंचाई मुख्यतः उत्तरप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश व हरियाणा में होती है। 2010–11 में शुद्ध सिंचित क्षेत्र में इनका योगदान 61.4 प्रतिशत था। इस प्रकार शुद्ध सिंचित क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान कुओं व नलकूपों का है।

3. **उन्नत किस्म के बीज (High Yielding Varieties of Seeds)** – भारत में हरित क्रांति के दौरान उन्नत किस्म के बीजों पर विशेष जोर रहा। सरकार आयोजन काल के प्रारम्भ से ही उन्नत किस्म के बीजों में सुधार का प्रयास कर रही थी परन्तु इस क्षेत्र में सफलता खरीफ फसल 1966 में मिली, जब उन्नत किस्म के बीजों को अपनाया गया। इस कार्यक्रम को **'पैकेज कार्यक्रम'** (Package Programme) के रूप में अपनाया गया क्योंकि जिन क्षेत्रों में इनको लागू करना था वहां सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था, उर्वरकों का प्रयोग व कीटनाशक दवाओं का उपयोग आवश्यक था। मेक्सिकों से सर्वप्रथम गेहूँ के उन्नत किस्म के बीजों का आयात किया गया। ये बीज कम समयावधि में अधिक उत्पादन करने वाले थे। गेहूँ के अतिरिक्त इस कार्यक्रम को चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि फसलों के लिए भी लागू किया गया।

उन्नत किस्म के बीजों द्वारा अधिक सफलता गेहूँ की फसल में दर्ज की गई जबकि चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि में नाममात्र की सफलता मिली। यह कार्यक्रम कुछ महत्वपूर्ण फसलों को तो छू भी नही सका। जैसे – दलहन, तिलहन, फल व सब्जी आदि।

4. **कीटनाशक दवाएँ (Pesticides and Insecticides)** – भारत में प्रति वर्ष 10–15 प्रतिशत फसल पौध संरक्षण के अभाव में नष्ट हो जाती है अतः फसलों में लगने वाली बीमारियों व कीटाणुओं से इनको बचाना आवश्यक है। कृषि में होने वाला निवेश दिन–प्रति–दिन बढ़ रहा है, कृषिगत आगतों की बढ़ती कीमतों के कारण किसान आर्थिक बोझ से दब रहा है। ऐसी स्थिति में उसकी फसलों को विभिन्न प्रकार से रोगों से बचाना आवश्यक हो जाता हैं। भारत में सर्वाधिक कीटनाशकों का प्रयोग धान और कपास में किया जाता है। हरित क्रांति अपनाने के बाद से कीटनाशक दवाओं के प्रयोग में तीव्र वृद्धि हुई है।

5. **खेती में मशीनीकरण (Farm Mechanisation)**– भारत में कृषि परम्परागत तरीकों (हल, बैल, घोड़े, जोहड़, तालाब आदि) से की जाती है जिससे कृषित उत्पादन व उत्पादकता दोनों कम रहती हैं। नई तकनीकी एवं मशीनों के प्रयोग के द्वारा इन्हें बढ़ाया जा सकता है मशीनीकरण का तात्पर्य कृषि के परम्परागत तरीकों के स्थान पर आधुनिक तरीकों को अपनाना हैं। भारत जैसे देशों में पूँजी की कमी होने के कारण पूर्ण मशीनीकरण की जगह आंशिक मशीनीकरण को ही अपनाया जा सकता है। मशीनीकरण के प्रयोग से उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि के साथ–साथ कुल–लागत में कमी, कृषकों की आय में वृद्धि तथा खाद्यान्न फसलों से व्यावसायिक फसलों की ओर बढ़ने का अवसर मिलता है।

कृषिगत आगतों का व्यवस्थित एवं समुचित मात्रा में प्रयोग द्वारा कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। परिणामतः किसानों की आय सृजित होगी और अप्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। इन आगतों के अतिरिक्त फार्म–मशीनरी, कृषिगत साख, बिजली की समुचित व्यवस्था करके भी कृषिगत उत्पादन बढ़ाया जा सकता हैं।

हरित क्रांति
(Green revolution)

1960 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में, कृषि में पुरातन तकनीकी के स्थान पर नई तकनीकी व अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग शुरू किया गया। जिससे फसलों की प्रति हैक्टेयर उत्पादकता तेजी से बढ़ी जिसे 'हरित क्रांति' कहा गया। सन् 1958 में भारत में पहली बार गेहूँ का कुल उत्पादन 50 लाख टन था जो बढ़कर 120 लाख टन से 170 लाख टन हो गया जिसे अमेरिकी वैज्ञानिक विलियम गॉड ने 'हरित क्रांति' की संज्ञा दी। लेकिन भारत में वास्तविक रूप से हरित क्रांति की शुरूआत 1966 में खरीफ की फसल से माना जाता है जब

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी तथा कृषि मंत्री श्री सी0 सुब्रह्मण्यम ने कृषि में नई रणनीति अपनाने की बात कही।

मैक्सिको में अनुसंधानरत कृषि वैज्ञानिक नॉरमन ई0 बोरलॉग (Norman E. Borlaug) ने गेहूँ के उन्नत किस्म के बीजों की खोज की, जिससे उत्पादकता को 200 से 250 गुना तक बढ़ाया जा सकता था। इनका सर्वप्रथम प्रयोग मैक्सिको तथा ताईवान में किया गया। भारत में खरीफ फसल 1966 में चावल की उन्नत किस्म 'टाइचुंग नेटिव' तथा रबी फसल 1966 में गेहूं की उन्नत किस्म जैसे लरमा, रोजो 64–ए तथा सोनारा–64 का प्रयोग प्रारम्भ किया गया। कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने मैक्सिकन गेहूँ के बीजों की कमियों को दूर करके गेहूँ की नई किस्में 'शर्बती सोना' तथा 'पूसा लरमा' विकसित की। अतः भारत में हरित क्रांति का जनक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन को माना जाता है जबकि विश्व के संदर्भ में नॉरमन ई0 बोरलॉग को (नॉरमन बोरलॉग को 1970 में शांति का नोबल पुरस्कार भी दिया गया था)। इस नई रणनीति को 'बीज–उर्वरक क्रांति' भी कहा जाता है। अतः नई कृषि रणनीति HYV (High Yeilding Varieties) बीजों से सम्बन्धित एक सामूहिक पैकेज थी जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से था। भारत में हरित क्रांति रणनीति को दो चरणों में बांटा जाता है।

नॉरमन ई. बोरलॉग

एम.एस. स्वामीनाथन

प्रथम चरण (First Stage) – यह 60के दशक के मध्य से 90 के दशक के मध्य तक रहा, इसे 'केन्द्रीयकरण का चरण' कहा जाता है। यह चरण मुख्यतः गेहूँ व चावल की फसलों तक केन्द्रित रहा, इसका क्षेत्रीय विस्तार पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश तक सीमित रहा। इस चरण में गेहूँ की उत्पादकता में तीव्र वृद्धि हुई, इसलिए इसे गेहूँ की फसल पर केन्द्रित चरण भी कहा जाता है।

द्वितीय चरण (Second Stage) – इस चरण में पांच फसलों के समूह को शामिल किया गया। इनमें गेहूं, चावल, बाजरा, ज्वार एवं मक्का शामिल थी। साथ ही इसे देश के अन्य भागों में भी लागू किया गया, इसलिए इसे 'विकेन्द्रीयकरण का चरण' भी कहते हैं। इस चरण का मुख्य बल चावल, दलहन, मोटे अनाज एवं खाद्य तेलों के उत्पादन को बढ़ाना था। इसके अन्तर्गत सूखी खेती **(Dry Farming)** को बढ़ाना, क्षेत्रीय विषमताए कम करना, पारिस्थितिकीय संतुलन तथा मृदा के उपजाऊपन को बनाये रखना, जैव उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ाना तथा जल– प्रबन्धन की तकनीकों पर भी जोर दिया गया।

हरित क्रांति की सफलता/हरित क्रांति का प्रभाव
(Impact of Green Revolution)

1. **फसलों के कुल उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि** – हरित क्रांति के परिणामस्वरूप खाद्यान्नों के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई। 1965–66 में गेहूँ का उत्पादन 1 करोड़ टन से बढ़कर 2013–14 में 9 करोड़ 59 लाख टन हो गया। इसी अवधि में गेहूँ की प्रति हैक्टेयर उत्पादकता 851 किलोग्राम से बढ़कर 3075 किलोग्राम हो गई। इसी कारण बहुत से विद्वानों ने इसे **गेहूं–क्रांति (Wheat Revolution)** नाम दिया। कुल खाद्यान्न उत्पादन जो तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त में 810 लाख टन था वह 2013–14 में बढ़कर 264.8 मिलियन टन हो गया। दालों का उत्पादन व उत्पादकता दोनों क्रांति के प्रथम चरण में ऋणात्मक रही। सी.एच. हनुमन्त राव ने अपने लेख में दावा किया है कि हरित क्रांति के आरम्भिक वर्षों में विभिन्न फसलों की संवृद्धि में जो असंतुलन पैदा हो गया था, वह पिछले कुछ समय में कम हुआ है।
2. उर्वरकों **(Fertilizers)** के उपयोग में तेजी में वृद्धि हुई। 1952–53 में उर्वरकों का उपयोग केवल 66000 टन था जो बढ़कर 2013–14 में 239.6 लाख टन हो गया।
3. सिंचाई सुविधाओं का तेजी से विस्तार हुआ। 1950–51 में सिंचाई संभाव्यता (Irrigation Potential) 2.26 करोड़ हैक्टेयर थी, वह 2011–12 में बढ़कर 11.32 हैक्टेयर हो गयी।
4. कृषि में मशीनों व उपकरणों के प्रयोग को व्यापक रूप से प्रोत्साहन मिला जिससे भारतीय कृषि को परम्परागत रूप से आधुनिक रूप मिला।

5. कीटनाशक दवाओं तथ उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग भी व्यापक रूप से बढ़ा।

हरित क्रांति की असफलताएँ/उत्पन्न समस्याएं
(Failures or Problems of Green Revolution)

1. हरित क्रांति का सर्वाधिक प्रभाव गेहूँ पर हुआ। गेहूँ के उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई। चावल के सम्बन्ध में कम सफलता मिली। परन्तु मोटे अनाज (मक्का, ज्वार, बाजरा), दालों व तिलहन पर हरित क्रांति अप्रभावी रही।
2. वाणिज्यिक फसलों **(Commercial Crops)** के उत्पादन में हरित क्रांति असफल रही। अर्थात् इनके उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई।
3. खाद्यान्न सुरक्षा के तहत दालों के उत्पादन में वृद्धि नहीं होने से कुल खाद्यान्नों में दालों के अंश में कमी आयी।
4. हरित क्रांति का प्रभाव कुछ क्षेत्रों तक सीमित रहा, जिससे कृषि विकास में असंतुलित **(Unbalanced)** विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी।
5. कृषि की नई रणनीति का लाभ शिक्षित एवं सम्पन्न किसान ही उठा पाये, सीमान्त एवं लघु किसानों को इसका अधिक लाभ नहीं मिला।
6. हरित क्रांति के कारण पारिस्थितिकी प्रभाव भी पड़े जैसे मिट्टी की लवणीयता–क्षारीयता में वृद्धि, मृदा अपरदन, जल जमाव की समस्या, भूमिगत जल का स्तर नीचे होना, मृदा प्रदूषण, मिट्टी की उर्वरा शक्ति में कमी एवं जैव विविधता में कमी आदि।
7. सरकार द्वारा दी जाने वाली कृषिगत रियायतों का लाभ बड़े किसान ही उठा सके।
8. रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण धारणीय कृषि की अवधारणा को चोट पहुँची।

हरित क्रांति के परिणामतः हम खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो सके जिसका हमें अन्य देशों से आयात करना (Import) होता था। हरित क्रांति का प्रभाव सीमित क्षेत्रों व बड़े किसानों तक ही रहा। अतः हम कह सकते है कि हरित क्रांति का प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर अधिक न हो सका। इसके लिए हमें एक और हरित क्रांति की आवश्यकता महसूस होने लगी।

कृषि वित्त
(Agricultural Finance)

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषिगत वित्त की समस्या प्रमुख रूप से विद्यमान रही है। इसके कारण भारतीय कृषि पिछड़ेपन का शिकार रही है। संगठित क्षेत्र जैसे उद्योग व व्यवसाय के लिए वित्त सुविधाएं आसानी से उपलब्ध हो जाती है परन्तु कृषि एक गैर–संगठित क्षेत्र है इस कारण से इसमें साख सुविधा का अभाव पाया जाता है। किसानों को खाद, बीज, औजार, विपणन, पशुपालन आदि कार्यों के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। ठीक समय वित्त की उपलब्धि ठीक मात्रा में व उचित ब्याज दर पर मिलना कृषिगत उत्पादन व उत्पादकता दोनों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि वित्त को निम्न भागों में विभाजित किया जाता है –

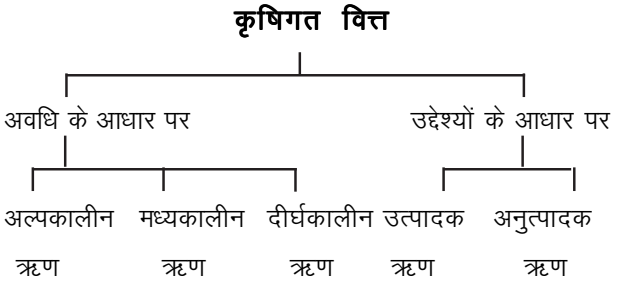

अल्पकालीन ऋण (Short term Loan)– किसानों को खाद, बीज, उर्वरक व अन्य घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अल्पकालीन ऋणों की आवश्यकता होती है। इनकी अवधि 15 माह से कम होती है। इसकी पूर्ति सहकारी समितियों, महाजन, साहूकार द्वारा की जाती है।

मध्यमकालीन ऋण (Midterm Loan) – किसानों को भूमि पर सुधार करने, कृषि यंत्र क्रय करने, बैल खरीदने आदि के लिए मध्यमकालीन ऋणों की आवश्यकता होती है। इनकी अवधि 15 माह से 5 वर्ष तक होती है।

दीर्घकालीन ऋण (Long term Loan)– इन ऋणों की अवधि 5 वर्ष से अधिक की होती है। इनकी आवश्यकता भूमि को समतल करवाने, कुएँ खुदवाने, नई भूमि क्रय करने, पुराने ऋण चुकाने, भारी मशीनरी–ट्रैक्टर खरीदने, लघु सिंचाई व्यवस्था का विकास करने आदि के लिए होती है।

उत्पादक ऋण (Productive Loan) – वे ऋण जिनका उपयोग किसान द्वारा उत्पादक कार्यों के लिए किया जाता है

उत्पादक ऋण कहलाते हैं जैसे खाद, बीज, कृषि औजार, बैल, भूमि पर स्थायी सुधार करने, कुएँ खुदवाने के लिए ऋण लेना।

अनुत्पादक ऋण (Unproductive Loan) – वे ऋण जिनका उपयोग किसान द्वारा अनुत्पादक कार्यों के लिए किया जाता है जैसे शादी, मृत्यु–भोज, अन्य सामाजिक संस्कारों, मुकदमें बाजी के लिए ऋण लेना।

विद्वानों का मत है कि उत्पादक ऋणों का बढ़ना तथा अनुत्पादक ऋणों का कम होना कृषि विकास का द्योतक माना जाता है।

कृषि वित्त के स्रोत (Sources of Agricultural Finance)

भारतीय कृषि विकास के लिए कृषि वित्त की महत्वपूर्ण भूमिका है। कृषि वित्त के आधार पर ही कृषि विकास को गति दी जा सकती है। कृषि वित्त के स्रोतों को हम दो भागों में बांट सकते है:–

कृषि वित्त के स्रोत

गैर–संस्थागत स्रोत	संस्थागत स्रोत
(अ) महाजन व साहूकार	(अ) सहकारी समितियाँ
(ब) सम्बन्धी व रिश्तेदार	(ब) भूमि विकास बैंक
(स) जमींदार	(स) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
(द) आढ़तिये व व्यापारी	(द) व्यापारिक बैंक
	(य) नाबार्ड

(क) गैर–संस्थागत स्रोत (Non-Institutional Sources) – इसमें महाजन, साहूकार, सगे–सम्बन्धी, रिश्तेदार, जमींदार आदि शामिल होते हैं, इन्हें '**देशी बैंकर**' (Local Banker) भी कहा जाता है। इनके द्वारा किसानों को आसानी व सुलभता से ऋण उपलब्ध हो जाता है। स्वतंत्रता से पूर्व इनका कृषि वित्त में बड़ा अंश था, स्वतंत्रता के समय महाजन व साहूकार का कृषि वित्त में योगदान 71.6 प्रतिशत था। ये किसानों का कई प्रकार से शोषण करते थे, अधिक ब्याज की दरों का निर्धारण करना, ऋण खातों का लेखा–जोखा न रखना, ऋण खातों में हेरा–फेरी करना, ब्याज की दरों को बढ़ाकर लिखना, कोरे कागज पर किसानों से अंगूठा लगवाना आदि। किसानों द्वारा ऋण न चुका पाने पर उनसे 'हाली' के रूप में कार्य करवाना या फिर भूमि से बेदखल करना, जमींदारों व साहूकारों की मुख्य नीति थी।

स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार द्वारा किसानों को देशी बैंकरों के चुंगल से निकालने के लिए अनेक प्रयास किए गए। कानून बनाकर उन पर प्रतिबंध लगाएं गए। जैसे ऋण सम्बन्धी लेखा–जोखा रखने की अनिवार्यता, खातों का ठीक प्रकार से व पूरा लेखा–जोखा रखना, ऋणी को ऋण या ब्याज चुकाने पर रसीद देना आदि लागू कर दिया गया।

कुछ राज्यों में साहूकार एवं महाजन द्वारा इन कानूनों का उल्लंघन करने पर दण्ड का प्रावधान किया गया है। विभिन्न राज्यों में साहूकार एवं महाजनों के रजिस्ट्रेशन के इनका कार्य अवैध एवं दण्डनीय माना गया है। विभिन्न राज्यों में साहूकारों एवं महाजनों पर जो प्रतिबंध लगाए गए हैं, उनमें प्रमुख हैं–

(1) चक्रवृद्धि ब्याज पर प्रतिबंध लगाना।

(2) साहूकार द्वारा ऋणों के अतिरिक्त वे ही व्यय वसूल कर सकता है जिनकों कानून में स्पष्टतः स्थान दिया गया हैं।

(3) मूलधन के अन्तर्गत झूठे दावों पर प्रतिबंध लगाना।

(4) दूसरे राज्यों में भुगतान से सम्बन्धित प्रावधानों पर प्रतिबंध लगाना।

(ख) संस्थागत स्रोत (Institutional Sources) – स्वतंत्रता के पश्चात् वित्त व्यवस्था में सुधार के क्रम में संस्थागत वित्त का धीरे–धीरे विकास किया गया। कृषि वित्त में गैर–संस्थागत स्रोतों का हिस्सा 1951 में 92.7 प्रतिशत था वह कम होकर 2013 में 40 प्रतिशत रह गया। इसी अवधि में संस्थागत वित्त का योगदान बढ़कर 60 प्रतिशत हो गया। परन्तु आज भी गैर–संस्थागत वित्त का योगदान अधिक है। संस्थागत कृषि वित्त को बढ़ाने के लिए रिजर्व बैंक ने प्रो. वी.एस. व्यास की अध्यक्षता में Advisory Committee on Flow of Credit to Agriculture and related Activities from the Banking system का गठन किया। समिति ने 2004 में 99 सुझावों के साथ अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसमें से रिजर्व बैंक द्वारा 32 सुझाव मान लिए गए इस प्रकार संस्थागत साख को बढ़ाने के अनेक प्रयास

किए गए। संस्थागत साख में निम्न स्रोतों को शामिल किया जाता है:–

(1) सहकारी साख संस्थाएं (Cooperative Credit Institutes) – सहकारी साख संस्थाओं की शुरूआत भारत में 1904 में हुई थी। स्वतंत्रता पूर्व इनका विकास धीमी गति से हुआ, स्वतंत्रता के बाद इनके विकास को तेजी मिली। कुल संस्थागत साख में इनका 2013–14 में अंश 30 प्रतिशत रहा था। ये विशेषतः अल्पकालीन साख की आवश्यकताओं को पूरी करती है। इनकी त्रिस्तरीय व्यवस्था की गई है –

(i) **प्राथमिक साख समितियाँ** (Primary Credit Socities) – इनका गठन ग्राम स्तर पर किया गया हैं। किसी गांव या क्षेत्र के कम से कम 10 व्यक्ति मिलकर इसका गठन कर सकते हैं। इनके द्वारा सामान्यतः उत्पादक कार्यों के लिए ऋण दिया जाता है।

(ii) **केन्द्रीय सहकारी बैंक** (Central Cooperative Bank) – इनका गठन जिला स्तर पर किया जाता हैं इनका प्रमुख कार्य प्राथमिक साख समितियों को ऋण उपलब्ध करवाना है। ये राज्य सहकारी बैंक तथा प्राथमिक साख समितियों के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है। इनके द्वारा उपलब्ध करवाये जाने वाले ऋण की अवधि एक वर्ष से तीन वर्ष होती है।

(iii) **राज्य सहकारी बैंक** (State Cooperative Bank) – इनका गठन राज्य स्तर पर किया गया है। इनके द्वारा जिला सहकारी बैंकों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं, साथ ही यह उनके कार्यों पर नियंत्रण रखता है। यह रिजर्व बैंक द्वारा वित्त पोषित है।

(2) भूमि विकास बैंक (Land Development Bank) – भारत में इनकी स्थापना सर्वप्रथम 1929 में की गई। इन्हें भूमि बंधक बैंक भी कहते हैं, अब इन्हें कृषि और ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है। ये किसानों की दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिए साख उपलब्ध करवाते हैं। इनकी कुछ राज्यों में एकात्मक संगठन तथा कुछ राज्यों में द्वि–संगठनात्मक व्यवस्था है। ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, राज्य स्तर पर राज्य कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना की गई है।

(3) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Bank - RRBs) – इनकी स्थापना उन क्षेत्रों में की गई जिनमें कृषि विकास की अपार संभावनाएं हैं और संस्थागत साख की व्यवस्था अपर्याप्त है। इनके द्वारा छोटे एवं सीमांत किसानों, कृषि मजदूरों, दसतकारों आदि को ऋण उपलब्ध करवाए जाते हैं। 2 अक्टूबर 1975 को 5 बैंकों की स्थापना के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शुरूआत की गई। कुछ वर्षों पश्चात् इनकी संख्या बढ़कर 196 हो गई। 2005 में विलयन की शुरूआत के बाद से इनकी संख्या घटकर वर्तमान में 56 रह गयी है। 2013–14 में कुल संस्थागत साख में इनका योगदान 11.6 प्रतिशत था। इनके द्वारा उपलब्ध करवाये गए कुल ऋण में 90 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र के कमजोर वर्गों को दिए गए हैं।

(4) व्यापारिक बैंक (Commercial Bank) – स्वतंत्रता के समय कृषि साख में व्यापारिक बैंकों की हिस्सेदारी बहुत कम थी। यह 1950–51 में मात्र 0.9 प्रतिशत थी। व्यापारिक बैंकों की कृषि साख में योगदान बढ़ाने के लिए जुलाई 1969 में 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1980 में 6 ओर व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इसके साथ ही इनको निर्देशित किया गया कि ये 40 प्रतिशत साख प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों (कृषि, लघु उद्योग, लघु व्यवसाय आदि) को उपलब्ध करवाएं। 2013–14 में कृषिगत संस्थागत साख में इनका योगदान 26 प्रतिशत था।

कृषि और ग्रमीण विकास का राष्ट्रीय बैंक (National Bank for Agriculture and Rural Development - NABARD) –

नाबार्ड की स्थापना जुलाई 1982 में क्राफीकार्ड (CRAFICARD) समिति की अनुशंसा पर की गई जिसका अध्यक्ष बी. शिवरमन को बनाया गया। यह ग्रामीण साख (कृषि साख) की सर्वोच्च संस्था है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा स्थापित कृषि पुनर्वित निगम की स्थापना 1963 में की गई जिसका 1975 में नाम बदलकर 'कृषि पुनर्वित एवं विकास निगम'(Agricultural Refinance and Development Corporation - ARDC) कर दिया गया। नाबार्ड ने ARDC के समस्त कार्य तथा भारतीय रिजर्व बैंक के कृषिगत साख विभाग के समस्त

कार्य अपने हाथ में ले लिए। नाबार्ड की प्राथमिक चुकता पूँजी 100 करोड़ रूपए थी।

नाबार्ड के मुख्य कार्य (Functions of NABARD)

1. नाबार्ड ग्रामीण साख की सर्वोच्च संस्था हैं।
2. नाबार्ड सहकारी समितियों, सहकारी बैंकों, भूमि विकास बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण विकास बैंकों को अल्पकालीन, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराता है।
3. यह बैंक कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित सभी क्रियाओं के लिए समन्वय, एकीकरण एवं नियंत्रण करने के लिए उत्तरदायी है।
4. नाबार्ड अपने कृषि साख विभाग के माध्यम से सहकारी क्षेत्र की गतिविधियों पर नजर रखता हैं।
5. नाबार्ड अल्पकालीन ऋण मौसमी कृषि कार्यों के लिए, उर्वरकों की खरीद व वितरण के लिए, कृषि उत्पादन की बिक्री के लिए तथा सहकारी चीनी फैक्ट्रियों की कार्यशील पूंजी के लिए वह सहकारी बैंकों को अल्पकालीन ऋण उपलब्ध कराता हैं।
6. नाबार्ड मध्यकालीन ऋण कृषि उद्देश्यों (भूमि समतलीकरण, कृषि औजारों का क्रय करना आदि), प्राकृतिक विपदाओं से ग्रस्त इलाकों में ऋणों की अवधि बढ़ाने के लिए राज्य सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को ऋण उपलब्ध कराता हैं।
7. कृषि क्षेत्र में बड़े पैमानें पर सुधार के लिए नाबार्ड राज्य सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा व्यापारिक बैंकों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराता हैं।
8. नाबार्ड सहकारी साख संस्थाओं को योगदान के लिए में राज्य सरकारों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराता हैं।
9. नाबार्ड अनुसंधान एवं विकास फण्ड रखता है ताकि कृषि व ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जा सके तथा विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार परियोजनाओं का निर्माण किया जा सकें।

प्रदूषण रहित कृषि विकास/द्वितीय हरित क्रांति

(Agricultural Development without Pollution/Second Green Revolution)

कृषि विकास में प्रदूषण रहित संसाधनों का प्रयोग करना या पारिस्थितिकी अनुकूल तकनीकी का प्रयोग करना ही द्वितीय हरित क्रांति या धारणीय विकास है। एम.एस. स्वामीनाथन, डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, पी.एस. पित्रौदा ने इस क्रांति के लिए निम्न प्रक्रियाएं अपनाने पर बल दिया है–

(अ) रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैव–उर्वरकों (Bio Fertilizers) का प्रयोग करना।

(ब) रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर जैव कीटनाशकों का प्रयोग बढ़ाना।

(स) जल का संरक्षण, फसलों का संतुलित व उपयुक्त प्रतिरूप (Pattern) अपनाना।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने बढ़ती जनसंख्या के लिए उत्पन्न होने वाले खाद्यान्न संकट से निपटने के लिए खाद्यान्नों की पूर्ति बढ़ाने के लिए द्वितीय हरित क्रांति अपनाने पर जोर दिया। जिसमें 'खेत से बाजार तक' के सभी तत्वों का समावेश होना आवश्यक बताया।

द्वितीय हरित क्रांति के लिए एक सम्मेलन का आयोजन दिसम्बर 2006 में नई दिल्ली में आयोजित किया गया जिसकी थीम (Tital) 'नॉलेज एग्रीकल्चर' थी। इस सम्मेलन में यह क्रांति सतत् कृषि विकास तथा विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation-WTO) की चुनौतियों से लड़ने में सक्षम है। इस क्रांति के अन्तर्गत निम्न प्रयास किए गए–

1. कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु इसे सभी कृषि उत्पादों (अनाज, पशुपालन उत्पाद, व्यापारिक फसल, मत्स्य पालन, रेशम पालन उत्पाद आदि) के लिए लागू किया गया। इसीलिए इसे 'इन्द्रधनुष क्रांति' (Rainbow Revolution) कहते हैं। इस क्रांति में फसल प्रबन्धन, जैव आगतों के प्रयोग आदि पर भी बल दिया गया।
2. मूल्य परिवर्द्धन (Value Addition) के लिए कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण (Processing) तथा उनको पेय उद्योगों (Drinking Industries) के रूप में विकसित करने पर जोर दिया गया।
3. कृषि में आधारभूत संरचना को मजबूत करने पर जोर दिया गया। इसके लिए कृषि वित्त की व्यवस्था को सुधारना, कृषि उत्पादों के भण्डारण के लिए शीतागार (Cold Storage) तथा शुष्क संग्रहण (Dry Storage) की व्यवस्था करना, कृषि उत्पादों के विपणन की व्यवस्था

को तीव्र मजबूती देने के लिए परिवहन व्यवस्था को सुधारना, मण्डियों का विकास करना, संचार की व्यवस्था को दुरूस्त करना आदि कृषि में पर्याप्त सिंचाई की व्यवस्थ करना व सिंचाई की आधुनिक तकनीकों का प्रयोग इत्यादि उपायों को प्राथमिकता से लागू करना।

4. किसानों को फसलों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना में सभी फसलों व सभी कृषि क्रियाओं को शामिल किया गया।

द्वितीय हरित क्रांति पर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में अधिक जोर दिया गया ताकि कृषि विकास की लक्षित वृद्धि दर (4%) को प्राप्त किया जा सके जबकि इसकी प्राप्ति वृद्धि–दर 3.3% हुई। प्रदूषण रहित कृषि विकास की नीतियों को ठीक प्रकार से लागू किया जायेगा तो भारत में बारहवीं पंचवर्षीय योजना की लक्षित कृषि विकास दर 4 प्रतिशत को प्राप्त किया जा सकेगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है, यह कुल जनसंख्या के लगभग 65 प्रतिशत की आजीविका का मुख्य साधन हैं।
- कृषि क्षेत्र का योगदान राष्ट्रीय आय, रोजगार, निर्यात, औद्योगिक विकास आदि में महत्वपूर्ण रहा है। कृषि विकास के लिए भूमि–सुधार किए गए, जिसके अन्तर्गत बिचौलियों की समाप्ति, काश्तकारी सुधार, जोतों का सीमा निर्धारण व कृषि का पुर्नगठन जैसे सशक्त उपाय किए गए।
- कृषि उत्पादकता का तात्पर्य प्रति हैक्टेयर उत्पादन से हैं। कृषिगत आगतों का प्रमुख रूप में प्रयोग हरित क्रांति के दौरान किया गया, कृषि आगतों में प्रमुखतः उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई प्रणाली आदि शामिल है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत की मुख्य खाद्यान्न फसल है–
   (अ) चावल (ब) गेहूँ (स) ज्वार (द) मक्का ( )
2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन कौनसी पंचवर्षीय योजना में लागू किया गया–
   (अ) आठवीं पंचवर्षीय योजना
   (ब) दसवीं पंचवर्षीय योजना
   (स) ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना
   (द) बारहवीं पंचवर्षीय योजना ( )
3. भारत में हरित क्रांति अपनाई गई–
   (अ) रबी फसल 1965 (ब) रबी फसल 1966
   (स) खरीब फसल 1966 (द) खरीब फसल 1965 ( )
4. निम्न में से वाणिज्यिक फसल नहीं है–
   (अ) जूट (ब) कपास (स) गन्ना (द) चावल ( )
5. नाबार्ड की स्थापना की गई–
   (अ) जुलाई 1988 (ब) जुलाई 1982
   (स) जुलाई 1984 (द) जुलाई 1986 ( )
6. प्रति हैक्टेयर अधिकतम उर्वरकों का उपयोग करने वाला राज्य हैं–
   (अ) हरियाणा (ब) पंजाब
   (स) उत्तरप्रदेश (द) मध्यप्रदेश ( )
7. निम्न में से कौनसा कृषि वित्त का गैर–संस्थागत स्रोत नहीं हैं–
   (अ) महाजन (ब) रिश्तेदार
   (स) साहूकार (द) सहकारी समितियाँ ( )
8. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शुरूआत कब की गई।
   (अ) 2 अक्टूबर 1975 (ब) 2 अक्टूबर 1976
   (स) 2 अक्टूबर 1977 (द) 2 अक्टूबर 1978 ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत की कितनी प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है ?
2. खाद्यान्न प्रति हैक्टेयर उत्पादकता 2013–14 में कितनी थी ?
3. नाइट्रोजन (N) , फास्फोरस (P) तथा पोटाश (K) का आदर्श अनुपात क्या है ?
4. भारत में सिंचित व असिंचित क्षेत्र कितना है ?
5. भारत में तालाबों द्वारा सिंचाई कौन से राज्यों में की जाती है ?
6. भारत में 'हरित क्रांति' का जनक किसे माना जाता है।
7. 'देशी बैंकर' क्या है ?
8. नाबार्ड का पूरा नाम लिखिए।
9. 'इंद्रधनुषीय क्रांति' किसे कहते हैं ?
10. द्वितीय हरित क्रांति के लिए नवम्बर 2006 में आयोजित सम्मेलन की 'मुख्य थीम' क्या थी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कृषिगत साख का त्रिस्तरीय सहकारी व्यवस्था को समझायें।
2. 'नाबार्ड' का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।
3. भूमि सुधारों के अन्तर्गत किए गए सुधारों को समझाइये?
4. कृषिगत उत्पादकता पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
5. सिंचाई परियोजनाओं को किस आधार पर एवं कितने भागों में बांटा गया है ?
6. कृषि की निम्न उत्पादकता के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
7. कृषिगत साख व्यवस्था को अवधि के आधार पर किए गए विभाजन को समझाइये।
8. प्रदूषण रहित कृषि विकास पर एक नोट लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्त्व पर लेख लिखिए।
2. हरित क्रांति से क्या तात्पर्य है ? इस क्रांति की समीक्षा कीजिए।
3. कृषिगत आगत क्या है ? प्रमुख कृषि आगतों का विवेचन कीजिए।
4. कृषि वित्त के स्रोतों का वर्णन कीजिए।
5. नाबार्ड की ग्रामीण साख व्यवस्था में भूमिका को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तरमाला

(1) अ (2) स (3) स (4) द (5) ब
(6) ब (7) द (8) अ

सन्दर्भ ग्रंथ

1. सी.एच. हनुमंथ राव, "Agriculture : Policy and performane The Indian Economy : Problem and Prospects.
2. वी.के. पुरी, एस.के. मिश्र : भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
3. Indicus Analytics, "Pulses of the Nation", Business standard, February 23, 2012.
4. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी प्रा.लि. नई दिल्ली।
5. अश्वनी कुमार मिश्र : आर्थिक शब्दावली एवं भारतीय अर्थव्यवस्था, सीमा पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
6. भारत 2006, भारत सरकार
7. भारत 2014, भारत सरकार
8. NSSO, Key Indicators of situation of Agriculture Households in India (New Delhi, December 2014).

अध्याय 2.3

औद्योगिक विकास
(Industrial Development)

भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका (Role of Industrial Sector in Indian Economy)

किसी भी अर्थव्यवस्था का विकासशील से विकसित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ने का प्रमाण अर्थशास्त्रियों द्वारा उसके राष्ट्रीय उत्पादन में औद्योगिक क्षेत्र का बढ़ना माना गया है, अर्थात् औद्योगिक क्षेत्र का बढ़ना विकास की ओर ले जाने का सूचक है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है, इसे विरासत में औद्योगिक पिछड़ापन व गतिहीनता मिली। ब्रिटिश शासनकाल में भारत केवल कच्चे माल का निर्यातक बनकर रह गया, उन्होंने यहां नाममात्र के उद्योगों की स्थापना की, जिनमें उनके स्वहितों की पूर्ति होती थी। ये उद्योग विकास के लिए पर्याप्त संरचना उपलब्ध कराने में सक्षम नहीं थे। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत का वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, रंगीन बर्तन उद्योग आदि अपनी उत्कृष्टता के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध थे।

औद्योगिक विकास को किसी भी अर्थव्यवस्था का आधार माना जाता है। औद्योगिक विकास के फलस्वरूप अन्य क्षेत्रों को भी प्रेरणा मिलती है जिससे अर्थव्यवस्था का सर्वांगीण विकास संभव है। भारतीय कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में तो उद्योगों का महत्व ओर बढ़ जाता है, क्योंकि उद्योगों के विकास के साथ ही, हम विकास के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं:–

1. **आय में तीव्र वृद्धि (Rapid Growth in In come)** – विद्वानों का यह मानना है कि तीव्र औद्योगिकीकरण के कारण देश की सकल घरेलू उत्पादकता में तीव्र वृद्धि होगी। उद्योगों के विकास के साथ–साथ लोगों की प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि होगी। कृषिगत उत्पादकता की तुलना में उद्योगों की उत्पादकता अधिक होती है, उद्योग मूलतः मानव के प्रयासों का फल होते हैं जबकि कृषि में इस तरह की पूर्ण प्रतिबद्धता नहीं होती है कृषि प्रकृति पर भी निर्भर करती है। औद्योगिकीकरण के द्वारा विकास के स्तर को प्राप्त किया जा सकता है। देश में औद्योगिकीकरण के साथ–साथ राष्ट्रीय आय में उद्योगों का हिस्सा बढ़ा है तथा लोगों की प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है। देश की सकल घरेलू उत्पत्ति में औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 1950–51 में 16.6 प्रतिशत था यह बढ़कर 2016–17 में 29.02 प्रतिशत हो गया।

2. **रोजगार में योगदान (Role in Employment)** – औद्योगिक क्षेत्र का रोजगार में महत्वपूर्ण योगदान है, जैसे–जैसे उद्योगों का विकास होता है रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। भारतीय औद्योगिक क्षेत्र संगठित क्षेत्र का एक बड़ा नियोजक है, विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना होने के परिणामस्वरूप रोजगार में वृद्धि हुई है। बढ़ती जनसंख्या के कारण विकराल रूप धारण किए हुए बेरोजगारी की समस्या को कृषि क्षेत्र दूर नहीं कर सकता, उद्योगों की भूमिका यहां ओर अधिक बढ़ जाती हैं।

3. **आधारभूत ढाँचें का विकास (Development of Infrastructure)** – भारत जैसे विकासशील देशों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि वहां का आधारभूत ढाँचा मजबूत होना चाहिए। जिस प्रकार कृषिगत आगतों के बिना कृषि का विकास असंभव सा है, उसी प्रकार आधारभूत ढाँचें के बिना औद्योगिक विकास की कामना भी नहीं की जा सकती है। स्वतंत्रता के समय हमें अल्पविकसित आधारभूत ढाँचा विरासत में मिला था। सरकार ने आधारभूत ढाँचे का तेजी से विकास किया जिसका लाभ उद्योगों को मिला और उद्योगों का तेजी से विकास होने लगा। तीव्र औद्योगिकीरण के लिए आधारभूत ढाँचे में तेजी से विकास करना भी आवश्यक था।

4. **संसाधनों का उपयोग (Utilise of Resources)** – उद्योगों में संसाधनों को खपाने की क्षमता अधिक होती है, बजाय कृषि क्षेत्र के। अकुशल संसाधनों को प्रशिक्षण देकर उनकी उत्पादकता में वृद्धि की जाती है, इस हेतु औद्योगिक इकाइयाँ समय–समय प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करती है, जिससे संसाधनों का पूर्ण उपयोग किया जा सके। कृषि क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं का भी उद्योगों द्वारा कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है।

5. **कृषि का विकास (Development of Agricul ture)** – उद्योगों के विकास का प्रभाव कृषि विकास पर भी पड़ता है। उद्योगों द्वारा उत्पादित कृषि औजार, कृषि यंत्रों, दवाइयों, रासायनिक उर्वरकों आदि के प्रयोग से कृषि उत्पादन में वृद्धि की जाती है। कृषि विकास बहुत कुछ मात्रा में उद्योगों के विकास पर निर्भर करता है।

6. **संतुलित विकास (Balanced Growth)** –भारत में असंतुलित विकास हुआ है। हमारा विकास प्रमुख रूप से कृषि पर निर्भर है, जो कि हमारी महत्वपूर्ण कमी है। उद्योगों के विकास के द्वारा विकास की निर्भरता को कृषि के प्रति कम किया जा सकता है। औद्योगिकीरण किसी अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी (Backbone) होती है जो कि अर्थव्यवस्था को ऊर्जा देती है।

7. **आत्मनिर्भरता वृद्धि (Self Sustaind Growth)** – तीव्र औद्योगिकीरण किसी भी अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता में वृद्धि करता है, उद्योगों के द्वारा कृषि, यातायात एवं संचार आदि को प्रोत्साहन मिलता है। उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करना एवं उन्हें देश के प्रत्येक क्षेत्र में पहुँचाने में उद्योगों की भूमिका अधिक रही है। उपभोक्ताओं को उचित कीमतों एवं समय पर वस्तुओं की उपलब्धता करवाने के लिए उद्योग प्रतिबद्ध है।

8. **राष्ट्रीय सुरक्षा (Nation's Security)** – उद्योगों के विकास से हम सुरक्षा उपकरणों व अन्य मशीनरी का उत्पादन देश में ही करने में सक्षम हुए हैं जिससे हमें इनके आयात पर बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च नहीं करनी पड़ती है। इससे देश के स्वाभिमान में वृद्धि हुई है और हम आर्थिक रूप से अधिक स्वतंत्र हुए है।

औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप भारत विभिन्न औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर चुका है। औद्योगिक गतिविधियों का लगातार चलते रहना अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक है। भारत जैसे विकासशील देश में तो उद्योगों की भूमिका ओर अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

औद्योगिक विकास की समस्याएं (Problems of Industrial Development)

स्वतंत्रता के समय भारत को विरासत में पिछड़ी औद्योगिक व्यवस्था मिली थी। स्वतंत्रता के बाद से हमने औद्योगिक विकास को बढ़ाने के लिए अनेक औद्योगिक नीतियाँ बनाई जिसके फलस्वरूप औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिला। भारत अब उच्च गुणवत्तायुक्त व तकनीकी प्रदान वस्तुओं का निर्माण करने में सक्षम हैं परन्तु अभी भी औद्योगिक क्षेत्र को कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनका निदान करने की आवश्यकता है, ये समस्याएं निम्नलिखित हैं:–

1. **निर्धारित लक्ष्यों व उपलब्धियों में अंतर (Gaps between obtain targets and achievements)** योजनाकाल में औद्योगिक विकास के लिए निर्धारित किए गए लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली। यदि पूरे योजनाकाल की बात करे तो केवल मात्र 1980 के दशक में औद्योगिक विकास की दर अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकी। उदारीकरण से पूर्व औद्योगिक विकास की दर अपने लक्ष्यों से प्रतिवर्ष लगभग औसत रूप से 20 प्रतिशत कम रही। राकेश मोहन ने इस संदर्भ में कहा है कि 35 से 40 वर्ष की अवधि में औद्योगिक संवृद्धि दर लगभग 6.2 प्रतिशत रही जबकि यह 8 प्रतिशत

लक्षित थी।

2. **उद्योगों की क्षमता का अपूर्ण प्रयोग (Under Utilization of Capacity of Industries) –** योजनाकाल के दौरान उद्योग अपनी क्षमता का पूर्ण रूप से प्रयोग नहीं कर पाये।सरकारी नीतियों, श्रम–असंतोष, कच्चे माल की कमी, बिजली की आपूर्ति में कमी आदि के कारण उद्योग अपनी क्षमता का पूर्ण रूप से विकास नहीं कर पाये।

3. **सार्वजनिक उद्योगों का प्रदर्शन (Performance of Public Sector) –** स्वतंत्रता के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का तेजी से विकास हुआ। परन्तु, इनके निष्पादन को लेकर कई अर्थशास्त्रियों ने सवाल खड़े किए। यह विदित है कि सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं की गई थी, बल्कि इनका उद्देश्य सामाजिक समानता स्थापित करना था इसलिए इनके उत्पादों की कीमतें रखी गयी। दूसरे दृष्टिकोण में देखा जाये तो सार्वजनिक उद्योगों में निष्ठुरता की भावना का विकास होने लगा। परिणामतः ये अपने निष्पादन में पिछड़ते गए।

4. **औद्योगिक रूग्णता (Industrial Sickness) –** औद्योगिक रूग्णता से आशय औद्योगिक इकाई की ऐसी स्थिति से है जिसमें वह अपने वित्तीय दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ रहती है। छठी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में कहा गया है कि ''औद्योगिक विकास का ढाँचा लागत के मापदण्ड से निर्धारित नहीं किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा से संरक्षण के कारण उद्योगों की स्थापना के समय 'लागत' पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। तकनीक में सुधार और वस्तुओं की किस्म में सुधार की ओर भी उचित ध्यान नहीं दिया गया है। इन कारकों के परिणामस्वरूप कुछ उद्योग अस्वस्थ हो गए (विशेष रूप से उन स्थितियों में जब उन्हें अर्थव्यवस्था के अन्य उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ी)।''

5. **संरचनात्मक ढाँचे की कमियां (Infrastructural Constraints) –** औद्योगिक विकास की यह एक प्रमुख समस्या है। आधुनिक तकनीकी ढाँचा न होना तथा ऊर्जा व परिवहन की लागतों का बढ़ना, औद्योगिक उत्पादन की लागत में वृद्धि कर देता है। भारत में ऊर्जा की आपूर्ति में लगभग 55 प्रतिशत योगदान कोयले का है, जिसकी आपूर्ति देश में मांग की तुलना में कम है। रेल–परिवहन का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है, सड़कों की स्थिति ठीक नहीं है उन पर यातायात का अत्यधिक दबाव है, अन्तर्राज्यीय तेज पथ (Inter-State Express Ways) तथा चार पथीय राजमार्ग (Four-Lane Highways) का बहुत कम विकास है जिससे औद्योगिक केन्द्रों को जोड़ा जाता है। सरंचनात्मक ढाँचे के अपर्याप्त विकास के कारण औद्योगिक विकास की कल्पना निर्मूल साबित हो रही है।

7. **औद्योगिक विकास की भविष्य से सम्बन्धित समस्याएँ (Emerging Problems of Industrial Development)** 1991 में अपनाये गये आर्थिक सुधारों के तहत हमारे उद्योगों को विदेशी उद्योगों से कड़ी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ रहा है और प्रतिस्पर्द्धा न कर पाने के कारण कई घरेलू औद्योगिक इकाईयाँ भविष्य में बंद होने के कगार पर है। विशेषतः लघु उद्योगों को इस कड़ी प्रतिस्पर्द्धा में अपना अस्तित्व बचाना मुश्किल हो गया है। अंतिम उपभोक्ता वस्तु उद्योग तो पूरी तरह संकट में है क्योंकि अंतिम उपभोक्ता वस्तुओं का विदेशों द्वारा सस्ता व गुणवत्तायुक्त, वस्तुओं का निर्यात किया जाता हैं। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में यह बताया गया है कि भारतीय पूँजीगत वस्तु उद्योग पर चीन के उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा का बुरा प्रभाव पड़ा है। वर्तमान में भारतीय इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग को चीन से कड़ी प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ रही है। चीन सरकार ने अपने उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति बढ़ाने के लिए अनेक रियायतें, सहायता व सुविधाएं दी हुई हैं।

भारतीय उद्योगों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसके परिणामतः इनका विकास अवरूद्ध हो रहा हैं इनके विकास के लिए संरचनात्मक विकास व प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति बढ़ाना आवश्यक हैं।

औद्योगिक विकास को प्रेरित करने के लिए वर्तमान में किए गए उपाय

1. **व्यवसाय करने में आसानी –** व्यवसाय करने में आसानी संबंधी सूचकांक में भारत का दर्जा काफी नीचे है अपने दर्जे में सुधार लाने के लिए इस सूचकांक के उन अनेक मापदण्डों में सुधार किए जाने की जरूरत है जो सूचकांक बनाते हैं। इनमें व्यवसाय शुरू करने, निर्माण परमिट संबंधी कार्रवाई करने, संपत्ति का पंजीकरण, विद्युत आपूर्ति, करों का भुगतान, संविदाएं लागू करने, दिवालियापन का समाधान आदि जैसे मुद्दे शामिल हैं। इसी दिशा में त्वरित एवं सकारात्मक प्रयास किए जा रहे है।

2. **मेक इन इण्डिया –** मेक इन इण्डिया कार्यक्रम का उद्देश्य है–निवेश को बढ़ावा देना, नवोन्मेष को प्रोत्साहित करना, कौशल विकास का संवर्धन, बौद्धिक संपदा का संरक्षण और बेहतरीन विनिर्माण अवसंरचना का निर्माण। पच्चीस क्षेत्रों संबंधित जानकारी वेब पोर्टल पर एफडीआई नीति, राष्ट्रीय विनिर्माण नीति, औद्योगिक संपदा अधिकार, दिल्ली–मुम्बई औद्योगिक गलियारा और अन्य राष्ट्रीय औद्योगिक गलियारों के विवरण के साथ दी गई हैं। निवेशकों को मार्गदर्शन, उनकी सहायता और मदद करने के लिए 'इन्वेस्ट इण्डिया' में एक निवेशक सुविधा केन्द्र स्थापित किया गया हैं।

3. **ई–बिज परियोजना –** इस परियोजना के अन्तर्गत 'सरकार से व्यवसाय की ओर' (गवर्नमेंट टू बिजनेस–जी2बी) पोर्टल स्थापित किया जा रहा है जो निवेशकों को सेवाएं प्रदान करने के लिए वन स्टॉप शॉप का कार्य करेगा और व्यवसाय और उद्योग क्षेत्र की सभी जरूरतों को व्यवसाय के सम्पूर्ण जीवन चक्र के दौरान शुरूआत से अंत तक पूरा करेगा। औद्योगिक लाईसेंस और औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन हेतु आवेदन करने की प्रक्रिया ऑन–लाईन कर दी गई है और अब यह सेवा उद्यमियों के ई–बिज वेबसाईट पर 24x7 आधार पर उपलब्ध है। केन्द्र सरकार की अन्य सेवाओं को भी उच्च प्राथमिकता देते हुए समेकित किया जा रहा हैं।

4. **कौशल विकास –** कौशल और उद्यमशील कार्यकलापों को बढ़ावा देने के लिए कौशल विकास और उद्यमिता का नया मंत्रालय स्थापित करने के बाद विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों में कौशल प्रशिक्षण से संबंधित सामान्य मापदण्ड तय करने का कार्य किया जा रहा है। उद्योग/नियोक्ता के नेतृत्व में इकतीस क्षेत्र कौशल परिषदें (एसएससी) अब प्रचालनरत हैं और उन्हें 'मेक इन इण्डिया' के पच्चीस क्षेत्रों के साथ एकीकृत कर दिया गया है। देश में कौशल प्रशिक्षण और प्रमाणन के एक समान मानक तय करने के लिए राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद (एनसीवीटी), स्कूल बोर्डों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) आदि को समान रूप करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

5. **पर्यावरण और वन संबंधी स्वीकृतियों को सुप्रभावी बनाना –** पर्यावरण, तटीय विनियमन क्षेत्र (सीआरजेड) और वन संबंधी स्वीकृतियों के आवेदनों को ऑनलाईन जमा करने की प्रक्रिया शुरू की गई है। संघवाद को मजबूत बनाकर निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण किया गया है। औद्योगिक/शैक्षिक विकास सुनिश्चित करने के लिए ऐसे औद्योगिक शेडों के निर्माण की परियोजना में पर्यावरण संबंधी स्वीकृति लेने की शर्त हटा दी गई हैं, जहां संयत्र और मशीनरी, शैक्षिक संस्थाएं और छात्रावास हों।

6. **श्रम क्षेत्र सुधार –** एक श्रम सुविधा पोर्टल शुरू किया गया है ताकि यूनिटों का ऑनलाईन पंजीकरण, यूनिटों द्वारा स्वतः प्रमाणित, सरलीकृत एकल ऑनलाईन रिटर्न जमा करना, जोखिम आधारित मापदण्डों के अनुसार कम्प्यूटरीकृत प्रणाली के जरिए पारदर्शी श्रम निरीक्षण योजना की शुरूआत करना तथा बहत्तर घंटों के भीतर निरीक्षण रिपोर्टों को अपलोड किया जाना संभव हो सके तथा शिकायतों का यथा समय समाधान हो सके। कर्मचारी को अपने भविष्य निधि खाते को सुवाह्य, निर्बाध और सब जगह पहुँच वाला करने में मसर्थ बनाने के लिए सार्वभौम खाता नंबर शुरू किया गया है। प्रशिक्षु अधिनियम, 1961 को अधिक लचीला तथा उसे युवा वर्ग एवं उद्योग जगत के लिए अधिक आकर्षक बनाने के लिए उसमें संशोधन किया गया हैं और प्रशिक्षुओं को नियोजित करने के लिए विनिर्माण क्षेत्र में एमएसएमई की सहायता हेतु प्रशिक्षु प्रोत्साहन योजना शुरू की गई हैं।

नवीन औद्योगिक नीति
(New Industrial Policy)

1991 में नवीन औद्योगिक नीति अपनाई गयी। इस नीति का अध्ययन करने से पहले, हमें इससे पूर्व में निर्धारित की गई औद्योगिक नीतियों का भी संक्षेप में अध्ययन करना आवश्यक है ताकि इनकी तुलना की जा सके।

औद्योगिक नीति 1948 (Industrial Policy 1948) स्वतंत्र भारत की प्रथम औद्योगिक नीति 6 अप्रेल 1948 को तत्कालीन केन्द्रीय उद्योग मंत्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी के द्वारा घोषित की गई। इस नीति में उद्योगों को चार श्रेणियों में बांटा गया है –

(अ) वे उद्योग जिन पर सरकार का नियंत्रण रखा गया। इसमें तीन उद्योग रखे गये – (1) सुरक्षा (2) आणविक शक्ति एवं (3) रेल यातायात।

(ब) मिश्रित श्रेणी इसमें छः आधारभूत उद्योगों को रखा गया, जिनकी स्थापना का उत्तरदायित्व सरकार का रखा गया। इसमें शामिल किए गए उद्योग थे – कोयला, लोहा–इस्पात, हवाई जहाज निर्माण, पानी के जहाज निर्माण, टेलीफोन – टेलीग्राफ तथा खनिज तेल।

(स) तीसरी श्रेणी में 18 उद्योग रखे गए जिनका संचालन उद्योगपतियों द्वारा सरकार के नियंत्रण व नियमन में किया जायेगा। इसमें भारी रासायनिक उद्योग, चीनी उद्योग, सूती व ऊनी वस्त्र उद्योग, कागज उद्योग, सीमेंट उद्योग आदि शामिल किए गए।

(द) शेष सभी उद्योगों को निजी क्षेत्र के द्वारा स्थापित व विकसित किए जाने का प्रावधान रखा गया।

औद्योगिक नीति 1956 (Industrial Policy 1956) भारत के संविधान के समाजवादी लक्ष्य को ध्यान में रखकर इस नीति का निर्माण किया गया। इस नीति को 'भारत का आर्थिक संविधान' या 'औद्योगिक नीति का मेग्नाकार्टा' भी कहा जाता है, क्योंकि यह नीति, बाद में घोषित होने वाली नीतियों को आधार देती है। इस नीति में सभी उद्योगों को तीन वर्गों में बाँटा गया–

(अ) भारत सरकार के एकाधिकार क्षेत्र वाले उद्योग, जिन्हें औद्योगिक नीति प्रस्ताव में अनुसूची 'अ' (Schedule 'A') में रखा गया था। इस श्रेणी में 17 उद्योगों को शामिल किया गया था जिनमें अस्त्र–शस्त्र उद्योग, परमाणु ऊर्जा, रेल परिवहन, व वायु परिवहन आदि शामिल थे।

(ब) इसमें सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र के सह–अस्तित्व वाले उद्योगों को रखा गया, जिन्हें औद्योगिक नीति प्रस्ताव में अनुसूची 'ब' (Schedule 'B') में रखा गया था। इसमें 12 उद्योगों को शामिल किया गया – रसायन, खाद, सड़क परिवहन आदि

(स) शेष सभी उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया। जिनकी स्थापना एवं विकास निजी क्षेत्र द्वारा किया जायेगा। सरकार इन उद्योगों में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकेगी। परन्तु, आवश्यकता पड़ने पर वह इस क्षेत्र में आनुषांगिक इकाईयाँ स्थापित कर सकेगी।

1991 से पूर्व घोषित अन्य औद्योगिक नीतियाँ (Other Industrial Policies declared before 1991) औद्योगिक लाइसेंस नीति (1970) के अन्तर्गत प्रमुख उद्योगों की एक सूची जारी की गई। इस नीति में लघु उद्योगों के लिए आरक्षण की नीति जारी की गई।

औद्योगिक नीति 1977, में उद्योगों के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया गया। इस हेतु जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना की गई। इस नीति में पहली बार लघु एवं कुटीर उद्योगों को परिभाषित किया गया तथा अति लघु उद्योग की नई अवधारणा दी गई।

औद्योगिक नीति, 1980 में ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना पर बल दिया गया। साथ ही कहा गया कि सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभावशाली क्रियान्वयन होना चाहिए ताकि क्षेत्रीय असमानताओं को कम किया जा सके।

नई औद्योगिक नीति 1991
(New Industrial Policy 1991)

1991, की औद्योगिक नीति भारतीय औद्योगिक ढाँचे में एक बड़ा बदलाव थी। पिछले 50 वर्षों में जिन औद्योगिक नीतियों के जरिये हमने औद्योगिक आधार को मजबूत बनाया था, उसमें बड़ा परिवर्तन इस नीति के द्वारा किया गया। इस नीति को अपनाने के कुछ तात्कालिक कारण भी थे, जो कि पूर्व की नीतियों के परिणाम थे।

गैर विकासात्मक व्यय में वृद्धि के कारण राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit) लगातार बढ़ता जा रहा था, यह 1990–91 में सकल घरेलू उत्पाद का 8.4 प्रतिशत हो गया था। ब्याज भुगतान बढ़कर कुल सरकारी व्यय का 1990–91 में 36.4 प्रतिशत हो गया अर्थात् सरकार को अपनी योजनाओं पर व्यय

करने के लिए कम राशि रह गयी। भारत का भुगतान संतुलन (Balance of Payment) में घाटा बढ़ने लगा, विदेशी ऋणों का बोझ 1980–81 में 12 प्रतिशत से बढ़कर 1990–91 में 23 प्रतिशत हो गया। नई आर्थिक नीति अपनाने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण खाड़ी संकट रहा, जिसके कारण विश्व बाजार में कच्चे तेल की कीमतें बढ़ गई। भारत में कीमतों में वृद्धि के कारण मुद्रा–स्फीति (Inflation) की दर बढ़कर 17 प्रतिशत हो गयी। भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार जून 1991 में घटकर एक पखवाड़े से भी कम के आयात का भुगतान करने के लिए शेष रह गया।

1990–91 में भारत का बढ़ता आर्थिक संकट भारत को विश्व बैंक (World Bank) तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) के दरवाजे की ओर ले जाता है, जिससे हमें सप्रतिबंधित ऋण समझौते का अपनाना पड़ा। इसके तहत हमें पिछले 50 वर्षों से चली आ रही लाईसेंस, परमिट तथा कोटा (Licence, Permit, Quota) की नीतियों के स्थान पर उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण (Liberlisation, Privatisation, Globilisation) की नीतियों को अपनाना पड़ा।

इस प्रकार तत्कालीन राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए 24 जुलाई, 1991 को नई आर्थिक नीति को घोषित किया गया। जिसके अन्तर्गत निम्न प्रावधान किए गए –

(क) लाईसेंस से मुक्ति (Abolition of Industrial Licensing) – नई औद्योगिक नीति के तहत 18 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों को लाईसेंस से मुक्त कर दिया गया। विकास प्रक्रिया के साथ इनमें से भी कुछ उद्योगों को लाईसेंस से मुक्त कर दिया गया। वर्तमान में केवल पांच उद्योगों के लिए लाईसेंस लेना अनिवार्य है। ये उद्योग हैं:–

(i) वायु, आकाश तथा रक्षा से संबंधित इलेक्ट्रोनिक्स,
(ii) बारूद, औद्योगिक विस्फोटक तथा प्रस्फोटक फ्यूज,
(iii) खतरनाक रसायन,
(iv) तंबाकू, सिगरेट तथा अन्य संबंधित उत्पाद
(v) मादक पेय (ऐल्कोहलिक ड्रिंक)

(ख) सार्वजनिक क्षेत्र में कमी (Public Sector's Role Diluted) – 1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की संख्या 17 थी। जिन्हें नई औद्योगिक नीति के तहत घटाकर 5 कर दी गई। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की संख्या तीन है, जिन पर स्वामित्व व प्रबन्ध सरकार का है। ये उद्योग हैं : परमाणु ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा (उत्पादन व उपयोग नियंत्रण) आदेश, 1995 की सूची में दर्ज खनिज तथा रेल परिवहन (रेलवे आधारिक संरचना में 2014 में निजी निवेश की अनुमति दी गई)।

(ग) एकाधिकारी व प्रतिबंधात्मक व्यापार विधियाँ (MRTP) – इस अधिनियम के अन्तर्गत नई इकाईयों की स्थापना, विलयन, विस्तार आदि के लिए सरकार से अनुमति लेनी होती थी। इसमें 1969 में संशोधन पारित किया गया तथा सन् 2002 में इसे समाप्त करके एकाधिकारात्मक प्रवृतियों तथा प्रतिबंधात्मक व्यवहार को नियंत्रित किया गया। MRTP एक्ट को समाप्त करके प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम बना दिया गया। अब नई इकाईयों की स्थापना, विस्तार, विलयन, समामेलन तथा अधीनीकरण के लिए सरकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है।

(घ) विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (Incentives of Foreign Investment) – पूर्व की नीतियों में विदेशी निवेश को हतोत्साहित किया गया था। विदेशी निवेश के लिए भारत सरकार की अनुमति लेना अनिवार्य शर्त थी। नई औद्योगिक नीति के तहत निवेश के आधार पर उद्योगों को बांटा गया जिनमें उच्च–निवेश की आवश्यकता थी, उनकी सूची बनाकर उनमें बिना सरकारी अनुमति के 51 प्रतिशत की विदेशी निवेश की अनुमति दी गई। इनके अतिरिक्त सेवा क्षेत्र के उद्योगों के लिए विदेशी निवेश की सीमा 51 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत और फिर 100 प्रतिशत कर दी गई। इन उद्योगों में निर्यात की संभावनाएं अधिक थी। वर्तमान में कुछ क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रतिबंधित है, जिनमें खुदरा व्यापार (एकल ब्रांड खुदरा व्यापार के अलावा), परमाणु ऊर्जा, लाटरी का धंधा तथा जुआ व सट्टा।

य. विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन दिया गया ताकि उद्योगों का तीव्र गति से विकास हो सके।

र. लघु उद्योगों को सशक्त करने के लिए 6 अगस्त, 1991

को स्वतंत्र लघु औद्योगिक नीति की घोषणा की गई।

नई औद्योगिक नीति की सफलताएँ

1. इस नीति के अपनाने के पश्चात् औद्योगिक विकास की दर में वृद्धि हुई है। आर्थिक सुधारों से पूर्व के दशक (1980–1990) में यह 7.8 प्रतिशत थी जो बढ़कर 1995–96 में 13.0 प्रतिशत हो गई। 2006–07 में यह 11.5 प्रतिशत रही।
2. नई औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप विदेशी पूँजी निवेश में वृद्धि हुई। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) तथा संस्थागत विदेशी निवेश (FII) दोनों में ही वृद्धि हुई है। 2010 की अंकटाड (UNCTAD) निवेश रिपोर्ट के अनुसार यह 2009 में 34.6 बिलियन डॉलर था।
3. विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन मिला, जिससे भारतीय उद्योगपतियों ने भी विश्व बाजारों में अपनी पहचान बनाई। विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात से उद्योगों की उत्पादकता में वृद्धि हुई हैं।
4. विदेशी विनिमय भण्डार में वृद्धि हुई हैं। 1991 में भारत का विदेशी विनिमय भण्डार एक पखवाड़े से भी कम के आयात के लिए शेष था। नई आर्थिक नीति के कारण भारत का विदेशी विनिमय भण्डार इतना हो गया कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने भारत को ऋणदाता वाले देशों में शामिल कर दिया।
5. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण उपलब्ध हुआ। जिससे उनके निष्पादन में सुधार हुआ।
6. नई औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप प्रतिफल की दर में वृद्धि हुई।

नई औद्योगिक नीति की असफलताएँ

इस नीति की बहुत से विद्वानों ने आलोचना भी की है। उनके अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था को इस नीति से विशेष लाभ प्राप्त नही हुआ है।

1. नई औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप बेरोजगारी में कोई खास कमी नहीं हुई है। बेरोजगारी की दर व परिमाण दोनों बढ़ रहे हैं।
2. नई औद्योगिक नीति के अन्तर्गत कई उद्योग बीमार हो गए या बंद हो गए। वे महँगी विदेशी तकनीकी को अपनाने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं जुटा सके।
3. भारतीय उद्योग, विदेशी उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सके। जिससे उनके अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया और कई उद्योग प्रतिस्पर्द्धा से बाहर हो गए।
4. भारतीय उद्योगों की विदेशी तकनीकी पर निर्भरता बढ़ने लगी, जिसे विभिन्न विद्वानों ने आर्थिक उपनिवेशवाद की संज्ञा दी है।
5. विदेशी निवेश कुछ क्षेत्रों को तो छू भी नहीं पाया। केवल लाभ दे सकने वाले उद्योगों में ही विदेशी निवेश बढ़ा। आधारभूत संरचना जैसे क्षेत्रों में आशा के अनुरूप विकास नहीं हुआ।
6. लघु एवं कुटीर उद्योग, विदेशी उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सके। फलतः उनके लिए आरक्षित मदों को निजी क्षेत्र के लिए खोला गया। वर्तमान में इनके लिए आरक्षित मदों की संख्या बढ़ाकर 20 कर दी गई है। अर्थात् बहुत से लघु एवं कुटीर उद्योग बंद हो गए।
7. एकाधिकारात्मक प्रवृतियों को प्रोत्साहन मिलना। नई औद्योगिक नीति के तहत निदेशन, विलियन, समामेलन, अधीनीकरण की छूट दी गई जिससे छोटे उद्योगों का बड़े उद्योगों में तथा रूग्ण इकाईयों का लाभप्रद इकाईयों में विलियन होने लगा।

नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत अनेक सुधारात्मक व समष्टि स्थिरीकारक उपाय किए गए। भारत के उद्योग भी अपनी क्षमता का वैश्विक प्रदर्शन कर सके। परन्तु भारतीय लघु–कुटीर उद्योग का ह्रास होना, विदेशी पूँजी पर निर्भरता व बेरोजगारी का बढ़ना जैसी समस्याओं का बढ़ना नई औद्योगिक नीति के अर्थव्यवस्था पर दुष्परिणाम रहे।

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका एवं समस्याएं
(Role and Problems of Cottage and small scale Industries in India)

औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1977 में सर्वप्रथम लघु उद्योगों को निवेश सीमा के आधार पर परिभाषित किया गया। इस परिभाषा के अनुसार लघु उद्योगों में उन इकाईयों को शामिल किया गया जिनमें प्लांट व मशीनों में निवेश 10 लाख रूपये से कम था। सहायक औद्योगिक इकाईयों (Ancillary Units) के निवेश की अधिकतम सीमा 15 लाख रूपये तथा अति लघु इकाईयों (Tiny Units) के लिए निवेश सीमा अधिकतम एक लाख रूपए थी। 1991 में इन्हें पुनः परिभाषित किया गया और

लघु इकाईयों के लिए निवेश सीमा को बढ़ाकर 60 लाख रूपए, सहायक लघु इकाईयों के लिए निवेश सीमा 75 लाख रूपये तथा अति लघु इकाईयों के लिए 25 लाख रूपए तक की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई। 2006 में माइक्रो, लघु तथा मध्यम उद्यम विकास (Micro, Small and Medium Enterprises Development - MSME) अधिनियम पारित होने के पश्चात् इन्हें पुनः परिभाषित किया गया है। इसमें विनिर्माणी तथा सेवा से सम्बन्धित MSME को पृथक–पृथक रूप से परिभाषित किया गया।

(अ) विनिर्माण क्षेत्र में उद्यम (Manufacturing Enterprises)

(i) माइक्रो इकाईयों के लिए अधिकतम निवेश सीमा 25 लाख रूपये हो।

(ii) लघु उद्यम जिनमें मशीनरी व प्लांट में निवेश की सीमा 25 लाख रूपए से अधिक परन्तु 5 करोड़ रूपए से कम होगी, को शामिल किया गया।

(iii) मध्यम उद्यमों में अधिकतम निवेश की सीमा 5 करोड़ रूपए तथा न्यूनतम निवेश 10 करोड़ रूपए रखा गया।

सेवा क्षेत्र में उद्यम (Service Sector Enterprises)

(i) माइक्रो इकाइयों के लिए अधिकतम निवेश सीमा 10 लाख रूपये हों।

(ii) लघु उद्यम के लिए निवेश सीमा 10 लाख रूपये से अधिक परन्तु 2 करोड़ रूपये से कम हो।

(iii) मध्यम उद्यमों के लिए निवेश सीमा 2 करोड़ रूपये से अधिक परन्तु 5 करोड़ रूपये से कम हो।

इकाई	निवेश सीमा (रूपए में)	
	विनिर्माण क्षेत्र	सेवा क्षेत्र
माइक्रो	अधिकतम 25 लाख	अधिकतम 10 लाख
लघु	25 लाख से अधिक 5 करोड़ से कम	10 लाख से अधिक, 2 करोड़ से कम
मध्यम	5 करोड़ से अधिक 10 करोड़ से कम	2 करोड़ से अधिक, 5 करोड़ से कम

लघु क्षेत्र की इकाइयों में सामान्यतः लघु क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयां, सहायक इकाइयां (Ancillary) औद्योगिक इकाइयां, अति लघु उद्यम (Tiny Enterprises), लघु क्षेत्र सेवा उद्यम (Small Scale Service Enterprises), शिल्पकार, ग्रामीण व कुटीर उद्योग तथा महिला प्रधान उद्योग आदि को शामिल

लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका
(Role of Cottage and Small Scale Industries)

भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। आज भी रोजगार का मुख्य क्षेत्र कृषि क्षेत्र ही बना हुआ है। भारत की जनगणना 2011के अनुसार कुल जनसंख्या का 68.8 प्रतिशत आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। ग्रामीण जनसंख्या की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि के साथ–साथ लघु एवं कुटीर उद्योग है। लघु एवं कुटीर उद्योगों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है, जिसे हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं –

1. **औद्योगिक उत्पादन में योगदान** (Share in Industrial Output):- लघु एवं कुटीर उद्यागों का औद्योगिक उत्पादन में हिस्सा लगातार बढ़ रहा है। इनके द्वारा परम्परागत वस्तुओं से लेकर उच्च प्रौद्योगिकी व गुणवत्ता युक्त लगभग 6000 वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

वर्ष	उत्पादन का कुल मूल्य (करोड़ रूपए में)	GDP में योगदान (प्रतिशत में)
2006–07	11,98,818	35.13
2011–12	17,88,584	37.97
2012–13	18,09,976	37.54
स्रोत : Government of India, Ministry of MSME, Annual Report 2013-14, Table 2.2, P. 16.		

तालिका से स्पष्ट है कि 2006–07 में MSME का कुल उत्पादन मूल्य 11,98,818 करोड़ रूपये था, और इनका सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 35.13 प्रतिशत रहा। 2012–13 में MSME का कुल उत्पादन मूल्य बढ़कर 18,09,976 करोड़ रूपये हो गया, जबकि सकल घरेलू उत्पादन में योगदान घटकर 37.54 प्रतिशत रह गया। MSME का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान आज भी लगभग एक तिहाई बना हुआ

है।

2. **लघु क्षेत्र का विस्तार (Expansion of small-scale Sector)** स्वतंत्रता के बाद से सरकार द्वारा लघु क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक नीतियों में रियायतों की घोषणा की गई, जिससे इनका विस्तार हुआ है।

वर्ष	MSME की संख्या (लाख़ रूपए में)
2006–07	361.8
2012–13	467.54
2015–16	633.88

स्रोत : Government of India, Ministry of MSME, Annual Report 2015–16 Chart 2, P. 17

वर्ष 2006–07 में MSME की संख्या 361.8 लाख थी जो वर्ष 2015–16 में बढ़कर 633.88 लाख हो गई।

3. **रोजगार में योगदान** (Role in Employment) - लघु क्षेत्र की इकाईयाँ श्रम–प्रधान होती है, जिसमें अधिक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध करवाया जा सकता है। ये ग्रामीण जनसंख्या के रोजगार का प्रमुख साधन होने के साथ–साथ शहरी जनसंख्या को भी रोजगार उपलब्ध करवाती हैं। भारत में लघु–क्षेत्र, कृषि क्षेत्र के बाद दूसरा सर्वाधिक रोजगार उपलब्ध करवाने वाला क्षेत्र है। भारत में बेरोजगारी की गंभीर समस्या को देखते हुए लघु–क्षेत्र का महत्व अपने आप में स्पष्ट हो जाता है।

वर्ष	रोजगार (लाख में)
2006–07	805.23
2012–13	1061.40
2015–16	1109.89

स्रोत : Government of India, Ministry of MSME, Annual Report 2015-16, Table 2.1, P. 1 5.

तालिका से स्पष्ट है कि 2006–2007 में MSME क्षेत्र में 805.23 लाख रोजगार में लगे हुए थे, 2012–13 में रोजगार में लगे व्यक्तियों की संख्या बढ़कर 1061.40 लाख हो गई और 2013–14 में यह बढ़कर 1114.29 लाख हो गई। MSME क्षेत्र की रोजगार उपलब्ध कराने की दर, कुल रोजगार दर से अधिक रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध करवाकर किया जा सकता है, क्योंकि इस क्षेत्र में रोजगार की काफी संभावनाएँ विद्यमान हैं। इस गैर–कृषि क्षेत्र का प्रमुख अंग MSME क्षेत्र है। शहरी क्षेत्रों में वृहत उद्योगों की संभावनाएं सीमित हैं, अतः वहां उन क्षेत्रों में भी लघु–क्षेत्र का विकास करके रोजगार बढ़ाया जा सकता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि MSME क्षेत्र में श्रम–गहनता (Labour Intensity) वृहद उद्योगों की तुलना में चार गुना है।

4. **लघु इकाईयों की कार्यकुशलता (Efficiency of Small Scale Industries)** लघु उद्योगों की कार्यकुशलता का आंकलन करने के लिए, इनकी वृहद उद्योगों के साथ तुलना की गई। विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अलग–अलग मत दिए हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि लघु उद्योगों की कार्यकुशलता बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक है, जबकि कुछ का मत है कि बड़े उद्योगों की कार्यकुशलता लघु उद्योगों की तुलना में अधिक है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम अध्ययन धर तथा लाइडाल ने किया था। उनका मत था आधुनिक लघु उद्योग अधिक पूँजी प्रधान है, ये श्रमिकों को बड़े उद्योगों की तुलना में कम वेतन देते है और इनका केन्द्रीयकरण शहरों में हैं। इनकी दक्षता बड़े उद्योगों की तुलना में कम है। इसी तरह का निष्कर्ष गोल्डार ने सापेक्षिक श्रम उत्पादकता, सापेक्षिक पूँजी उत्पादकता तथा सापेक्षिक कुल कारक उत्पादकता के आधार पर निकाला।

कुछ विद्वानों का मत है कि लघु उद्योग कम पूँजी प्रधान होते है, इनकी उत्पादकता बड़े उद्योगों से अधिक होती है और ये अधिक श्रम–प्रदान होते हैं। रामसिंह के. अशर ने अपने अध्ययन में यह सिद्ध किया कि स्थिर पूँजी के एक रूपए के निवेश पर लघु उद्योग सबसे अधिक श्रमिकों को रोजगार प्रदान करता है, स्थिर परिसम्पत्ति में एक रूपये के निवेश से बड़े क्षेत्र की तुलना में 'सात गुना'' उत्पादन होता है तथा लघु उद्योगों में एक रूपये का निवेश बड़े उद्योगों की तुलना में 'तीन गुना' अधिक वर्धित मूल्य (Value Added) का सृजन करता है। लघु उद्योग क्षेत्र की तीसरी गणना में यह पाया गया कि 2001–02 में बड़े उद्योगों में जहाँ एक लाख रूपए के निवेश द्वारा 0.20 रोजगार का सृजन होता है, वहां लघु उद्योगों में एक लाख रूपए के निवेश द्वारा 1.39 रोजगार का सृजन होता है। अर्थात् बड़े उद्योगों में एक व्यक्ति को रोजगार देने के जहाँ 5

लाख रूपए का निवेश करना होता है वहां लघु क्षेत्र में 5 लाख रूपए के निवेश से 7 लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाया जाता है। लघु–क्षेत्र रोजगार सृजन में बड़े उद्योगों से बहुत आगे है, जबकि उनका निवेश–उत्पादन अनुपात बड़े उद्योगों से कम है।

5. **राष्ट्रीय आय का विकेन्द्रीकरण (Decentralization of National Income)** लघु उद्योग सम्पत्ति एवं आय के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहित करके राष्ट्रीय आय के वितरण को न्यायोचित बनाने में सहायक है। बड़े उद्योगों की तुलना में इनका स्वामित्व बिखरा हुआ व विस्तृत है। साथ ही, ये रोजगार सृजन में बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक सामर्थ्य रखते हैं। MSME क्षेत्र बहुत ज्यादा व्यक्तियों को राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान का हिस्सा दिलवाने में सफल हुए हैं।

6. **निर्यात में योगदान (Contribution in Exports)** स्वतंत्रता के पश्चात् लघु उद्योगों का तेजी से विस्तार किया गया है। कुल निर्यात में इनका योगदान लगातार बढ़ता जा रहा है। 1971–72 में MSME द्वारा कुल निर्यात 155 करोड़ रूपए का था जो बढ़कर 2012–13 में 6,77,318 करोड़ रूपए का हो गया। इस प्रकार निर्यात आय में MSME का हिस्सा 1971–72 में 9. 6 प्रतिशत से बढ़कर 2012–13 में लगभग 41.4 प्रतिशत हो गया। इनके द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में प्रमुखतः चमड़े से निर्मित सामान, ऊनी कपड़े, तैयार वस्त्र, खेल का सामान, इंजीनियरिंग वस्तुएं आदि हैं।

7. **उद्योगों का क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण (Regional dispersal of Industries)** बड़े उद्योगों का केन्द्रीयकरण शहरों में हुआ है। शहरों में भी इनका विकास असमान रूप से हुआ है। महाराष्ट्र, पश्चिम–बंगाल, गुजरात तथा तमिलनाडु में इनका केन्द्रीयकरण अधिक है। लघु उद्योगों के सम्बन्ध में ऐसा नही है, इनका विकास स्थानीय मांग के अनुसार सभी क्षेत्रों में हुआ है। लघु क्षेत्र में बड़े उद्योगों की तुलना में आर्थिक–सामाजिक, गुणात्मक परिवर्तन लाने की अधिक क्षमता है। आज पंजाब राज्य लघु उद्योगों के कारण महाराष्ट्र से अधिक समृद्ध है।

8. **औद्योगिक विवादों का कम होना (Less Industrial Disputes)** विद्वानों का यह भी मत है कि बड़े उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों के विवाद कम होते हैं। लघु उद्योगों में श्रमिक व मालिक के बीच कम दूरी होती है अर्थात् उनमें सम्बन्ध अच्छे रहते है, इस कारण से विवाद कम उत्पन्न होते है। इनमें हड़ताल व तालाबंदी जैसी समस्याएं कम होती है जबकि बड़े उद्योगों में हड़ताल एवं तालाबंदी होना आम बात हैं।

9. **स्थानीय संसाधनों का उपयोग (Utilization of Local Resources)** लघु–क्षेत्र द्वारा स्थानीय पूँजी एवं संसाधनों का प्रयोग किया जाता है जिनकी मांग बड़े क्षेत्र द्वारा नहीं की जाती है। स्थानीय बचतों, कच्चा माल व कारीगरों का MSME द्वारा बेहतर प्रयोग किया गया है, जिससे उनकी आय का सृजन हुआ है। शहरी क्षेत्रों में दस्तकारों, कारीगरों, शिल्पकारों आदि की क्षमता का प्रयोग MSME क्षेत्र द्वारा किया जाता है।

10. लघु एवं कुटीर उद्योगों के द्वारा परम्परागत एवं कलात्मक वस्तुओं को संरक्षण प्रदान किया जाता है जो कि हमारी सांस्कृतिक विरासत का अंग हैं।

11. MSME क्षेत्र की आयातों पर निर्भरता कम होती है, जिससे हमारे विदेशी विनिमय कोष में बचत होती है। इनके द्वारा स्थानीय प्रौद्योगिकी का ही प्रयोग किया जाता है। विदेशी तकनीकी का आयात न्यून मात्रा में ही किया जाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु–क्षेत्र का अत्यधिक महत्व है। भारत की बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या के समाधान में इन उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सरकार द्वारा इनके विकास के लिए किए प्रयासों के परिणामतः इनका तेजी से विकास हुआ है। इनके द्वारा आय–वितरण को न्यायोचित रूप प्रदान किया गया है जिससे आर्थिक असमानता में कमी आयी है। निर्यातों में इनका योगदान लगातार बढ़ता जा रहा है, जिससे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व के साथ–साथ इनको अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। लघु इकाइयों की रूग्णता दिन–प्रतिदिन

बढ़ती जा रही है। इसका अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि मार्च 2014 के अंत तक 4,56,771 लघु इकाइयाँ रूग्णता की शिकार थी और इनमें बैंकों का 27,622 करोड़ रूपए फंसा हुआ था। बहुत सी लघु इकाइयाँ विभिन्न समस्याओं से ग्रसित होकर बंद हो गयी या अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत है। लघु क्षेत्र को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता हैः–

1. **कच्चे माल की समस्या (Problem of Raw Material)** – लघु उद्योग पूर्णतया स्थानीय कच्चे माल पर निर्भर होते है। हाथकरघा उद्योग सूत पर निर्भर है, यह इनको पर्याप्त मात्रा में व उचित समय पर नहीं मिल पाता है। भारत के बुनकरों को इस समस्या से अधिक जूझना पड़ रहा है, उनका दोहरा शोषण व्यापारियों द्वारा किया जा रहा है। एक ओर तो उनको व्यापारी ऊँची कीमतों पर कच्चा माल उपलब्ध कराते है, जबकि दूसरी ओर उनके द्वारा बनाया गया कपड़ा व धागा कम कीमतों पर खरीदते हैं। लघु उद्योगों को प्राप्त कच्चे माल के लिए, उनको आधुनिक लघु उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। अनेक लघु उद्योगों को विदेशों से कच्चा माल आयात करना पड़ता है, जिससे हमारे विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी आती हैं। कच्चा माल इन उद्योगों को समय पर व उचित कीमत पर नहीं मिलता जबकि बड़े उद्योगों के लिए कच्चा माल उचित कीमत पर व सही समय पर प्राप्त करने में आसानी रहती है। वर्तमान में MSME क्षेत्र को कच्चे माल के अभाव व बढ़ती कच्चे माल की कीमतों के कारण हानि उठानी पड़ रही है।

2. **पूँजी का अभाव (Lack of Capital)** – लघु व कुटीर उद्योगों के सामने वित्त की समस्या प्रमुख रूप लिए हुए है। इनको मशीनों व औजारों का क्रय करने के लिए लम्बी अवधि की ऋण–पूँजी की आवश्यकता होती है जबकि कच्चा माल क्रय करने व कारीगरों को भुगतान करने के लिए अल्पकालीन पूँजी की आवश्यकता होती है। लघु दस्तकारों, कारीगरों व लघु उद्यमियों को साहूकारों, महाजन के पास ऋण के लिए जाना पड़ता है, यह ऋण इनको सरलता से उत्पन्न हो जाता है, परन्तु इसके लिए उन्हें ऊँची ब्याज दरों का भुगतान करना पड़ता है।

3. **आधुनिक तकनीकी का अभाव (Lack of Modern Technology)** – लघु व कुटीर उद्योग पुरानी व परम्परागत तकनीकी का ही उपयोग कर रहे हैं इन उद्योगों में स्थापित मशीनरी पुरानी हो चुकी है, इनके द्वारा नई मशीनों की स्थापना किया जाना आवश्यक है। पुरानी–पद्धति व पुरानी मशीनों के प्रयोग के कारण उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार नहीं आया है। वर्तमान बदलते परिदृश्य, रूचि, फैशन के अनुसार लघु–क्षेत्र को भी आधारिक परिवर्तन करने की आवश्यकता है, ताकि गुणवत्तायुक्त वस्तुओं का निर्माण, मांग के अनुरूप किया जा सके। इन उद्योगों में रोजगार की अपार संभावना है, परन्तु उनका लाभ तब ही मिल सकता है, जब इन उद्योगों के द्वारा वर्तमान समय से कदम मिलाए जाएं।

4. **विपणन व प्रमाणीकरण की समस्याएं (Problem of Marketing & Standardization)** – लघु एवं कुटीर उद्योगों को अपने माल को बेचने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। भारत से पूर्व में गलीचें, वस्त्र, साड़ियाँ तथा कई प्रकार की कलात्मक वस्तुओं का निर्यात होता था, परन्तु इनकी मांग में कमी आयी है। घरेलू बाजार में भी लघु उत्पादों की बिक्री में कमी आयी है। भारत में लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों की प्रतियोगिता से बचाने के लिए इनके उत्पादों को आरक्षित किया गया जिनकी संख्या 77 से बढ़ते–बढ़ते 836 तक हो गई थी (वर्तमान में इनकी संख्या मात्र 20 है) जिसे अप्रैल 2015 की विज्ञप्ति के अनुसार समाप्त कर दिया गया है। लघु उद्योगों को विपणन कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए व्यापार विकास प्राधिकरण तथा राज्य व्यापार निगमों की स्थापना की गई। लघु उत्पादों के लिए बाजार ढूँढने व ऑर्डर प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा 1955 में राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना की गई।

सरकार द्वारा लघु उत्पादों की बिक्री हेतु मानकीकरण की प्रणाली अपनाई गई है। मानकीकरण के पश्चात् लघु उत्पादों का ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, अमेरिका, जापान, जर्मनी

आदि देशों में इनका निर्यात बढ़ाया जा सकेगा। फलतः इन उत्पादों का बाजार विस्तृत होगा।

5. **रूग्णता की समस्या (Problem of Sickness)** – लघु एवं कुटीर उद्योगों में बीमारी की समस्या धीरे–धीरे विकराल रूप धारण करती जा रही है। औद्योगिक रूग्णता से तात्पर्य ऐसी स्थिति से है जिसमें वह अपने वित्तीय दायित्वों को समय पर पूरा न कर सके। भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार, ''किसी इकाई को औद्योगिक रूग्ण इकाई उस समय कहेंगे जबकि इकाई ने एक वर्ष में नकद हानि उठायी है और आगे आने वाले दो वर्षों में भी हानि की स्पष्ट संभावना हो जिससे इसके वित्तीय ढाँचे में काफी असंतुलन आ गया हो।'' सितम्बर 2013 में प्रकाशित 'Iner-Ministerial committee for Accelerating Manufacturing in Micro, Small and Medium Enterprises Sector' की रिपोर्ट के अनुसार मार्च 2013 के अन्त तक देश में 2,49,903 रूग्ण लघु व अति–लघु इकाइयाँ थी जिनमें बैंकों का 12,800 करोड़ रूपया फंसा हुआ है। इनमें से 2,32,525 मध्यम, लघु तथा अति–लघु इकाइयाँ ऐसी है, जिन्हें दोबारा चला पाना मुश्किल है। कुल औद्योगिक रूग्ण इकाइयों में लघु इकाइयों की संख्या लगभग 98 प्रतिशत हैं।

लघु–क्षेत्र में व्याप्त इस रूग्णता का कारण कच्चे माल की कमी, प्रबन्धकीय कुशलता एवं अनुभव की कमी, पूँजी की कमी, बिजली कटौती एवं ऊर्जा शक्ति की समस्या, तकनीकी का चुनाव सही समय पर न करना।

6. **आधारिक संरचना की कमी (Lack of Infrastracture)** – लघु क्षेत्र के सामने यह समस्या भी प्रमुखता से सामने खड़ी है समय पर बिजली की आपूर्ति न होना, इनकी परिचालन लागत में वृद्धि करता है। पर्याप्त सड़कों का विकास न होने के कारण लघु–उत्पादों को तीव्र गति से बाजारों में पहुँचाना संभव नहीं हो पाया है, इससे लघु उद्योगों पर निर्भर जनसंख्या को आजीविका के लिए पलायन करना पड़ता है। लघु एवं कुटीर उद्योगों को नई इकाई की स्थापना के लिए अनावश्यक कागजी कार्यवाही से गुजरना पड़ता है। उन्हें वित्त के लिए बैंकों के पास, बिजली के लिए बिजली निगमों के पास, प्रदूषण–नियंत्रण बोर्ड के पास, उद्योग निदेशालय आदि के विभिन्न चक्कर लगाने होते है, जिससे लघु–क्षेत्र को प्रेरणा नहीं मिल पाती है और उनके समय व स्थापना में अनावश्यक विलम्ब हो जाता है।

7. **आँकड़ों की अनुपलब्धता (Lack of Figures)** – लघु व अति–लघु उद्योगों से सम्बन्धित आँकड़े दो संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करवाये जाते हैं, लघु उद्योग विकास निगम (Small Industries Development Organization) तथा केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (Central Statistical Organisation)। लघु उद्योगों से सम्बन्धित पर्याप्त आँकड़े इनमें से किसी के पास उपलब्ध नहीं है। लघु उद्योग विकास रिपोर्ट में इस बात को इंगित किया गया है कि, ''लघु उद्योगों की तेज प्रगति और अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि इन उत्पादन इकाईयों के लिए नियमित रूप से आँकड़े एकत्रित करने व उनका संशोधन करने की स्थायी व्यवस्था हो जाएं। प्रति वर्ष उत्पादन की विभिन्न दिशाओं में कई लघु उद्यम स्थापित होते हैं और प्रतिवर्ष कई मौजूद उद्योग या तो अपना विस्तार करते है या फिर विविधीकरण करते हैं। उचित नीति–निर्धारण तभी संभव है जब इनके लिए नवीनतम जानकारी प्राप्त हो सके।''

8. **भुगतान में विलम्ब (Late in Payment)** – लघु–क्षेत्र की एक प्रमुख समस्या समय पर माल का भुगतान न मिलना है। इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को अधिकतर सरकारी विभागों व बड़ी इकाईयों द्वारा खरीदा जाता है, जिनके द्वारा भुगतान में विलम्ब किया जाता है। लघु इकाईयों को भुगतान जल्दी व पूरा मिलना चाहिए।

9. **अन्य समस्याएं (Other Problems)** – लघु व कुटीर उद्योगों के विकास में उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त प्रबन्धकीय व तकनीकी कौशल की कमी, बाजार स्थिति की अपूर्ण जानकारी, कामकाज का असंगठित व अव्यवस्थित स्वरूप आदि का भी सामना

करना पड़ता है। सरकार द्वारा इनके विकास के लिए अपनायी गई नीतियाँ भी अपर्याप्त रही हैं। इनके लिए स्थापित विभिन्न एजेंसियों में परस्पर सहयोग व तालमेल लाना आवश्यक है।

10. **आर्थिक सुधारों का प्रभाव (Effect of Economic Reforms)** – 1991 में शुरू किए गए आर्थिक सुधारों जैसे औद्योगिक लाईसेंसिंग की समाप्ति, प्रशुल्कों में कमी, मात्रात्मक प्रतिबंधों को हटाना, उद्योगों के लिए आरक्षित वस्तुओं में कमी आदि का भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ा है। कई औद्योगिक इकाईयों को सस्ते बेहतर आयातित उत्पादों से प्रतिस्पर्द्धा के कारण खतरा पैदा हो गया है, जिससे वे बंद होने के कगार पर आ गयी हैं। चीन के उत्पादों का भारत के बाजारों में तेजी से फैलना लघु उद्योगों के लिए संकट पैदा कर रहा है। भारत का इलैक्ट्रोनिक्स व खिलौना उद्योग बंद होने की स्थिति में है, इनकी लगभग 40 प्रतिशत इकाईयाँ तो बंद हो चुकी हैं। इसी तरह सिरेमिक उद्योग भी खतरा महसूस करने लगा है। चीन, भारतीय बाजारों में अपने उत्पादों को लागत से कम कीमत (Dumping करके) पर बेच रहा है, जिससे सम्पूर्ण भारतीय MSME क्षेत्र खतरे की ओर बढ़ रहा है। असंगठित क्षेत्र के छोटे कारोबारियों के लिए वित्त एवं पुनर्वित्त की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा मुद्रा (MUDRA) योजना की शुरूआत की गई है। (देखें परिशिष्ट 1)

लघु उद्योगों के लिए नई नीति, 1991 (New Small Enterprise Policy, 1991)

सरकार ने सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए अगस्त 1991 में नई नीति की घोषणा की। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रावधान किए गए थे–

1. अति लघु क्षेत्र की सीमा को 2 लाख रूपये से बढ़ाकर 5 लाख रूपये कर दिया गया (1997 में इसे बढ़ाकर 25 लाख रूपये किया गया)। इसके अतिरिक्त उद्योगों पर से स्थानिक प्रतिबंध हटा लिए गए पूर्व इन इकाईयों की स्थापना 50,000 से कम जनसंख्या वाले स्थानों पर ही की जा सकती थी। नई नीति में सेवा क्षेत्र से जुड़ी व्यावसायिक गतिविधियों को भी इन उद्योगों में शामिल कर लिया गया।
2. नई नीति के अन्तर्गत अति लघु इकाईयों के लिए एक पैकेज की घोषणा की गई जिसके तहत इन्हें लगातार सहायता देने का आश्वासन दिया गया जबकि लघु इकाईयों को प्राथमिकता के आधार पर सहायता देने की बात की गई।
3. नई नीति के अनुसार अन्य औद्योगिक इकाईयों को भी लघु इकाईयों में 24 प्रतिशत तक की इक्टिवी का निवेश करने की अनुमति दी गई। इससे इन दोनों औद्योगिक 'छोरों' को एक–दूसरे के समीप आने का मौका मिलेगा साथ ही बड़ी औद्योगिक इकाईयों भी इनके विकास व अस्तित्व में सहायक बनेगी। दूसरी तरफ लघु इकाईयों को पूरी ईक्विटी की व्यवस्था स्वयं को नही करनी पड़ेगी।
4. नई नीति में व्यवसाय–संगठन की नई कानूनी व्यवस्था शुरू की गई जिसें सीमित साझेदारी (limited Partnership) कहा गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कम–से–कम एक साझेदार का दायित्व असीमित तथा अन्य साझेदारों का दायित्व उनकी निवेशित पूंजी तक सीमित रखा गया। इससे लघु उद्योगपतियों के सगे–संबंधी व रिश्तेदार पूंजी देने से नहीं हिचकिचाएंगें क्योंकि उनके द्वारा निवेशित पूंजी तक ही सीमित रहेगा।
5. नई नीति में 'सस्ती साख' की अपेक्षा 'साख की पर्याप्तता' पर जोर दिया गया।
6. सरकारी खरीद में अति लघु क्षेत्र को प्राथमिकता देने की व्यवस्था की गई।
7. लघु व अति लघु क्षेत्रों के लिए नये बाजारों की तलाश के लिए सहकारी संस्थाओं सार्वजनिक संस्थाओं व अन्य व्यावसायिक संस्थाओं को प्रतिबद्ध किया गया।
8. ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में लघु व अति लघु औद्योगिक इकाईयों की स्थापना पर अत्यधिक जोर दिया गया।

'मेक इन इंडिया' योजना ('Make in India' Yojana)

औद्योगिक विकास की गति तेज करने के लिए निवेश को बढ़ावा देकर भारत को 'मैन्यूफैक्चरिंग हब' बनाने के लिए 'मेक इन इंडिया' (Make in India) कार्यक्रम की औपचारिक

शुरूआत भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 25 सितम्बर 2014 को की गयी इस कार्यक्रम के प्रतीक चिन्ह् के रूप में एक सिंह को दर्शाया गया है जो न केवल देश के राष्ट्रीय प्रतीक चिन्ह् अशोक चक्र का हिस्सा है बल्कि यह साहस, बुद्धिमता व शक्ति को भी प्रदर्शित करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को हाथी की संज्ञा अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्रियों व निवेशकों द्वारा दी जाती रही है, जो बहुत विशाल तो है परन्तु इसकी सुस्त चाल को दर्शाती है। इस धारणा को तोड़ने के लिए प्रतीक चिन्ह् के रूप में सिंह को अपनाया गया। उद्योगपतियों का मत था कि 'मेक इन इंडिया' अभियान देश के विकास को गति देने वाला प्रमुख कारक बन सकता है। इसकी नीतियों को यदि ठीक प्रकार से लागू किया जाता है, तो अगले दस वर्षों में रोजगार के नौ करोड़ अवसरों का सृजन होगा।

ट्रांसफॉर्मेशनल (रूपांतरणकारी) क्षेत्र पंजीकृत निर्माण या सेवाओं का क्षेत्र हो सकता है। अर्थव्यवस्था के विस्तृत कौशल को बढ़ाना उतना ही महत्वपूर्ण होगा जितना कि अधिक निर्माण के लिए परिस्थितियों में सुधार करना। भारत में निर्माण एवं सेवा क्षेत्र ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर ध्यान दिया जाये तो अर्थव्यवस्था में परिवर्तनकारी परिवर्तन आ सकते हैं। वृद्धि का सिद्धान्त इस ओर इंगित करता है कि रूपांतरणकारी क्षेत्रों का मूल्यांकन उनमें निहित विशेषताओं के आधार पर किया जाना चाहिए न कि पारम्परिक निर्माण सेवा के रूप में। इस प्रकार पांच विशेषताओं की पहचान की गई है:–

1. उच्च स्तरीय उत्पादकता जिससे आय बढ़ सके।
2. बाहरी तथा घरेलू दोनों मोर्चों पर उत्पादकता में तीव्र वृद्धि दर।
3. संसाधनों को आकर्षित करने की क्षमता, जिससे शेष अर्थव्यवस्था में लाभ का प्रसार हो।
4. देश में विद्यमान गैर–कौशल संसाधनों की क्षमता में वृद्धि करना।
5. देश के संसाधनों के साथ कौशल विहीन संसाधनों का समायोजन करना।

भारत में रूपांतरणकारी परिवर्तन पंजीकृत या औपचारिक निर्माण में हो सकता है जिसमें उच्च उत्पादकता तथा उत्पादकता में तीव्र वृद्धि जैसी पूर्वापेक्षाएं हैं। अतः इसे औपचारिक रूप देने का प्रयास महत्वपूर्ण होगा।

भारत में टेलीकम्यूनिकेशन तथा वित्त जैसे सेवा के कुछ उप क्षेत्र अत्यधिक उत्पादक और गतिशील होने के कारण पंजीत निर्माता होते हैं। हालांकि ये क्षेत्र गैर–कुशल श्रमिकों की अधिक संख्या को आकर्षित करने में सफल नहीं हुए है जिससे इनकी गतिशीलता के लाभ सीमित हुए हैं। दूसरे शब्दों में गतिशील क्षेत्रों को कौशल सम्पन्न क्षेत्र होना चाहिए जिसमें भारत को कोई तुलनात्मक लाभ नहीं है।

भारत में मजदूरी बाहुल्य निर्माण क्षेत्र में सुधार के प्रयास कौशल उन्नयन में तेजी लाकर करने होंगे। क्योंकि भारत में कौशल गहन क्षेत्र गतिशील क्षेत्र है, और इसकी गतिशीलता बनाए रखने के लिए आवश्यक कौशल प्राप्त, बढ़ती मांग के अनुरूप कुशल कार्मिकों की पूर्ति होती रहे। दूसरे शब्दों में, 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम को अमली जामा पहनाने के साथ–साथ 'स्किल इंडिया' के लक्ष्य को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए भारत को सही माध्यमों (साधनों) का इस्तेमाल करना चाहिए। आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार ये 'माध्यम' नीचे दिए गए हैं इन्हें प्रभाव के आधार पर अवरोही क्रम में और विवाद के आधार पर आरोही क्रम में 3 श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

(क) भारत को घरेलू व विदेशी निजी निवेश को बढ़ाने के लिए निम्न कदम उठाने की जरूरत है –

(i) नियमों को सरल करना।
(ii) करों की मात्रा व दरों को कम करना।
(iii) आधारभूत ढाँचा तैयार करना।
(iv) श्रम कानूनों में सुधार करना।

इन सबके एक साथ उपलब्ध होने से व्यापारिक लागत कम होगी तथा लाभ में वृद्धि होगी। इन उपायों का लाभ सभी क्षेत्रों को मिलेगा।

(ख) इन माध्यमों को 'औद्योगिक नीति'' भी कहा गया। इनके अन्तर्गत उत्पादन बढ़ाने के निम्न प्रयास किए गए –

(i) पूँजी की लागत को कम करना।

(ii) रियायतों में वृद्धि करना व उपलब्धता बढ़ाना।

(iii) सभी विनिर्माण की गतिविधियों में 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' (Special Economic Zone) की स्थापना करना।

(ग) माध्यमों की अंतिम श्रेणी को सामान्य रूप से 'संरक्षणवादी' (Protected) कहा गया है।

(i) घरेलू उत्पादकों को निर्यात से सम्बन्धित लाभ प्रदान करना।

(ii) सीमा शुल्क में वृद्धि द्वारा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से घरेलू उद्योगों को संरक्षण देना।

(iii) विदेशी कम्पनियों को स्थानीय माल की आपूर्ति करने के लिए बाध्य करना।

परन्तु इस प्रकार की नीति विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization-WTO) के प्रावधानों के विरूद्ध होगी, जिससे देश की खुलेपन की साख को धक्का लग सकता है।

भारत सरकार द्वारा संचालित 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता हैं।

विनिर्माण क्षेत्र में रूपान्तरकारी परिवर्तन द्वारा हम इस कार्यक्रम को सफल बना सकते है, जिससे औद्योगिक विकास की दर को बढ़ाया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- औद्योगिक विकास को किसी भी अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी माना जाता है।
- भारतीय आर्थिक विकास के मार्ग में विभिन्न बाधाएं आयी हैं, जिनको सरकार द्वारा निराकरण करने के प्रयास किए जा रहे हैं। ये समस्याएं कच्चे माल की समस्या, प्रदर्शन में कमी, उद्योगों की क्षमता का पूर्ण प्रयोग न करना, औद्योगिक रूग्णता, संरचनात्मक ढाँचे में कमी आदि रही हैं।
- उद्योगों के विकास के लिए अनेक औद्योगिक नीतियाँ घोषित की गई हैं। 1956 की औद्योगिक नीति में उद्योगों के विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई, औद्योगिक नीति, 1977 में उद्योगों के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया गया।
- नवीन औद्योगिक नीति की घोषण 24 जुलाई, 1991 को की गई, जिसमें लाईसेंस, परमिट, कोटा (LPQ) की नीतियों का त्याग करके उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण (LPG) की नीतियों को अपनाया गया।
- लघु उद्योगों का महत्व भारत में प्राचीनकाल से रहा है, स्वतंत्रता के बाद इनके महत्व को स्वीकारते हुए, इनके विकास के लिए प्रयास किए गए। इन उद्योगों को पुरानी तकनीकी, कच्चे माल की समस्या, पूंजी की कमी, विपणन, प्रमापीकरण व बाजारों की अनुपलब्धता की समस्या का सामना करना पड़ता है।
- उद्योगों के विकास को गति देने तथा कौशल विकास के द्वारा इनमें रूपांतरकारी परिवर्तन लाने के लिए 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम की शुरूआत 25 सितम्बर 2014 को की गई।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नवीन औद्योगिक नीति की घोषणा की गई–
   (अ) 21 जुलाई, 1991
   (ब) 24 जुलाई, 1991
   (स) 24 जुलाई, 1990
   (द) 21 जुलाई, 1990 ( )

2. 'भारत का आर्थिक संविधान' कौनसी औद्योगिक नीति को कहा जाता है–
   (अ) औद्योगिक नीति, 1991
   (ब) औद्योगिक नीति, 1977
   (स) औद्योगिक नीति, 1956
   (द) औद्योगिक नीति प्रस्ताव,1948 ( )

3. वर्तमान में कितने उद्योगों के लिए लाईसेंस प्राप्त करना आवश्यक है–
   (अ) 4 (ब) 5
   (स) 6 (द) 3 ( )

4. भारत के प्रधानमंत्री द्वारा 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम की घोषणा की गई–
   (अ) जुलाई 2014
   (ब) अक्टूबर 2014
   (स) अगस्त 2014
   (द) सितम्बर 2014 ( )

5. सकल घरेलू उत्पाद में लघु एवं कुटीर उद्योगों का योगदान 2012–13 में कितना रहा है–
   (अ) 37.54 प्रतिशत
   (ब) 37.84 प्रतिशत

(स) 36.54 प्रतिशत

(द) 36.84 प्रतिशत ( )

6. भारत अति लघु उद्योग (Tiny Industries) की अवधारणा कौनसी नीति के अन्तर्गत अपनाई गई–

(अ) औद्योगिक नीति, 1948

(ब) औद्योगिक नीति, 1977

(स) औद्योगिक नीति, 1956

(द) औद्योगिक नीति, 1980 ( )

7. सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास अधिनियम पारित किया गया–

(अ) 2006

(ब) 2007

(स) 2008

(द) 2005 ( )

8. 'मुद्रा' (MUDRA) योजना की शुरूआत की गई–

(अ) मार्च 2015

(ब) अप्रैल 2015

(स) मई 2015

(द) जुन 2015 ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्र भारत की प्रथम औद्योगिक नीति में उद्योगों को कितने वर्गों में बांटा गया ?
2. औद्योगिक लाईसेंस नीति 1970 की प्रमुख विशेषता बताइये ?
3. MSME का पूरा नाम क्या है ?
4. LPG का पूरा नाम बताइये ?
5. लघु उद्योगों के लिए आरक्षित वस्तुओं की सूची को कब समाप्त किया गया ?
6. डम्पिंग से क्या तात्पर्य है ?
7. 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम का प्रतीक चिन्ह् क्या दर्शाता है ?
8. 'मुद्रा' का पूरा नाम लिखिए ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक विकास की कोई चार समस्याएं बताइये।
2. 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. नई औद्योगिक नीति अपनाने के क्या कारण रहे।
4. औद्योगिक रूग्णता को परिभाषित कीजिए।
5. लघु क्षेत्र का भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में कोई चार योगदान बताइये।
6. जिन उद्योगों के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य है, उनका नाम बताइये।
7. औद्योगिक नीति 1956 पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
8. लघु एवं कुटीर उद्योगों को परिभाषित कीजिए।
9. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों का नाम बताइये।
10. भारतीय अर्थव्यवस्था की तुलना हाथी से क्यों की जाती थी।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका को विस्तार से समझाइये।
2. 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम पर एक विस्तृत नोट लिखिए।
3. लघु एवं कुटीर उद्योगों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्व को दर्शाइये।
4. नई औद्योगिक नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
5. लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला

(1) ब (2) स (3) ब (4) द

(5) अ (6) ब (7) अ (8) ब

सन्दर्भ ग्रंथ

1. Rakesh Mohan, Industrial Policy and Controls, in Bimal Jalan (ed;) The Indian Economy: Problems and Prospects, New Delhi 1992. P.107.
2. Government of India, Planning Commission, Sixth Five Year Plan, 1980-85. P.260.
3. Twelfth Five Year Plan, Volume II P. 67 and Box 13.2 P. 68.

- 'Economic Reforms: Two years After and The Task Ahead', Discussion Paper, Department of Economic Affairs, GOI, New Delhi, 1993, P.6.
- Bimal Jalan, India's Economic Crisis : The Way Ahead OUP, Delhi, 1991, p 2-12.

- Bishwanath Goldar, "Employment Growth in Modern Small Scale Industry in India," Journal of Indian School of Political Economy, Vol,. V, No, 4, 1993, P. 658.
- P.N. Dhar and H.F. Lydall, The Role of Small Enterprises in Economic Development (New Delhi 1971).
- Ram Singh K. Asher, "small Scale and Cottage Industries in India," in J.S. uppal (ed.), India's Economic Problems (New Delhi, 1987)
- Government of India, Recommendations of the Intern Ministerial Committee for Accelerating Manufacturing in Micro, Small and Medium Enterprises Sector (September 2013) P. 1, 109.
- Small Industries Development Bank of India, P. 29
- आर्थिक समीक्षा 2014–15, ,खण्ड I व II भारत सरकार।
- Annual Report 2013-14, Ministry of MSME, Government of India.

अध्याय –3

भारत का विदेशी व्यापार
(Foreign Trade of India)

प्रत्येक देश दूसरे देशों के साथ आयात निर्यात करता है। आपसी व्यापार से दोनों देशों को लाभ होता है। आपसी व्यापार द्वारा देश श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण, बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा बड़े बाजार का लाभ प्राप्त कर सकते है। वणिकवादियों के अनुसार देश को केवल निर्यात करना चाहिए। इसके बदले कीमती धातु प्राप्त होती है जो देश को शक्तिशाली व समृद्ध करती है। एडम स्मिथ के अनुसार देश को निरपेक्ष लाभ वाली वस्तु का निर्यात करना चाहिए व निरपेक्ष अलाभ वाली वस्तु का आयात करना चाहिए। इससे दोनों देशों को लाभ होता है। रिकार्डो के अनुसार देश को तुलनात्मक लाभ वाली वस्तु का निर्यात करना चाहिए व तुलनात्मक अलाभ वाली वस्तु का आयात करना चाहिए। विकसित देशों द्वारा संरक्षणवादी नीतियों के चलते स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधा उत्पन्न होती है।

भारत प्राचीन काल से ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न रहा है। भारतीय वस्त्रों, दस्तकारी व मसालों की विदेशों में बहुत मांग थी व इसके बदले कीमती धातु प्राप्त होती थी। औपनिदेशिक शासन काल के दौरान इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। औपनिवेशिक काल में भारतीय दस्तकारी व वस्त्र उद्योग पूरी तरह से बर्बाद हो गए। अंग्रेजों ने भारत को कच्च माल के आपूर्तिकर्त्ता व उनके यहाँ मशीनों से निर्मित माल का बड़े बाजार के रूप में विकसित किया। आजादी के समय भारत कच्चे माल व खनिज पदार्थो का निर्यातक था। आजादी के पश्चात् भारत को खाद्यानों व आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के लिए आयात करना पड़ा। दूसरी ओर विकास के लिए तकनीक व पूंजीगत उपकरणों का आयात करना पड़ा। परिणामस्वरूप आयात तेजी से बढ़ा व इस आयात का मूल्य चुकाने के लिए तदनुरूप निर्यात में वृद्धि नहीं हुई जिसके कारण व्यापार घाटा बढ़ता गया व विदेशी ऋण पर निर्भरता तेजी के साथ बढ़ी।

भारत के निर्यातों व आयातों का आकार
(Size of Exports and Imports In India)

योजनाकल में भारत के विदेशी व्यापार के आकार में काफी वृद्धि हुई है। यह वृद्धि आयात व निर्यात दोनों में वृद्धि के कारण थी। तालिका में विदेशी व्यापार का आकार अमेरीकी डॉलर में दर्शाया गया है व इनकी वृद्धि दर भी इसी के अनुरूप दर्शायी गई है। निर्यातों का मूल्य आयातों के मूल्य से अधिक होता है तो व्यापार शेष धनात्मक होता है तथा आयातों का मूल्य निर्यातों के मूल्य से अधिक होने पर व्यापार शेष ऋणात्मक होता है।

वर्ष 1950–51 में वस्तु निर्यातों का मूल्य 1.27 अरब अमरीकी डालर था। जो 1980–81 में 8.5 अरब अमरीकी डालर हो गया। वर्ष 2000–01 में भारत के निर्यात 44.6 अरब अमरीकी डालर से 2013–14 में 314.4 अरब अमरीकी डालर तक बढ़ गया।

तालिका–1 योजनाकाल में भारत के निर्यातों व आयातों का मूल्य (अमेरीकी मिलियन डालर में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात प्रतिशत वृद्धि	आयात प्रतिशत वृद्धि
1950 -51	1269	1273	(-) 4	24.9	(-) 1.5
1980 -81	8486	15869	(-) 7383	6.8	40.2
2000 -01	44560	50537	(-) 5976	19.8	0.6
2016 -17	276547	382741	(-)106124	0.14	-10.59

स्रोत– रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, हेण्डबुक ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन इण्डिन इकानामी

वर्ष 2000–01 में भारत के निर्यात 44.6 अरब अमरीकी डालर से 2013–14 में 314.4 अरब अमरीकी डालर तक बढ़ गया। निर्यात में यह वृद्धि लगभग दो सौ पचास गुणा हो गई। इसी प्रकार 1950–51 में भारत के आयातों का मूल्य 1.3 अरब अमरीकी डालर से 1980–81 में 15.9 अरब अमरीकी डालर हो गई। वर्ष 2000–01 में भारत के आयात का मूल्य 50.5 अरब अमरीकी डालर था जो 2015–16 में 382.741 अरब अमरीकी

डालर तक पहुंच गया। 1950–51 से 2015–16 के मध्य अमरीकी डालर में भारतीय आयात लगभग तीन सौ पचास गुणा तक हो गया। व्यापार शेष केवल 1972–73 व 1976–77 के दो वर्षो को छोड़कर सभी वर्षो में ऋणात्मक रहा। वर्ष 1950–51 में 0.004 अरब अमरीकी डालर का व्यापार घाटा था जो 1980–81 में 7.4 अरब अमरीकी डालर हो गया। वर्ष 2000–01 में ऋणात्मक व्यापार शेष का आकार 5.97 अरब अमरीकी डालर से 2013–14 से बढ़कर 135.8 अरब अमरीकी डालर तक बढ़ गया। तालिका से स्पष्ट है कि समय के साथ भारत के विदेशी व्यापार के आकार के विस्तार हुआ है। आयातों में वृद्धि निर्यातों में वृद्धि की तुलना में अधिक थी। इस कारण ऋणात्मक व्यापार शेष का आकार भी बढ़ता गया। व्यापार घाटे का आकार छठी पंचवर्षीय योजना में औसतन 5. 98 अरब अमरीकी डालर का था। सातवीं पंचवर्षीय योजना में व्यापार घाटे का औसत आकार 5.7 अरब अमरीकी डालर का था। आठवीं योजना में व्यापार घाटे का औसत आकार 3.45 अरब अमरीकी डालर का था जो नवीं योजना में घाटे का औसत आकार बढ़कर 8.41 अरब अमरीकी डालर हो गया। दसवीं योजना में आयातित तेल कीमतों में वृद्धि व आयात शुल्कों में कमी के कारण घाटे का आकार तेजी से बढ़ा। ग्यारहवीं योजनार में तेल आयात में तीव्र वृद्धि से आयात बढ़े व विश्वव्यापी मंदी के कारण निर्यात में कम वृद्धि रही। आजादी के समय भारत के खाद्यान व देश विभाजन के कारण जुट का आयात करना पड़ा। दूसरी योजना के पश्चात् बड़े उद्योगों की स्थापना व औद्योगिकरण पर विकास आयोजन में बल देने के कारण पूंजीगत उपकरणों, मशीनरी व तकनीक का आयात तेजी से बढ़ा। लेकिन इस आयात के कारण भारत के उद्योगों में प्रतिस्पर्धा क्षमता विकसित हुई जिससे निर्यात बढ़े। तेल कीमतों में वृद्धि, तेज आधारित उर्जा व्यवस्था व इसके बढ़ते उपयोग के कारण इनके आयातों में तेजी से वृद्धि हुई। उदारीकरण के पश्चात् आयात प्रशुल्कों को कम किया गया जिसके कारण भी आयात तेजी से बढ़े। कीमती धातुओं का आयात भी भारत के आयात का एक मुख्य मद है। इन सभी कारणों से भारत के व्यापार शेष में घाटा बढ़ता गया।

विदेशी व्यापार की संरचना
(Composition of foreign Trade)

व्यापार की संरचना का तात्पर्य है कि देश किन वस्तुओं का आयात करता है व किन वस्तुओं का निर्यात करता है। व्यापार की संरचना से देश के विकास स्तर का ज्ञान होता है। विकासशील देश मुख्य रूप से कच्चे माल, खनिज व कृषि उत्पादों का निर्यात करते है क्योंकि इन देशों में विनिर्माण का ढ़ांचा कमजोर होता है। विकास के साथ विदेशी व्यापार में संरचनात्मक परिवर्तन यह होता है कि निर्यात में कच्चे माल की जगह विनिर्मित वस्तुओं का हिस्सा बढ़ता है।

निर्यात की संरचना (Composition of Exports): आयोजन काल में भारत की निर्यात संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया है। पंचवर्षीय योजना शुरू होने से पूर्व जूट, चाय, सूती वस्त्र, अभ्रक, मैग्नीज व खालें भारत की प्रमुख निर्यात मद थी। आयोजन काल में कृषि व खनिज पदार्थो का कुल निर्यात में हिस्सा कम हुआ है तथा विनिर्मित वस्तुओं का हिस्सा कुल निर्यात में बढ़ा है। इससे यह प्रकट होता है कि अर्थव्यवस्था में विनिर्माण (Manufacturing) क्षेत्र का तेजी के साथ विकास हुआ है। 1960 में देश के कुल निर्यातों में कृषि व सम्बद्ध उत्पादों का हिस्सा 44.2 प्रतिशत था जो 2013–14 में घटकर 13.7 प्रतिशत हो गया। अयस्क व खनिज का हिस्सा कुल निर्यात में 1960–61 में 8.1 प्रतिशत था जो घटकर 2013–14 में 1.8 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार विनिर्मित वस्तुओं का कुल निर्यात में 1960–61 में 45.3 प्रतिशत हिस्सा था जो 2013.14 में 61.3 प्रतिशत हो गया।

तालिका–2 भारतीय निर्यात संरचना (प्रतिशत में)

वस्तुऐं	1960–61	1980–81	1990–91	2013–14
इंजिनियरिंग वस्तुऐं	3.4	12.33	11.9	19.8
पैट्रोल उत्पाद (कोयला सहित)	1.1	0.4	2.9	20.6
रत्न व आभूषण	0.1	9.2	16.1	13.2
रसायन व सम्बद्ध उत्पाद	1.1	3.3	6.5	13.2
सिलेसिलाऐं वस्त्र	0.1	8.2	12.8	4.8
कुल निर्यात (मिलियन डॉलर में)	1346	8486	18143	314405

स्रोत– रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, हेण्डबुक ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन इण्डिन इकानामी

तालिका–2 में वर्तमान में प्रमुख भारतीय निर्यातों के कुल निर्यात में अंश को दर्शाया गया है। पैट्रोलियम उत्पाद 1960–61 में कुल निर्यात का 1.1 प्रतिशत हिस्सा रखते थे जो 2013–14 में कुल निर्यात का 20.6 प्रतिशत हिस्सा रखता है। यह भारत की पैट्रोलियम रिफायनरी क्षमता के कारण है। क्रूड पैट्रालियम को रिफाइन करके निर्यात किया जाता है। इंजिनियरिंग

वस्तुओं का हिस्सा कुल निर्यात में वर्ष 1960–61 में 3.4 प्रतिशत था जो 2013–14 में बढ़कर 19.8 प्रतिशत हो गया। रत्न व आभूषण का कुल निर्यात में हिस्सा 1960–61 में 0.1 प्रतिशत से बढ़कर 13.2 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार रसायन व संबंद्ध उत्पादों का हिस्सा भी 13.2 प्रतिशत था। 1960–61 में देश के कुल निर्यातों में जूट व चाय का हिस्सा 21 प्रतिशत व 19.3 प्रतिशत था। वर्तमान में कुल निर्यातों में दोनों का हिस्सा 0.5 प्रतिशत हो गया है।

वर्ष 2013–14 में भारत का वर्गवार प्रमुख निर्यात मदें निम्न प्रकार थी।

(क) कृषि व सम्बद्ध वस्तुओं का कुल निर्यात में 13.7 प्रतिशत अंश था। इसमें चाय, कॉफी, अनाज, मसाले, काजू, फल व सब्जियां, समुद्री उत्पाद व कपास आदि मदें निर्यात की जाती है।

(ख) विनिर्मित वस्तुओं का हिस्सा 63.3 प्रतिशत था। इसमें चमड़ा व उससे बने उत्पाद, रत्न व आभूषण, दवाईयां व रसायन धातुओं के उत्पाद, मशीनरी व उपकरण, परिवहन उपकरण, इलेक्ट्रोनिक वस्तुऐं, हस्तशिल्प सिलेसिलायें वस्त्र आदि का निर्यात किया जाता है।

आयातों की संरचना (Composition of Imports):

आजादी के समय भारत की प्रमुख आयात मदों में मशीनरी, तेल, अनाज, दाल, कपास, वाहन, लोहे का सामान, उपकरण, रसायन व दवाईयां, रंग, सूत व सूती कपड़ा, कागज व लेखन सामग्री (इन सबका कुल आयात में तीन चौथाई से अधिक भाग था) द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आधारभूत उद्योगों की स्थापना व बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण की विकास रणनीति अपनाने के पश्चात् उपकरणों व मशीनों तथा इनके रखरखाव के लिए सामान का आयात बढ़ा।

तालिका–3 आयातों की संरचना (Composition of Imports) (प्रतिशत में)

वस्तु समुह	1960–61	1980–81	1990–91	2013–14
पैट्रोलियम तेल व लुब्रिकेन्ट	6.1	41.9	25.0	36.6
अलोह धातुऐं	4.2	3.8	2.5	8.6
इलेक्ट्रोनिक वस्तुऐं गैर विद्युत मशीनरी	18.1	8.7	9.8	5.2
मोती व बहुमुल्य रत्न	0.1	3.3	8.7	5.3
कुल आयात (मिलियन डालर में)	2353	15869	24075	450200

स्रोत– रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, हेण्डबुक ऑफ रेटेटिसाटिक्स ऑन इण्डिन इकानामी

तालिका–3 में वर्तमान में भारत के प्रमुख आयात मदों के हिस्से में संरचनात्मक परिवर्तन को दर्शाया गया है। भारत के आयातों में 1960–61 में पैट्रोल तेल व स्नेहक का हिस्सा 6.1 प्रतिशत था। 1980–81 में बढ़कर 41.9 प्रतिशत हो गया। जो 1990–91 में पुनः कम होकर 25 प्रतिशत हो गया तथा वर्ष 2013–14 में 36.6 प्रतिशत था। यह भारत की वर्तमान में प्रमुख आयात मद है। अलोह धातु (सोना व चांदी प्रमुख रूप में) का हिस्सा कुल आयात में वर्ष 1960–61 में 4.2 प्रतिशत था। 1980–81 में 3.8 प्रतिशत, 1990–91 में 2.5 प्रतिशत लेकिन हाल के वर्षो में इनके आयात में तीव्र वृद्धि हुई है। वर्तमान में 2013–14 में यह कुल आयातों का 8.6 प्रतिशत हिस्सा हो गया। इलेक्ट्रोनिक वस्तुऐं व गैर विद्युत मशीनरी का हिस्सा 1960–61 में 18.1 प्रतिशत से कम होकर 5.2 प्रतिशत हो गया। इसका कारण यह है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में महालनोबिस माडल लागू करने के कारण आधारभूत उद्योगों की स्थापना की गई। इसके लिए मशीनरी व इलेक्ट्रोनिक वस्तुओं का आयात आवश्यक था। लेकिन बाद में इनका देश में इनका उत्पादन होने लगा। मोती व बहुमूल्य रत्नों का 1960–61 में कुल आयात 0.1 प्रतिशत अंश था जो 213.14 में 5.3 प्रतिशत हो गया। इनका आयात इनके निर्यात हेतु कच्चे माल के रूप में किया जाता है। वर्गअनुसार देश में आयात की मदें निम्न प्रकार हैः–

(क) खाद्य पदार्थ व सम्बन्धित उत्पाद – इसमें अनाज, दालें, काजू व खाद्य तेल का आयात सम्मलित है। इसमें प्रमुख मद खाद्य तेल है। खाद्य तेल का आयात 2013–14 में कुल आयात का 2.1 प्रतिशत था।

(ख) ईधन– इसमें कोयला व पैट्रोलियम का आयात सम्मिलित किया जाता है।

(ग) पूंजीगत वस्तुओं के आयात में बिजली मशीनरी, अन्य मशीनरी, परिवहन उपकरण व परियोजनागत वस्तुऐं आती है।

(घ) अन्य उत्पाद में रसायन, मोती व रत्न, लोहा व ईस्पात, अलौह धातु (सोना व चांदी सहित), व्यवसायिक उपकरण व इलेक्ट्रोनिक सामान के आयात को सम्मिलित किया जाता है।

आयोजन काल के दौरान खाद्य उपयोग वस्तुओं के आयात में कमी आई। 1960–61 में इनका अंश 16.1 प्रतिशत से आज लगभग समाप्त हो गया है। कच्चे माल, मध्यवर्ती व विनिर्मित वस्तु के आयात में पैट्रोलियम, रत्व व मोती आदि के कारण तेज वृद्धि; हुई। पूंजीगत वस्तुओं का आयात 1960–61 में 31.7 प्रतिशत था।

2013–14 में इनका हिस्सा कुल आयात का 12.1 प्रतिशत हो गया।

विदेशी व्यापार की दिशा
(Direction of Foreign Trade)

आजादी से पूर्व ब्रिटेन के साथ प्रमुख रूप से भारत का विदेशी व्यापार था। भारत ब्रिटेन का उपनिवेश था। ब्रिटिश हितों में वृद्धि के लिए भारत के साथ व्यापार प्रारूप तय हुआ। इंग्लैण्ड व अमेरीका 1950–51 में भारत के प्रमुख व्यापार भागीदार थे। भारत के कुल निर्यात का 42 प्रतिशत व कुल आयात का 39.1 प्रतिशत इन दो देशों के साथ था। व्यापार भागीदार देशों को चार समुह में विभाजित किया जाता है। इनमें (क) आर्थिक सहयोग संगठन के देश (OECD) इस वर्ग में यूरोपीय संघ, अमेरीका, जापान व स्वीटजरलैण्ड आदि देश आते है। (ख) तेल निर्यातक देशों का संगठन (OPEC) इस समूह में संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब व ईरान आदि देश आते है।

तालिका–4 भारत के निर्यातों की दिशा (Direction of Indian Exports) निर्यात में प्रतिशत हिस्सा

देश समूह	1960–61	1990–91	2012–13
ओ.इ.सी.डी. देश	66.1	53.5	34.2
तेल निर्यातक देशों का संगठन	4.1	5.6	20.8
पूर्वी यूरोप	7.0	17.9	1.3
विकासशील देश	14.9	17.1	41.5
अन्य देश	8.0	2.9	3.5

स्रोत– रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, हेण्डबुक ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन इण्डिन इकानामी

(ग) पूर्वी यूरोप के देश समूह में रूस व अन्य देश आते है। (द) विकासशील देश : इस वर्ग में चीन, हांगकांग, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, मलेशिया आदि देश आते है।

आर्थिक सहयोग संगठन (OECD) देशों का भारत के साथ कुल निर्यात में हिस्सा सतत रूप से कम होता गया है। 1960–61 में भारत के कुल निर्यात में दो–तिहाई अंश इन देशों का था जो वर्तमान में कुल निर्यात का एक तिहाई रह गया है। ओ.ई.सी.डी. के देश 1960–61 में भारत के प्रमुख व्यापार भागीदार थे लेकिन अब वे प्रमुख भागीदार नहीं है। कुल निर्यात में 1960–61 में तेल निर्यात देशों का हिस्सा 4.1 प्रतिशत था जो 1990–91 में भी 5.6 प्रतिशत था लेकिन बाद में तेजी से बढ़ा। वर्ष 2012–13 में इनका अंश 20.8 प्रतिशत हो गया। पूर्वी यूरोप के देशों में रूस प्रमुख व्यापार भागीदार है। कुल निर्यात में 1960–61 में पूर्वी यूरोप के देशों का योगदान 7.0 प्रतिशत था जो 1990–91 में बढ़कर 17.9 प्रतिशत तक हो गया था लेकिन उनका अंश कम होकर 2012–13 में 1.3 प्रतिशत हो गया। समय के साथ भारत के निर्यातों में विकासशील देशों के हिस्से में वृद्धि हुई है। 1960–61 में भारत के निर्यातों में विकासशील देशों का अंश 14.9 प्रतिशत था जो 1990–91 में 17.1 प्रतिशत था लेकिन 2012–13 में 41.5 प्रतिशत हो गया। 1990–91 के बाद निर्यातों में विकासशील देशों का हिस्सा तेजी से बढ़ा है।

वर्ष 2013–14 में भारत के निर्यातों में 18.6 प्रतिशत यूरोप के देशों का हिस्सा था। यूरोप के देशों में निर्यात अनुसार ब्रिटेन, नीदरलैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, इटली, व फ्रांस के साथ हुआ। इसी वर्ष भारत के निर्यातों में अमेरीकी महाद्वीप का योगदान 17.5 प्रतिशत था। उत्तरी अमेरीका में सुयक्त राज्य अमेरीका व लेटिन अमेरीकी देशों में ब्राजील को सर्वाधिक निर्यात हुआ। देश के निर्यातों में एशिया के देशों का योगदान 49.4 प्रतिशत था। एशिया में जिन देशों को प्रमुख रूप से भारत द्वारा निर्यात किए गए उनमें संयुक्त राज्य अमीरात, चीन, सिंगापुर, हांगकॉग, सऊदी अरब, ईरान व जापान है। वर्ष 2013–14 में जिन देशों को प्रमुख रूप से निर्यात किया उनमें अमेरीका (12.5 प्रतिशत) संयुक्त अरब अमीरात (9.7 प्रतिशत), चीन (4.7 प्रतिशत), हांगकॉग (4 प्रतिशत), सिंगापुर (4 प्रतिशत) है।

भारत के आयातों की दिशा (Direction of Indian Imports): चार प्रमुख देश समुह के अनुसार भारत की आयातों की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। वर्ष 1960–61 में देश के कुल आयातों में 78 प्रतिशत हिस्सा आर्थिक सहयोग संगठन (ओ.ई.सी.डी.) देश समुहों का था जो 2012–13 में 27.8 प्रतिशत रह गया। अर्थात् देश के आयातों में आर्थिक सहयोग संगठन देश समूह का हिस्सा महत्वपूर्ण रूप से कम हो गया। देश के आयातों में 1960–61 में तेल निर्यातक देशों का हिस्सा 4.6 प्रतिशत था जो बढ़कर 2012–13 में 38.6 प्रतिशत तक हो गया। इसका प्रमुख कारण तेल आयात का बढ़ता बिल रहा है। उर्जा के लिए तेल पर निर्भरता व तेल की बढ़ती अन्तर्राष्ट्रीय कीमत ने तेल आयात को तेजी से बढ़ाया। कुल आयातों में पूर्वी यूरोप व देशों का हिस्सा वर्ष 1960–61 में 3.4 प्रतिशत था जो बढ़कर 1990–91 में 7.8 प्रतिशत हो गया लेकिन 2012–13 में कम होकर 1.8 प्रतिशत ही रह गया।

तालिका–5 आयात की दिशा (देश समूह के अनुसार) (प्रतिशत में)

देश समूह	1960–61	1990–91	2012–13
ओ.ई.सी.डी. देश	78.0	54.0	27.8
तेल निर्यातक देशों का संगठन	4.6	16.3	38.6
पूर्वी यूरोप	3.4	7.8	1.8
विकासशील देश	11.8	18.6	31.33
अन्य देश	2.2	0.0	0.5

स्रोत– रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, हेण्डबुक ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन इण्डिन इकानामी

इसका प्रमुख कारण सोवियत संघ के साथ भारत के व्यापारिक रिश्तों में निहित था। कुल आयात में विकासशील देशों का हिस्सा 1960–61 में 11.8 प्रतिशत था जो 1990–91 में 18.6 प्रतिशत था लेकिन 2012–13 में बढ़कर 31.33 प्रतिशत हो गया। अर्थात 1990–91 के बाद आयातों में पूर्वी यूरापे के देशों का हिस्सा कम हुआ है तथा विकासशील देशों का हिस्सा बढ़ा है।

वर्ष 2013–14 में भारत के आयातों में यूरोपीय महाद्वीय का हिस्सा 15.8 प्रतिशत था। यूरोपीय महाद्वीप में वर्ष 2013–14 में भारतम के प्रमुख आयात भागीदार देशों में जर्मनी, बेल्जियम, यू.के. तथा स्वीजरलैण्ड थे। अफ्रीका महाद्वीप का भारत के आयातों में 2013–14 में हिस्सा 8.1 प्रतिशत था। आयातों के हिसाब से अफ्रीका महाद्वीप में भारत के प्रमुख व्यापार भागीदार देश दक्षिण अफ्रीका, नाईजीरिया, अंगोला व बोत्सवाना है। भारत के आयातों में अमेरीकी महाद्वीप का योगदान 12.8 प्रतिशत था। इस महाद्वीप में प्रमुख आयातक देश संयुक्त राज्य अमरीका व वेनेजुएला है। महाद्वीप के दृष्टिकोण से भारत के साथ आयातों में सबसे बड़ा हिस्सा एशिया महाद्वीप का है। कुल आयात में इस महाद्वीप में स्थित देशों का हिस्सा 2013–14 में 60.7 प्रतिशत था। आयात के दृष्टिकोण से एशिया महाद्वीप में भारत के प्रमख व्यापार भागीदार देशों में चीन, सऊदी अरब, संयुक्त राज्य अमीरात, ईराक, कुवैत, इण्डोनेशिया, कतर, कोरिया व जापान रहे है। देश के वर्ष 2013–14 में प्रमुख आयातक देशों में चीन, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, संयुक्त राज्य अमेरीका, व ईराक थे। कुल आयात में इनका हिस्सा क्रमशः 11.3 प्रतिशत, 8.1 प्रतिशत, 6.4 प्रतिशत, 5 प्रतिशत व 4.1 प्रतिशत था।

भारत के विदेशी व्यापार की वर्तमान प्रवृत्तियाँ
(Currect Trends of India's Foreign Trade)

उदारीकरण व वैश्विकरण से युक्त आर्थिक सुधारों ने भारतीय निर्यात व आयात को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के पश्चात आयात प्रशुल्कों को कम किया गया। आयात उदारीकरण के प्रयास किये गए। भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ व्यापारिक अन्तक्रिया का आकार व स्वरूप महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित हुआ है। भारत के आयात निर्यात में विगत वर्षो में तेजी से वृद्धि हुई है।

(क) भारत के विदेशी व्यापार के आकार में वृद्धि : वर्ष 2004–05 में भारत के विदेशी व्यापार (वस्तु) 195.1 बिलियन अमेरीकी डॉलर का था जो बढ़कर 2013–14 में 764.6 बिलियन अमेरीकी डॉलर हो गया। विश्व के प्रमुख आयातक देशों में 2004 में भारत का स्थान 23वां था जो वर्ष 2013 में 12वां हो गया। इसी प्रकार विश्व के प्रमुख निर्यातक देशों में 2004 में भारत का स्थान 23वां था जो 2013 में सुधर कर 19वां हो गया है। अर्थात विश्व व्यापार की तुलना में भारत के विदेशी व्यापार में तेज वृद्धि हुई है। विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization -WTO) के अनुसार विश्व आयात में भारत का हिस्सा वर्ष 2004–05 में 1 प्रतिशत था वर्ष 2013–14 में 2.5 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार विश्व निर्यात में भारत का हिस्सा वर्ष 2004–05 में 0.8 प्रतिशत था से 2013–14 में बढ़कर 1. 7 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पादन (Gross Domestic Product-GDP) के अनुपात के रूप में वर्ष 2004–05 में भारत का विदेशी व्यापार 29 प्रतिशत से बढ़कर 2013–14 में 41.8 प्रतिशत हो गया। अर्थात विगत 10 वर्षो में भारत का विदेशी व्यापार विश्व अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार तथा भारत के सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि की तुलना में तेजी से बढ़ा है।

(ख) निर्यात में वृद्धिः भारतीय निर्यात वर्ष 2004–05 में 375340 करोड़ रूपये का था जो वर्ष 2013–14 में बढ़कर 1905011 करोड़ रूपये का हो गया। इन दस वर्षो में से 6 वर्षो में निर्यात वृद्धि दर 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक थी। तालिका के अनुसार वर्ष 2004–05 में निर्यात 27.9 प्रतिशत बढ़े। वर्ष 2008–09 में 28.2 प्रतिशत बढ़े तथा वर्ष 2010–11 में 34.5 प्रतिशत की दर से बढ़े। सकल घरेलू अनुपात के रूप में भारतीय निर्यात 2004–05 में 12.1 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2013–14 में 17.0 प्रतिशत हो गए। प्रमुख निर्यात वस्तुओं में पैट्रोलियम उत्पाद, जवाहरात मूल्यवान व अर्द्धमूल्यवान रत्न, स्वर्ण व मूल्यवान आभूषण आदि रहे है।

(ग) आयातों में वृद्धि : वर्ष 2004–05 में आयातों का

मूल्य 501065 करोड रू. से बढ़कर वर्ष 2013–14 में 2715434 करोड़ रू. हो गया। वर्ष 2004–05 के बाद आयातों में तीव्र वृद्धि हुई। इन दस वर्षो में से पांच वर्षो में आयातों में तीस प्रतिशत से अधिक वृद्धि देखी गई। वर्ष 2004–05 में आयातों में रूपये मूल्य में सर्वाधिक 39.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 2011–12 में आयातों में 39.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 2009–10 व 2013–14 को छोड़कर आयातों में तीव्र वृद्धि देखी गई। प्रमुख आयात मदों में पैट्रोलियम आयल व स्नेहक, स्वर्ण, जवाहरात मूल्यवान एवं अर्द्धमूल्यवान रत्न है। वर्ष 2013–14 में वैश्विक कारणों के चलते रुपये के तीव्र अवमूल्यन व स्वर्ण आयात पर प्रतिबंध के कारण आयातों में 1.7 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई।

भारत का सेवा व्यापार

वाणिज्यिक सेवा व्यापार में, भारत वर्ष 2012 में वैश्विक निर्यात में 3.4 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ छठे बड़े निर्यातक के स्थान पर रहा तथा वैश्विक आयात में 3.0 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ, सातवें बड़े आयातक के स्थान पर रहा। पांच वर्षों में 2008 से पहले (2003–04 से 2007–08) सेवा निर्यात वृद्धि (सीएजीआर) 35.4 प्रतिशत तीव्र थी तथा उपरोक्त तरीके से, वाणिज्यिक निर्यात वृद्धि 25.8 प्रतिशत थी। पांच वर्ष के पिछले संकट में (2008–09 से 2012–13) सेवा निर्यात वृद्धि, जो 8. 3 प्रतिशत थी व्यापार निर्यात वृद्धि के 12.8 प्रतिशत से कम थी। 2012–13 में 145.7 अमेरिकी डालर का सेवा निर्यात 2. 4 प्रतिशत की न्यून वृद्धि को दर्शाता है जो कि पिछले वर्ष 14. 2 प्रतिशत की तुलना में अत्यधिक कम थी। इसमें 2013–14 में 4 प्रतिशत वृद्धि के साथ थोड़ा सा सुधार हुआ।

वस्तु समूह	हिस्सा (प्रतिशत)		सीएजीआर
	2002–03	2013–14	2002–04 2013–14
यात्रा	16.0	11.8	16.6
परिवहन	12.2	11.5	19.1
बीमा	1.8	1.4	17.2
जीएनआईई	1.4	0.3	4.8
विविध	68.6	75.0	20.8
सोफटवेयर सेवायें	46.2	45.8	19.7
गैर सोफटवेयर सेवायें	22.4	19.1	22.7
जिनका			
व्यवसाय सेवायें	3.9	18.8	38.3
वित्तीय सेवायें	3.3	4.4	23.1
संचार सेवायें	3.9	1.6	10.4

स्रोत : आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार 2013–14

(घ) व्यापार घाटा में वृद्धि : तालिका–5 के अनुसार वर्ष 2004–05 में व्यापार घाटा 125725 करोड़ रूपये का था जो वर्ष 2012–13 में 1034844 करोड़ रूपये का हो गया। आयातों में निर्यातों की तुलना में तीव्र वृद्धि के कारण व्यापार घाटे का आकार बढ़ता गया। वर्ष 2009–10 व 2013–14 में व्यापार घाटा पूर्व वर्ष की तुलना में कम हुआ। इसके अलावा व्यापार घाटा पूर्व वर्ष की तुलना में बढ़ा है।

तालिका–6 भारत के विदेशी व्यापार का आकार (रूपये करोडों में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात प्रतिशत परिवर्तन	आयात प्रतिशत परिवर्तन
2004 -05	375340	501065	(-) 125725	27.9	39.5
2005 -06	456418	660409	(-) 203991	21.6	31.8
2006 -07	571779	881515	(-)309736	25.3	33.5
2007 -08	665864	1012312	(-)356448	14.7	14.8
2008 -09	840755	1374436	(-)533681	28.3	35.8
2009 -10	845534	1363736	(-)518202	0.6	-0.8
2010 -11	1136964	1683467	(-)546503	34.5	23.4
2011 -12	1465959	2345463	(-)879504	28.9	39.3
2012 -13	1634318	2669162	(-)1034844	11.5	13.8
2013 -14	1905011	2715434	(-)810423	16.6	1.7
2015 -16	1716378	2490298	(-)773820	-9.49	-9.02

स्रोत– आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार वर्ष 2015–16

(ङ) व्यापार की दिशा में परिवर्तन : वर्ष 2004–05 से 2013–14 के मध्य भारत के निर्यात दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। भारतीय वैदेशिक व्यापार के बाजार में विविधिकरण हुआ है। बाजार विविधिकरण से लाभ यह हुआ है कि वर्ष प्रतिवर्ष होने वाले उतार चढ़ावों से मुक्ति मिलती है तथा मंदी जैसे संकटों से निबटने में मदद मिलती है।

तालिका– 6 भारतीय व्यापार (आयात व निर्यात) में दिशा (प्रतिशत में)

क्षेत्र	निर्यात		आयात	
	2004–05 से 2007–08	2010–11 से 2013–14	2004–05 से 2007–08	2010–11 से 2013–14
यूरोप	23.3	19.0	21.6	18.0
अफ्रीका	7.8	8.9	6.3	8.5
अमेरीका	18.9	16.6	10.3	11.0
एशिया	48.5	50.2	48.9	60.2

स्रोत– डीजीसीआई एण्ड एस के आंकडों पर आधारित संगणना, आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय,भारत सरकार वर्ष 2014–15 तालिका से स्पष्ट है कि 2004–05 की तुलना में 2013–14 में आयात व निर्यात में यूरोप का अंश कम हुआ है। निर्यात व्यापार में

यूरोप का अंश 2004–05 से 2007–08 में 23.3 प्रतिशत से कम होकर 19.0 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार आयात व्यापार में यूरोप के देशों का अंश 2004–05 से 2007–08 में 21.6 प्रतिशत था। कम होकर वर्ष 2010–11 से 2013–14 में 18.0 प्रतिशत हो गया। निर्यातों व आयातों में अफ्रीकी देशों का हिस्सा बढ़ा है। निर्यातों में 2004–05 से 2007–08 से 2010–11 से 2013–14 के बीच निर्यातों में अफ्रीकी देशों का हिस्सा 18. 9 प्रतिशत से कम होकर 16.6 प्रतिशत हो गया। इसीप्रकार इस अवधि में आयातों में अफ्रीकी देशों का हिस्सा 6.3 प्रतिशत से बढ़कर 8.5 प्रतिशत हो गया। आयात व निर्यातो में इसी अवधि में एशिया के देशों का हिस्सा बढ़ा है।

राज्यवार निर्यात– निर्यातों का राज्य वार प्रदर्शन निम्न तालिका में है। शीर्ष पर गुजरात उसके बाद महाराष्ट्र केवल दो राज्यों का प्रभुत्व है। तमिलनाडू और कर्नाटक तीसरे व चौथे स्थान पर हैं।

राज्य	मूल्य (मिलियन यू.एस. डालर) 2013–14	हिस्सा 2013–14
गुजरात	73498	23.5
महाराष्ट्र	71661	22.9
तमिलनाडू	26937	8.6
कर्नाटक	17821	5.7
आन्ध्रप्रदेश	15353	4.9
उत्तरप्रदेश	13309	4.3
हरियाणा	10657	3.4
पश्चिम बंगाल	10496	3.4
दिल्ली	9329	3.0
पंजाब	7063	2.3
राजस्थान	5915	1.9
मध्य प्रदेश	4374	1.4
केरल	4285	1.4
उड़ीसा	4005	1.3
कुल निर्यात	313610	100

स्रोत : आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार 2013–14

एशिया देशों का हिस्सा निर्यातों की तुलना में आयातों में तेजी से बढ़ा है। वर्ष 2004–05 से 2007–08 में आयातों में एशिया देशों का हिस्सा 48.9 प्रतिशत था। 2010–11 से 2013–14 में बढ़कर 60.2 प्रतिशत हो गया। इसी अवधि में निर्यातों में एशियाई देशों का हिस्सा 48.5 प्रतिशत से बढ़कर 50.2 प्रतिशत हो गया। इसी अवधि में अमेरीकी देशों का हिस्सा निर्यात में घटा है व आयात में अल्प मात्रा में बढ़ा है। इस प्रकार हम कह सकते है कि इस अवधि में यूरोप व अमेरीकी देशों का हिस्सा घटा है जबकि अफ्रीकी व एशियाई देशों का हिस्सा बढा है।

विदेशी व्यापार नीति (Foreign Trade Policy)

किसी भी देश के लिए विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में सर्वोत्तम स्थिति वह होती है जब आयात के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा देश के निर्यात से प्राप्त हो जाती है। आवश्यक आयातों के लिए विदेशी मुद्रा की उपलब्धता बनी रहे। इसके लिए नीतियों को मौटे तौर पर आयात प्रतिबन्ध, आयात प्रतिस्थापन, आयात उदारीकरण व निर्यात प्रोत्साहन के लिए प्रयासों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।आयात प्रतिबन्ध से तात्पर्य है कि गैर आवश्यक वस्तुओं के आयातों को प्रतिबन्धित कर दिया जावे ताकि आवश्यक आयातों के लिए विदेशी मुद्रा की उपलब्धता बनी रहें। दूसरी योजना में भारत ने व्यापक औद्योगिकरण कार्यक्रम आरम्भ किया। इसके लिए पूंजीगत मशीनरी व तकनीक का आयात करना था। विदेशी मुद्रा सीमित मात्रा में थी। इसलिए कुल आयातों को 1956–57 में तीन श्रेणियों में विभाजित किया। प्रथम वर्ग में वे वस्तुऐं शामिल थी जिनका आयात पूर्णतः प्रतिबन्धित था। इन वस्तुओं का आयात नहीं कर सकते थे। दूसरे वर्ग की वस्तुओं का आयात केवल सरकारी एजेन्सियों (यथा राज्य व्यापार निगम व खनिज व धातु व्यापार निगम) के द्वारा किया जा सकता था। तीसरे वर्ग में वे वस्तुऐं थी जिन्हें खुले सामान्य लाइसेन्स के तहत आयात किया जा सकता था।

आयात प्रतिस्थापन की नीति का तात्पर्य है विदेशों से आयात वस्तु का घरेलू उत्पादन से प्रतिस्थापन करना है। जिससे उनका आयात न करना पड़े व विदेशी मुद्रा की बचत हो तथा वस्तु का देश में उत्पादन कर आत्म निर्भरता विकसित की जा सके। इस नीति को तीन चरणों में कार्यान्वित किया गया। प्रथम उपभोग वस्तुओं का आयात प्रतिस्थापन दूसरा पूंजीगत वस्तुओं का आयात प्रतिस्थापन व तीसरा तकनीकी का आयात प्रतिस्थापन। आयात प्रतिस्थापन की नीति के कारण अनेक वस्तुऐं जैसे धातु, मशीनों व वाहनों का देश में उत्पादन कर बल दिया गया। इसके कारण इन वस्तुओं का देश में उत्पादन होने लगा व देश की उत्पादन संरचना में महत्वपूर्ण योगदान आया। आयात प्रतिबन्ध व आयात प्रतिस्थापन के कारण आयातों में अनावश्यक विलम्ब हुआ, लाईसेन्स प्रक्रिया के कारण आयातों में विलम्ब हुआ व प्रशासनिक प्रक्रिया जटिल हो गई। ऊँची लागत वाला उत्पादन होने के कारण उद्योगों की प्रतिस्पर्धा क्षमता कमजोर हुई व निर्यात पर्याप्त मात्रा में बढ़ नहीं पायें।

आयात प्रतिबन्ध व आयात की सीमाओं के कारण 1980 के दशक से आयात उदारीकरण को अपनाया गया। इसमें आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबन्धों को समाप्त किया गया।

खुला सामान्य लाइसेन्स की सूची का विस्तार किया गया तथा निर्यात प्रोत्साहन के लिए रियायतें व छूट प्रदान की गई। 1978 में अलेक्जेन्डर समिति 1982 में टंडन समिति तथा 1984 में हुसैन समिति ने आयात उदारीकरण व निर्यात प्रोत्साहन के लिए सिफारिश की। आयात उदारीकरण की दिशा में निम्न प्रमुख प्रयास किए गए।

(1) आयात उदारीकरण के लिए प्रयास (Efforts for Import Libralisation):

(क) निर्यात के लिए आयात को उदार करना निर्यातकों को बिना व्यवधान के कच्चा माल उपलब्ध कराने के लिए उन्हें आयात में छूट प्रदान की गई। पंजीकृत निर्यातकों को लाईसेन्स में छूट दी गई व समय के अनुसार इसमें छूट बढ़ाई गई। अग्रिम लाईसेन्स नीति द्वारा वर्ष में 10 करोड़ रूपये से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाले निर्यातकों को एक वर्ष के लिए आयातों की अनुमति दी गई।

(ख) कच्चे माल व पूंजीगत वस्तुओं का आयातः औद्योगिकरण के लिए पूंजीगत वस्तुओं व कच्चे माल की सुनिश्चित आपूर्ति होनी आवश्यक है। इनके आयात के लिए और वस्तुओं को खुले सामान्य लाइसेन्स में सम्मिलित किया गया ताकि उत्पादन की प्रक्रिया इनके अभाव के कारण बाधित नहीं हो। खुले सामान्य लाइसेन्स **(Open General Licence - OGL)** आयातों के अलावा उन्हें कच्चे माल के आयात की अनुमति दी गई।

(ग) निर्यात गृह, व्यापार गृह, स्टार व्यापार गृह तथा सुपर स्टार व्यापार गृह के लिए आयात सुविधा को उदार करना : इनकी परिभाषा निर्यात आकार के साथ जुड़ी हुई थी। जिन निर्यातकों ने पिछले तीन वर्षो में प्रतिवर्ष 12.50 करोड़ रूपये का निर्यात किया। उन्हें निर्यात गृह, जिन्होंने पिछले तीन वर्षो में प्रतिवर्ष 62.50 करोड़ रूपये का न्यूनतम निर्यात किया। उन्हें व्यापार गृह जिन निर्यातकों ने पिछले तीन वर्ष प्रतिवर्ष 312.50 करोड़ रूपये का निर्यात किया उन्हें स्टार व्यापार गृह तथा जिन निर्यातकों ने पिछले तीन वर्षो में प्रतिवर्ष 925 करोड़ रूपये का निर्यात किया सुपर स्टार व्यापार गृह नाम दिया गया। इनको आयात सुविधाऐं प्रदान की गई।

(घ) तकनीकी आयातः भारतीय उत्पाद को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए प्रौद्योगिकी सुधार आवश्यक है। इसलिए तकनीकी आयात को उदार किया गया। तकनीकी आयात व विशेषज्ञ सेवाओं के आयात को सुलभ बनाने के लिए तकनीकी विकास फण्ड बनाया गया। इस फण्ड में तकनीकी आयात के लिए विदेशी मुद्रा का प्रावधान किया गया।

(ङ) सरकारी एजेंसियों के माध्यम से आयात करने की शर्ते को हटा दिया गया। वस्तुओं की सूची जिनका आयात सरकारी एजेंसियों के मार्फत किया जाना आवश्यक था उनकी सूची को छोटा कर दिया गया ताकि आवश्यकता होने पर बिना इन एजेंसियों के माध्यम के आयात किया जा सके।

(2) निर्यात प्रोत्साहन के लिए प्रयास (Efforts for Export Promotion) : विकास प्रयास के आरम्भिक वर्षो में निर्यातों का तेजी से बढ़ना नहीं होता। अर्थशास्त्री यह मानते है कि विकासशील देशों द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की मांग बेलोच होती है तथा व्यापार की शर्ते भी इन देशों के प्रतिकूल होती है। इस कारण इन देशों की निर्यात तेजी से नहीं बढ़ते। व्यापार शर्त प्रतिकूल होने का तात्पर्य यह है कि निर्यातों की कीमत की तुलना में आयातों की कीमतें तेजी से बढ़ती है। उच्च उत्पादन लागत, घटिया गुणवत्ता, बढ़ती घरेलू मांग व उपर्युक्त निर्यात नीति के अभाव के कारण प्रथम तीन योजनाओं में निर्यातों में तेजी से वृद्धि नहीं हो पाई। 1966 में भारतीय रूपये का स्वर्ण के सापेक्ष 36.5 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। अवमूल्यन का तात्पर्य है कि विदेशी मुद्रा की एक इकाई के बदले भारतीय मुद्रा की विनिमय दर को बढ़ाया गया। इससे निर्यातों की कीमत कम होती है व आयातों की कीमत बढ़ती है। अर्थात निर्यात वृद्धि होती है तथा आयातों में कमी होती है।

अस्सी के दशक के मध्य से निर्यात नीति में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन आये। प्रथम, निर्यातों में वृद्धि के लिए अनेक छूट व रियायतें व प्रोत्साहन घोषणा लाई गई तथा दूसरा उत्पादन व औद्योगिक संरचना को निर्यात उन्मुख बनाने के प्रयास हुए। इससे पूर्व व इसके पश्चात् के दृष्टिकोण में परिवर्तन यह था कि पूर्व में जो उत्पादन होता था उसका निर्यात किया जाता था लेकिन अब निर्यात मांग के अनुसार उत्पादन करने के प्रयास आरम्भ किए गए। निर्यात प्रोत्साहन के लिए निम्न उपाय किए गए।

(क) निर्यात वृद्धि के लिए संगठनों की स्थापना (Establish Organizations for Export Promotion): निर्यातों में वृद्धि के लिए निर्यात के विभिन्न पहलुओं के लिए इन संगठनों की स्थापना की गई ताकि निर्यातों में वृद्धि हो सके।

1. चाय, कॉफी, रबड़, मसालों व तम्बाकू उत्पादों के उत्पादन, विकास व निर्यात के लिए वस्तु अनुसार मण्डलों की स्थापना की गई। इस समय इन पांच वस्तुओं के लिए वस्तु बोर्ड कार्यरत है।

2. निर्यात संवर्धन परिषदें : निर्यात संवर्धन के लिए वर्तमान में देश में 10 निर्यात संवर्धन परिषदें स्थापित है। ये परिषदें स्वायत्तशाषी संस्थान के रूप में कार्यरत है।

3. केन्द्रीय सलाहकार परिषद : यह परिषद सरकार को आयात निर्यात नीति, इस नीति के परिचालन आदि विषयों पर सलाह

देती है।

4. भारतीय निर्यात संगठन संघ : इस संघ का काम विभिन्न निर्यात संगठनों के कार्य में समन्वय व सामन्जस्य लाना है।

5. कृषि व संसाधित खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरणः यह कृषि उत्पादों व खाद्य उत्पादों के निर्यात के लिए कार्यरत है।

6. भारतीय निर्यात संवर्धन संगठन : यह संगठन विभिन्न वस्तुओं, उनके निर्यात को, उसके बाजारों व खरीददारों के बीच समन्वय का काम करता है। भारतीय निर्यातों को बढ़ाने के लिए विदेशों में भारतीय उत्पादों के मेलों व प्रदर्शनीयों का आयोजन करता है।

7. निर्यात में दक्षता रखने वाले निर्यातकों के निर्यात गृह, व्यापार गृह, स्टार व्यापार गृह व सूपर स्टार व्यापार गृह की स्थापना की गई।

8. भारतीय पेकेजिंग संस्थान : निर्यातों के लिए आवश्यक पैकिंग के लिए आवश्यक कदम उठाता है ताकि उत्पाद खराब न हो व आकर्षक पैकिंग में हों।

9. निर्यातकों को निर्यात साख बीमा व गारन्टी प्रदान करने के लिए भारतीय निर्यात साख एवं गारन्टी निगम कार्यरत है।

10. निर्यात वस्तुओं की निर्यात से पूर्व जांच के लिए निर्यात जांच परिषद् कार्यरत है।

11. निर्यात के लिए सरकारी एजेन्सीयों की स्थापना की गई। इनमें राज्य व्यापार निगम तथा खनिज व धातु व्यापार निगम की स्थापना की गई। राज्य व्यापार निगम कपड़ा, विनिर्मित वस्तुओं, कॉफी, सीमेंट व नमक आदि का निर्यात करता है तथा खनिज व धातु व्यापार निगम खनिज व धातुओं के निर्यात के लिए कार्यरत है।

(ख) निर्यात प्रोत्साहन के लिए योजनाऐं (Schemes for Export Promotion): निर्यातों को बढ़ाने के लिए उत्पादन की बेहतर दशाओं, बेहतर अधसरंचना कर संबंधी छूट, निर्यात साख, सुविधायुक्त आयात आदि उपलब्ध कराने के लिए निम्न नीतियां लागू की गई।

1. नकद मुआवजा सहायता (Cash Compensatory Scheme) : 1966 में इस योजना को लागू किया गया। इस योजना में निर्यातकों द्वारा जो आगत (कच्चा माल) प्रयोग किया जाता है उस कच्चे माल पर जो कर भुगतान किया जाता है उसकी एवज में नकद मुआवजा निर्यातकों को दिया जाता है।

2. शुल्क वापसी योजना (Duty Drawback Scheme): इस योजना में निर्यात के लिए उत्पादन करने पर प्रयोग में ली गई आगतों के आयात पर लगे कर को निर्यातकों को वापस लौटाया जाता है। इसे निर्यात की प्रतिस्पर्धा शक्ति बनी रहती है। उच्च कर युक्त आयात के कारण निर्यातों की कीमत ऊँची होती है। इन निर्यात उत्पाद की कीमतों को शेष विश्व के साथ प्रतिस्पर्धा रखने के लिए इनपुटों पर दिया गया कर निर्यातकों को वापस कर दिया जाता है।

3. आयात पुनः पूर्ति योजना (Import Replenishment Scheme) : यह निर्यातों के लिए आवश्यक आयातों की सुलभ उपलब्धि के लिए योजना है। इस योजना में निर्यातकों को उन वस्तुओं के आयात की अनुमति दी जाती है जिनका आयात प्रतिबन्धित होता है। इस योजना में निर्यातक उन वस्तुओं का आयात कर सकते है जो देश में उपलब्ध नहीं है।

4. निर्यात प्रोसेसिंग क्षेत्र एवं निर्यात उन्मुख ईकाईयाँ (Export Promotion Zones and Export Oriented Units) : निर्यात प्रोसेसिंग क्षेत्रों की स्थापना निर्यात उत्पादन के लिए मुक्त व्यापार का वातावरण प्रदान करने के लिए था। इसका उद्देश्य इन उत्पादन इकाईयों की स्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाना था। 100 प्रतिशत निर्यात उन्मुख इकाईयों का सम्पूर्ण उत्पादन निर्यात किया जाता है। इन इकाईयों को अनेक कानूनों से छूट दी गई जैसे इन पर एकाधिकारी प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम, लाइसेन्स विधियों, विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम से छूट दी गई। इन इकाईयों को बिना आयात शुल्क दिए कच्चा माल, पूंजीगत वस्तुऐं एवं तकनीक आयात की अनुमति थी। लेकिन प्रशासनिक देरियों व कमजोर अद्यःसंरचना के कारण यह योजना निर्यात बढ़ाने के पर्याप्त सफल नहीं रही।

5. ब्लैंकेट विनिमय अनुमति योजना (Blanket Exchange Permit Scheme): यह योजना 1987 में निर्यात प्रोत्साहन के लिए लायी गई। इस योजना में निर्यातकों को यह छूट है कि अपनी निर्यात आय का एक निश्चित प्रतिशत का प्रयोग निर्यात संवर्धन के लिए कर सकते है।

6. निर्यातकों के लिए राजकोषीय रियायतें (Fiscal Concessions for Exports): निर्यात वस्तु उत्पादन में लगे आगत पर करों को निर्यातकों को वापस कर दिया जाता है। इसके अलावा निर्यात आय पर कम आयकर देना हेता है व कुछ मामलों में निर्यात आय पर आयकर माफ कर दिया जाता है।

7. रूपये का अवमूल्यन व परिवर्तनीयता (Rupee

Depreciation and Convertibility): 1991 में भारत सरकार ने रूपये का पांच प्रमुख मुद्राओं के सापेक्ष 18–19 प्रतिशत अवमूल्यन किया। 1992–93 में उदारीकृत विनियम दर व्यवस्था लागू की गई। इसके तहत निर्यातक को निर्यात आय का 40 प्रतिशत सरकारी विनिमय दर पर सरकार को देना आवश्यक था तथा शेष 60 प्रतिशत बाजार दर पर परिवर्तित करा सकते थे। इसी प्रकार 1994 से चालू खाते में भी परिवर्तनीयता लागू की गई। उसके पश्चात् भी परिवर्तनीयता को उत्तरोत्तर उदार किया गया।

8. कृषि निर्यात क्षेत्र (Agriculture Export Zones): वर्ष 2001 में कृर्षि निर्यात प्रोत्साहन के लिए कृषि निर्यात क्षेत्रों की स्थापना की गई। इसके तहत यह पहचान की व्यवस्था की गई कि किन कृषि वस्तुओं का निर्यात किया जा सकता है तथा इनके उत्पादन के लिए विशेष ध्यान देने की व्यवस्था की गई। कृषि निर्यात क्षेत्रों में कृषि उत्पादन के आरम्भिक चरण से लेकर बाजार पहुंच तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया को एकीकृत किया गया।

9. हथकरघा व हस्तशिल्प निर्यात प्रोत्साहन के लिए हस्तशिल्प विशेष आर्थिक क्षेत्र **(Handicraft Special Economic Zones)** की स्थापना की गई।

10. कृषि, हथकरघा, रत्न व जवाहरात तथा चमड़ा व फुटवीयर पांच निर्यात के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र चुने गए।

11. स्वतंत्र व्यापार व भण्डारण क्षेत्र (Free Trade and Warehousing Zone) की स्थापनाः वर्ष 2004–09 की आयात निर्यात नीति में 100 करोड़ रूपये व 5 लाख वर्ग मीटर क्षेत्र में प्रत्येक स्वतंत्र व्यापार व भण्डारण क्षेत्र की स्थापना की गई ताकि इस क्षेत्र में निर्यात के लिए आवश्यक अद्यः सरंचना की स्थापना की जा सके।

12. प्रक्रिया सरलीकरण के उपाय : 2004–09 की आयात निर्यात नीति में प्रक्रिया सरलीकरण करने के लिए निम्न कदम उठाये गऐ (क) निर्यातकों द्वारा भरे जाने वाले फार्मो की संख्या कम करा दी गई। (ख) निर्यात की जाने वाली वस्तुओं को सेवाकर से मुक्त कर दिया गया।

(ग) पांच करोड़ की बिक्री करने वाले निर्यातकों को बैंक गारन्टी से छूट दी गई। (घ) पुरानी मशीनों के आयात की छूट दी गई।

13. रियायतें व छूट **(Concessions and Exemptions):** बन्दरगाह व हवाईअड्डों पर अद्यःसंरचना विकास के लिए आयातों पर शुल्क को 10 प्रतिशत कर दिया गया। मनोरंजन दूरसंचार व सूचना प्रौद्योगिकी को अनेक रियायतें दी गई। विशेष आर्थिक क्षेत्र में अद्यःसंरचना का निर्माण करने वाले को 10 वर्ष तक करों से मुक्ति आदि अनेक रियायतें व छूट दी गई।

14. विशेष आर्थिक क्षेत्र **(Special Economic Zones):** वर्ष 2000 में निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना की नीति अपनाई गई। इन क्षेत्रों में निर्यातकों को विश्वस्तरीय अद्यःसरंचना उपलब्ध कराई गई, हस्तक्षेप रहित वातावरण उपलब्ध कराया गया, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई, विदेशी वाणिज्यिक उधार की अनुमति दी गई व इन क्षेत्रों में स्थिति उत्पादन इकाईयों को सेवा क्षेत्र बिक्री कर व आयकर में छूट गई गई। 2012–13 में सेज **(SEZ)** क्षेत्र द्वारा 4,76,159 करोड़ रूपये का निर्यात किया गया, 10,74,904 रोजगार के अवसर सृजित किये गए व सेज में कुल 3,589 उत्पादन इकाईयां कार्यरत थी। चीन की तर्ज पर निर्यातकों को मुक्त आर्थिक वातावरण प्रदान करने के लिए सेज की स्थापना की गई। लेकिन भूमि अधिग्रहण में कठिनाई, प्रशासनिक जटिलता व सेज स्थापकों द्वारा सही उद्देश्य व भावना से कार्य नहीं होने कारण इसके मार्ग में कठिनाईयां है।

निर्यात प्रोत्साहन के लिए उक्त नीतिगत उपाय महत्वपूर्ण है। लेकिन निर्यातों में सुस्थिर वृद्धि के लिए घरेलू प्रौद्योगिकी के विकास को प्रोत्साहन, विश्वस्तरीय अद्यःसंरचना तथा अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ समष्टिगत आर्थिक स्थिति का होना इन सबके साथ अपरिहार्य है।

विदेशी व्यापार नीति 2009–14 (Foreign Trade Policy 2009-14) :

नीति का उद्देश्य वर्ष 2014 तक वस्तुओं व सेवाओं के निर्यात को दुगुना करना था। अल्पकालीन उद्देश्यों में निर्यात में गिरावट की प्रवृति को रोकना, मंदी से प्रभावित निर्यात क्षेत्रों की अतिरिक्त मदद करना व निर्यात वृद्धि को पुनःस्थापित करना। नीति का दीर्घकालीन लक्ष्य वर्ष 2020 तक विश्व व्यापार में भारत के हिस्से को दुगुना करना (वर्ष 2008 में 1.64 प्रतिशत से 2020 तक 3.28 प्रतिशत करना)। इस नीति के प्रमुख प्रावधान निम्न प्रकार थे।

(क) फोकस बाजार योजना में 26 नए बाजार सम्मिलित किए गए। इनमें 16 लेटिन अमेरीका व 10 एशिया ओसियाना में है। यह निर्यात बाजार विविधिकरण की दिशा में प्रयास है। (ख) फोकस बाजार प्रेरणा को बढ़ाकर 3 प्रतिशत व फोकस उत्पाद

योजना में प्रेरणा को बढ़ाकर 2 प्रतिशत कर दिया गया। (ग) निर्यात प्रोत्साहन पूंजीगत वस्तु योजना में इंजिनियरिंग, इलेक्ट्रोनिक उत्पादों मूल, रसायन, वस्त्र, प्लास्टिक, हस्तशिल्प व चमड़े के उत्पादन के लिए पूंजीगत वस्तुओं का बिना शुल्क आयात की अनुमति दी गई। (घ) निर्यात उन्मुख इकाईयों को अपने उत्पादन का 90 प्रतिशत तक घरेलू प्रशुल्क क्षेत्र में विक्रय की अनुमति दी गई। (ङ) प्रक्रिया सरलीकरण व उसकी लागत को कम करना – इलेक्ट्रोनिक माध्यमों का प्रयोग, आयातित वस्तुओं को सीधे बन्दरगाह से उत्पादन स्थल पर ले जाने की छूट तथा विनिर्माण शुल्क की अदायगी के बाद विनिर्माण अपशिष्ट का निपटान कर सकने आदि की व्यवस्था की गई। (च) नाशवान कृषि उत्पादों के निर्यात के लिए एकल खिड़की योजना लागू की गई। (छ) निर्यातकों को डालर साख उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से एक अन्तः विभागीय समिति का गठन किया गया। (ज) विदेश में प्रदर्शनी में हिस्सा लेने के लिए निर्यातक को अपने साथ 5 लाख डालर तक का माल ले जाने की छूट दी गई।

वर्ष 2013 में इसकी अनुपूरक नीति घोषित की गई उसमें विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए अनिवार्य भू क्षेत्र आधा कर 500 हेक्टेयर तक कर दिया गया। शून्य प्रशुल्क EPCG (1) इसमें दो नई योजनाऐं लागू की गई है इनमें एक ''भारत से वस्तु निर्यात योजना'' (MEIS) है तथा दूसरी भारत से सेवा निर्यात योजना (SEIS) है। इनमें से (Export Promotion Capital Goods Scheme) योजना को प्रौद्योगिकी सुधार फण्ड योजना में शामिल कर दिया गया। (2) प्रतिशत ब्याज रियायत योजना को टेक्सटाईल व इंजिनियरिंग क्षेत्रों में लागू कर दिया गया।

विदेशी व्यापार नीति 2015–20 (Foreign Trade Policy 2015-20) : विदेशी व्यापार नीति 2015–20 वस्तुओं व सेवाओं की नियति में वृद्धि, रोजगार सृजन, देश में मूल्य वर्धन (Value Addition) में वृद्धि के लिए ढ़ाचा उपलब्ध कराती है। इस नीति का लक्ष्य वर्तमान निर्यात जो 466 बिलियन डालर है को, 2019–20 तक 900 बिलियन डॉलर तक करने का है। विश्व निर्यात में भारत के हिस्से को 2 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है। नई व्यापार नीति प्रधानमंत्री की 'मेक इन इण्डिया', 'डिजिटल इण्डिया' तथा 'स्किल इण्डिया' के अनुरूप है। नई व्यापार नीति की प्रमुख शर्ते निम्न प्रकार है।

'सेवा निर्यात योजना' विशेष सेवाओं के निर्यात में वृद्धि के लिए है। ये दोनों योजनाऐं पूर्व की अनेक योजनाओं के स्थान पर प्रतिस्थापित की गई है। पूर्व की इन योजनाओं की शर्ते, योग्यताऐं उपयोग अलग अलग थे। इन दोनों योजनाओं के (MEIS तथा SEIS) के लाभ विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zone) में भी उपलब्ध रहेंगे। हस्तशिल्प, हथकरघा पुस्तकों आदि के ई–कामर्स को भी इन योजनाओं का लाभ मिलेगा।

(2) घरेलू विनिर्माण को बढ़ावा देने के लिए नई नीति में निर्यात बाध्यता को 25 प्रतिशत कम कर दिया गया है।

(3) भारत से वस्तु निर्यात योजना (MEIS) के अन्तर्गत कृषि व ग्रामीण उद्योगों को 3 प्रतिशत व 5 प्रतिशत की दर से समर्थन उपलब्ध रहेगा तथा कृषि व खाद्य पदार्थो के प्रोसेसिंग पैकेजिंग को भारत से वस्तु निर्यात योजना के तहत उच्च स्तरीय समर्थन दिया जायेगा।

(4) जिन वस्तुओं के निर्यात में भारत को परम्परागत दक्षता प्राप्त है के निर्यात को बढ़ाने के लिए ब्रांडिंग (Branding) अभियान आयोजित किये जायेंगे।

(5) भारत से सेवा निर्यात योजना (SEIS) का लाभ भारतीय सेवा प्रदाताओं की अपेक्षा ''भारत में अवस्थित सेवा प्रदाताओं'' पर लागू होगी।

(6) डयूटी केडिट स्क्रिप्ट (Duty Credit Script) स्वतंत्र हस्तांतरणीय होगी तथा इसका प्रयोग कस्टम डूटी, एक्साइज डयूटी तथा सेवाकर के भुगतान में किया जा सकेगा।

(7) निर्यात प्रोत्साहन पूंजीगत वस्तु योजना (EPCG Scheme) के तहत घरेलू वसूली के लिए निर्यात बाध्यता को घटाकर 75 प्रतिशत दिया गया है।

(8) डिजिटल सिग्नेचर के लिए ऑनलाईन प्रक्रिया होगी।

(9) विभिन्न लाइसेन्सों को जारी करने के लिए अन्तमंत्रालय परामर्श ऑनलाईन होगा।

(10) निर्यात अधिकरण (Authorisation) के लिए वैध अवधि को 12 माह से बढ़ाकर 24 माह कर दिया गया है।

(11) निर्यात प्रोत्साहन के लिए राज्य सरकारों से लगातार परामर्श किया जायेगा।

(12) रक्षा उत्पाद, कृषि उत्पाद व पर्यावरण मित्र उत्पादों के निर्यात के लिए उच्च स्तरीय समर्थन रहेगा।

निर्यात संवर्धन के लिए सुझाव
(Suggestions for export Promotion)

भारत में बढ़ता व्यापार घाटा जो 2004 में 125725 करोड़ रूपये था जो 2012–13 में बढ़कर 1034844 करोड़ रूपये हो गया। इस तरह बढ़ते व्यापार घाटे के लिए निर्यात में तेज वृद्धि आवश्यक है। विकसित देशों में कमजोर आयात वस्तुओं की मांग, चीन की विनिर्माण क्षमता का तीव्र विकास, विदेशों में (ईरान व मध्य पूर्व) में राजनीतिक अस्थिरता व जलवायु परिवर्तन के संबंध में बढ़ती चिंता आदि भारतीय निर्यात वृद्धि के सन्दर्भ में प्रमुख वर्तमान चुनौतियां है। (आर्थिक समीक्षा 2011–12)। भारत में अभी भी विश्व के देशों की तुलना में आधारभूत संरचना कमजोर है जिसके कारण निर्यात की लागत अधिक होती है जो विश्व निर्यात में भारत की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को कमजोर बनाये हुए है। दूसरी ओर अभी भी भारत में निर्यात हेतु कागजी प्रक्रियाएं जटिल है जो निर्यातों में देरी करती है। निर्यात वृद्धि के लिए भारत को निम्न प्रयास करने अपेक्षित है।

(1) बेहतर आधारभूत संरचना का निर्माण की आवश्यकता : सड़कें, रेल परिवहन, जल परिवहन, बिजली आदि की अद्यःसंरचना को बेहतर करने की आवश्यकता है। इसमें अधिक निवेश की जरूरत है। इससे आयात व निर्यात में कम समय लगेगा व लागत भी कम होगी।

(2) निर्यात उद्योगों को आगत की उपलब्धता बेहतर हो : कच्चा माल, मध्यवर्ती उत्पाद, श्रम व पूंजीगत आगतों की समय पर व कम लागत पर आपूर्ति की जावे, पूंजी पर ब्याज दर विकसित देशों के समान भारत में भी कम होनी चाहिए। जटिल श्रम कानून ऊँची ब्याज दर, ऊँची लागत व देरी से कच्चे माल की उपलब्धता भारत के निर्यात को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रही है।

(3) भारतीय वस्तुओं के लिए नये बाजार की खोज : निर्यात के लिए कुछ देशों पर निर्भरता उचित नहीं है जैसे भारत का साफ्टवेयर निर्यात 90 प्रतिशत अमेरीका व यूरोपीय संघ को होता है। इन देशों में मंदी जैसा आर्थिक संकट निर्यात पर व्यापक रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालता है। नये बाजारों में भारतीय वस्तुओं का विज्ञापन आवश्यक है। नये बाजारों का अध्ययन कर भारतीय निर्यात विविधिकृत (वस्तु व क्षेत्र के अनुसार) करने की आवश्यकता है ताकि निर्यात बढ़ सके व वर्ष प्रतिवर्ष अनिश्चिता कम हो सके।

(4) विकसित देश व्यापार प्रतिबंधों का सहारा न लें : विकसित देश विकासशील देशों के निर्यात के प्रति संरक्षणवादी रवैया अपना रहे है। विश्व व्यापार संगठन की विवाद निपटान प्रणाली भी इसे नहीं रोक पाई है। पिछले कुछ समय से अमेरीका द्वारा डंपिग रोधी कार्यवाही व यू.के. द्वारा वीजा संबंधी प्रतिबंध इसके उदाहरण है। विकसित देशों को इन संरक्षणवादी उपायों को रोकना आवश्यक है।

(5) निर्यातकों को प्रोत्साहन करने के लिए बेहतर साख की व्यवस्था व आयात उत्पाद शुल्क की व्यवस्था हो। देश में कर सुधार को तीव्र गति से लागू किया जाना चाहिए।

(6) देश में प्राथमिक उत्पादों व विनिर्मित उत्पादों के उत्पादन में तेजी से निर्यात आधारित वृद्धि करनी चाहिए। निर्यात की जाने वाली कृषि उत्पादों का अधिक उत्पादन व विनिर्माण क्षेत्र में निर्यातित वस्तु के उत्पादन को अधिक किया जावे तथा इन वस्तुओं के घरेलू उपभोग को नियंत्रित किया जाना चाहिए ताकि निर्यात आधिक्य हो सके। निर्यात आधिक्य देश में वस्तु उत्पादन व उसके उपभोग के अन्तर के समान होता है। विश्व व्यापार संगठन व क्षेत्रीय व्यापार संगठन के साथ द्विपक्षीय व्यापार समझौते को प्राथमिकता में रखा जावे ताकि निर्यात वृद्धि हो सके।

स्वदेशी की अवधारणा
(Concept of Swadeshi)

स्वदेशी शब्द का सामान्यतः अर्थ आजकल केवल स्वदेशी उत्पाद से लिया जाता है अर्थात अपने देश में हुए उत्पादन का उपयोग स्वदेशी है। वैश्विकरण के इस युग में जब देशों के बीच दूरियाँ कम होती जा रही है व देशों के मध्य सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। स्वदेशी शब्द का इस अर्थ में प्रयोग इसके अर्थ को सीमित करता है। इसका कारण इस अवधारणा को ठीक प्रकार से न समझना है। स्वदेशी का तात्पर्य समझने के लिए हमें गाँधी जी की इन पंक्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। ये पंक्तियाँ स्वदेशी के सन्दर्भ में गांधी जी ने "मेरे सपनों का भारत" में व्यक्त की।

"स्वदेशी का भावना का अर्थ है हमारी वह भावना, जो हमें दूर को छोड़कर अपने समीपवर्ती प्रदेश का ही उपयोग और सेवा करना सिखाती है। उदाहरण के लिए इस परिभाषा के अनुसार धर्म के संबंध में यह कहा जायेगा कि मुझे अपने पूर्वजों

से प्राप्त धर्म का ही पालना करना चाहिए। अपने समीपवर्ती ध ार्मिक परिवेष्टन का उपयोग इसी तरह हो सकेगा। यदि मैं उसमें दोष पाऊँ तो मुझे उन दोषों को दूर करके उसकी सेवा करनी चाहिए। इसी तरह राजनीति के क्षेत्र में मुझे स्थानीय संस्थाओं का उपयोग करना चाहिए और उनके जाने माने दोषों को दूर करके उनकी सेवा करनी चाहिए। अर्थ के क्षेत्र में मुझे पड़ौसियों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिए और उन उद्योगों की कमियां दूर करके, उन्हें ज्यादा सम्पूर्ण व सक्षम बनाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। मुझे लगता है कि यदि स्वेदेशी को व्यवहार में उतारा जाए, तो मानवता के स्वर्णयुग की अवतारणा की जा सकती है।''

अर्थात स्वदेशी का तात्पर्य एक वृत्ति है जो जीवन के प्रत्येक पहलू में स्व के भाव के साथ उद्घटित होती है। स्वदेशी केवल एक स्थिर वृत्ति नहीं है अपितु देश व समाज की परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन के आह्वान को अपने में समाहित किये हुए है। यह पश्चिम के अन्धानुकरण के खिलाफ प्रतिक्रिया नहीं है।

अपितु इसके अन्धानुकरण से सावधान करती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है कि पश्चिम के ज्ञान विज्ञान के साथ ही पश्चिम देशों के रहन सहन, बोलचाल खानपान आदि रीतियां भी इस देश में आई। हमें यह निर्णय करना पड़ेगा कि यह प्रमुख अच्छा है या बुरा। यदि यह उपर्युक्त नही है तो इसके मोह का परित्याग करना श्रेयस्कर होगा।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान स्वदेशी न केवल विदेशी सत्ता के विरोध का प्रतीक बना अपितु देश की खराब आर्थिक दशा के समाधान के रूप में प्रस्फुटित हुआ। आर.सी. दत्त की पुस्तक **'Economic History of India'** के प्रकाशन के बाद स्वदेशी को देश की खराब आर्थिक दशा के समाधान के रूप में माना जाने लगा। स्वतंत्र विदेशी व्यापार के विरूद्ध विकसित देशों द्वारा अपनायी जाने वाली संरक्षणवादी नीतियों के पक्ष में देश में उत्पादन क्षमता विस्तार का तर्क निहित होता है। देश में निवेश व रोजगार के गुणक प्रभाव के लाभ देश को मिलते है। आयात इस गुणक प्रभाव को कमजोर करता है। अर्थात देश में उत्पादन व रोजगार के लाभ देश से बाहर चले जाते है। स्वदेशी में व्यक्ति, समाज व देशहित समाहित होता है। महर्षि अरविन्द ने कहा है कि स्वदेशी का अभिप्राय राष्ट्र की अस्मिता और राष्ट्र की इच्छा शक्ति की पहचान से है। राष्ट्र के लिए समाज की त्याग करने की तत्परता स्वदेशी से झलकती है।

गोपाल कृष्ण गोखले के अनुसार स्वदेशी विचार धारा मातृभूमि के लिए त्याग करने का सबक मिलता है। देश समृद्ध होता व देश में भाईचारे की भावना बढ़ती है। स्वदेशी का यह विचार भारत में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है।

पंचवर्षीय योजनाओं में भारत ने आत्मनिर्भरता को लक्ष्य बनाया लेकिन उसका तात्पर्य विदेशी सहायता से मुक्ति के रूप में था। इसके तहत देश पूर्व में जो खाद्यानों व मशीनरी का आयात करता था उसमें आज पूर्ण आत्मनिर्भर हो गया है।

इस वैश्विकरण के युग में तेजी से बढ़ते तीव्र वैश्विक प्रभाव जिनके लिए पश्चिम द्वारा प्रतिपादित वैश्विक संस्थाओं (यथा विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन) का भी बड़ा योगदान है। इससे देश की अर्थ व्यवस्था व समाज व्यवस्था को बचाने के लिए स्वदेशी को अंगीकार किया जाना आवश्यक है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- वर्तमान में किसी भी देश के लिए अन्य देश के साथ आयात निर्यात आवश्यक है। इससे विकास की गति तेज होती है। श्रम विभाजन, विशिष्टिकरण व बड़े बाजार के लाभ प्राप्त होते है।
- भारत का विश्व के साथ माल निर्यातों व आयातों का आकार निरन्तर बढ़ा है लेकिन आजादी के पश्चात् ज्यादातर समय माल आयातों का मूल्य माल निर्यातों से तेजी से बढ़ा है। इसके कारण देश का व्यापार शेष में घाटे का आकार में निरन्तर वृद्धि हुई है।
- देश के माल निर्यातों में विनिर्मित वस्तुओं का योगदान बढ़ा है तथा कृषि व खनिज वस्तुओं का योगदान कम हुआ है । यह परिवर्तन विकास प्रक्रिया के लक्षणों के अनुरूप है।
- भारत के माल आयातों में पैट्रोलियम उत्पादों का आयात सबसे तीव्र बढ़ा है। आयात उदारीकरण, सोने व चांदी के आयात में तीव्र वृद्धि व आयात वस्तुओं का मूल्य निर्यात वस्तुओं के मूल्य की अपेक्षा तेजी से बढ़ने का कारण व्यापार घाटा तेजी से बढ़ा है।
- भारत के आयातों में तेल निर्यातक देशों का बड़ा हिस्सा है तथा निर्यातों में विकासशील देशों का

हिस्सा बड़ा है।

- निर्यातों को बढ़ाने के लिए कई योजनाऐं व नीतियां लागू की गई उनमें नवीनतम नीति भारत की नई व्यापार नीति (2015–20) घोषित की गई है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वर्ष 2013–14 में भारत के विदेशी व्यापार के सन्दर्भ में कौन सा कथन सत्य है?
   (अ) माल निर्यातों का मूल्य आयातों के मूल्य से अधिक था।
   (ब) माल आयातों का मूल्य निर्यातों के मूल्य से अधिक था।
   (स) माल निर्यातों का मूल्य आयातों के मूल्य से समान था
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं । ( )
2. वर्ष 2013–14 में भारत के निर्यातों का कुल मूल्य था। (बिलियन अमेरीकी डालर में)
   (अ) 314 (ब) 450 (स) 135 (द) 270 ( )
3. निम्न में से वर्तमान में भारत में आयात की जाने वाली प्रमुख वस्तु क्या है?
   (अ) इलेक्ट्रोनिक वस्तुएं
   (ब) मोती व बहुमूल्य रत्न
   (स) पैट्रोनियम उत्पाद
   (द) गैर विद्युतीय मशीनरी ( )
4. वर्तमान में भारत में निर्यातों में किस वस्तु समूह का सबसे बड़ा हिस्सा है?
   (अ) कृषि उत्पाद
   (ब) खनिज उत्पाद
   (स) विनिर्मित वस्तुऐं
   (द) उपर्युक्त में कोई नहीं ( )
5. निम्न में से कौन सा वर्तमान में प्रमुख आयात भागीदार देश समूह है?
   (अ) ओ.ई.सी.डी. देश
   (ब) तेल निर्यातक देशों का संगठन
   (स) पूर्वी यूरोप देश
   (द) विकासशील देश ( )
6. वर्तमान में निम्न में से किस देश समूह को भारत सर्वाधिक निर्यात करता है?
   (अ) ओ.ई.सी.डी. देश
   (ब) पूर्वी यूरोप देश
   (स) विकासशील देश
   (द) तेल निर्यातक देशों का संगठन ( )
7. विश्व व्यापार संगठन के अनुसार वर्ष 2013–14 में विश्व निर्यात में भारत का हिस्सा था?
   (अ) 0.8 प्रतिशत (ब) 1 प्रतिशत
   (स) 1.7 प्रतिशत (द) 2.5 प्रतिशत ( )
8. निम्न में से कौन सी भारत का निर्यात प्रोत्साहन योजना थी?
   (अ) नकद मुआवजा सहायता
   (ब) शुलक वापसी की व्यवस्था
   (स) आयात पुनः पूर्ति योजना
   (द) उपर्युक्त सभी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वर्ष 2013–14 में भारत में माल आयात निर्यात व व्यापार अधिशेष को लिखिए?
2. वर्तमान में निर्यात की जाने वाली (भारत द्वारा) पांच शीर्ष मूल्यानुसार वस्तुओं के नाम लिखिए।
3. भारत द्वारा वर्तमान में आयात की जाने वाली पांच शीर्ष मूल्य वाली वस्तुओं के नाम लिखिए।
4. भारत के प्रमुख आयात भागीदार कोई दो देश समूह का नाम लिखिए।
5. नई व्यापार नीति (2015–20) की दो प्रमुख लक्ष्य लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नकद मुआवजा सहायता (Cash Compensatory Scheme) का अर्थ बताईये।
2. भारत से वस्तु निर्यात योजना (MEIS) से क्या तात्पर्य है।
3. निर्यात प्रोत्साहन पूंजीगत वस्तु योजना क्या है?
4. निर्यात प्रोत्साहन की प्रमुख स्कीमों का नाम लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत के माल निर्यात आयात की संरचना में परिवर्तन को लिखिए।
2. भारत के माल निर्यात आयात की दिशा में लिखिए।
3. भारत में वर्तमान में विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों पर लेख लिखिए।

4. भारत की नवीन व्यापार नीति (2015–20) के प्रमुख प्रावधानों का ब्यौरा दीजिए।
5. स्वदेशी की अवधारणा से क्या तात्पर्य है? लेख लिखिए

उत्तरमाला

(1) ब (2) अ (3) स (4) स
(5) ब (6) स (7) स (8) द

सन्दर्भ ग्रंथ

1. आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय भारत सरकार 214–15
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्रा व पुरी, हिमालय पब्लिकेशन
3. The Indian Economy, Ishwar Chand Dhingra, Sultan Chand and Sons, New Delhi
4. भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मीनारायण नाथूरामका

परिशिष्ट–1

भारत के वस्तु व्यापार क्षेत्र में कुछ मुख्य मुद्दे

भारत के निर्यात क्षेत्र को विश्व के हिस्से के मामले में अभी आगे बढ़ाना है, तथापि अलग–अलग समय में इसका उच्च विकास हुआ है। इस क्षेत्र के कुछ मुख्य मुद्दे निम्नलिखित हैं।

उत्पाद विविधता– जबकि भारतीय निर्यात बास्केट में बाजार विविधता और संरचना परिवर्तन रहे हैं लेकिन मांग आधारित उत्पाद विविधता नहीं हुई है। वर्ष 2013 में 4 अंकीय एच.एच. स्तर पर विश्व के 100 मुख्य आयातों में भारत की केवल 5 मदें थी तथा इनका हिस्सा 5 प्रतिशत और इससे अधिक था। इसके बावजूद हीरा (21.0 प्रतिशत) और आभूषण की मदें (11. 2 प्रतिशत) जिनको दोहरे अंक का हिस्सा था, को छोड़कर अन्य तीन मदों का हिस्सा केवल 6–7 प्रतिशत था। विश्व की आयात की 100 मुख्य मदों में तीन ई, आयात इलेक्ट्रोनिक, इलेक्ट्रिकल और इजिनियरिंग मदें और कुल वस्त्र की मदें शामिल थी। यद्दपि हाल की वर्षों में इजिनियरिंग वस्तुओं की संख्या में बढ़ोतरी एक सकारात्मक चिन्ह है, भारत अन्य प्रतियोगी देशों से बहुत पीछे है। इलेक्ट्रोनिक हार्डवेयर क्षेत्र को विशेष ध यान दिये जाने की आवश्यकता है। जो कि भारत द्वारा सूचना प्रोद्योगिकी करार पर हस्ताक्षर करते समय, जो वास्तविक रूप में उस समय डगमगा गया था जो भारत का सेमीकन्डेक्टर क्षेत्र विकास की आरंभिक अवस्था में था, जबकि नये औद्योगिक देशों और विकसित देशों ने पहले ही यह कर लिया था। अभी तक हमारा केन्द्र बिन्दु उस निर्यात पर था, जो हम कर सकते थे। अब हमें उन मदों की ओर अंतरित होना है जिनके लिए विश्व की मांग है तथा हमारे पास उसकी आधारभूत क्षमता है। मांग आधारित निर्यात बास्केट विविधता दृष्टिकोट तथा तीन ई के प्रति अंतरण से भारत को अधिक लाभांश प्राप्त होगा।

निर्यात आधारभूत संरचना– निर्यात आधारभूत संरचना, विशेषकर बन्दरगाह से संबंधित आधारभूत संरचना जो व्यापार को प्रभावित करती है पर तत्काल ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। हालांकि हमारे सर्वोत्तम बन्दरगाहों में स्टेट ऑफ आर्ट प्रोद्योगिकी नहीं है जैसा कि सिंगापुर, रोटरडम, शंघाई में है। बन्दरगाह आधारभूत सरंचना मुद्दों में शामिल है सड़क की खराब हालत और बन्दरगाहों से इसका जुड़ा होना, जाम, वैसल बर्थिंग में देरी, कारगो के रख रखाव की तकनीक और उपस्कर की दयनीय स्थिति, कन्टेनिकृत कारबो की पहुंच की कमी तथा बार–बार बड़ी ई.डी.आई. सर्वर का डाउन होना अथवा रख रखाव जिससे कई दौर से गुजरना पड़ता है। लोड समय में बढ़ोतरी होती है, विनिमय लागत बढ़ती है तथा बाजार की प्रतियोगिता से परे होना पड़ता है। निर्यात आधारभूत सरंचना युद्ध स्तर पर तैयार की जावे जैसे कि भारत के हवाई अड्डों ओर मैट्रो रेल में तेजी से परिवर्तनलाये गये हैं। उसी प्रकार समुद्री बन्दरगाहों को प्राथमिकता दी जाये।

उपयोगी क्षेत्रीय व्यापार ब्लाक पर ध्यान देना– भारत के कुछ एफ.टी.ए./आर.टी.ए./सी.ई.ए. के कारण व्युतक्रम शुल्क सरंचना जैसी स्थिति पैदा हो गई है। जिसमें फिनिश्ड वस्तुओं पर आयात शुल्क शून्य है अथवा अन्य देशों में आयात की जाने वाली कच्ची सामग्री पर लगने वाले शुल्क से कम है। इसके अलावा घरेलु क्षेत्र जो कि जीविका से जुड़ा वह भी उपर्युक्त से प्रभावित हुआ है। भारत को क्षेत्रीय और द्विपक्षीय करारों की तरफ झुकाव के कारण अर्थपूर्ण और परिणामोन्मुखी एफ.टी.ए. /आर.टी.ए./सी.ई.ए. होने चाहिए। अतः ऐसी मदें जिनके लिए शुल्क में रियायत दी गई है तथा घरेलु उत्पादन पर पड़ने वाले उनके प्रभाव, के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करके मौजूदा एफ.टी.ए./आर.टी.ए./सी.ई.ए. की वास्तविक जांच पड़ताल किये जाने की आवश्यकता है। भारत की यू.एस., ई. यू. के बीच टी.ए.एफ.टी.ए. जैसे नये खतरों, जो विश्व का सबसे बड़ा मुक्त व्यापार क्षेत्र, निवेश का संरक्षण और अनावश्यक विनयामक बाधाओं को हटाता है, का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

इन्वरटिड शुल्क संरचना– इन्वरटिड शुल्क संरचना भारतीय निर्यात वस्तुओं को, घरेलु बाजार में फिनिशड उत्पाद आयातों के मुकाबले प्रतियोगी बना रही है। क्योंकि फिनिशड वस्तुओं पर कच्चे सामग्री अथवा मध्यस्त उत्पादों की तुलना में कम दरों

पर कर लगाया जाता है। इससे घरेलु मूल्य एडिशन हतोत्साहित होता है। यह इन्वरसन न केवल आधारभूत सीमा

शुल्क के कारण है, अपितु अन्य अतिरिक्त करों के लिए भी है। जापान ओर दक्षिण कोरिया जेसे एशियाई देशों के साथ क्षेत्रीय–द्विपक्षीय एफ.टी.ए. से इन साझेदार देशों के साथ शुल्क अथवा कम शुल्क वाली अन्तिम वस्तुओं के संबंध एक नई इन्वरटेड शुल्क जैसी स्थिति पैदा हो गई है। जबकि अन्य देशों से इन मदों की सामग्री के लिए उच्च शुल्क है।

निर्यात संवर्धन योजनाऐं– मल्टीपल और ओवरलेपिंग निर्यात संवर्धन योजनाऐं हैं जिसके केन्द्र बिन्दु कई बाजार या कई उत्पाद हैं तथा विदेशी व्यापार नीति में प्रत्येक वर्ष कई बाजार शामिल हो रहे हैं। एक बात जो व्यापार नीति उपायों की लघु चुनिन्दा सूची से भी स्पष्ट दिखाई देती है व है योजनाओं और रियायतों की बाहुल्यता, जो आवधिक रूप से बढ़ती जा रही है। निर्यात संवर्धन योजनाओं को न्यूनतम करने के लिए क्रम में युक्तियुक्त बनाने की आवश्यकता है। जिससे विनिमय लागत और व्यापार मुकदमें बाजी कम हो जायेगी। रियायतों की काफी अधिक दरें भी नहीं होनी चाहिए। ड्यूटी प्रतिअदायगी योजना के लिए एक ही तरह की मदों के संबंध में अलग–अलग दरों के स्थान पर सीमित दरें होनी चाहिए। इससे चीजें सरल हो जाएंगी तथा विवेकाधीन निर्णयों से बचा जा सकेगा। जहां कहीं टैरिफ कम हैं या जिन्हें कम किया जा सकता है, वहां निर्यात प्रोत्साहन वापस ले लिए जाएं क्योंकि शुल्क में रियायतों के कारण लेन देन लागत, प्रसुविधाओं से अधिक हो सकती है।

विशेष आर्थिक क्षेत्र– भारतीय विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के लिए स्पष्ट संकेत दिए जाने की आवश्यकता है क्योंकि हाल ही के वर्षों में नया निवेश मद हो गया है तथा ग्रीन फील्ड सेज अभी पूरी तरह से शुरू नहीं हुए हैं। जबकि नए उत्पादन क्षेत्रों की योजना बनाई जा रही है, सेज में बहुत सा निवेश पहले ही किया जा चुका है जिसकी पूरी क्षमता का दोहन अभी किया जाना है। ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां सेज की हालत घरेलु टैरिफ क्षेत्र एककों से भी खराब है, जैसाकि एफ.टी.ए. रियायतों को लागू नहीं किए जाने के मामले में जब सेज, डी.टी.ए. में बिक्री करते हैं।

व्यापार को सुदृढ़ बनाना– आधारभूत अड़चनों के अतिरिक्त, प्रक्रियात्मक और दस्तावेजी कारकों के कारण विलम्ब और उच्च लागत को कम करते हुए व्यापार को सुविधा जनक बनाना एक और बड़ी चुनौती है। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम के प्रकाशन ''डूईंग बिजनेस 2014'' के अनुसार व्यापार के मामले में भारत का 134वां स्थान है तबकि सिंगापुर का प्रथम और चीन 96वें स्थान पर है। सीमापार व्यापार में भारत का 132, सिंगापुर का प्रथम और चीन का 7वां स्थान है। भारत को सिंगापुर के तीन और चीन के 8 दस्तावेजों के मुकाबले भारत को 9 निर्यात दस्तावेजों की आवश्यकता है। निर्यात करने का समय भारत में 16 दिन तथा सिंगापुर में 6 दिन है। भारत के 20 तथा सिंगापुर के लिए 4 आयात दस्तावेजों की आवश्यकता होती है। प्रतिकन्टेनर लागत, भारत में 1170 यू. एस. डालर, सिंगापुर में 460 यू.एस. डालर, चीन में 620 यू.एस. डालर और भारत को प्रति कन्टेनर आयात लागत 1250 अमरीकी डालर, सिंगापुर में 440 अमरीकी डालर और चीन में 615 यू. एस. अमरीकी डालर है। इसके अलावा अन्तर–मंत्रालयों विलंब भी होता है। संबंधित मंत्रालयों का एकीकरण करने की मौजूदा पहल सही दिशा में एक कदम है, यद्यपि इसमें बहुत कुछ और किया जाना है। नीति घोषणा और अधिसूचना का जारी किया जाना, साथ–साथ होना चाहिए।

घरेलू और विदेश क्षेत्र नीति को आयात से जोड़ना– जबकि एक स्थिर कृषि निर्यात नीति की आवश्यकता है, कोई भी घरेलू कमी अथवा अधिकता, निर्यात को प्रभावित करती है। इसी प्रकार बाह्य कमी/अधिकता, घरेलु क्षेत्र को प्रभावित करती है। अतः विशेषतः कृषि के लिए घरेलु और बाह्य–क्षेत्र की नीतियों को कारगर तरीके से, जोड़ने की आवश्यकता है। मुख्य बेमेल को समाप्त करने के लिए अग्रिम आर्थिक और बाजार आसूचना भी आवश्यक है। यदि इन मुद्दों का निवारण किया जाता है तो इससे भारत के निर्यात में अत्यधिक लाभ होगा।

स्रोत : डा. एच.एम.सी. प्रसाद, डा. आर. सतीश और सलाम श्याम सुन्दर, भारतीय वस्तु निर्यात पर आर्थिक कार्य विभाग, वित्त मंत्रालय वर्किंग दस्तावेज पर आधारित कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे और नीतिगत सुझाव, आर्थिक समीक्षा भारत सरकार, वित्त मंत्रालय 2013–14

अध्याय–4.1

निर्धनता
(Poverty)

अर्थ

निर्धनता वह स्थिति है जब व्यक्ति को पर्याप्त भोजन, आवास, उपभोग की आवश्यक वस्तुओं, शिक्षा तथा बेहतर स्वास्थ्य के अभाव की स्थिति में रहना होता है। आय की कमी के कारण व्यक्ति अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है। उसे कार्य करने के लिए आवश्यक उर्जा प्राप्त करने के लिए भोजन नहीं मिलता, रहने के लिए आवास नहीं होता, शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है तथा स्वास्थ्य की दशायें बेहतर नहीं होती। प्रत्येक देश में आबादी का एक अनुपात इस स्थिति में पाया जाता है। लेकिन विकासशील देशों में यह अनुपात बड़ा पाया जाता है। आबादी के इस अनुपात की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी करना देश के विकास प्रयास का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है।

निर्धनता का मापन
(Measurement of Poverty)

गरीबी की स्थिति के अनुमान के लिए आय का एक निश्चित स्तर निर्धारित किया जाता है व यह माना जाता है कि इस आय स्तर में व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताएं पूरी कर सकता है। इस आय स्तर को गरीबी रेखा (Poverty Line) कहा जाता है। इस आय/व्यय स्तर से कम आय वाले व्यक्ति को गरीब के रूप में परिभाषित किया जाता है। मुद्रस्फीती के कारण समय–समय पर इस आय स्तर को संशोधित कियाजाता है व उसी के अनुरूप गरीबी का अनुमान किया जाता है। भारत में गरीबी को ''कैलोरी उपभोग'' के साथ जोड़ा गया है। इस मानक से कम कैलोरी उपभोग को गरीब माना जाता है। योजना आयोग ने ग्रामीण क्षेत्र में 2400 कैलोरी व शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी उपभोग से कम उपभोग प्राप्त करने वालों को गरीब माना है। ग्रामीण क्षेत्र में अधिक शारीरिक श्रम के कारण अधिक कैलोरी उपभोग को आवश्यक माना गया है व इसी के अनुरूप कैलोरी स्तर का निर्धारण किया गया है। इस न्यूनतम कैलोरी उपभोग के लिए 1973–74 में ग्रामीण क्षेत्र में 49.63 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमास तथा शहरी क्षेत्र में 56.64 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमास को आवश्यक माना गया। 1977–78 में ग्रामीण क्षेत्र के लिए 56.84 रुपये तथा शहरी क्षेत्र के लिए 72. 50 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमास को आवश्यक माना गया। कीमतों में वृद्धि के मद्देनजर इन व्यय अनुमानों को संशोधित किया गया। वर्ष 2004–05 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्र में 359.9 रुपये तथा शहरी क्षेत्र में 523.2 रुपये को इस आवश्यक उपभोग के लिए जरूरी माना गया। वर्ष 2011–12 के लिए योजना आयोग ने ग्रामीण क्षेत्र में 27.20 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 33.33 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के स्तर पर निर्धनता रेखा को निर्धारित किया।

अर्थात ग्रामीण क्षेत्र के लिए 816 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह तथा शहरी क्षेत्र के लिए 1000 रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह निर्धनता रेखा के रूप में परिभाषित किया गया। इस उपभोग स्तर से कम को निर्धनता रेखा से नीचे (Below the poverty line) तथा इससे ऊपर को निर्धनता रेखा से ऊपर (Above the poverty line) माना गया।

निर्धन लोगों की संख्या का कुल जनसंख्या के साथ अनुपात को निर्धनता अनुपात (Head count ratio) कहा जाता है। इसको 100 से गुणा करने पर निर्धनता प्रतिशत ज्ञात होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि जनसंख्या का कितना प्रतिशत निर्धन है। निर्धनता मापन को एक निश्चित उपभोग व्यय के रूप में मापन की अपनी सीमायें है। इसके अनुसार निर्धनता रेखा के नीचे के सभी निर्धनों को समान माना जाता है जबकि ऐसा नहीं है इसके लिए निर्धनों की वास्तविक स्थिति का अनुमान आवश्यक है। उदाहरण के लिए वर्ष 2011–12 में ग्रामीण क्षेत्र में 816 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह से कम व्यय करने वाले को निर्धन माना गया। इसके अनुसार 110 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह व्यय करने वाला भी निर्धन है तथा 815 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह व्यय करने वाला भी निर्धन है जबकि दोनों की दशा में बहुत अन्तर है इसलिए निर्धनता के मापन में

अमर्त्य सेन के अनुसार दो चरण अपनाये जाने चाहिये। प्रथम चरण में यह ज्ञात करना चाहिए कि अलग–अलग लोगों को कितना मिला और इस आधार पर प्रति व्यक्ति आय के किसी मानदण्ड के आधार पर निर्धनों को ज्ञात किया जाना चाहिए। दूसरे चरण में इस बात का अनुमान लगाना चाहिए कि स्थिति कितनी खराब है अर्थात यह ज्ञात करना चाहिए कि गरीब कितने गरीब हैं। ओजलर, दत्त व रैवैलियन द्वारा इसके मापन के लिए 'गरीब की अन्तराल अनुपात (Poverty Gap Ratio)' तथा 'वर्गीकृत गरीब अन्तराल अनुपात (Squared (Poverty Gap Ratio) का प्रयोग किया गया है। ये माप गरीबी के अनुमान के साथ इसकी तीव्रता का भी माप करते हैं। मानव विकास रिपोर्ट (Human Development Report) में गरीबी को बहुआयामी माना गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार गरीबी के मापन के लिए तीन अभाव महत्वपूर्ण हैं। इन अभावों के आधार पर गरीबी का मापन किया जाना चाहिए। इन अभावों में जीवन में लम्बी अवधि का न होना, शिक्षा का अभाव तथा उच्च जीवन स्तर का अभाव शामिल है। इसी के आधार पर मानव गरीबी सूचकांक (Human Poverty Index) का निर्माण किया गया है। विश्व बैंक के अनुसार प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 1.25 अमेरीकी डालर से कम उपभोग व्यय को निर्धन माना गया है। निर्धनता के मापन का एक अन्य माप भी प्रचलित है। निर्धनता का क्षमता माप (Capability Measmenment of Poverty) इस माप के अनुसार गरीबी मापन के लिए तीन सूचकों का प्रयोग किया जाता है इनमें पांच वर्ष से कम उम्र के कम वजन (Low weigth) वाले बच्चों का अनुपात, अकुशल प्रसव अनुपात तथा महिला निरक्षरता अनुपात शामिल है।

निर्धनता के संबंध में योजना आयोग के विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट

निर्धनता की स्थिति के संबंध में मतभेदों के कारण प्रो. सुरेश तेन्दुलकर की अध्यक्षता में योजना आयोग ने विशेषज्ञ समिति का गठन किया। समिति ने निर्धनता रेखा के अनुमान के संबंध में निम्न सिफारिशें की :

1. निर्धनता के मापन के लिए भारत में राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन के पारिवारिक निजी उपभोग व्यय के समकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
2. समिति ने कहा कि निर्धनता रेखा का अनुमान के लिए 'कैलोरी उपभोग' के स्थान पर वास्तविक उपभोग प्रारूप का प्रयोग किया जाना चाहिए।
3. उपभोग व्यय की जानकारी के लिए अलग–अलग याददास्त अवधि के प्रयोग के अनुसार अलग–अलग अनुमान आते हैं। समिति ने उपभोग व्यय की जानकारी के लिए एक समान याददास्त (Uniform Recall period) अवधि के स्थान पर मिश्रित याददास्त अवधि (Mixed Recall Period) के प्रयोग की सिफारिश की व उसके अनुसार गरीबी के अनुमान भी प्रस्तुत किए।
4. समिति ने न्यूनतम उपभोग में खाद्य पदार्थों के साथ–साथ अखाद्य पदार्थों (यथा वस्त्र, जूते, टिकाऊ वस्तुओं, शिक्षा व स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया।
5. समिति ने प्रयास किया कि सभी राज्यों की ग्रामीण व शहरी जनसंख्या को अखिल भारतीय शहरी गरीबी रेखा में प्रस्तावित वस्तु समूह के अनुसार उपभोग प्राप्त हो।

निर्धनता के प्रकार
(Types of Poverty)

सापेक्ष व निरपेक्ष गरीबी के अनुसार गरीबी को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है।

(1) **सापेक्ष गरीबी (Relative Poverty) :** इस संकल्पना के अनुसार आय वितरण को गरीबी मापन के लिए प्रयोग किया जाता है। देश की प्रतिव्यक्ति औसत आय से कम आय वर्ग को निर्धन माना जाता है। इसके मापन में देश में आय विरण की अवस्था व उसके असमान वितरण पर विचार किया जाता है। इस संकल्पना से यह मापन होता है कि देश में आय वितरण की असमानता कितनी है। लारेंज वक्र व गिनी अनुपात के द्वारा इसको मापा जाता है। विकसित देशों में गरीबी मापन के लिए सापेक्ष गरीबी अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। इस संकल्पना में मूलभूत आवश्यकता पूरी नहीं होने वाले व्यक्तियों के आय उपभोग व संसाधनों को तुलना देश के शेष लोगों की आय उपभोग व संसाधनों से की जाती है।

(2) **निरपेक्ष गरीबी (Aboslute Poverty) :** इस विधि के अनुसार निर्धनता के लिए एक न्यूनतम उपभोग स्तर निर्धारित किया जाता है। उस उपभोग स्तर के अनुसार निर्धनों की संख्या का अनुमान किया जाता है। देशों की विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप लोगों की वस्तुओं व सेवाओं संबंधी आवश्यकता अलग–अलग होती है व इसी के अनुसार न्यूनतम उपभोग को अलग–अलग तरीके से परिभाषित किया जाता है व उसी के अनुरूप निर्धनता रेखा का निर्धारण व देश में निर्धनता अनुपात

की गणना की जाती है। भारत में 'न्यूनतम कैलोरी उपभोग' से जुड़ी निर्धनता की परिभाषा गरीबी का निरपेक्ष मापन है।

निर्धनता के अनुमान
(Estimate of Poverty)

भारत में निर्धनता के आरम्भिक अनुमान बी.एस.मिन्हास, वी.एम.दाण्डेकर, एन.के.रथ, पी.के.वर्धन व एम.एस.आहलूवालिया ने प्रस्तुत किए। इन अर्थशास्त्रियों ने अपने–अपने प्रमाप बनाये तथा उनके अनुसार निर्धरता के अनुमान दिए। बी.एस.मिन्हास के अनुसार 1967–68 में देश में 37.1 प्रतिशत निर्धनता थी। पी. के.बर्धन के अनुसार देश में 1967–68 में 54.0 प्रतिशत आबादी निर्धन थी। दाण्डेकर व रथ के अनुसार यह अनुपात 40.0 प्रतिशत व आहलूवालिया के अनुसार निर्धनता अनुपात 56.5 प्रतिशत था। इन सभी अर्थशास्त्रियों ने निर्धनता की अलग–अलग परिभाषा ली इसके कारण इनके अनुमान में अन्तर था। मिन्हास के अनुसार 1956–57 से 1967–68 के बीच देश में निर्धनता कम हुई दूसरी ओर ओझा व बर्धन के अनुसार निर्धनता में वृद्धि हुई। दाण्डेकर व रथ के अनुमानों के अनुसार 1960–61 से 1967–68 के मध्य निर्धनता में कमी नहीं हुई। ये सभी अनुमान यह तथ्य प्रस्तुत करते हैं कि साठ के दशक में देश में निर्धनता अनुपात काफी ऊँचा था। इन्होंने यह भी तथ्य प्रस्तुत किया कि निर्धनों की अधिक संख्या ग्रामीण क्षेत्र में है व सीमान्त व छोटे किसानों में तथा खेतीहर मजदूरों में प्रमुख रूप से निर्धनता व्याप्त थी। ग्रामीण गरीबी निम्न उत्पादका (low productivity) के रूप में है तथा शहरी गरीबी ग्रामीण गरीबी का उत्प्रवाह (outflow) है जो शहरी क्षेत्र में रहने वाले लोगों के कमजोर संसाधन आधार (Resousce Base) के कारण है।

इसके पश्चात राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन (National sample survey organisation) द्वारा उपभोग व्यय पर संकलित संमकों के आधार पर निर्धनता के अनुमान प्रस्तुत किए। योजना आयोग के अनुसार 1973–74 में ग्रामीण निर्धनता का अनुपात 56.4 प्रतिशत था व शहरी निर्धनता का अनुपात 49.0 प्रतिशत था। 1983–84 में निर्धनता का यह अनुपात कम होकर ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में क्रमशः 45.7 प्रतिशत व 40.8 प्रतिशत तक हो गया। अर्थात इस अवधि में निर्धनता अनुपात में गरीब दस प्रतिशत की कमी हुई। इसी अनुमान के अनुसार 1993–94 में ग्रामीण निर्धनता 37.3 प्रतिशत थी व शहरी क्षेत्र में निर्धनता 32.4 प्रतिशत थी। योजना आयोग के अनुसार 1983–84 से 1993–94 के मध्य निर्धनता में तीव्र कमी देखी गई। तेन्दुलकर समिति की नई पद्धति से पुनः निर्धनता के अनुमान वर्ष 1993–94 के लिए प्रस्तुत किए। तेन्दुलकर विधि के अनुसार 1993–94 में ग्रामीण क्षेत्र में 50.1 प्रतिशत निर्धनता थी व शहरी क्षेत्र में 31.8 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे थी। 1993–94 के लिए निर्धनता अनुपात के लिए ग्रामीण निर्धनता में योजना आयोग की पूर्व पद्धति (37.3 प्रतिशत) व तेन्दुलकर पद्धति (50.1 प्रतिशत) के अनुमानों में बहुत अन्तर था व तेन्दुलकर अनुमानों के अनुसार ग्रामीण निर्धनता अधिक थी।

योजना आयोग द्वारा 1989 में डी.टी.लकड़ावाना की अध्यक्षता में कार्यदल का गठन किया। इस दल के अनुसार देश में 1973–74 में 54.9 प्रतिशत थी जो 1993–94 में 36 प्रतिशत हो गई व 2004–05 में 27 प्रतिशत हो गई। इस प्रकार 1973–74 से 1993–94 तक के गरीबी के अनेक अनुमान उपलब्ध है। इन अलग–अलग अनुमानों में गरीबी रेखा को अलग–अलग मान कर गरीबी को अनुमानित किया गया है।

तालिका– 1 : भारत में निर्धनता के अनुसार (प्रतिशत में)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी	संयुक्त
1993–94	50.1	31.8	45.3
2004–05	41.8	25.7	37.2
2009–10	33.8	20.9	29.8
2011–12	25.7	13.7	21.9

स्रोत : Planning Commission, Govt. of India

तालिका–1 में तेन्दुलकर पद्धति से राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन के परिवार व्यय समकों के आधार पर गरीबी अनुमानों को प्रस्तुत किया गया है। 1993–94 में ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनता 50.1 प्रतिशत थी जो वर्ष 2011–12 में 25.7 प्रतिशत तक कम हो गई। शहरी निर्धनता 1993–94 में 31.8 प्रतिशत से कम होकर 13.7 प्रतिशत रह गई। इसी प्रकार संयुक्त निर्धनता अनुपात जो 1993–94 में 45.3 प्रतिशत था गिरकर वर्ष 2011–12 में 21.9 प्रतिशत हो गयी। इस अवधि के दौरान ग्रामीण निर्धनता में तीव्र कमी देखी गई। तेन्दुलकर अनुमानों में गैर खाद्यान वस्तुओं पर व्यय के लिए एक वर्ष की अवधि के रिकॉल पीरियड का प्रयोग किया गया है। अर्थात तेन्दुलकर पद्धति में व्यय के लिए मिश्रित रिकाल अवधि (Mixed

Recall Period) पद्धति का प्रयोग किया गया है।

तालिका–2 : निर्धनों की संख्या व गरीबी रेखा

वर्ष	गरीबी रेखा (रुपये में)		गरीबों की संख्या (मिलियन में)		
	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी	योग
2004–05	446.8	578.8	326.3	80.8	407.1
2001–12	816.0	1000.0	216.5	52.8	269.3

स्रोत : नीति आयोग, तेन्दुलकर पद्धति से अनुमान

तेन्दुलकर पद्धति के अनुसार वर्ष 2004–05 में ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह 446.8 रुपये व शहरी क्षेत्र में 578.8 रुपये गरीबी रेखा के रूप में परिभाषित की गई तथा 2011–12 में ग्रामीण क्षेत्र के लिए 816.0 रुपये तथा शहरी क्षेत्र के लिए 1000. रुपये प्रतिव्यक्ति प्रतिमास व्यय को गरीबी रेखा के रूप में माना गया। वर्ष 2011–12 के लिए प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन व्यय के रूप में निर्धनता रेखा ग्रामीण क्षेत्र के लिए 27. 20 रुपये व शहरी क्षेत्र के लिए 33.33 रुपये मानी गई।

इन अनुमानों के अनुसार वर्ष 2004–05 में ग्रामीण क्षेत्र में 326.3 मिलियन लोग निर्धन थे तथा शहरी क्षेत्र में 80.8 मिलियन लोग निर्धन थे। देश में कुल 407.1 मिलियन व्यक्ति वर्ष 2004–05 में निर्धन थे। इसी प्रकार वर्ष 2011–12 में देश में ग्रामीण क्षेत्र में 216.5 मिलियन व शहरी क्षेत्र में 52.8 मिलियन तथा देश में कुल 269.3 मिलियन लोग निर्धन थे।

वर्ष 1993–94 से 2004–05 के मध्य गरीबी अनुपात में प्रतिवर्ष औसत कमी 0.74 प्रतिशत बिन्दु की थी जो 2004–05 से 2011–12 के मध्य 2.18 प्रतिशत बिन्दु हो गई अर्थात 2004–05 से 2011–12 के मध्य गरीबी अनुपात में प्रतिवर्ष पूर्व अवधि की तुलना में गिरावट तीन गुना अधिक थी।

विश्व बैंक द्वारा 10 निर्धनतम देशों के राष्ट्रीय गरीबी रेखा के औसत के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा का निर्धारण किया जाता है। 2005 के मूल्यों के आधार पर विश्व बैंक ने 1.25 डालर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन की आय को गरीबी रेखा के रूप में स्वीकार किया। असके अनुसार भारत में गरीबी के नीच जनसंख्या 1981 में 60 प्रतिशत से घटकर 2005 में 42 प्रतिशत रह गई। निरपेक्ष दृष्टि से गरीबों की संख्या इसके अनुसार 42.1 करोड़ से बढ़कर 45.6 करोड़ हो जाती है। 2005 से 2011 के बीच विश्व बैंक के अनुसार गरीबी का अनुपात 42.1 प्रतिशत से घटकर 29 प्रतिशत हो गया।

2004–05 से 2011–12 के मध्य ग्रामीण गरीबी में तीव्र कमी के लिए ग्राम विकास रणनीति को उत्तरदाई माना जाता है। मनरेगा, भारत निर्माण, दोपहर भोजन योजना, परिवर्तित जन वितरण प्रणाली व राष्ट्रीय कौशल विकास के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है व शहरी गरीबी में कम गिरावट को औद्योगिक मंदी व विश्व मंदी के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

उत्तर पूर्वी राज्यों (असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम व नागालैण्ड) में 2004–05 से 2011–12 के मध्य निर्धनता अनुपात घटने की बजाय बढ़ा है। यह तथ्य असंतुलित विकास की ओर इंगित करता है। योजना आयोग की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण गरीबी अनुपात में कमी आयी है तथा इसी अवधि के दौरान शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में विषमता बढ़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में विषमता 0.27 प्रतिशत से बढ़कर 0.28 प्रतिशत हो गई। सर्वाधिक 10 प्रतिशत आय वाले लोगों की आय की तुलना सबसे कम आय वाले 10 प्रतिशत लोगों की आय से की जावे तो दोनों आय वर्गों के बीच असमानता बढ़ी है।

भारत में निर्धनता का क्षेत्रीय वितरण (Regional Distribution of Poverty) : देश में विभिन्न राज्यों में निर्धनता अनुपात भिन्न–भिन्न है तथा निर्धनता में कमी में भी अन्तर देखा जा सकता है। तेन्दुलकर अनुमानों के अनुसार वर्ष 2011–12 में प्रमुख राज्यों में निर्धनता निम्न प्रकार थी।

तालिका–3 भारत के प्रमुख राज्यों में गरीबी की दरें (प्रतिशत में)

राज्य	ग्रामीण	शहरी	संयुक्त
बिहार	34.06	31.23	33.74
छत्तीसगढ़	44.61	24.75	39.93
झारखण्ड	40.84	24.83	36.96
मध्यप्रदेश	35.74	21.00	31.65
उत्तर प्रदेश	30.40	26.06	29.43
उड़ीसा	35.69	17.29	32.59

स्रोत : योजना आयोग, भारत सरकार

राज्यों में (तालिका–3 के अनुसार) सर्वाधिक निर्धनता छत्तीसगढ में है। 2011–12 में छत्तीसगढ़ में ग्रामीण क्षेत्र में 44. 61 प्रतिशत, शहरी क्षेत्र में 24.75 प्रतिशत व संयुक्त रूप में 39. 93 प्रतिशत आबदी निर्धन थी। इन राज्यों में अधिक से कम निर्धनता का क्रम छत्तीसगढ़, झारखण्ड (36.96 प्रतिशत), बिहार

(33.74 प्रतिशत), उड़ीस (32.59 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (31.65 प्रतिशत) तथा उत्तर प्रदेश (29.43 प्रतिशत) है। ग्रामीण गरीबी अनुपात सर्वाधिक छत्तीसगढ़ में है तथा शहरी निर्धनता सर्वाधिक उत्तर प्रदेश में है।

योजना आयोग के अनुसार मिजोरम में गरीबी 1993–94 में 11.8 प्रतिशत थी जो 2011–12 में बढ़कर 20.4 प्रतिशत हो गई। मणिपुर में 2004–05 में निर्धनता अनुपात 37.9 प्रतिशत था जो 2009–10 में 47.1 प्रतिशत व 2011–12 में 36.89 प्रतिशत था। अरूणाचल प्रदेश में 2004–05 में निर्धनता अनुपात 31.4 प्रतिशत था जो 2011–12 में 34.67 प्रतिशत हो गया। अर्थात उत्तर पूर्वी राज्यों में 2004–05 से 2011–12 के मध्य निर्धनता अनुपात बढ़ा है जो असमान विकास को इंगित करता है। 2004–05 में उड़ीसा में निर्धनता 57.2 प्रतिशत थी जो 2011–12 में कम होकर 32.6 प्रतिशत हो गई। बिहार में 2004–05 में 54.5 प्रतिशत निर्धनता अनुपात था जो 2011–12 में कम होकर 33.7 प्रतिशत हो गया। 2004–05 से 2011–12 के मध्य देश में निर्धनता प्रतिशत में 15.3 प्रतिशत की कमी हुई। अखिल भारतीय गरीबी अनुपात में कमी की तुलना में 2004–05 से 2011–12 के मध्य उड़ीसा (24.6 प्रतिशत), बिहार (20.8 प्रतिशत), तमिलनाडू (17.6 प्रतिशत), राजस्थान (19.7 प्रतिशत) व मध्य प्रदेश (16.9 प्रतिशत) राज्यों में गरीबी अनुपात अधिक तेजी से हुआ।

रंगराजन समिति (निर्धनता पर विशेषज्ञ समूह)

निर्धनता रेखा पर विवाद की पृष्ठभूमि में 2012 में डा. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में विशेषज्ञ समूह का गठन किया गया। समिति को निम्न कार्य दिए गए हैं। प्रथम, देश में निर्धनता रेखा को तय करना व निर्धनता के अनुमान लगाना, द्वितीय, राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी तथा राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन द्वारा उपभोग आंकलनों में भिन्नता का परीक्षण करना। समिति ने निर्धनता आंकलन के लिए जो तरीका दिया उसमें निम्न बातें थी।

(1) निर्धनता रेखा में पोषण, कपड़े, मकान किराया, परिवहन, शिक्षा व अन्य गैर खाद्य खर्चों का निर्धारण मानदण्डों के आधार पर हो। जैसे पोषण मानदण्ड के लिए भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा सुझाये गये कैलोरी, प्रोटीन व वसा मानदण्डों का उपयोग।

(2) पोषण पर खर्च अनुमान के लिए पोषण के इन मानकों को पूरा करने वाले व्यक्ति 2011–12 में ग्रामीण क्षेत्रों में निम्नतम 25–30 प्रतिशत में आते हैं तथा शहरी क्षेत्र में निम्नतम 15 से 20 प्रतिशत में आते है।

(3) समिति के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह 972 रुपये तथा शहरी क्षेत्र में 1407 रुपये को निर्धनता रेखा माना गया। ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 32.4 रुपये व शहरी क्षेत्र में 46.9 रुपये को निर्धनता रेखा माना गया। पांच सदस्य वाले परिवार के लिए ग्रामीण क्षेत्र में 4860 रुपये तथा शहरी क्षेत्र में 7035 रुपये को निर्धनता रेखा माना गया।

(4) समिति के अनुसार अपनाई गई विधि से 2009–10 में देश में निर्धनता 38.2 प्रतिशत थी तथा वर्ष 2011–12 में 29.5 प्रतिशत थी। अर्थात इस अवधि में निर्धनता में कमी 8.7 प्रतिशत हुई। तेन्दुलकर अनुमानों के अनुसार देश में 2009–10 में निर्धनता 29.8 प्रतिशत थी जो 2011–12 में 21.9 प्रतिशत रह गई। उल्लेखनीय है कि रंगराजन विधि द्वारा आंकलित निर्धनता का अनुपात तेन्दुलकर पद्धति द्वारा आंकलित निर्धनता अनुपातों से अधिक था।

निर्धनता आंकलन पर टास्क फोर्स : भारत सरकार द्वारा 2015 में नीति आयोग के उपाध्यक्ष डा. अरविंद पनगडिया की अध्यक्षता में टास्क फोर्स का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य निर्धनता आंकलन के लिए तरीका सुझाना व उसके अनुरूप निर्धनता निवारण कार्यक्रम सुझाना है।

निर्धनता के कारण
(Causes of Poverty)

निर्धनता प्रमुख रूप से कमजोर संसाधन आधार तथा रोजगार के अभाव से जुड़ी हुई है। लघु व सीमान्त कृषक, खेतिहर मजदूर व आकस्मिक श्रमिक के पास पर्याप्त भूमि नहीं होती इसके कारण इनकी आय कम है तथा रोजगार भी नियमित नहीं होता इसलिए यह वर्ग निर्धन है। तकनीकी परिवर्तन के कारण ग्रामीण दस्तकारों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की मांग में गिरावट के कारण वे आकस्मिक श्रमिक के रूप में आजीविका के लिए निर्भर हो गए हैं। इनका संसाधन आधार कमजोर होने व नियमित रोजगार उपलब्ध नहीं होने के कारण इनकी आय बहुत कम है व ये निर्धन हैं। ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अभाव के कारण ये शहरी क्षेत्र में काम की तलाश में जाते हैं। शहरी क्षेत्र में पर्याप्त रोजगार नहीं होने के कारण वे निर्धन ही रहते हैं। शहरी गरीबी व ग्रामीण गरीबी में

स्वरूपगत भिन्नता है इस कारण दोनों की रणनीति भी भिन्न होनी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में जहां मौसमी व छिपी बेरोजगारी की समस्या है वहीं शहरों में रोजगार की अस्थिरता व निम्न उत्पादकता वाले रोजगार अवसर की चुनौती है। भारत में निर्धनता के निम्न कारण हैं।

1. **जनसंख्या वृद्धि तथा विकास प्रारूप की कमियां (Population Growth and Weakness of Development Strategy) :** भारत के पास दुनिया का 2.4 प्रतिशत भू–भाग है तथा दुनिया की 17 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या रहती है। यह अनुपात संसाधनों पर जनसंख्या के दबाव को व्यक्त करता है। भारत में नियोजन के आरंभ में कृषि तथा श्रम गहन उद्योगों के बजाय बड़े व पूंजीगण उद्योगों के विकास पर बल दिया गया। इसके कारण रोजगार के पर्याप्त अवसर सृजित नहीं हुए। आज भी कृषि पर देश की 55 प्रतिशत आबादी आश्रित है जबकि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान मात्र 13.9 प्रतिशत है।

2. **कार्य सहभागिता दर कम होना (Low Work Participation Rate) :** देश में वर्ष 2011 में कार्यशील जनसंख्या अनुपात 39.9 प्रतिशत था। यह अनुपात जापन में 49 प्रतिशत, जर्मनी में 48 प्रतिशत व इग्लौंड में 46 प्रतिशत था। इन विकसित देशों की तुलना में भारत में कार्यशील जनसंख्या अनुपात कम था। इसके कारण निर्भरता अनुपात ऊँचा है। भारत में निर्भरता अनुपात 2011 में 55.5 प्रतिशत है। चीन में यह 28.2 प्रतिशत, रूस में 38.6 प्रतिशत, ब्राजील में 48 प्रतिशत है। इसके अलावा भारत में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर और भी कम है।

3. **भूमि का असमान वितरण (Unequal Distribution of Land) :** देश में आज भी भूमि का असमान वितरण है। वर्ष 2010–11 में देश में कुल जोतों में सीमांत जोतों (एक हैक्टेयर से कम की जोत सीमांत जोत कहलाती है) का अनुपात 67 प्रतिशत था जबकि इनके पास कुल कृषित क्षेत्र का 22.2 प्रतिशत ही था। इसके विपरीत बड़ी जोतों का कुल जोतों में 0.7 प्रतिशत था व इनके पास कुल कृषित क्षेत्र का 10.9 प्रतिशत था। अर्थात देश में भूमि का असमान वितरण है।

4. **देश में भूमि सुधारों के सफल क्रियान्वयन का अभाव (Lack of Successful Land Reforms in the Country) :** उत्तराधिकार के कारण भू जोतों का उपविभाजन होता जा रहा है। अर्थात उत्तरोत्तर कार्यशील जोत का आकार घटता जा रहा है। चकबन्दी सफल न होने के कारण कृषक की जमीन के अनेक स्थानों पर अनेक भाग है। फसल बटाइ की प्रथा कृषि में व्याप्त है। कुल श्रमिकों का लगभग 30 प्रतिशत खेतिहर मजदूर के रूप में कार्यरत हैं। सीलिंग कानून के तहत अतिरिक्त भूमि का अधिग्रहण व वितरण नहीं हुआ। देश में केरल व पश्चिम बंगाल के अलावा भूमि सुधारों का रिकार्ड अच्छा नहीं रहा।

5. **कृषि उत्पादन की धीमी वृद्धि व हरित क्रान्ति के दुष्प्रभाव (Low Increase in Agriculture Production and Side effect of Grean Revolution) :** देश में कृषि में उत्पादकता में धीमी वृद्धि हुई। श्रम की कृषि में उत्पादकता भी नीची बनी हुई है इस कारण कृषि में कार्यरत अतिरिक्त श्रम कृषि से मुक्त नहीं हुआ। जो अतिरिक्त श्रम मुक्त होकर उद्योगों व सेवा क्षेत्र में नियोजित होना चाहिए था वह आज भी कृषि में कार्यरत है। दूसरी ओर हरित क्रान्ति के कारण देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा धनी व निर्धन किसानों को बीच असमानता को बढ़ाया है।

6. **रोजगार हीन सवृद्धि (Job Less Growth) :** देश में आर्थिक सुधारों के बाद संवृद्धि दर तेज हुई है लेकिन इस संवृद्धि के अनुरूप रोजगार में विस्तार नहीं हुआ। उत्पादन के हर क्षेत्र में रोजगार लोच में गिरावट दर्ज हुई है। अर्थात उत्पादन वृद्धि के अनुरूप रोजगार में वृद्धि नहीं हुई है। नई आर्थिक नीति के पश्चात देश में आय की असमानता बढ़ी है।

7. **खाद्यान कीमतों में तीव्र वृद्धि (High Increase in Food Grain Price) :** आयोजन काल में कृषि उत्पादों की कीमतों में तीव्र वृद्धि हुइ हैं। आयोजन काल में कृषि उत्पादों की कीमतें लगभग 46 गुणा बढ़ गई है। पूरे आयोजन काल में केवल पांच वर्ष ऐसे थे जिनमें पूर्व वर्ष की तुलना में कृषि उत्पादों की कीमतें कम हुई है। खाद्यानों की तीव्र कीमत वृद्धि ने निर्धनों को खाद्यान उपभोग को प्रभावित किया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा खाद्यानों का वितरण भी दोषपूर्ण है। देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली सभी राज्यों में ठीक प्रकार से कार्य युक्त नहीं है। पिछड़े राज्यों में देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली कमजोर है। देश में शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली कमजोर है।

8. **सामाजिक पिछड़ापन व श्रम की गतिशीलता का**

अभाव (Social Bachwardness and Lack of Mobility of Labour) : ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का अभाव, जागरूकता की कमी तथा परिवर्तन की चाहत के अभाव के कारण सामाजिक पिछड़ापन है तथा श्रम की गतिशीलता कमजोर है। इस कारण श्रम की उत्पादकता कम है व आमदनी नीची है। इसके कारण वैकल्पिक रोजगार के अवसर कम है। इसलिए वैकल्पिक आय भी कम है।

निर्धनता निवारण की नीति एवं प्रयास (Policy and Effects for Poverty Eradication)

निर्धनता की व्यापकता देश के समक्ष सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है। यह औपनिवेशिक विरासत के साथ–साथ गलत विकास रणनीति के कारण आज भी व्यापक रूप में विद्यमान है। पांचवीं योजना में निर्धनता निवारण को देश में आयोजन में प्रमुख उद्देश्य घोषित किया गया। प्रारम्भ में निर्धनता निवारण के लिए आर्थिक विकास को महत्पूर्ण माना गया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के पश्चात निर्धनता निवारण के लिए प्रत्यक्ष रूप से कई योजनाएं आरम्भ की गई। मजदूरी रोजगार सृजन कर, स्वरोजगार के कार्य आरम्भ कर तथा सामाजिक सहायता के माध्यम से निर्धनों की आय वृद्धि के प्रयास किए गए। इसी प्रकार देश में संतुलित व समावेशी विकास कार्यक्रम अपना कर तथा अद्यःसंरचना का विकास द्वारा निर्धनता की समस्या को हल करने का प्रयास किया गया। देश में निर्धनता निवारण की रणनीति निम्न प्रकार से वर्णित की जा सकती है।

1. **आर्थिक विकास व निर्धनता निवारण (Economic Development and Poverty Alleviation) :** नियोजन के आरम्भ में यह माना गया कि यदि देश में तीव्र आर्थिक विकास होगा तो आय में वृद्धि होगी तथा आय में यह वृद्धि रिसकर निर्धन वर्ग तक पहुंचेगी इसे रिसाव प्रभाव (Trickle down effect) कहा जाता है। विकास से रोजगार के अवसर सृजित होंगे इससे निर्धनता कम होगी तथा विकास से सरकार की कर आय बढ़ेगी। कर आय बढ़ने के कारण सरकार की सामाजिक विकास व निर्धनता निवारण पर व्यय करने की क्षमता में वृद्धि होगी। इस प्रकार विकास को निर्धनता निवारण के लिए महत्वपूर्ण माना गया। लेकिन विकास की गति पर्याप्त नहीं होने के कारण रिसाव प्रभाव को घटित होते नहीं देखा गया तथा आर्थिक विकास पर्याप्त मात्रा में रोजगार सृजित नहीं कर पाया। इसलिए केवल आर्थिक विकास के द्वारा निर्धनता निवारण असफल रहा।

2. **निर्धनता निवारण के लिए मजदूरी रोजगार व स्वरोजगार के कार्यक्रम लागू किए गए (Implementation of Wage Employment and Self Employment Programmes for Poverty Alleviation) :** देश में 1960 के दशक में निर्धनता निवारण के प्रमुख अध्ययनों ने यह साबित कर दिया कि मौजूदा विकास से निर्धनता कम नहीं हुई है तथा निर्धनता निवारण के लिए निर्धनता पर प्रत्यक्ष प्रहार करने वाले कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है। इन अध्ययनों में दाण्डेकर व रथ, मिन्हास व बर्धन के अध्ययन महत्वपूर्ण थे। इन अध्ययनों ने देश में निर्धनता की समस्या की व्यापकता को देश के समक्ष रखा। इसके परिणामस्वरूप 1970 के दशक में सीमान्त किसान व खेतिहर मजदूर विकास एजेन्सी, लघु किसान विकास एजेन्सी, ग्रामीण रोजगार का पुरजोर कार्यक्रम, आरम्भिक गहन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, काम के बदले अनाज योजना आदि कार्यक्रम अपनाए गए। इस कारण इनका प्रभाव सीमित रहा।

इसके पश्चात निर्धनता निवारण के कुछ बड़े कार्यक्रम अपनाए गए। अनमें एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme- IRDP) 1978 में, ग्रामीण युवकों के लिए स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम (Training for Rural Youth Self Employment- TRYSEM) 1979 में लागू किया गया। TRYSEM कार्यक्रम ग्रामीण युवा वर्ग के लिए बेरोजगारी दूर करने हेतु स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण का कार्यक्रम था। ग्रामीण क्षेत्रों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Progremme- NREP) 1980 में आरम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार सृजित करना था ताकि ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनों को मजदूरी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जा सकें। इसी प्रकार 1983 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (Rural Land less Employment Guarantee Programme- RLEGP) ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीनों व श्रमिकों को 100 दिन रोजगार उपलब्ध कराने हेतु आरम्भ किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनों को आवास सहायता के लिए इंदिरा आवास योजना (IAY) 1985–86 में आरम्भ की गई।

1986 में शहरी निर्धनों को वित्तीय व तकनीकी सहायता द्वारा शहरी निर्धनों हेतु स्वरोजगार कार्यक्रम (Self Employment

Programme for Urban Poors) आरम्भ किया गया। 1989 में ग्रामीण क्षेत्रों में जवाहर रोजगार योजना व शहरी क्षेत्रों में नेहरू रोजगार योजना आरम्भ की गई। 1993 में रोजगार आश्वासन योजना (Employment Assurance Scheme-EAS) के तहत सूखा ग्रस्त, रेगिस्तानी, जनजातीय व पहाड़ी क्षेत्र में मजदूरी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। 1993 में ही शिक्षित युवकों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने के लिए प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY) आरम्भ की गई। भूतल जल एवं भूमिगत जल की निकासी एवं रखरखाव हेतु कृषकों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए 1997–98 में गंगा कल्याण योजना (GKY) आरम्भ की गई। अप्रेल 1999 में ग्रामीण निर्धनों का जीवन स्तर सुधारने तथा उन्हें लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराने के लिए जवाहर ग्राम समृद्धि योजना लागू की गई। मार्च 1999 में वृद्ध नागरिकों को निःशुल्क अनाज उपलब्ध कराने के लिए अन्नपूर्णा योजना आरम्भ की गई। 1999 में ग्रामीण क्षेत्र में IRDP, TRYSEM, महिला व बाल विकास कार्यक्रम (DWCRA), SITRA, MWS (दस लाख कुओं की योजना) तथा GKY को मिलाकर स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना आरम्भ की गई। निर्धन वर्ग के सर्वाधिक निर्धनों को 2 रुपये किलो गेहूं व 3 रुपये किलो चावल उपलब्ध कराने के लिए वर्ष 2000 में अन्त्योदय योजना आरम्भ की गई। 2001 में ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित करने के लिए सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY) आरम्भ की गई। वर्ष 2001 में शहरी स्लम आबादी को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने के लिए वाल्मीकी अम्बेड़कर आवास योजना आरम्भ की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल श्रम रोजगार के तहत परिवार को 100 दिन की रोजगार गारन्टी देने के लिए नरेगा (National Rural Employment Guarantee Act- NAREGA) आरम्भ किया गया। वर्ष 2009 में इसका नाम परिवर्तन कर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) कर दिया गया। वर्तमान में यह ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरी रोजगार का सबसे व्यापक कार्यक्रम है।

ऊपर वर्णित कार्यक्रम मजदूरी रोजगार या स्वरोजगार द्वारा निर्धनता उन्मूलन की अवधारणा पर आधारित थे। मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक संपति का निर्माण किया गया तथा निर्धनों को मजदूरी रोजगार के साथ पूरक पोषण भी प्रदान किया गया। मजदूरी रोजगार कार्यक्रम प्रमुखतः आकस्मिक श्रमिकों को पूरक रोजगार प्रदान करने के लिए था ताकि उस वर्ग की आय बढ़ सके। स्वरोजगार के कार्यक्रम सहायता व ऋण आधारित थे। इनके तहत कुशल व अर्द्धकुशल रोजगार के लिए प्रशिक्षण दिया गया। ऋण सहायता व प्रशिक्षण के माध्यम से निर्धनों की आय बढ़ सकेगी यह धारणा थी तथा इसी के अनुरूप स्वरोजगार के कार्यक्रमों का निर्माण किया गया एवं इन्हें लागू किया गया।

3. **सामाजिक सहायता कार्यक्रम (Social Assistence Programme) :** निर्धनों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए 15 अगस्त, 1995 को राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (National Social Assistence Programme- NSAP) प्रारम्भ किया गया। इस योजना के चार घटक थे। इनमें वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन, अक्षमता (विकलांग) पेंशन तथा परिवार लाभ योजना घटक थे। सामाजिक सहायता कार्यक्रम मूलतः उन निर्धन लोगों के लिए था जो किसी प्रकार की अक्षमता के कारण मजदूरी रोजगार व स्वरोजगार कार्यक्रमों का अंग नहीं बन सकते हैं।

4. **क्षेत्र विकास के कार्यक्रम तथा अद्यःसंरचना का निर्माण (Area Development Programme and Infrastructare Development) :** पिछड़े हुए क्षेत्रों व प्राकृतिक हानियों के कारण देश के कुछ क्षेत्रों में निर्धनता की समस्या अधिक है। इन क्षेत्रों के विकास पर विशेष कार्यक्रम चला कर ध्यान दिया गया ताकि इन क्षेत्रों में रहने वाले निर्धनों की आय में वृद्धि हो सके। 1973 में सूखा प्रवण क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Drought Prone Area Programme DPAP) लागू किया गया। इसके तहत सूखा प्रवण (Prone) क्षेत्रों में कम पानी वाली उपज को बढ़ावा दिया गया। पशुपालन, जल संरक्षण, वन रोपण व चारागाह विकास के कार्य किए गए। इसी प्रकार मरूक्षेत्र विकास कार्यक्रम (Desert Develpment Programme-DDP) 1977–78 में लागू किया गया। इस कार्यक्रम के तहत मरूक्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन, उत्पादक रोजगार, आय वृद्धि, मरूस्थल के फैलाव को रोकने व भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के कार्यक्रम अपनाए बए। पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Hill Area Development Programme- HADP) के तहत पहाड़ी क्षेत्रों में अद्यःसंरचना सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयास किए गए। कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम (Command Area Development Programme- CADP) 1975 में लागू किया गया। इस

कार्यक्रम द्वारा सिंचाई के लिए नहरें, नालियां, भूमि को समतल करने, जोतों की चकबन्दी व मेड़बन्दी के कार्य किए गए। ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क निर्माण, शिक्षा व स्वास्थ्य संबंधी अद्यःसंरचना का विकास किया गया। ग्रामीण आवास उपलब्ध कराने के लिए कार्यक्रम संचालित किए गए। जन वितरण प्रणाली को अधिकाधिक निर्धन वर्ग की ओर लक्षित किया गया। ये सब प्रयास किए गए ताकि इन क्षेत्रों का विकास हो सके व इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की निर्धनता की दशाओं को नियंत्रित किया जा सके।

5. **निर्धनता निवारण की नई रणनीति (New Strategy for Poverty Alleviation) :** 11 वीं योजना में स्वीकार किया गया कि केवल मजदूरी रोजगार (मनरेगा द्वारा) से ग्रामीण निर्धनता निवारण दीर्घकाल में संभव नहीं है। निर्धनता निवारण के लिए इसके अलावा श्रम आधारित विनिर्माण क्षेत्र और संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर उत्पन्न करने आवश्यक है ताकि निम्न उत्पादकता वाले कृषि क्षेत्र से उच्च उत्पादकता वाले गैर कृषि क्षेत्र की ओर श्रम का प्रवाह व नियोजन किया जा सके। ग्यारवीं पंचवर्षीय योजना ग्रामीण निर्धनता निवारण के लिए निम्न रणनीति व्यक्त करती है।

(क) मजदूरी रोजगार ग्रामीण क्षेत्र में (ख) सामाजिक सुरक्षा का विस्तार (ग) मांग प्रेरित कौशल विकास के द्वारा स्वरोजगार के अवसरों का सृजन। नई रणनीति में कौशल विकास व प्रशिक्षण पर बल दिया जा रहा है ताकि स्थाई रोजगार के अवसर पैदा हो सकें। इसके लिए स्व–उद्यमिता को सामुदायिक उद्यमिता (स्वयं सहायता समूह द्वारा) के ढ़ोचे पर विकसित करने पर जोर है। नई रणनीति में सामाजिक सुरक्षा जाल को मजबूत करने, सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने, वित्तीय समावेशन करने पर बल दिया जा रहा है।

निर्धनता उन्मूलन के प्रमुख कार्यक्रम (Main Programme for Poverty Alleviation)

1. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme- IRDP) : इस कार्यक्रम में ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनों को उत्पादक सम्पत्ति (सिंचाई के साधन, खेती के लिए बीज व उर्वरक, डेयरी व पशुपालन के लिए पशु, कुटीर उद्योग व हस्तशिल्प के लिए उपकरण) निर्धनों को उपलब्ध कराई गई। ताकि इस उत्पादक सम्पत्ति के प्रयोग से निर्धन की आय वृद्धि हो सके। यह कार्यक्रम 1978 में लागू किया गया। कार्यक्रम में सातवीं योजना में 1.82 करोड़ परिवार लाभान्वित हुए। निर्धनता उन्मूलन के लिए बनाये गए इस कार्यक्रम से लाभान्वितों के 55 से 90 प्रतिशत लोगों को अतिरिक्त आय प्राप्त हुई व लगभग 40 प्रतिशत लोग निर्धनता रेखा के ऊपर आ सके (नाबार्ड अध्ययन)। कार्यक्रम के कार्यान्वयन में क्षेत्रीय परिस्थितियों को अनदेखा दिया गया व लाभार्थी परिवारों के चयन में त्रुटियां थी। 1999 में इस कार्यक्रम को स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार में शामिल कर दिया गया।

2. जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY) : जवाहर रोजगार योजना के पश्चात केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में अप्रेल 1999 को लागू की गई। केन्द्र व राज्यों के मध्य इसकी लागत अनुपात 75:25 में थी। इस योजना में वे कार्य किए गए जिससे ग्रामीण क्षेत्र में टिकाऊ उत्पादक सामुदायिक सम्पत्ति का निर्माण हो सके।

3. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SJGSY) : अप्रेल 1999 में I R D P व दस लाख कुओं की योजना सहित अनेक योजनाओं की ग्रामीण स्वरोजगार के एकल कार्यक्रम के रूप में पनुसंरचना के लिए योजना लागू की गई। इसका उद्देश्य माइक्रो उद्यमों को प्रोत्साहन तथा स्वयं सहायता समूह में निर्धनों की सहायता था। केन्द्र व राज्यों की बीच इस कार्यक्रम का लागत विभाजन 75 : 25 के अनुपात में रखा गया।

4. रोजगार आश्वासन योजना (Employment Assurance Scheme) : यह कार्यक्रम 2 अक्टूबर 1993 को देश के सूखा प्रवण, रेगिस्तान, जनजातीय व पहाड़ी क्षेत्रों में स्थिति 1772 पिछड़े खण्डों में लागू किया गया। बाद में इसका विस्तार देश के 5448 खण्डों तक कर दिया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य मजदूरी रोजगार के तीव्र अभाव की अवधि में अतिरिक्त मजदूरी रोजगार सृजन करना था, उन ग्रामीण निर्धन परिवारों के लिए जो गरीबी रेखा के नीचे थे। 1999–2000 में इसे मजदूरी रोजगार के एकल कार्यक्रम के रूप में संचालित किया गया। केन्द्र व राज्यों के बीच इसकी लागत विभाजन अनुपात 75 : 25 रखा गया।

5. प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (PMGY) : योजना को 2000–01 के बजट में 5000 करोड़ रुपये के आवंटन के साथ लागू किया गया। ग्रामीण क्षेत्र में पांच महत्वपूर्ण क्षेत्रों के विकास पर केन्द्रित कार्यक्रम था। ये पांच क्षेत्र स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, आवास व ग्रामीण सड़क थे। इन पांच क्षेत्रों का

विकास कर ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना इसका उद्देश्य था। योजना में वर्ष 2001–02 में 2500 करोड़ रुपये खर्च किए गए।

6. स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY) : शहरी क्षेत्र में निर्धनता उन्मूलन के अधीन कार्यशील अनेक कार्यक्रमों का विलय कर 1997 में स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना आरम्भ की गई। इस योजना के मुख्य दो भाग थे– शहरी क्षेत्र में मजदूरी रोजगार तथा शहरी क्षेत्र में स्वरोजगार कार्यक्रम। इस योजना का केन्द्र व राज्यों के बीच लागत बंटवारा 75 : 25 के अनुपात में रखा गया। इस कार्यक्रम में 1997–98, 198–99 व 1999–2000 में कुल क्रमशः 102.51 करोड़, 162.28 करोड़ तथा 123.07 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

7. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY) : योजना 2001 में आरम्भ की गई। इस योजना में जवाहर ग्राम समृद्धि योजना तथा रोजगार आश्वासन योजना का विलय कर दिया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में अतिरिक्त मजदूरी रोजगार सृजन, खाद्य सुरक्षा, टिकाऊ सामुदायिक सामाजिक आर्थिक सम्पत्ति का निर्माण रखा गया। केन्द्र व राज्यों के बीच इसका लागत बंटवारा 87.5 : 12.5 अनुपात में रखा गया। योजना में 2001–02 में 32.5 लाख टन चावल गेहूं का वितरण किया गया।

8. वाल्मीकी अम्बेड़कर आवास योजना (VAMBAY) : यह योजना वर्ष 2001 में आरम्भ की गई। शहरी स्लम क्षेत्र में रहने वाले निर्धनों को आवास उपलब्ध कराने की योजना थी। योजना में शहरी स्लम क्षेत्र में निर्धनों को आवास निर्माण व आवास उन्नयन प्रदान करने के लिए थी। केन्द्र द्वारा इस योजना में 50 प्रतिशत सब्सिडी उपलब्ध कराई गई। योजना में 2003 तक 211 करोड़ रुपये आवंटित किए गए व 1.6 लाख आवास निर्माण किए गए।

9. राष्ट्रीय काम के बदले अनाज योजना (National Food for Work Programme) : इस कार्यक्रम को 2004 में आरम्भ किया गया। देश के सर्वाधिक पिछड़े 150 जिलों में पूरक मजदूरी रोजगार सृजन का कार्यक्रम था। यह कार्यक्रम उन सभी ग्रामीण निर्धनों के लिए खुला था जो अदक्ष शारीरिक श्रम कर मजदूरी रोजगार करना चाहते थे। यह योजना पूर्णतः केन्द्र प्रयोजित थी व योजना के लिए राज्यों को खाद्यान केन्द्र द्वारा निःशुल्क दिए जाने का प्रावधान था। योजना के आयोजन, कार्यकरण, समन्वय, निरीक्षण व पर्यवेक्षण के लिए नोडल अधिकारी जिला कलेक्टर को बनाया गया। 2004–05 में योजना पर 2020 करोड़ रुपये खर्च किए गए तथा 20 लाख टन अनाज आवंटित किया गया।

10. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) : ग्रामीण क्षेत्र में सड़क निर्माण के लिए पूर्णतः केन्द्र प्रायोजित योजना वर्ष 2000 में लागू की गई। योजना का उद्देश्य 10 वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक 500 व उससे अधिक आबादी वाले गांव को पक्की सड़क से जोड़ना था। योजना का वित्तीयन डीजल के उपकर से प्राप्त आय से होता था। योजना के अन्तर्गत 2004 तक 7866 करोड़ रुपये खर्च किए गए तथा 60024 किमी ग्रामीण सड़कें बनाई गई।

11. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना (National Rural Employment Guarantee Scheme) : सितम्बर 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम पास किया गया। यह योजना फरवरी 2006 से लागू की गई। प्रारम्भ में योजना देश के 200 जिलों में आरम्भ की गई। योजना का उद्देश्य ग्रामीण परिवार जो मजदूरी रोजगार करना चाहता है को एक वर्ष में 100 दिन के अकुशल मजदूरी रोजगार की गारन्टी दी गई। सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना तथा राष्ट्रीय काम के बदल अनाज योजना का इसमें विलय कर दिया गया। यह मांग जनित कार्यक्रम है इसमें जल संरक्षण, अकाल से बचाव, जमीन का विकास, बाढ़ नियंत्रण व ग्रामीण सम्पर्क के कार्यक्रम आरम्भ किए गए। 2008–09 में इस कार्यक्रम का विस्तार सम्पूर्ण देश में कर दिया गया। 2008–09 में इस योजना में 4.51 करोड़ परिवारों को रोजगार दिया गया। योजना में 29 प्रतिशत लाभार्थी अनुसूचित जाति, 22 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति व 50 प्रतिशत महिलाएं थीं। 2011–12 के लिए योजना में 40,000 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया। वर्ष 2009 में इसका नाम महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) कर दिया गया। वर्ष 2013–14 में 33000 रुपये के परिव्यय के साथ इस योजना को 46 व्यक्ति दिवसों के औसत मजदूरी रोजगार के साथ 4.78 करोड़ परिवारों को व्यक्ति दिवस रोजगार प्रदान किए गए। योजना में औसत मजदूरी 2006–07 के वित्त वर्ष में 65 रुपये से बढ़ाकर 2013–14 में 132 रुपये कर दी गई है। इस योजना

के कार्यान्वयन से ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल मजदूरी रोजगार में वृद्धि हुई है। महिलाओं व समाज के वंचित वर्ग को अधिक मजदूरी रोजगार उपलब्ध हुए हैं। देश का प्राकृतिक संसाधन आधार मजबूत हुआ है व ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़ी है लेकिन इसमें व्यापक भ्रष्टाचारर व अनियमितताएं पायी गई हैं।

12. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (National Rural Liveilood Mission) आजीविका : राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन का उद्देश्य 2024–25 तक सभी ग्रामीण परिवारों को संगठित करना उन्हें लगातार तब तक संपोषित व सहायता देना है जब तक कि वे दयनीय गरीबी से बाहर निकल नहीं जाते। यह कार्य योग्यता पर आधारित स्वयं सहायता समूह में प्रत्येक परिवार से एक महिला को मिलाकर किया जायेगा। गांव में इन स्वयं सहायता समूह का संघ होगा व इसी प्रकार उच्च स्तर इनका गठन होगा। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक परिवार जो 6–8 वर्षों के लिए इस स्वसहायता नेटवर्क से जुड़ जाता है। परिवार को खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। 3 जून 2011 को राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की शुरूआत हुई। यह कार्यक्रम ग्रामीण निर्धन परिवारों को प्रशिक्षण व कौशल विकास के द्वारा स्वरोजगार व कुशल मजदूरी रोजगार अवसरों की उपलब्धता में वृद्धि पर बल देता है। इसके अलावा यह खाद्य सुरक्षा, स्वच्छ पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि की दशा में सुधार, माइक्रो फाइनेंस व विपणन तक उनकी पहुंच निश्चित करने की आवश्यकता पर बल देता है।

इसमें शत प्रतिशत निर्धन परिवार तक पहुंच का अन्तिम लक्ष्य है। प्रत्येक परिवार की एक महिला को स्वयं सहायता समूह के नेटवर्क में लाने पर आधारित है। ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण व कौशल विकास द्वारा रोजगार हेतु सक्षम बनाने पर बल है। कार्यक्रम में अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाओं, विकलांग व अल्पसंख्यकों को प्राथमिकता के आधार पर लाभान्वितों में सम्मिलित करने पर बल देता है। आवंटित राशि का उपयोग स्वयं सहायता समूह को सब्सिडी, ब्याज सब्सिडी, प्रशिक्षण, विपणन जुड़ाव, आधारभूत संरचना व गैर सरकारी सुविधा प्रदायकों के लिए किया जायेगा। केन्द्र व राज्यों में लागत का बंटवारा 75 : 25 के अनुपात में होगा। इस योजना में परिवार की पहचान से लेकर संचालन व बुनियादी सुविधा प्रदान करने में पंचायती राज संस्थाओं की महत्वूपर्ण भूमिका रहेगी। वर्ष 2012 में कार्यक्रम में संशोधन कर इसका दायरा गैर निर्धन परिवार तक कर दिया गया है। मिशन ने 97391 गावों को कवर किया है लगभग 20 लाख स्वसहायता समूह को इस कार्य में लगाया है। 2013–14 के दौरान 22121. 2 करोड़ रुपये के ऋण स्वसहायता समूह को वितरित किए गए हैं। 2014–15 में इस कार्यक्रम के लिए 3560 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं।

13. राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (National Urban Livelihood Mission- NULM) : 2013 में स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना को राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन से जोड़ा गया है, जिसका उद्देश्य शहरी बेरोजगारों व अल्प रोजगारों के लिए लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना है। यह कार्यक्रम शहरी निर्धनों को स्वसहायता समूह में संगठित करेगा। बाजार की आवश्यकता के अनुरूप कौशल विकास करेगा। इस मिशन का उद्देश्य शहर में रहने वाले बेघर लोगों के लिए बुनियादी सुविधा युक्त आवास उपलब्ध कराना है। इस प्रकार मिशन का मुख्य उद्देश्य शहरी निर्धनता को कम करना, शहरी निर्धनों के जीवन स्तर में सुधार करना, इनके लिए लाभदायक व कुशल रोजगार उपलब्ध कराना तथा शहरी आवास उपलब्ध कराना है। यह मिशन कौशल विकास, उद्यमिता विकास व साख की उपलब्धता सुनिश्चित करेगा।

मिशन के प्रथम चरण (2013–17) में एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों व जिला मुख्यालयों में लागू होगा व अन्य क्षेत्रों में यह द्वितीय चरण (2017–22) में लागू होगा। मिशन में लागत का आवंटन केन्द्र व राज्यों में 75 : 25 के अनुपात में होगा। 2013–14 के दौरान 720.43 करोड़ रुपये की राशि जारी की गई। 683450 लोगों को दक्षता प्रशिक्षण दिया गया तथा 106250 लोगों को स्वरोजगार में मदद दी गई।

निर्धनता निवारण के उपाय
(Remedy for Poveuty Eradication)

निर्धनता निवारण के लिए आवश्यक है कि निर्धनों की आय में वृद्धि हो व उनका उपभोग स्तर तथा उन तक शिक्षा स्वास्थ्य व आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं तक पहुंच बढ़े। इस हेतु निम्न प्रयास किए जाने चाहिए।

1. आर्थिक विकास की दर ऊँची हो: विकास रोजगार मूलक हो जो ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि व लघु, कुटीर व हस्तशिल्प

का विकास करने वाला हो। विकास की गति तीव्र होने से उत्पादक रोजगार का विस्तार होगा तथा निर्धनता निवारण में सरकार की क्षमता में वृद्धि होगी।

2. सामाजिक न्याय को बढ़ाने के प्रयासः खाद्य सुरक्षा व सार्वजनिक वितरण प्रणाली बेहतर हो। सार्वजनिक वस्तुओं व सेवाओं की आपूर्ति में तेज वृद्धि हो। पिछड़े व ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत सेवाअें का विस्तार हो तथा निर्धनों के पक्ष में परिसम्पत्तियों का वितरण बेहतर हो। ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में निर्धनों को शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं की आपूर्ति बेहतर हो व आवास उपलब्ध तो इस वर्ग को निर्धनता से बाहर किया जा सकता है।

3. जनसंख्या नियंत्रण व परिवार नियोजनः सामाजिक सुरक्षा का विस्तार हो क्योंकि निर्धन परिवार बच्चों को सामाजिक सुरक्षा के तौर पर देखते है। शिशु मृत्यु दर (देश के कुछेक क्षेत्रों में) ऊँची है उसे नियंत्रित किया जावे। ताकि बड़े परिवार का आकर्षण कम हो सके। जन्म दर को नियंत्रित किया जाना चाहिए ताकि जनसंख्या वृद्धि कम हो।

4. मजदूरी रोजगार, स्वरोजगार व सामाजिक सहायता का विस्तार होः ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में व्यापक मजदूरी रोजगार सृजन हो ताकि अतिरिक्त श्रम का उत्पादक उपयोग हो सके। कौशल विकास, आगत व विपणन सुविधा का विस्तार कर व्यापक स्वरोजगार कार्यक्रम हो ताकि इस वर्ग को रोजगार प्राप्त हो। वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन व असहाय पेंशन जैसे सामाजिक सहायता कार्यक्रमों का विस्तार होना चाहिए ताकि जो लोग मजदूरी रोजगार व स्वरोजगार करने में सक्षम नहीं हो उनकी आय बढ़ सके।

महत्वपूर्ण बिन्दू :

- निर्धनता की समस्या मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति के अभाव की समस्या से सम्बद्ध है। न्यूनतम कैलोरी उपयोग व जरूरी उपभोग व्यय के रूप में निर्धनता रेखा को परिभाषित किया जाता है।
- वर्ष 2011–12 में तुन्दुलकर अनुमानों के अनुसार 26. 93 करोड़ लोग निर्धन थे इनमें से 21.65 करोड़ ग्रामीण क्षेत्र में तथा 5.28 करोड़ शहरी क्षेत्र में थे। देश के कुछेक राज्यों (छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार व उड़ीसा) में निर्धनता की समस्या अधिक है।
- तीव्र जनसंख्या वृद्धि, कम कार्य सहभागिता अनुपात, भूमि का असमान वितरण व किवास प्रक्रिया में कृषि, हस्तशिल्प, कुटीर व लघु उद्योगों का सही विकास न होने गरीबी की समस्या हल होने में कठिनाई है।
- निर्धनता निवारण के लिए तीव्र विकास प्रक्रिया को महत्वपूर्ण माना गया व इस पर प्रत्यक्ष प्रहार के लिए अनेक योजनाएं अपनाई गई।
- निर्धनों के लिए शिक्षा व स्वास्थ्य आदि सामाजिक सेवायें उपलब्ध कराकर, जनसंख्या नियंत्रण कर, रोजगार के अवसरों में विस्तार करके तथा सामाजिक सहायता का दायरा बढ़ा कर निर्धनता की समस्या की गंभीरता को कम किया जा सकती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनता की परिभाषा के लिए न्यूनतम कैलोरी मापन कौनसा है ?
   (अ) 2100 कैलोरी
   (ब) 2400 कैलोरी
   (स) 2250 कैलोरी
   (द) 2500 कैलोरी ( )
2. वर्ष 2011–12 में तेंदुलकर अनमानों के अनुसार भारत में निर्धनता का प्रतिशत क्या था ?
   (अ) 25.7 प्रतिशत
   (ब) 13.7 प्रतिशत
   (स) 21.9 प्रतिशत
   (द) 37.2 प्रतिशत ( )
3. वर्ष 2011–12 में तेंदुलकर अनुमान के अनुसार निम्न राज्यों में से किस राज्य में निर्धनता अनुपात सर्वाधिक था ?
   (अ) बिहार
   (ब) छत्तीसगढ़
   (स) झारखण्ड
   (द) केरल ( )
4. न्यूनतम उपयोग आवश्यकता पूर्ति के आधार पर निर्धनता की परिभाषा निम्न में से कौनसी है ?
   (अ) निर्धनता की सापेक्ष मापन

(ब) निर्धनता का निरपेक्ष मापन

(स) दोनों

(द) दोनों नहीं ( )

5. निर्धनता का क्षमता माप (Capssitity Measusement of Poverty) के अनुसार निर्धनता की परिभाषा में कौनसा मानक समाहित है ?

(अ) पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों का अनुपात

(ब) अकुशल प्रसव अनुपात

(स) महिला निरक्षरता अनुपात

(द) उपर्युक्त सभी ( )

6. विश्व बैंक के अनुसार निर्धनता का मापन क्या है ?

(अ) प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 1 अमेरीकी डालर

(ब) प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 1.25 अमेरीकी डालर

(स) प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 1.5 अमेरीकी डालर

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

7. निम्न में से निर्धनता निवारण का मजदूरी रोजगार कार्यक्रम कौनसा नहीं है ?

(अ) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

(ब) जवाहर रोजगार योजना

(स) ट्राईसेम

(द) काम के बदले अनाज योजना ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. निर्धनता को परिभाषित करने के लिए कैलोरी मापन आवश्यकता क्या है ?
2. वर्ष 2011–12 में तेंदुलकर अनुमानें के अनुसार देश में शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनता अनुपात क्या था ?
3. निर्धनता निवारण के लिए अपनाए गए स्वरोजगार के किन्ही दो कार्यक्रमों का नाम लिखिए ?
4. भारत में निर्धनता वाले सर्वाधिक प्रभावित पांच राज्यों का निर्धनता अनुपात के साथ नाम लिखिए।
5. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के प्रमुख घटकों के नाम लिखिए।
6. निर्धनता का क्षमता मापन को परिभाषित कीजिए ?
7. वर्ष 2011–12 में निर्धनता की परिभाषा योजना आयोग के अनुसार क्या है ?
8. रिसाव प्रभाव (Trickle down effect) क्या है ?
9. किन्हीं तीन भारतीय अर्थशास्त्रियों के नाम लिखिए जिन्होंने भारत में निर्धनता के संबंध में अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
10. एन आर ई पी (NREP) का पूरा नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. निर्धनता मापन के विभिन्न मानकों को लिखिए।
2. निर्धनता रेखा के मापन में कैलोरी उपभोग पद्धति व निर्धनता रेखा पद्धति की क्या कमियां है ?
3. सापेक्ष गरीबी को परिभाषित कीजिए।
4. भारत में उच्च निर्धनता के लिए उत्तरदायी तीन कारण लिखिए।
5. आर्थिक विकास निर्धनता निवारण में किस प्रकार उपयोगी है।
6. निर्धनता एक बहुआयामी अवधारणा है स्पष्ट करें।
7. भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन वर्ग में कौन आते हैं ?
8. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन क्या है ?
9. राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन के प्रमुख उद्देश्य लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्धनता के मापन उसकी मापन समस्याएं लिखिए।
2. भारत में निर्धनता की समस्या के आकार व क्षेत्रीय वितरण की व्याख्या करो।
3. भारत में ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त निर्धनता के उत्तरदायी कारणों का वर्णन कीजिए।
4. निर्धनता निवारण के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई रणनीति की विवोचना कीजिए।
5. आपकी राय में भारत में निर्धनता निवारण के लिए क्या किया जा सकता है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला

(1) (ब) (2) (स) (3) (ब) (4) (ब) (5) (द)
(6) (ब) (7) (स)

सन्दर्भ ग्रंथ

1. आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय भारत सरकार 214–15
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्रा व पुरी, हिमालय पब्लिकेशन
3. The Indian Economy, Ishwar Chand Dhingra, Sultan Chand and Sons, New Delhi
4. भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मीनारायण नाथूरामका

अध्याय– 4.2

बेरोजगारी
(Unemployment)

श्रम उत्पादन का महत्वपूर्ण संसाधन है। किसी भी देश के श्रम बल के आकार व दक्षता का देश के विकास में बड़ी भूमिका होती है तथा देश के विकास के स्तर से श्रम बल के नियोजन का निर्धारण होता है। श्रम का संचय नहीं किया जा सकता अर्थात यदि श्रम पूर्ण रोजगार की दशा में नहीं होता तो अप्रयुक्त श्रम का संचय नहीं किया जा सकता। कार्य करने के इच्छुक व कार्य करने के योग्य व्यक्ति को यदि रोजगार प्राप्त नहीं होता तो उसे बेरोजगार कहा जाता है। श्रमिक के रूप में तथा स्वरोजगार के रूप में श्रम नियोजित हो सकता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थव्यवस्था में दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार होता है। यदि कुछ समय के लिए बेरोजगारी होती है तो मजदूरी दर में कमी द्वारा स्वतः पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त हो जाती है। कीन्स के अनुसार समग्र मांग के अभाव के कारण उत्पादन क्षमता से कम होता है व बेरोजगारी होती है। विकासशील देशों में श्रम की तुलना में उत्पादन के अन्य साधनों की कमी के कारण व अनुपयुक्त तकनीक के कारण भी बेरोजगारी होती है। कृषि कार्य की मौसमी प्रकृति व मानूसन पर आधारित होने के कारण वर्ष के कुछ माह में श्रमिक को रोजगार नहीं मिलता। विकासशील देशों में पारिवारिक कृषि में आवश्यक श्रम से अधिक श्रम लगा होता है जो देखने पर नियोजित लगता है परन्तु उसका उत्पादन में योगदान उसकी क्षमता से कम होता है। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था की आंगिक संरचना में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। हमेशा कुछ नए उद्योग खुलते है और कुछ बन्द होते हैं। अतः पूर्ण रोजगार होने पर भी कुछ बेरोजगारी होती है। बेरोजगारी की दशा व्यक्ति के लिए कष्टप्रद होती है व देश के संसाधनों की भी बर्बादी होती है। इसलिए इसके स्वरूप, कारण व निवारण के संबंध में जानना आवश्यक होता है।

बेरोजगारी का अर्थ

बेरोजगारी वह स्थिति है जिसमें काम करने के योग्य व काम करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को काम (रोजगार) प्राप्त नहीं होता। काम करने के अयोग्य (बालक, वृद्ध व अन्य जो श्रम बल में नहीं आते) व्यक्ति यदि बेरोजगार हैं तो उसे बेरोजगार नहीं माना जाता व यदि काम की इच्छा न रखने वाला व्यक्ति बेरोजगार है तो भी उसे बेरोजगार नहीं माना जाता। अर्थात काम करने में योग्य व इच्छा रखने वाले व्यक्ति को रोजगार नहीं मिलता है तो उसे बेरोजगारी कहते हैं। यदि पूरे समय या क्षमता से नीचे स्तर का रोजगार होता है तो यह अल्प रोजगार की दशा भी बेरोजगारी की श्रेणी में आती है।

बेरोजगारी के प्रकार
(Kinds of Unemployment)

बेरोजगारी के स्वरूप व कारणों के आधार पर बेरोजगारी के निम्न प्रकार की होती हैं। इनके आधार पर बेरोजगारी दूर करने के उपयुक्त नीति अपनाई जा सकती है।

(क) संरचनात्मक बेरोजगारी (Structural Unemployment): यह दीर्घकालीन होती है तथा पिछड़े आर्थिक ढांचे के कारण होती है। यह देश की विकास प्रक्रिया के साथ जुड़ी होती है। जब श्रम की तुलना में पूंजी निर्माण की दर धीमी होती है अर्थात श्रम की तुलना पूंजी या अन्य पूरक साधनों की कमी होती है। यह अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक असाम्य के कारण होती है। इस तरह की बेरोजगारी के समाधान के लिए पूंजी वस्तुओं, उद्यम व प्रबन्ध आदि साधनों की पूर्ति बढाना आवश्यक है।

(ख) प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment): यह वह स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति स्पष्ट रूप से बेरोजगार दिखाई नहीं देता। विकासशील देशों में पारिवारिक कृषि में जितने लोगों की आवश्यकता होती है उससे अधिक लोग कृषि में लगे रहते हैं। दिखने में वे रोजगार में दिखते है पर उत्पादन में अपनी क्षमता के अनुसार योगदान नहीं देते। उदाहरण के लिए माना एक किसान के पास दो हेक्टेयर का खेत है। दो व्यक्ति उस खेत में खेती कर सकते हैं लेकिन परिवार में यदि 6 सदस्य हैं तो सभी उसी खेत में कार्य करते है। देखने पर सभी

रोजगार में लगे हैं लेकिन यदि चार व्यक्तियों को उस खेत पर कार्य से हटा दिया जाए तो उत्पादन कम नहीं होगा और यदि इन चार व्यक्तियों को अन्यत्र उत्पादन कार्य में लगा दिया जाये तो अतिरिक्त उत्पादन हो सकता है। अर्थात छिपी बेरोजगारी विकासशील देशों में संभाव्य बचत का स्रोत होती है। शहरों में भी इस प्रकार की बेरोजगारी दिखाई पड़ती है। कई बार स्वरोजगार में लगे व्यक्तियों में यह देखी जा सकती है। यह कम उत्पादकता व कम आमदनी के रूप में प्रकट होती है। एक छोटे मौहल्ले में चार परचून की दुकान होती है। जबकि एक दुकान पर्याप्त हो सकती है तीन दुकानों पर लगे व्यक्ति छिपी बेरोजगारी में है। ज्यादा लोग मिलकर अधिक श्रम नहीं करते अपितु उतना ही श्रम अधिक लोग करते हैं। यदि इनको उत्पादन से हटा दिया जाए तो उत्पादन कम नहीं होगा।

(ग) मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment): कृषि कार्य की मौसमी प्रकृति व मानसून पर निर्भरता के कारण वर्ष भर कार्य नहीं मिलता अर्थात वर्ष के कुछेक माह में रोजगार मिलता है बाकी समय बेरोजगारी होती है। मौसमी व त्यौहारी मौसम वाले उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों में भी यह बेरोजगारी पायी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि कार्यों के विकास व विस्तार से इस तरह की बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है। प्रच्छन्न बेरोजगारी व मौसमी बेरोजगारी अल्प रोजगार की दशा होती है।

(घ) खुल बेरोजगारी (Open Unemployment): यह वह बेरोजगारी की स्थिति है जिसमें काम करने का इच्छुक व काम करने की क्षमता व योग्यता रखने वाले व्यक्ति को कोई काम नहीं मिलता। काम न मिलने के कारण व्यक्ति पूरी तरह बेरोजगार रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में रोजगार की तलाश में श्रमिक आता है व उसे वहां कोई रोजगार नहीं मिलता तो उस स्थिति में खुली बेरोजगारी कही जाती है।

(ड.) चक्रीय बेरोजगारी (Cyclical Unemployment): बेरोजगारी की यह समस्या पूंजीवादी या बाजार तंत्र अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र के कारण उत्पन्न होती है। मंदी की स्थिति में समग्र मांग की कमी के कारण उत्पादन कम हो जाता है व बेरोजगारी हो जाती है। पुनः मंदी दूर होने पर रोजगार बढ़ जाता है। विकसित देशों में व्यापार चक्र से जुड़ी इस तरह की बेरोजगारी होती है। कीन्स के अनुसार समग्र मांग में वृद्धि कर इस तरह की बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है। विकसित देशों में मूलतः बेरोजगारी समग्र मांग की कमी के कारण पैदा होती है जबकि अल्पविकसति देशों में मूल रूप से पूर्ति पक्ष से जुड़ी होती है। जो उत्पादन क्षमता व विकास स्तर नीचा होने के कारण होती है इसके लिए पूंजीनिर्माण बढ़ाकर उत्पादन क्षमता में वृद्धि लानी होती है।

(च) घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment): पूर्ण रोजगार की स्थिति में भी अर्थव्यवस्था में कुछ बेरोजगारी रहती है। अर्थव्यवस्था की आंगिक (Organic) संरचना में सदैव परिवर्तन होते हैं। कुछ उद्योग बन्द होते है कुछ नये खुलते है। बन्द उद्योगों से बेरोजगार हुए श्रमिकों को दूसरा कार्य खोजने व उसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण में समय लगता है। इस दौरान यह बेरोजगार रहता है। नये कार्य में कार्य आरम्भ करने तक की बेरोजगारी घर्षणात्मक होती है। यह हर प्रकार की अर्थव्यवस्था में सदैव विद्यमान होती है।

बेरोजगारी का मापन (Measurement of Unemployment)

एक व्यक्ति को 8 घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से यदि वर्ष में 273 दिन का रोजगार प्राप्त हो तो यह एक मानक–मानव–वर्ष (Standard person year) कहलाता है। राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण ने बेरोजगारी के मापन के लिए तीन अवधारणाऐं दी हैं।

(क) सामान्य स्थिति बेरोजगारी (Usual Status Unemployment): यह उन व्यक्तियों की संख्या है जो सर्वेक्षण अवधि के पूर्व के एक वर्ष में किसी प्रकार के रोजगार में नहीं होते। यह दीर्घकालीन बेरोजगारी या खुली बेरोजगारी को दर्शाती है। इसमें यह देखा जाता है कि व्यक्ति सामान्यतया रोजगार में है, बेरोजगार है अथवा श्रम–शक्ति से बाहर है।

(ख) साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (Weekly Status Unemployment): इसमें सर्वेक्षण के पिछले एक सप्ताह में व्यक्ति का रोजगार देखा जाता है। यदि इन सात दिनों में किसी भी दिन एक घण्टे भी रोजगार नहीं प्राप्त होता तो उसे उस सप्ताह के लिए बेरोजगार माना जाता है।

(ग) दैनिक स्थिति बेरोजगारी (Daily Status Unemployment): इसमें व्यक्ति को पिछले सात दिन के प्रतिदिन के रोजगार के बारे में देखा जाता है। यदि व्यक्ति किसी भी दिन एक से चार घण्टे तक रोजगार में होता है तो उसे आधे दिन के लिए रोजगार में माना जाता है। चार घण्टे से अधिक

रोजगार में होने पर उसे पूरे दिन के लिए रोजगार में माना जाता है। यह दैनिक स्थिति बेरोजगारी प्रति सप्ताह बेरोजगारी के श्रम दिनों का प्रति सप्ताह कुल श्रम दिनों से अनुपात है। इसे बेरोजगारी की समय दर (time rate) में मापा जाता है। दैनिक स्थिति बेरोजगारी मापन बेरोजगारी का सर्वाधिक व्यापक माप है इसमें सभी तरह की बेरोजगारी का समावेश हो जाता है।

भारत में बेरोजगारी का आकार (Size of Unemployment in India):

भारत में बेरोजगारी के आंकड़ों के चार स्रोत है। भारत की जनगणना रिपोर्ट, राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन की रोजगार व बेरोजगारी की अवस्था संबंधी रिपोर्ट, रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के रोजगार कार्यालय में पंजीकृत आंकड़ों तथा श्रम ब्यूरो द्वारा वार्षिक आधार पर पारिवारिक रोजगार–बेरोजगारी संबंधी सर्वेक्षण। इन सभी स्रोतों के आंकड़ों में अन्तर होता है क्योंकि इनका उद्देश्य व कार्य पद्धति भिन्न–भिन्न है। शहरी क्षेत्रों में प्रमुख रूप से औद्योगिक व शिक्षित बेरोजगारी होती है। जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प रोजगार (छिपी बेरोजगारी तथा मौसमी बेरोजगारी) तथा खुली बेरोजगारी होती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षित बेरोजगारी बिल्कुल नहीं होती लेकिन प्रमुख रूप से शहरी क्षेत्र में शारीरिक श्रम करने वाले बेरोजगार (औद्योगिक बेरोजगार) कहे जाते हैं। शिक्षित बेरोजगार गैर शारीरिक श्रम करने वाले बेरोजगारों का अनुपात है। वर्तमान में बेरोजगारी के सन्दर्भ में सबसे व्यापक व नवीनतम आंकड़े राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन द्वारा 2011–12 में 68वें दौर के संमंक उपलब्ध है। उनके अनुसार देश में रोजगार व बेरोजगारी की दशा निम्न प्रकार थी।

तालिका– 1 भारत में रोजगार व बेरोजगारी की स्थिति

प्रणाली	1999–2000	2004–05	2011–12
श्रम बल में शामिल व्यक्ति (मिलियन में)			
यू.एस.	407.0	469.0	483.7
सी.डी.एस.	363.3	417.2	440.2
नियुक्त व्यक्ति तथा व्यक्ति दिवस (मिलियन में)			
यू.एस.	398.0	457.9	472.9
सी.डी.एस.	336.9	382.8	415.7
बेरोजगारी की दर (प्रतिशत में)			
यू.एस.	2.2	2.3	2.2
सी.डी.एस.	7.3	8.2	5.6

स्रोत– भारत में रोजगार व बेरोजगारी पर एन.एस.एस.ओ. द्वारा आयोजित कई सर्वेक्षण

टिप्पणी–1. यू.एस. (प्रधान + अनुषंगी) व्यक्तिशः रोजगार को मापता है। जबकि सी.एस.डी. व्यक्ति दिवसों को मापता है।

2. श्रम बल भागीदारी दर (Work force participation Rate) : प्रति 100 व्यक्तियों/व्यक्ति दिनों में श्रम बल में व्यक्तियों/व्यक्ति दिनों की संख्या के रूप में परिभाषित है।

3. कामगार जनसंख्या अनुपात (WorkerPopulation Rates) : प्रति 100 व्यक्तियों/व्यक्ति दिनों में नियोजित व्यक्तियों/व्यक्ति दिनों की संख्या के रूप में परिभाषित है।

4. बेरोजगारी दर (Unemployment Rates) : श्रम बल (नियोजन + अनियोजित) में प्रति 100 व्यक्तियों/व्यक्ति दिनों में अनियोजि व्यक्तियों/व्यक्ति दिनों की संख्या के रूप में पभिाषित है।

(क) तालिका–1 के अनुसार भारत में सामान्य स्थिति (यू. एस.) के अनुसार वर्ष 1999–2000 में 407 मिलियन व्यक्ति श्रम में शामिल थे जो वर्ष 2004–05 में बढ़कर 469 मिलियन हो गए व वर्ष 2011–12 में 483.7 मिलियन हो गए। चालू दैनिक स्थिति के अनुसार वर्ष 1999–2000 में 363.3 मिलियन व्यक्ति श्रम बल में शामिल थे जो वर्ष 2004–05 में बढ़कर 417.2 मिलियन हो गए तथा वर्ष 2011–12 में 440.2 मिलियन हो गए। अर्थात दोनों मानकों के अनुसार श्रम बल में शामिल व्यक्तियों की संख्या में 1999–2000 से 2011–12 के मध्य निरन्तर वृद्धि हुई है।

इसी प्रकार राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन के विभिन्न दौर के अध्ययनों के अनुसार सामान्य स्थिति (यू.एस.) में वर्ष 1999–2000 में 398 मिलियन व्यक्ति तथा व्यक्ति दिवस रोजगार में थे जो वर्ष 2004–05 में बढ़कर 457.9 मिलियन हो गए तथा वर्ष 2011–12 में 472.9 मिलियन हो गए। चालू दैनिक स्थिति (सी.डी.एस.) के अनुसार वर्ष 1999–2000 में 336.9 मिलियन व्यक्ति तथा व्यक्ति दिवस रोजगार की स्थिति में थे जो 2004–05 में बढ़कर 382.8 मिलियन तथा वर्ष 2011–12 में 415.7 मिलियन हो गए।

रोजगार की वार्षिक वृद्धि में गिरावट हो रही है। 1999–2000 से 2004–05 के दौरान 2.8 प्रतिशत के मुकाबले गिरकर वर्ष 2004–05 से 2011–12 के दौरान 0.5 प्रतिशत रह गई है, जबकि इन्ही अवधियों में श्रम शक्ति में वार्षिक वृद्धि दर क्रमशः 2.9 प्रतिशत तथा 0.4 प्रतिशत रही थी। रोजगार की यह वृद्धि दर बढ़ी हुई श्रम शक्ति के अनुरूप नहीं थी।

(ख) रोजगार में निम्न संरचनात्मक बदलाव हुए है।

तालिका– 2 आर्थिक गतिविधियों के अनुसार रोजगार वितरण (प्रतिशत में)

क्षेत्र	2004–05	2011–12
प्राथमिक क्षेत्र	58.4	48.9
द्वितीय क्षेत्र	18.2	24.3
तृतीय क्षेत्र	23.4	26.8

स्रोत : राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण रिपोर्ट 2011–12, 68 वां दौर प्राथमिक क्षेत्र का हिस्सा 2004–05 में 58.5 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011–12 में 48.9 प्रतिशत हो गया। जबकि द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र का हिस्सा 2004–05 में 18.2 प्रतिशत व 23.4 प्रतिशत से बढ़कर 2011–12 में क्रमशः 24.3 प्रतिशत तथा 26. 8 प्रतिशत हो गई। प्राथमिक क्षेत्र अभी भी रोजगार की दृष्टि से सबसे बड़ा क्षेत्र है। पहली बार वर्ष 2011–12 में इसका योगदान 50 प्रतिशत से कम हुआ है। दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र तृतीय क्षेत्र है। इसका सकल घरेलु उत्पाद में 61 प्रतिशत योगदान है व नियोजन में मात्र 26.8 प्रतिशत योगदान है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के तरीकों को कृषि भिन्न करके विविध रूप अपनाये जाने की जरूरत है। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर महिलाओं में रोजगार की अनुपलब्धता प्रमुख रूप से विद्यमान है। भारत में गुणवतापरक रोजगार सृजन की वृद्धि में सबसे बड़ी बाधा कुल रोजगार में विनिर्माण क्षेत्र की कम हिस्सेदारी है।

(ग) कुल रोजगार में स्वरोजगार का हिस्सा 52.2 प्रतिशत है। लेकिन इसमें कामगारों का एक बड़ा हिस्सा अभी भी कम आय सृजन वाली गतिविधियां से जुड़ा है। रोजगार की संरचना के अनुसार दो प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है एक के अनुसार स्वरोजगार नियमित वेतन रोजगार व आकस्मिक रोजगार। भारत में नियमित वेतन रोजगार व लगे श्रम की कार्यदशायें बेहतर होती है, रोजगार की सुरक्षा अधिक होती है तथा वेतन भी अधिक होता है। आकस्मिक श्रमिक को वेतन कम मिलता है, अन्य सुविधा नहीं मिलती, कार्य की दशायें भी बेहतर नहीं हो। इसलिए आकस्मिक श्रम में लगे व्यक्तियों का कम अनुपात बेहतन होता है। वर्तमान में 52 प्रतिशत श्रम स्वरोजगार में कार्यरत है। 18 प्रतिशत नियमित वेतन रोजगार में तथा 30 प्रतिशत श्रम आकस्मिक रोजगार में कार्यरत है। 1977–78 में स्वरोजगार में 58.9 प्रतिशत श्रम कार्यरत था, नियमित वेतन रोजगार में 13.9 प्रतिशत श्रम कार्यरत था तथा 27.2 प्रतिशत श्रम आकस्मिक रोजगार में कार्यरत था। नियमित वेतन रोजगार का अंश बढ़ा है तथा आकस्मिक रोजगार का अंश भी बढा है व स्वरोजगार का कम हुआ है। लेकिन आकस्मिक श्रम का ऊँचा अंश श्रम की दशाओं के लिए उपर्युक्त नहीं है। दूसरे मानक के अनुसार संगठित व असंगठित क्षेत्र में श्रम का नियोजन। संगठित क्षेत्र में वह श्रम आता है जहां सार्वजनिक व निजी क्षेत्र में 10 या उससे अधिक व्यक्ति रोजगार प्राप्त है। संगठित क्षेत्र में मजदूरी असंगठित क्षेत्र से अधिक है। 2009–10 में सार्वजनिक क्षेत्र में संगठित क्षेत्र के कुल रोजगार का 64 प्रतिशत था जबकि निजी क्षेत्र में 36 प्रतिशत कार्यरत था। वर्ष 2011–12 में कुल श्रम में 82.7 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में था तथा 17.3 प्रतिशत संगठित क्षेत्र में कार्यरत था।

(घ) भारत में चिरकालीन सामान्य बेरोजगारी 2 प्रतिशत के आस–पास रही है। जबकि सी.डी.एस. (चिरकाल व अदृश्य) बेरोजगारी 1999–2000 में 7.3 प्रतिशत से 2011–12 में 5.6 प्रतिशत थी। यह वर्ष 1999–2000 में 7.3 प्रतिशत से वर्ष 2004–05 में 8.2 प्रतिशत तक बढ़ गई थी जो पुनः वर्ष 2011–12 में घटकर 5.6 प्रतिशत हो गई। 2004–05 से 2011–12 के मध्य रोजगार में कम वृद्धि के बावजूद बेरोजगारी में कमी देखी गई है। इस गिरावट का प्रमुख कारण बड़े युवा वर्ग का श्रम बाजार में शामिल होने की बजाय शिक्षा के विकल्प का चयन करना हो सकता है जो उच्च शिक्षा में नामांकन वृद्धि से इंगित होता है।

(ड़) वर्ष 2011–12 में 55 प्रतिशत ग्रामीण पुरूष, 25 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं, 56 प्रतिशत शहरी पुरूष एवं 16 प्रतिशत शहरी महिलाएं श्रम बल में थी। देश में कामगर जनसंख्या अनुपात 39 प्रतिशत था। ग्रामीण क्षेत्रों में यह 40 प्रतिशत व शहरी क्षेत्रों में 36 प्रतिशत था। ग्रामीण पुरूषों में 54 प्रतिशत तथा ग्रामीण महिलाओं में 25 प्रतिशत था। शहरी पुरूषों में 55 प्रतिशत तथा शहरी महिलाओं में 15 प्रतिशत था। ग्रामीण भारत में सामान्य स्तर (प्रधान + अनुषंगी) में कामगारों के बीच 59 प्रतिशत पुरूष एवं 75 प्रतिशत महिलाएं कृषि क्षेत्र में कार्यरत थी। महिलाओं का अधिक प्रतिशत कृषि में नियोजित था।

शहरी क्षेत्र में सामान्य स्तर के पुरूष कामगारों में 26

प्रतिशत व्यापार होटल व रेस्तरां क्षेत्र में 22 प्रतिशत विनिर्माण क्षेत्र में एवं 21 प्रतिशत अन्य सेवा क्षेत्र में पंजीकृत था। शहरी क्षेत्र में महिला कमगारों का 40 प्रतिशत अन्य सेवाएं क्षेत्र में 29 प्रतिशत विनिर्माण क्षेत्र में तथा 13 प्रतिशत व्यापार होटल व रेस्तरां क्षेत्र में पंजीकृत था। अर्थात शहरी क्षेत्र में पुरूषों के लिए नियोजन की प्रमुख गतिविधि व्यापार होटल एवं रेस्तरां थी जबकि महिलाओं के लिए 'अन्य सेवा क्षेत्र' नियोजन की प्रमुख गतिविधि थी। 15–59 वर्ग आयु वर्ग के नियमित मजदूरी/वेतन भोगी कर्मचारी का दैनिक मजदूरी/वेतन आय ग्रामीण क्षेत्रों में 299 रु0 व शहरी क्षेत्रों में 450 रु0 था। जबकि इसी आयु वर्ग के आकस्मिक श्रमिकों (मनरेगा को छोड़कर जो अन्य सार्वजनिक कार्यों में संलग्न थे) दैनिक मजदूरी दर ग्रामीण पुरूषों के लिए 127 रु0 एवं ग्रामीण महिलाओं के लिए 111 रु0 थी। अर्थात नियमित मजदूरी आकस्मिक श्रमिकों की मजदूरी से अधिक थी। शहरी क्षेत्र की मजदूरी/वेतन दर ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक थी तथा पुरूषों की मजदूरी/वेतन महिलाओं से अधिक थी। अर्थात सबसे कम मजदूरी ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत आकस्मिक महिला श्रमिकों की थी।

भारत में बेरोजगारी का क्षेत्रीय वितरण

भारत में बेरोजगारी का क्षेत्रीय वितरण देखने पर ज्ञात होता है कि वर्ष 2011–12 में सामान्य स्थिति के अनुसार बेरोजगारी केरल (9.1 प्रतिशत) थी। उसके पश्चात पश्चिम बंगाल में 4.4 प्रतिशत थी। दैनिक स्थिति के अनुसार बेरोजगारी केरल में 15.6 प्रतिशत थी। तमिलनाडू में 9.3 प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल में 7.9 प्रतिशत थी। सामान्य स्थिति के अनुसार जिन राज्यों में 2011–12 में भारत के सम्पूर्ण बेरोजगारी अनुपात से अधिक बेरोजगारी थी उनमें केरल, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडू, बिहार, उड़ीसा तथा हरियाणा थे। दैनिक स्थिति के अनुसार वर्ष 2011–12 में सम्पूर्ण भारतीय बेरोजगारी अनुपात की तुलना में केरल, तमिलनाडू, पश्चिम बंगाल व उड़ीसा में कम थी। सबसे कम बेरोजगारी गुजरात में थी। सामान्य स्थिति के अनुसार वर्ष 2011–12 में गुजरात में 0.7 प्रतिशत बेरोजगारी थी जबकि दैनिक स्थिति के अनुसार यह 2.4 प्रतिशत ही थी। गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में बेरोजगारी दर देश के अनुपात से कम थी। देश के प्रमुख बड़े राज्यों में दैनिक

तालिका–3 बेरोजगारी दरें वर्ष 2011–12 (देश के प्रमुख राज्यों में)

राज्य का नाम	सामान्य स्थिति	साप्ताहिक स्थिति	दैनिक स्थिति
आंध्रप्रदेश	2.4	3.7	5.6
बिहार	3.7	4.2	5.0
गुजरात	0.7	0.8	2.4
हरियाणा	3.1	4.0	4.5
कर्नाटक	1.9	2.2	3.6
केरल	9.1	10.1	15.6
मध्यप्रदेश	1.1	2.0	3.6
उड़ीसा	2.9	5.1	8.3
पंजाब	2.7	3.5	4.9
राजस्थान	1.7	2.9	3.9
तमिलनाडू	3.8	4.4	9.3
उत्तर प्रदेश	2.4	3.4	5.4
पश्चिम बंगाल	4.4	5.2	7.9
असम	5.0	4.9	5.4

स्रोत : राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन 68 वें दौर के संमक

स्थिति (Current Daily Status) के अनुसार गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में बेरोजगारी की दरें सम्पूर्ण देश की दरों से कम थी। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि देश के विभिन्न राज्यों में बेरोजगारी का असमान वितरण है। एक ओर केरल में 15.6 प्रतिशत बेरोजगारी थी दूसरी ओर गुजरात में 2. 4 प्रतिशत थी (चालू दैनिक स्थिति के अनुसार वर्ष 2011–12 में)। यदि सभी राज्यों को देखा जाए तो सर्वाधिक बेरोजगारी नागालैण्ड में 27 प्रतिशत थी व त्रिपुरा में 15 प्रतिशत बेरोजगारी थी। दैनिक स्थिति के अनुसार यह 2.4 प्रतिशत ही थी। गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में बेरोजगारी दर देश के अनुपात से कम थी। देश के प्रमुख बड़े राज्यों में दैनिक स्थिति (Current Daily Status) के अनुसार गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में बेरोजगारी की दरें सम्पूर्ण देश की दरों से कम थी। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि देश के विभिन्न राज्यों में बेरोजगारी का असमान वितरण है। एक ओर केरल में 15.6 प्रतिशत बेरोजगारी थी दूसरी ओर गुजरात में 2. 4 प्रतिशत थी (चालू दैनिक स्थिति के अनुसार वर्ष 2011–12 में)। यदि सभी राज्यों को देखा जाए तो सर्वाधिक बेरोजगारी नागालैण्ड में 27 प्रतिशत थी व त्रिपुरा में 15 प्रतिशत बेरोजगारी थी।

युवा बेरोजगारी : (15 से 29) के लिए बेरोजगारी सामान्य स्तर (प्रधान + अनुषंगी) में ग्रामीण पुरूषों, ग्रामीण महिलाओं, शहरी

तालिका–4 युवा (15 से 29 वर्ष) वर्ग में बेरोजगारी की दरें (चालू दैनिक स्थिति के अनुसार) :

वर्ग	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012
ग्रामीण पुरूष	11.1	12.0	10.9	9.9
ग्रामीण महिला	10.6	12.7	12.0	10.2
शहरी पुरूष	14.7	13.7	10.5	10.9
शहरी महिला	19.1	21.5	18.9	16.7

स्रोत : राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन के विभिन्न वर्षों की रिपोर्ट

तालिका–4 के अनुसार युवा वर्ग में बेरोजगारी (चालू दैनिक स्थिति के अनुरूप) सभी वर्गों में 1999–2000 से 2011–12 के बीच कमी देखी जा सकती है। वर्ष 2011–12 में ग्रामीण युवा पुरूषों में 9.9 प्रतिशत, ग्रामीण युवा महिलाओं में 10.2 प्रतिशत, शहरी युवा पुरूषों में 10.9 प्रतिशत तथा शहरी युवा महिलाओं में 16.7 प्रतिशत बेरोजगारी की दरें थी। युवा बेरोजगारी में सर्वाधिक बेरोजगारी शहरी महिलाओं में 16.7 प्रतिशत थी।

शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment): शिक्षा मानव विकास का मुख्य उपकरण है। शिक्षा व प्रशिक्षण श्रम की दक्षता बढ़ता है। लेकिन भारत जैसे विकासशील देशों में व्यापक रूप में विद्यमान शिक्षित बेरोजगारी एक ओर श्रम को दक्ष करने में प्रयोग हुए संसाधनों पर प्रतिफल नहीं मिलता व दूसरी ओर बेरोजगारी के कारण श्रम का अपव्यय होता है। शिक्षित व्यक्ति वह व्यक्ति है जिसने सैकण्डरी व उच्च शिक्षा प्राप्त की है इसमें वे व्यक्ति भी शामिल हैं जिन्होंने डिप्लोमा व सर्टिफिकेट कोर्स कर रखे हैं। शिक्षित युवा (15 से 29 वर्ष आयु व माध्यमिक से ऊार शिक्षा स्तर) में बेरोजगारी दर सामान्य स्तर (प्रधान+अनुषंगी) में ग्रामीण पुरूषों, ग्रामीण महिलाओं, नगरीय पुरूषों व नगरीय महिलाओं में क्रमशः 8 प्रतिशत, 16 प्रतिशत, 12 प्रतिशत व 20 प्रतिशत था।

15 वर्ष से अधिक की आयु के है। शिक्षित बेरोजगारी का प्रारूप निम्न प्रकार रहा है। (क) शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में सैकण्डरी से कम शिक्षा की तुलना में सैकण्डरी व ऊपर की शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में बेरोजगारी प्रतिशत अधिक है। (ख) शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में शिक्षित महिलाओं में बेरोजगारी दर शिक्षित पुरूषों में बेरोजगारी दर से अधिक है। यह अन्तर सैकण्डरी से ऊपर के शिक्षा स्तरों में अधिक मात्रा में है। 1999–2000 की तुलना में 2011–12 में शिक्षित बेरोजगारी दर कम हुई है और यह कमी पुरूषों की तुलना में महिलाओं में अधिक हुई है। ग्रामीण पुरूषों में शिक्षित बेरोजगारी 1999–2000 में 5.6 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011–12 में 3.6 प्रतिशत हो गई। ग्रामीण शिक्षित महिलाओं में 1999–2000 में बेरोजगारी की दर 14.6 प्रतिशत से कम होकर 2011–12 में 9.7 प्रतिशत हो गई। आर्थिक विकास की धीमी गति, दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था, शिक्षितों में आवश्यक तकनीकी प्रशिक्षण व योग्यता की कमी तथा शिक्षित लोगों की मांग व पूर्ति में असंतुलन शिक्षित बेरोजगारी के प्रमुख कारण है। उच्च शिक्षित व्यक्तियों में बेरोजगारी दर अधिक है। शिक्षा के स्वरूप को विकास की आवश्यकता के अनुसार ढालने की आवश्यकता है ताकि शिक्षित व्यक्ति को बेरोजगारी का सामना न करना पड़े। इसमें यह भी आवश्यक है कि शिक्षा में गुणवता बेहतर हो। देश के सभी क्षेत्रों में अशिक्षित श्रम को शिक्षित श्रम से प्रतिस्थापन करना आवश्यक है। ऐसा करके ही देश विकास प्रक्रिया में तेजी ला सकता है।

बेरोजगारी के कारण
(Causes of Unemployment)

(क) अल्पविकास व विकास प्रारूप का रोजगार वृद्धि से असंगत होना : विकास के साथ संरचनात्मक परिवर्तन होता है कि कृषि से श्रम शक्ति मुक्त होकर गैर कृषि कार्यों में जाती है। भारत में गैर कृषि क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में रोजगार सृजित नहीं हो पाए। जिससे कृषि में अतिरिक्त लगा श्रम मुक्त हो सके व उसका गैर कृषि कार्यों में नियोजन हो सके। इसके कारण कृषि क्षेत्र में छिपी बेरोजगारी विद्यमान है तथा ग्रामीण आबादी रोजगार की तलाश में शहरों में पलायन करती है व उसे वहां भी बेरोजगारी व बदतर जीवन स्तर का सामना करना होता है। यदि कृषि का तेजी से विकास होता तो श्रम शक्ति कृषि से मुक्त होती व यदि गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार तेजी से बढ़ते तो इस बढ़ती श्रम शक्ति को उत्पादक कार्यों में नियोजित किया जा सकता था। औपनिवेशिक काल में विद्यमान छोटे व कुटीर उद्योग नष्ट हो गए व उसके बाद नियोजन में ये उद्योग रोजगार सृजित करने में असमर्थ रहे। अतः गैर कृषि श्रम गहन कार्य का अर्थव्यवस्था में विस्तार करना होगा ताकि

बेरोजगारी की समस्या का समाधान हो सके।

आजादी के पश्चात भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास का मार्ग अपनाया। इन योजनाओं में बड़े उद्योगों व पूंजी गहन तकनीक के माध्यम से उद्योगों का तेजी से विस्तार किया गया। भारत जैसे श्रम प्रचूर देश में श्रम गहन तकनीक के प्रयोग के द्वारा उत्पादन गतिविधियों का विस्तार किया जाना चाहिए था। देश में आजादी के बाद आर्थिक विकास की दर व रोजगार सृजन की दर का अन्तराल बढ़ता गया। 1980 के बाद विकास दर तेजी से बढ़ी लेकिन यह विकास दर उसके अनुरूप रोजगार सृजन नहीं कर पायी। अर्थात रोजगार विहीन विकास हुआ। उत्पादन का विस्तार तेजी से हुआ लेकिन उसके अनुरूप रोजगार का विस्तार नहीं हुआ। परिणामतः उत्तरोत्तर बेरोजगार श्रम बल का आकर ऊँचा बना रहा।

रोजगार वृद्धि दर में गिरावट का एक और कारण रोजगार लोच में गिरावट रही। अर्थव्यवस्था में रोजगार में आनुपातिक परिवर्तन को उत्पादन में आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर रोजगार लोच ज्ञात होती है। इसमें तेजी से गिरावट देखी गई है। 1983 से 1987–88 के बीच रोजगार लोच 0.68 थी जो 1993–94 से 1999–2000 के बीच गिरकर मात्र 0.16 रह गई। कृषि में रोजगार लोच इसी अवधि में 0.87 से गिरकर 0.01 रह गई। अर्थात जिस दर से उत्पादन वृद्धि हुई रोजगार वृद्धि नहीं हुई।

(ख) जनसंख्या व श्रम पूर्ति में वृद्धि (Increase in Population and Labour Supply): स्वतंत्रता के बाद मृत्यु दर में तेजी से गिरावट व जन्म दर ऊँची बनी हरने के कारण तेजी से जनसंख्या वृद्धि हुई। 1951 में जनसंख्या 36 करोड़ से बढ़कर 2011 में 121 करोड़ हो गई। जनसंख्या विस्तार से श्रम बल में विस्तार होता है। शिक्षा का प्रसार तथा स्त्रियों में रोजगार पाने की इच्छा ने श्रम बल में अधिक वृद्धि की। विकास की दर इतनी पर्याप्त नहीं थी कि इस बढ़ती श्रम शक्ति को लाभदायक रोजगार उपलब्ध करा सके। प्रतिवर्ष वर्तमान में 80 लाख व्यक्ति श्रम बल में नये जुड़ रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण आय का एक हिस्सा मूलभूत उपयोग आवश्यकता पूरी करने में अतिरिक्त खर्च होता है जो निवेश योग्य संसाधनों को कम करता है तथा कम प्रतिफल क्षेत्रों (मूलभूत आवश्यकता की वस्तुओं के उत्पादन) में निवेश के कारण (बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति हेतु) निवेश वृद्धि का प्रतिफल नीचा रहता है जो विकास दर को कम करता है।

(ग) दोषपूर्ण आयोजन (Incorrect Planning): आयोजन के प्रारम्भ के केवल यह सोचा गया कि विकास के साथ रोजगार के पर्याप्त अवसर स्वतः उत्पन्न होंगे व बेरोजगारी की समस्या को विकास प्रयास के साथ जोड़ा गया। औद्योगिक बेरोजगारी गांवों से शहरों की ओर बढ़ते पलायन, औद्योगिक विकास का अभाव तथा औद्योगिक विकास धीमी गति के कारण है जबकि शिक्षित बेरोजगारी दोष पूर्ण शिक्षा प्रणाली व रोजगार उन्मुख शिक्षा के अभाव के कारण उत्पन्न होती है। योजना द्वारा विकास ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त रोजगार अवसर उत्पन्न नहीं कर सका व गांवों में निवास आकर्षक नहीं बन सका। इसके कारण शहरों की ओर पलायन तेजी से हुआ व शहरों में बेरोजगारी की समस्या विकराल होती गई। आयोजन में पर्याप्त अद्यःसंरचना सृजत कर देश के संतुलित विकास का अभाव भी देखा गया। आयोजन पर्याप्त श्रम गहन तकनीक के प्रयोग को प्रोत्साहन नहीं दे सका। पूंजी पर ब्याज दर कृत्रिम रूप से कम रखकर पूंजी गहन तकनीक के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया गया। आयोजन कृषि, कृषि अनुषंगी क्षेत्रों, कुटीर व लघु उद्योगों को पर्याप्त प्रोत्साहन देने व उनका विकास करने में समर्थ नहीं हुआ। भारतीय आयोजन में विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों, प्रदेशों, कौशलों के संबंध में श्रम शक्ति की मांग व आपूर्ति में समन्वय रखने की कमी रही।

(घ) अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली : शिक्षा प्रणाली को आर्थिक विकास की जरूरतों के अनुरूप तैयार किया चाहिए। गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal) के अनुसार भारतीय शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य मानव स्रोतों का विकास करना नहीं रहा। यहां की शिक्षा प्रणाली सरकार और व्यवसायिक प्रतिष्ठानों के लिए क्लर्क और नीचे दर्जे के प्रशासनिक अधिकारी पैदा कर सकती है। इस प्रकार की शिक्षा देने वाली संस्थाओं के विस्तार से बेरोजगारी बढ़ना जरूरी था। वर्तमान शिक्षा प्रणाली मानव स्रोतों का विकास नहीं करती व लोगों को व्यापक स्तर पर रोजगार भी नहीं दिला सकती। वर्तमान में शिक्षा प्रणाली आयोजन में कौशल विकास को शामिल कर इस दिशा में सार्थक पहल आरम्भ की गई है।

बेरोजगारी निवारण हेतु सरकारी नीति

(Government Policy for unemployment Reduction)

आयोजन के आरम्भ में यह सोचा गया कि विकास से स्वतः पर्याप्त मात्रा में रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे जो विद्यमान व बढ़ते श्रम बल को रोजगार उपलब्ध कर सकेगा। लेकिन पांचवीं योजना में यह विचार आया कि रोजगार वृद्धि के लिए केवल विकास दर पर निर्भरता पर्याप्त नहीं है। रोजगार वृद्धि के लिए सरकारी व निजी संगठित क्षेत्र में रोजगार देने के अतिरिक्त पृथक कार्यक्रम अपनाये जाने आवश्यक है। छठी पंचवर्षीय योजना में अल्प रोजगार को कम करने तथा बेरोजगारी की समस्या को हल करने को उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया। कृषि, लघु व कुटीर उद्योग तथा सहायक गतिविधियों में स्वरोजगार के अवसर बढ़ाने का प्रयास किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में विकास आयोजन की रणनीति से उत्पादक रोजगार सृजित करने को उच्च प्राथमिकता दी गई। श्रम बल की वृद्धि दर रोजगार वृद्धि से अधिक होने के कारण वर्ष प्रतिवर्ष बेरोजगार श्रम शक्ति का आकार बढ़ता चला गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना में संवृद्धि की उत्पादन संरचना में परिवर्तन द्वारा प्रतिवर्ष रोजगार वृद्धि का लक्ष्य 2.6 से 2.8 प्रतिशत रखा गया ताकि अगले दस वर्षों में बेरोजगारी को पूर्णतः समाप्त किया जा सके। कृषि में विविधिकरण, बेकार पड़ी भूमि का विकास, ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि कार्यों का विस्तार, असंगठित व सेवा क्षेत्र का तेज विकास, लघु व विकेन्द्रित उद्योगों के विकास पर बल दिया गया। नवीं पंचवर्षीय योजना में श्रम गहन क्षेत्रों (Sectors) तथा उन क्षेत्रों (Regions) पर बल देने का लक्ष्य रखा गया जहां बेरोजगारी अधिक मात्रा में थी। यह माना गया कि रोजगार के अवसर उत्पन्न करने व उनका लाभ उठाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक है। दसवीं योजना में रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों (कृषि व संबंध व्यवसाय, लघु व मध्यम उद्यमों, शिक्षा व स्वास्थ्य, निर्माण, पर्यटन, सूचना प्रोद्योगिक आदि) के विकास पर बल देने का लक्ष्य रखा गया। ग्याहरवीं पंचवर्षीय योजना में रोजगार में तेजी से विस्तार व रोजगार की गुणवत्ता में सुधार लानेवाली रोजगार युक्ति अपनाने पर बल दिया गया व 5.8 लाख रोजगार अवसर सृजित करने की बात कही गई। ग्याहरवीं योजना में श्रमगहन क्षेत्रों (निर्माण, पर्यटन, हथकरघा, दस्तकारी, रत्न–जवाहरात, चमड़े के उत्पाद, खाद्य–प्रसंस्करण आदि) क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने पर बल दिया गया। बाहरवीं योजना में विनिर्माण क्षेत्र को विकास का महत्वपूर्ण माध्यम बनाने पर बल दिया गया। इसके द्वारा वर्ष 2002 तक 10 करोड़ रोजगार अवसर सृजित करने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में गैर कृषि क्षेत्र में 5 करोड़ रोजगार अवसर पैदा करने व इतने ही लोगों को कौशल प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। रोजगार उत्पन्न करने के ये कार्यक्रम प्रमुख रूप से तीन प्रकार के थे।

प्रथम, मजदूरी रोजगार कार्यक्रम : इनका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान अकुशल श्रम के लिए मजदूरी रोजगार उत्पन्न करना था। इसमें ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम, रोजगार आश्वासन योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, नेहरू रोजगार योजना व रोजगार गारन्टी योजना (2005) शामिल है। ये कार्यक्रम समय–समय पर मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराने के लिए लागू किए गए थे। रोजगार गारन्टी योजना में ग्रामीण अकुशल श्रम परिवार को एक वर्ष में 100 दिन का अकुशल मजदूरी रोजगार देने की गारन्टी दी गई थी। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक अल्परोजगार की स्थिति को ध्यान में रखते हुए ये कार्यक्रम सरकार द्वारा लागू किए गए।

दूसरा, बेरोजगारों को स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षित करना तथा कोई उत्पादक सम्पत्ति उपलब्ध कराना ताकि ये अपना स्वरोजगार कर निर्धनता से बाहर आ सकें तथा रोजगार कर सकें। दूसरी प्रकार के कार्यक्रमों में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाकों को प्रशिक्षण का राष्ट्रीय कार्यक्रम (TRYSEM) तथा शहरी गरीबों के लिए स्वरोजगार कार्यक्रम आदि कार्यक्रम अपनाये गये।

तीसरा, क्षेत्र विकास के कार्यक्रम अपनाये गए ताकि क्षेत्र विशेष की अल्पविकास, सूखा व अन्य समस्याओं के निदान के साथ रोजगार के अवसरों का सृजन किया जा सके। इनमें वाटर शेड विकास कार्यक्रम, मरू विकास कार्यक्रम, सूखा प्रवण क्षेत्र विकास कार्यक्रम आदि अपनाये गए।

प्रमुख रोजगार कार्यक्रम
(M ajor Employment Programme)

(1) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme-NREP) : यह मूलतः मजदूरी रोजगार कार्यक्रम था। इसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादक सामाजिक सम्पत्तियों का निर्माण किया गया। 1980 में यह

कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार पर निर्भर लोगों के लिए आरंभ किया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरी रोजगार के अवसर सृजित किए जा सकें। इस योजना में केन्द्र द्वारा राज्यों को राशि सीमान्त कृषक, खेतीहर मजदूरों की संख्या व गरीबी के प्रभाव के आधार पर उपलब्ध कराये गये। 1989–90 में इस कार्यक्रम को जवाहर रोजगार योजना में समाहित कर दिया गया।

(2) ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (Training for Rural Youth Self Employment Programme-TRYSEM) : ग्रामीण युवकों में स्वरोजगार प्रशिक्षण का यह कार्यक्रम 1979 में आरंभ किया गया। प्रति वर्ष 2 लाख लोगों को प्रशिक्षण के लक्ष्य के साथ यह कार्यक्रम आरंभ हुआ। प्रशिक्षण में एक तिहाई ग्रामीण युवतियों का होना आवश्यक था। कार्यक्रम के तहत सातवीं योजना में 8.8 लाख ग्रामीण लोगों को स्वरोजगार का प्रशिक्षण दिया गया। 1991 से 1999 के मध्य इसके तहत 23.3 लाख लोगों को प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण में एक तिहाई से अधिक महिलाएं व एक तिहाई जनजाति के लोग थे। वर्ष 1999 में इस कार्यक्रम को स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में विलय कर दिया गया।

(3) खेतिहर मजदूर रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (Rural Landless Employment Guarantee Programme-RLEGP) : यह कार्यक्रम 1983 में आरंभ किया गया। इस कार्यक्रम में खेतिहर मजदूरों के परिवार में कम से कम एक सदस्य को एक वर्ष में 100 दिन रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया। खेतिहर मजदूर परिवार वह परिवार होता है जिसकी आय का मुख्य स्रोत अन्य के खेतों में काम करने से प्राप्त आय से आता है। इस कार्यक्रम में निम्न आधार सरंचनाओं का निर्माण किया गया।

(क) लघु सिंचाई, विद्यालय भवन, भूमि, जल संरक्षण व तालाब निर्माण आदि (ख) सामाजिक वानिकी व फार्म वानिकी कार्यक्रम (ग) इंदिरा आवास योजना में आवास निर्माण व (घ) ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालयों का निर्माण। यह पूरी तरह से केन्द्र प्रायोजित योजना थी। 1989 में इसका जवाहर रोजगार योजना में विलय कर दिया गया।

(4) रोजगार आश्वासन योजना (Employment Assurance Scheme- EAS) : यह कार्यक्रम 1993 में देश के 772 पिछड़े विकास खण्डों में आरंभ किया गया मूलतः ग्रामीण मजदूरी रोजगार का कार्यक्रम था। प्रमुख रूप से यह आदिवासी, पहाड़ी, रेगिस्तानी व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में यह कार्यक्रम आरंभ किया गया। वर्ष 2001 में इसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना व बाद में सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में विलय कर दिया गया।

(5) जवाहर रोजगार योजना (Jawahar Rozgar Yojana-JRY) : 1989–90 में आरंभ किया गया यह कार्यक्रम मूलतः मजदूरी रोजगार का कार्यक्रम था। इसमें NREP व RLEGP का विलय कर दिया गया था। यह कार्यक्रम पंचायतों के माध्यम से लागू किया गया। योजना में 30 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं के लिए था। इस कार्यक्रम में राज्यों को सहायता आवंटन, गरीबी अनुपात, अनुसूचित जाति व जनजाति आबादी अनुपात, खेतिहर मजदूरों का अनुपात व कृषि उत्पादकता स्तर के आधार पर किया गया। खेतिहर मजदूर परिवार के एक सदस्य को 100 दिन रोजगार दिया गया। 1999 से इसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना नाम दिया गया।

(6) नेहरू रोजगार योजना (Nehru Rozgar Yojana-NRY) : यह शहरी क्षेत्र में रोजगार प्रदान करने का कार्यक्रम था। इसके तीन घटक थे (क) शहरी क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार (ख) शहरी क्षेत्रों में सुक्ष्म उद्यमों की स्थापना व (ग) शहरी क्षेत्रों में आवास को बेहतर बनाना। यह कार्यक्रम 1989 में आरंभ किया गया था।

(7) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme-IRDP) : यह 1978–79 में आरंभ किया गया मूलतः गरीबी उन्मूलन का कार्यक्रम था। यह स्वरोजगार पर आधारित था। इसके तहत उत्पादक सम्पति प्रदान की गई ताकि उससे अर्जित आय से वह गरीबी से बाहर आ सके। इसके तहत पशुपालन, रेशम कीट पालन, बुनाई, हथकरघा, हस्तशिल्प आदि गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया गया।

(8) स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (Swarn Jayanti Gram Swarazgar Yojana) : स्वरोजगार के ग्रामीण कार्यक्रमों को मिलाकर 1999 में आरंभ किया गया ग्रामीण स्वरोजगार का कार्यक्रम था। ऋण व सहायता द्वारा स्वरोजगार व उत्पादक सम्पत्ति प्रदान की गई। स्वसहायता समूह के द्वारा संचालित किया गया। 2011 तक इस कार्यक्रम में 42,168 करोड़ रुपये 168.5 लाख लोगों को सहायता के रूप

में दिए गए। बाद में इसका कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन में विलय कर दिया गया। इसमें केन्द्र, राज्य द्वारा 75:25 अनुपात में व्यय किया गया।

(9) स्वर्ण जयन्ती शहरी स्वरोजगार योजना (Swarn Jayanti Shahari Swarozgar Yojana) : इस योजना को 1997 में आरंभ किया गया। इसके पांच भाग थे। (क) शहरी स्वरोजगार (ख) शहरी रोजगार प्रोत्साहन के लिए कौशल प्रशिक्षण (ग) शहरी मजदूरी रोजगार (घ) शहरी महिला स्वरोजगार (ड.) शहरी सामुदायिक विकास नेटवर्क। 2014 तक इस योजना में 6.8 लाख लोगों को लाभ प्राप्त हुआ। 2013–14 में इस योजना में 720.5 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इसमें भी केन्द्र व राज्यों का हिस्सा तीन चोथाई एवं एक चोथाई था।

(10) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (National Rural Employment Grarantee Act.) : यह कार्यक्रम फरवरी 2006 में देश मे 200 सबसे पिछड़े जिलों में लागू किया गया। 2008 में इसे देश के सभी जिलों में लागू कर दिया गया। 2 अक्टूबर 2009 को इस योजना का नाम महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम (MGNREGA) कर दिया गया। इस कार्यक्रम में प्रत्येक ग्रामीण परिवार को निकटवर्ती क्षेत्र में 100 दिना के अकुशल मजदूरी रोजगार की गारन्टी दी गई। रोजगार में एक तिहाई आरक्षण महिलाओं के लिए रखा गया। परिवार को मजदूरी रोजगार न उपलब्ध करा सकने की स्थिति में बेरोजगारी भत्ते का प्रावधान था। कार्यक्रम का संचालन पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से किया जाता था। इसके अधीन जल संरक्षण, वानिकी, वृक्षारोपण, बाढ़ नियंत्रण, सड़कों का निर्माण आदि कार्य किए गए। 2012–13 में योजना में 39661 करोड़ रुपये खर्च किए गए।

इस कार्यक्रम के द्वारा वर्ष 2012–13 में 230 करोड़ व्यक्ति दिवस रोजगार का सृजन किया गया। योजना के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम की मांग में वृद्धि हुई व मजदूरी दर में वृद्धि हुई। योजना में महिलाओं की भागीदारी, अनुसूचित जाति व जन जाति की भागीदारी बहुत अधिक हुई। मजदूरी का भुगतान पोस्ट ऑफिस में खातों के माध्यम से होने के कारण वित्तीय समावेशन (Inclusion) हुआ तथा देश का प्राकृतिक संसाधन आधार मजबूत बना।

लेकिन कार्यक्रम की कुछ कमियां भी रही। इनमें मजदूरी भुगतान में देरी देखी गई, बेरोजगारी भत्ते का भुगतान नहीं किया गया। कार्यक्रम के क्रियान्वयन में मानकों का पूरी तरह कठोरता से पालन नहीं किया गया।

इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा रोजगार संवर्धन के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया। जिन्होंने रोजगार संवर्धन के लिए सुझाव दिए व रोजगार संवर्धन का तरीका बताया। इनमें प्रमुख निम्न हैं:–

1. राष्ट्रीय विकास परिषद समिति 1992, समिति ने ग्रामीण आधार ढ़ांचे का विकास, लघु व मध्यम शहरों का समन्वित विकास करने तथा छोटे शहरों में मजदूरी रोजगार सृजित करने की सिफारिशें की।
2. रोजगार अवसरों के लिए कार्यकारी दल ने विकास दर को तेज करने, समाज के कमजोर वर्गों के लिए विशेष रोजगार कार्यक्रम चलाने तथा शिक्षा व दक्षता निर्माण पर बल दिया।
3. दसवीं योजना में रोजगार सृजन के लिए विशेष ग्रुप ने प्रतिवर्ष एक करोड़ व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराने के लिए विकास के साथ–साथ रोजगार के विशेष कार्यक्रमों पर बल दिया।

बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु सुझाव (Suggestion to Control Unemloyment)

अल्प रोजगार, खुल बेरोजगारी, ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी व शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी की स्थिति में उसके समाधान के लिए व्यापक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाने आवश्यक हैं। इस हेतु निम्न प्रयास किए जा सकते हैं।

(क) निवेश में वृद्धि व निवेश की संरचना परिवर्तन (Increase in Investruent and Structural Change in Investament) : अर्थव्यवस्था में निवेश या पूंजी निर्माण का स्तर ऊँचा बना रहना आवश्यक है ताकि उत्पादन क्षमता ऊँची बनी रहे व रोजगार के अवसर भी तदनुरूप ऊँचे बने रहें। निवेश वृद्धि के साथ उत्पादन विस्तार होता है व रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। निवेश संरचना श्रम गहन परियोजनाओं में अधिक होना चाहिए। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में इन क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहन दिया जावे ताकि कम पूंजी से अधिक उत्पादन व अधिक रोजगार के अवसरों को उत्पन्न किया जा सके। कृषि में श्रम गहन तकनीकों का प्रयोग करके व कृषि आधारित क्रियाओं में वृद्धि की जानी चाहिए। कृषि के साथ पशुपालन, खाद्य प्रोसेसिंग उद्योगों की स्थापना, मछली

पालन व गहन खेती का विस्तार कर रोजगार के अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं।

(ख) छोटे व ग्रामीण उद्योगों की स्थापना व विस्तार (Establishment and Expansion of Small and Village Industry) : हस्तशिल्प, दस्तकारी व ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य छोटे उद्योगों का विस्तार व उनकी दक्षता में वृद्धि की जावे। इनमें कम पूंजी की आवश्यकता होती है व रोजगार लोच अधिक होती है। ग्रामीण क्षेत्र में इनकी स्थापना कर काम की तलाश में ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में पलायन को रोका जा सकता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प रोजगार व मौसमी बेरोजगारी की स्थिति में रोजगार के अवसरों का विस्तार किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़कें आदि सुविधाओं के विस्तार द्वारा रोजगार के अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं।

(ग) जन शक्ति आयोजन (Manpower Planning) : देश में उपलब्ध श्रम बल व उत्पादन में श्रम बल की आवश्यकता के मध्य उपयुक्त आयोजन की आवश्यकता है। एक ओर श्रम बल बेरोजगार है व दूसरी ओर कुशल व दक्ष श्रम बल का अभाव है। श्रम बल को दक्ष व कुशल बनाकर आवश्यकतानुसार श्रम बल में कौशल का निर्माण कर बेरोजगारी व कुशल श्रम का अभाव दोनों समस्याओं का समाधान संभव है। भारत में कुशल व दक्ष श्रम बल की अत्यधिक आवश्यकता है व इसकी उपलब्धता कम है। अतः श्रम बल को मांग के अनुसार कौशल युक्त कर रोजगार के विस्तार के साथ दक्षता में भी वृद्धि की जा सकती है।

(घ) शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन (Change in Education System) : शिक्षा प्रणाली स्थानीय रोजगार आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित की जाए। सरकार नियोजक व श्रम बल को इस तरह के शिक्षा व प्रशिक्षण का सामूहिक प्रयास करना चाहिए ताकि उच्च शिक्षा के बावजूद बेरोजगारी का सामना ना करना पड़े व देश का बेशकीमती श्रम बल बेकार रहे। शिक्षा व प्रशिक्षण उत्पादक व नियोजक की आवश्यकता तथा आर्थिक गतिविधियों के अनुरूप होना चाहिए। समयानुसार यह अध्ययन किया जावे कि बाजार में किस प्रकार के कितने श्रम बल की आवश्यकता है व उसके उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक व्यवस्थाओं का विस्तार किया जाना आवश्यक है ताकि उच्च शिक्षित श्रम बल को अकुशल कार्य न करने पड़े व दूसरी और जिस प्रकार की कुशलता युक्त श्रम बल की आवश्यकता है उनका अभाव रहे। इसके लिए अर्थव्यवस्था की दीर्घकालीन आवश्यकताओं को ध्यान रख कर शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन किया जावे।

(ड़) जनसंख्या नियंत्रण (Population Control) : देश में आर्थिक क्रियाओं का विस्तार के अनुरूप श्रम बल की आवश्यकता व श्रम बल की पूर्ति के दीर्घकालीन नियोजन के लिए भारत जैसे विकासशील देश में जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता है। आज की जनसंख्या वृद्धि कुल वर्षों बाद श्रम बल में शामिल हो जाती है उसके अनुरूप यदि आर्थिक क्रियाओं का विस्तार नहीं होता तो बेरोजगारी की समस्या का सामना करना होगा। भारत में जन्म दर को नियंत्रित कर जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता है ताकि देश के संसाधनों को बहुत अधिक जन भार से बचाया जा सके।

(ड़) विशेष रोजगार कार्यक्रम (Special Employment Programme) : देश में खुली बेराजगारी की अपेक्षा छिपी बेरोजगारी की मात्रा अधिक है। अल्प रोजगार की दशा में काम के अवसर उपलब्ध कराने के लिए मजदूरी रोजगार के कार्यक्रमों (जैसे मनरेगा) द्वारा मजदूरी रोजगार के अवसर उपलब्ध होने चाहिए। बेरोजगारी के दीर्घकालीन समाधान के लिए स्वरोजगार को बढ़ाने वाले कार्यक्रम जो उपयुक्त कुशलता व पूंजी उपलब्ध करा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर पैदा कर सके, चलाने की आवश्यकता है। इन विशेष रोजगार कार्यक्रमों का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं का विस्तार होना चाहिए ताकि श्रम बल की उत्पादकता व दक्षता में वृद्धि हो सके।

देश में ग्रामीण क्षेत्रों में छिपी बेरोजगारी व मौसमी बेरोजगारी की व्यापक विद्यमानता है। शहरी बेरोजगारी प्रमुखतः ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्रों में काम की तलाश में गए व्यक्ति है। व्यापक रूप में शिक्षित बेरोजगारी है। गरीबी, बेरोजागरी व आय की असामनता की स्थिति में विकास बेमानी हो जाता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए उत्पादन व रोजगार के बीच की कड़ी को बेहतर करने की आवश्यकता है। एक और निवेश में वृद्धि की आवश्यकता है दूसरी ओर निवेश की संरचना को अधिक श्रम का प्रयोग करने वाली बनाने की आवश्यकता है। श्रम बल की आपूर्ति व आवश्यकता में सामन्जस्य होना चाहिए। अल्पकाल में विशेष रोजगार कार्यक्रम, श्रम बाजार की

सूचना व जड़ता को कम करने की आवश्यकता है। जबकि दीर्घकाल में श्रम बल का नियोजन, विकास व निवेश के प्रारूप, रोजगार गहन श्रम बल को कुशलता पूर्ण करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं के विस्तार की आवश्यकता है ताकि बेरोजगारी की समस्या से निजात मिल सके।

महत्वपूर्ण बिन्दू

1. श्रम उत्पादन का महत्वपूर्ण संसाधन है। जब कार्य करने में सक्षम व कार्य करने के इच्छुक व्यक्ति को रोजगार नहीं मिलता है तो उसे बेरोजगारी कहा जाता है।
2. विकसित व विकासशील देशों में बेरोजगारी के कारण भिन्न होते हैं उसके अनुसार भिन्न प्रकार की बेरोजगारी होती है। विकसित देशों में चक्रीय बेरोजगारी होती है जबकि विकासशील देशों में प्रमुख रूप से छिपी हुई व मौसमी व संरचनात्मक बेरोजगारी होती है।
3. भारत में बेरोजगारी के मापन के तीन मानक है (क) सामान्य स्थिति बेरोजगारी (ख) साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी व (ग) दैनिक स्थिति बेरोजगारी। दैनिक स्थिति बेरोजगारी का सबसे व्यापक मापन है इसमें सभी तरह की बेरोजगारी समाहित होती है।
4. ग्रामीण क्षेत्र में मौसमी व छिपी बेरोजगारी का स्वरूप होता है जबकि शहरी क्षेत्र में औद्योगिक व शिक्षित बेरोजगारी का स्वरूप होता है।
5. रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र का अंश घट रहा है एवं द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र का अंश बढ़ रहा है।
6. भारत में चिरकालीन बेरोजगारी वर्ष 2011–12 में 2 प्रतिशत थी जबकि दैनिक स्थिति के अनुसर बेरोजगारी की दर 5.6 प्रतिशत थी। देश में कामगार जनसंख्या अनुपात 39 प्रतिशत है। कुल रोजगार में लगभग 52 प्रतिशत स्वरोजगार में संलग्न है।
7. अल्प विकास, विकास प्रारूप का रोजगार वृद्धि से असंगत स्वरूप, श्रम की आपूर्ति में तीव्र वृद्धि, अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली व दोषपूर्ण आयोजन बेरोजगारी के प्रमुख कारण है।
8. बेरोजगारी निवारण के लिए स्वरोजगार, प्रशिक्षण, क्षेत्र विकास व मजदूरी रोजगार सृजन के अनेक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया।
9. निवेश संरचना में परिवर्तन, छोटे व ग्रामीण उद्योगों का विस्तार कर, जनशक्ति आयोजन कर, शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन, जनसंख्या नियंत्रण व विशेष रोजगार के कार्यक्रम संचालित कर बेरोजगारी की समस्या का निवारण किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. बेरोजगारी को संबंधित आकड़े भारत में एकत्रित करता है।
   (अ) रिजर्व बैंक आफ इडिया
   (ब) स्टेट बैंक आफ इडिया
   (स) नाबार्ड
   (द) राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन ( )
2. निम्न में से बेरोजगारी का सबसे व्यापक मापन कौनसा है ?
   (अ) सामान्य स्थिति बेरोजगारी
   (ब) साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी
   (स) दैनिक स्थिति बेरोजगारी
   (द) खुली बेरोजगारी ( )
3. एक मानक रोजगार वर्ष में समाहित है।
   (अ) प्रतिदिन 6 घण्टे वर्ष में 275 दिन
   (ब) प्रतिदिन 8 घण्टे वर्ष में 273 दिन
   (स) प्रतिदिन 8 घण्टे वर्ष में 275 दिन
   (द) प्रतिदिन 8 घण्टे वर्ष में 280 दिन ( )
4. वर्ष 2011–12 में भारत में कुल रोजगार का सर्वाधिक हिस्सा किसका था ?
   (अ) मजदूरी रोजगार
   (ब) स्वरोजगार
   (स) वेतन रोजगार
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )
5. कृषि में आवश्यकता से अधिक श्रम लगा रहता है। इसके कारण श्रम की उत्पादकता कम होती है। इस अतिरिक्त श्रम को कृषि से पृथक कर दिया जावे तो उत्पादन कम नहीं होगा। यह निम्न प्रकार की बेरोजगारी है।

(अ) संरचनात्मक बेरोजगारी
(ब) छिपी बेरोजगारी
(स) चक्रीय बेरोजगारी
(द) मौसमी बेरोजगारी ( )

6. व्यापार चक्र में मंदी के दौरान उत्पादन कम हो जाता है व श्रमिकों की छंटनी करनी पड़ती है। यह बेरोजगारी का कौनसा प्रकार है ?
(अ) मौसमी बेरोजगारी
(ब) चक्रीय बेरोजगारी
(स) छिपी बेरोजगारी
(द) संरचनात्मक बेरोजगारी ( )

7. वर्ष 2011–12 में शिक्षित युवा (15 से 29 वर्ष आयु व माध्यमिक से ऊपर शिक्षा स्तर) में बेरोजगारी दर सामान्य स्तर (प्रधान + अनुषंगी) निम्न में से किस वर्ग में सर्वाधिक किनमें थी?
(अ) ग्रामीण पुरूषों में
(ब) ग्रामीण महिलाओं में
(स) नगरीय पुरूषों में
(द) शहरी महिलाओं में ( )

8. बेरोजगारी की समस्या के निदान के लिए कौनसा उपाय प्रयोग में लाया जाना चाहिए ?
(अ) निवेश में वृद्धि व निवेश की संरचना में परिवर्तन
(ब) छोटे व ग्रामीण उद्योगों की स्थापना व विस्तार
(स) जन शक्ति आयोजन
(द) अपर्युक्त सभी ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मानक व्यक्ति वर्ष (Standard parson year) क्या है ?
2. सामान्य स्थिति बेरोजगारी (Usual states Unemploy ment) मापन का अर्थ लिखिए।
3. साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (Weekly status Unem ployment) मापन का अर्थ लिखिए।
4. चालू दैनिक स्थिति बेरोजगारी (Current Daily Status Unemployment) का अर्थ लिखिए।
5. बेरोजगारी उन्मूलन के लिए भारत में अपनाये गए स्वरोजगार कार्यक्रमों में किन्हीं दो के नाम लिखिए।
6. बेरोजगारी उन्मूलन के लिए अपनाई गई मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों में किन्ही दो कार्यक्रमों के नाम लिखिए।
7. भारत में बेरोजगारी की समस्या के उत्तरदायी कोई दो कारण दीजिए।
8. ग्रामीण क्षेत्र में पायी जाने वाली बेरोजगारी के कोई दो प्रकार लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बेरोजगारी का अर्थ लिखिए।
2. छिपी हुई बेरोजगारी से क्या तात्पर्य है ?
3. मौसमी बेरोजगारी का अर्थ लिखिए।
4. भारत में बेरोजगारी मापन की तीन मानक (Status) लिखिए।
5. भारत में शिक्षित बेरोजगारी का स्तर बताइये।
6. भारत में शहरी क्षेत्र में प्रमुख रोजगार गतिविधियों के क्षेत्र लिखिए।
7. अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (यथा प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र व तृतीयक क्षेत्र) में रोजगार में हुए संरचनात्मक बदलाव को लिखिए।
8. शिक्षित बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए शिक्षा प्रणाली में किस प्रकार के परिवर्तन आवश्यक हैं बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. बेरोजगारी के विभिन्न प्रकार लिखिए व बताइये कि विकासशील देशों में बेरोजगारी की समस्या विकसित देशों में बेरोजगारी की समस्या से किस प्रकार भिन्न है ?
2. भारत में रोजगार व बेरोजगारी की स्थिति पर टिप्पणी कीजिए।
3. भारत में बेरोजगारी की समस्या के लिए प्रमुख उत्तरदाई कारणों को रेखांकित कीजिए।
4. बेरोजगारी निवारण के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों का वर्णन कीजिए।
5. भारत में बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए सुझाव दीजिए।

उत्तरमाला

(1) (द) (2) (स) (3) (ब) (4) (ब) (5) (ब)
(6) (ब) (7) (द) (8) (द)

संदर्भ ग्रन्थ

1. आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय भारत सरकार 214–15
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्रा व पुरी, हिमालय पब्लिकेशन
3. The Indian Economy, Ishwar Chand Dhingra, Sultan Chand and Sons, New Delhi
4. भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मीनारायण नाथूरामका
5. राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन, विभिन्न रिपोर्ट, भारत सरकार।

अध्याय–4.3

पर्यावरण प्रदूषण
(Environment Pollution)

पर्यावरण जीवन के लिए आवश्यक दशायें उपलब्ध कराता है तथा उत्पादन के लिए आगत प्रदान करता है। पिछले चार दशकों से आर्थिक गतिविधियों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की चिंता बढ़ती जा रही है। यह तर्क दिया जा रहा है कि वर्तमान में जारी आर्थिक विकास ने पर्यावरण को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है व भावी विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। पर्यावरण से तात्पर्य हमारे चारों ओर (आस पड़ौस) विद्यमान जैविक व अजैविक घटकों के समूह व उन घटकों के आपसी संबंध से है जो जीवन के लिए आवश्यक दशाओं को उपलब्ध कराते हैं। जैविक घटकों में मानव, पशु पक्षी, पेड़ पौधे तथा छोटे जीव आदि आते हैं तथा अजैव घटकों में जल, वायु, मिट्टि व प्रकाश आदि आते हैं। पर्यावरण अध्ययन प्रमुखतः इन जैव व अजैव पदार्थों के मध्य संबंध का अध्ययन है।

पर्यावरण जीवन के लिए चार प्रमुख कार्य करता है। प्रथम, जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक जैविक भौतिक व रासायनिक व्यवस्था प्रदान करता है जो जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इसमें वायुमण्डल, नदियां, उपजाऊ मृदा, जीव व वनस्पति जगत आदि आते है। ओजोन परत का क्षय (Ozone Deplation), ग्रीन हाऊस प्रभाव, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण व मृदा का घटता उपजाऊपन जीवन की दशाओं को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहा है। द्वितीय, पर्यावरण उत्पादन व आर्थिक गतिविधियों के लिए आगत प्रदान करता है। प्राकृतिक संसाधन नवीकरणीय या अनवीकरणीय हो सकते है। नवीकरणीय स्रोंतों को पुनः उत्पन्न किया जा सकता है। इनका अत्यधिक दोहन इनको पूर्णतः समाप्त कर सकता है। वन क्षेत्र व मछली भण्डार नवीकरणीय है। अनवीकरणी प्राकृतिक संसाधनों का सीमित भण्डार है उनके अत्यधिक दोहन से समाप्त हो जाते है इसलिए उनका विवेकपूर्ण प्रयोग करना चाहिए। तृतीय, अवशोषण कार्यः उत्पादन गतिविधियों व मानवीय गतिविधियों द्वारा अपशिष्ट (Waste) पदार्थ को पर्यावरण अपने में समाहित कर लेता है। पर्यावरण की यह क्षमता असीमित नहीं होती। दीर्घजीवी रेडियो एक्टिव पदार्थ व भारी धातुओं के अवशोषण में बहुत समय लगता है अतः इनका अपशिष्ट प्रबन्धन सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए। जल स्त्रोतों में औद्योगिक अपशिष्ट, घरेलू अपशिष्ट तथा कृषि में रसायनों का अत्यधिक प्रयोग पर्यावरण की अवशोषण क्षमता की सीमा को पार कर रहे हैं। चतुर्थ, अन्य सेवाये प्रदान करना जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य। ये जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक नहीं है लेकिन जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।पर्यावरण के उपर्युक्त चार कार्यों की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारक प्रदूषक है।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार
(Type of Pollution)

(1) वायु प्रदूषण (Air Pollution) : वायु के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में ऐसा कोई भी प्रतिकूल परिवर्तन जिसके कारण मनुष्य के जीवन, अन्य जीवों या जीवन की परिस्थितियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, वायु प्रदूषण है। थर्मल उर्जा संयत्रों, औद्योगिक इकाइयों व स्वचालित वाहनों के कारण इनसे निकलने वाली गैसों की क्षेत्र विशेष में सान्द्रता बढ़ती है। इन गैसों में कार्बनडाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, सल्फरडाई आक्साइड आदि गैसों का उत्सर्जन होता है। स्वचालित वाहनों की तेजी से बढ़ती संख्या, औद्योगिक इकाइयों द्वारा उपयुक्त प्रदूषण नियंत्रण प्रणाली न लगाने तथा थर्मल उर्जा का उर्जा में मुख्य अंश होने के कारण यह समस्या गंभीर होती जा रही है। इसमें स्वचालित वाहनों का सबसे बड़ा योगदान है। देश में मोटर वाहनों की संख्या 1951 में 3 लाख थी जो 2003 में 67 करोड़ हो गई। इसमें से 80 प्रतिशत व्यक्तिगत वाहन थे। वायु प्रदूषण के कारण घुटन, अनिद्रा, बैचेनी, सिरदर्द, हृदय की धीमी गति, ब्रोक्रांटिस तथा नेत्र आदि के रोग होते है। मानव की श्वसन क्रिया व उपायचयी क्रिया प्रभावित होती है। वनस्पति जगत, जन्तु जगत व छोटे जीवों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कार्बनडाई आक्साईड

मुख्य वायु प्रदूषक है।

वैश्विक भू मण्डल में इन गैसों की सान्द्रता (वायुमण्डल के निचले हिस्से में) बढ़ने के कारण पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ रहा है इसे **ग्रीन हाऊस प्रभाव** कहते है। इसके कारण सूर्य से आने वाली उर्जा (प्रकाश की किरणों) कम परावर्तित होती है जिसके कारण पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ रहा है। इन गैसों की अधिक सान्द्रता पृथ्वी के चारों ओर कम्बल का कार्य कर रही है। पृथ्वी के बढ़ते तापमान से बर्फ का पिघलना तेज होता है जिससे समूद्र तटीय क्षेत्र पानी में समा जाते है। वर्षा चक्र अधिक अनियमित होता है। फसलों की उत्पादकता कम होती है। इन गैसों के उत्सर्जन में विकसित देशों का बड़ा हिस्सा है। विश्व स्तर पर कार्बन की मात्रा को नियंत्रित करने के प्रयास जारी है।

1997 में जापान के क्योटो शहर में भूमण्डलीय तापन पर एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें एक सन्धि हुई जिसे अब तक 169 देश मान चुके हैं। भारत भी इस सन्धि को मान चुका है। अमेरिका व आस्ट्रेलिया ने अभी तक इसे पूर्णतः स्वीकार नहीं किया है। इसे क्योटो प्रोटोकला कहा जाता है। इस सम्मेलन में यह तय किया गया कि भूमण्डलीय ताप वृद्धि के लिए उत्तरदायी गैसों के उत्सर्जन को भागीदार देश 1990 के स्तर से 2010 तक 5 प्रतिशत कम करेंगे। यह प्रोटोकाल 2005से प्रभावी है। इसमें स्वच्छ विकास प्रक्रिया के लिए यह तय किया गया कि यदि देश के लक्ष्य उद्योग 5 प्रतिशत कटौती के लक्ष्य को नहीं प्राप्त करते है तो वे विकासशील देशों में स्वच्छ विकास उर्जा संसाधन विकसित करने हेतु तकनीकी व जानकारी उपलब्ध करवा सकते हैं ताकि उद्योगों द्वारा बिना अपने काम में कटौति किए वैश्विक स्तर पर कुल प्रदूषण में कमी आयेगी। इस सम्मेलन में प्रावधान रखा गया कि निम्न प्रदूषण एक बेचे जाने योग्य उत्पाद है। अर्थात यदि कोई उद्योग अपने 5 प्रतिशत के लक्ष्य से अधिक कटौती कर पता है तो वह किसी ऐसे देश व उद्योग को यह अधिक बचत बेच सकता है जो अपने लक्ष्य से पीछे है। इसका अर्थ है कि किसी देश द्वारा अधिक कटौती का अन्य देश को विक्रय किया जा सकता है। इस सम्मेलन में यह भी प्रावधान किया गया कि दो या अधिक देश संयुक्त प्रयासों से भूमण्डलीय तापन के लिए उत्तरदायी गैसों के विकास को घटा सकते हैं। अर्थात दो देश संयुक्त रूप से किसी उद्योग की स्थापना कर एक दूसरे के अनुभव का लाभ उठा सकते हैं।

थर्मल उर्जा संयत्रों पर निर्भरता को कम करके, औद्योगिक संयत्रों को दक्ष व पर्यावरण अनुकूल तकनीक का प्रयोग करके स्वच्छ ईधन का प्रयोग करके तथा सार्वजनिक परिवहन को मजबूत करके वायु प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता। वायु मण्डल में कार्बन की मात्रा को कम करने के लिए विकसित देशों को दृढ़ इच्छाशक्ति दिखानी होती तथा इसमें स्वच्छ तकनीक हस्तान्तरण में विकासशील देशों की मदद भी करनी होगी।

वायु मण्डल में 20 से 60 किमी ऊँचाई पर **ओजोन गैस** के संकेदण की एक परत पायी जाती है। यह परत सूर्य से आनेवाली पराबैंगनी विकिरणों का अवशोषण कर लेती है। इसके फलस्वरूप ये किरणें पृथ्वी की सतह तक नहीं पहुंचती। इससे इसके दुष्प्रभाव से बचाव होता है। एयरकंडीशनर, अवशीतन प्रणाली, अग्निशामक आदि से क्लोरोफ्लोरों कार्बन उत्सर्जित होती है। यह ओजोन की परत को समाप्त करती है जिससे सूर्य से आनेवाली पैराबैंगनी विकीरण पृथ्वी पर आती है। इससे त्वचा कैंसर व फसलों की उत्पादकता पर विपरीत असर होता है। इसलिए ओजोन की परत को नष्ट करने वाले इन योगिकों के उत्सर्जन को नियंत्रित किया जाना चाहिए। इनके प्रतिस्थापन योगिक जो वायुमण्डल की ओजोन परत को हानि पहुंचाते है प्रयोग किया जाना चाहिए।

ओजोन परत के अपक्षय को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयोसों से सितम्बर 1987 में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझोता मांट्रियल समझोता) पारित किया। इसका उद्देश्य 2010 तक पूरे विश्व में ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाली क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) गैस के उत्पादन को बंद करना था। यह समझौता जनवरी 1989 से लागू हुआ। विश्व के 191 देशों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते में निम्न निर्णय किये गए।

(क) 16 सतम्बर को विश्व ओजोन दिवस मनाने का निर्णय किया गया।

(ख) 1991–92 तक समूह–1 के रसायनों का उपयोग, उत्पादन व खपत 1986 के स्तर से 150 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ने दिया जाएगा।

(ग) 2010 तक हेलॉनों का उत्पादन एवं उपभोग को पूर्णतः समाप्त कर दिया जायेगा।

(घ) 2030 तक ओजोन के लिए अपेक्षाकृत कम हानिकारक गैस हाइड्रोक्लोरोफ्लोरो कार्बन (HCFC) को 1996 से घटाकर शून्य कर दिया जायेगा। 1979 से 1990 के बीच ओजोन के स्तर में लगभग 5 प्रतिशत की कमी आई। इसलिए मांट्रियल प्रोटोकाल को अपनाना पड़ा।

वायु प्रदूषण में वृद्धि से अम्लीय वर्षा (Acid rain) की प्रघटना होती है। औद्योगिक उत्पादन से उत्सर्जित गैसे जेसे सल्फरडाई आक्साइड, नाइट्रिक आक्साइड तथा कार्बनडाई आक्साइड वायुमण्डल में प्रवेश कर जाती है और जलवाष्प से क्रिया करके सलफ्यूरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल व कार्बोनिक अम्ल बनाती है। वर्षा के साथ यह पृथ्वी पर आता है जिससे पृथ्वी के जल स्त्रोत प्रदूषित होते है जिसका वनस्पति व जीव जगत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, भवनों का क्षरण होता है तथा मृदा की उत्पादकता कम होती है। इसलिए इन गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित कर पर्यावरण की बढ़ती अम्लीयता को नियंत्रित करने की आवश्यकता है।

(2) जल प्रदूषण (Water Pollution): पर्यावरण में होने वाली गतिविधियां जो स्वच्छ जल की गुणवता को कमजोर करती है व स्वच्छ जल की आपूर्ति को कम करती है तथा जिसके फलस्वरूप स्वच्छ जल की आपूर्ति प्रभावित होती है जल प्रदूषण है। इसका जीव जगत व वनस्पति जगत के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों का स्वच्छ जल के स्रोत में मिलाने से, घरों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ को स्वच्छ जल के स्रोत में डालने से व कृषि रसायनों का अपघटन हुए बिना स्वच्छ जल के स्रोतों में विलय, ठोस अपशिष्ट पदार्थों के उचित प्रबंधन के अभाव में व रेडियो एक्टिव पदार्थों के जल में विलय से जल प्रदूषित हो रहा है। इन सब कारणों से जल में हानिकारक योगिकों का विलय हो रहा है। हानिकारक कृषि रसायनों का जल में विलय से ये रसायन हमारे भोजन चक्र में सम्मिलित हो गए हैं। औद्योगिक उपशिष्ट को जल में डालने से अनेक हानिकारक रसायन (पारा, सीसा, तांबा व केडमियमा का पानी में विलय हो रहा है। इससे स्वच्छ जल के स्रोत प्रदूषित हो रहे हैं। बढ़ती आर्थिक गतिविधियों के कारण एक ओर प्रतिव्यक्ति स्वच्छ जल की मांग बढ़ती जा रही है दूसरी ओर इसकी आपूर्ति कम होती जा रही है। नदी तालाबों के जल के प्रदूषण के कारण जलीय जन्तुओं का विकास कमजोर होता जा रहा है। इसलिए औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि रसायनों को स्वच्छ जल स्रोत में विलय को रोका जाए व स्वच्छ जल के सीमित स्रोतों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।

(3) मृदा प्रदूषण (Soil Pollution): पृथ्वी पर विद्यमान मृदा की ऊपरी पतली परत जीवन के लिए अनमोल है उसकी भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों प्रतिकूल परिवर्तन ही मृदा प्रदूषण है। इससे मृदा की पतली परत का हास होता है, इसमें विद्यमान सूक्ष्म पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फासफोरस आदि) की मात्रा कम हो जाती है तथा जैव अंश कम हो जाते है इससे इसकी उत्पादकता घट जाती है। मृदा प्रदूषण के निम्न कारण है।

(क) वनों का कटाव (ख) अत्यधिक पशु चारण (ग) कृषि रसायनों (उर्वरक व कीटनाशक) का प्रयोग (घ) पानी का तीव्र बहाव (ड़) ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का अनुचित पद्धति (च) भूजल स्रोतों के पुनर्भरण के बिना अत्यधिक दोहन (छ) भू संरक्षण हेतु उचित तरीकों का प्रयोग न होना (ज) अनुचित सिंचाई। मृदा प्रदूषण के कारण मृदा की उत्पादकता कम हो जाती है व मानव एवं जीव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। भारत सरकार के अनुसार प्रत्येक वर्ष भूमि क्षय से 5.8 मिलियन टन से 8.4 मिलियन टन पोषक तत्वों की क्षति होती है। वृक्षारोपण, अत्यधिक चराई पर नियंत्रण, जैव उर्वरक व जैव कीटनाशकों का प्रयोग, उचित जल प्रवाह प्रणाली अपनाकर, जल का उचित उपयोग कर, उचित फसल चक्र अपनाकर तथा ठोस अपशिष्ट के उचित प्रबंध द्वारा मृदा प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।

(4) जैव विविधता का ह्रास (Lose of Biodversity): जैव विविधता पृथ्वी का महत्वपूर्ण संसाधन है। प्रत्येक जीव का एक विशिष्ट जीन संरचना होती है यह महत्वपूर्ण प्राकतिक संसाधन है। विभिन्न किस्म के पौधे, जीव व सुक्ष्म जीवों का अस्तित्व जैव विविधता है। यह जैव विविधता निम्न कारणों से महत्वपूर्ण है (क) पारिस्थितिक तंत्र के निर्माण में महत्वपूर्ण (ख) कृषि उत्पादन वृद्धि के लिए आवश्यक (ग) दवाओं की उपलब्धता– आज विश्व में अधिकतर लगभग (80 प्रतिशत) दवाओं के लिए आवश्यक पदार्थ पोधों, जन्तुओं व सुक्ष्म जीवों से प्राप्त होती है। (घ) प्रकृति के सौन्दर्य के लिए जैव विविधता आवश्यक है (ड़) मानव जीवन के लिए नवीकरणी प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता में जैव विविधता

महत्वपूर्ण है। इस जैव विविधता का निम्न कारणों से निरन्तर ह्रास हो रहा है। (क) अधिवासों का विनाश– इन जीवों के प्रकृतिक निवास स्थानों का मानवीय गतिविधियों के कारण विनाश हो रहा है। (ख) अत्यधिक दोहन– इन नवीकरणीय स्रोतों की पुनः पूर्ति की अपेक्षा अत्यधिक दोहन से इनका विनाश हो रहा है। (ग) जलवायु परिवर्तन के कारण जैव विविधता का निरन्तर ह्रास हो रहा है। क्योंकि जैव विविधता महत्वपूर्ण संसाधन है इसलिए इनके अधिवासों (habitate) को बचाकर, अत्यधिक दौहन को रोककर तथा जलवायु में अनुचित परिवर्तन को रोककर इसके ह्रास को रोका जा सकता है ताकि आगे आने वाले पीढ़ियों को ये महत्वपूर्ण संसाधन उपलब्ध रह सके।

(5) ठोस अपशिष्ट प्रबंधन (Solid waste management): अनुचित तरीके व अनुचित स्थान पर पड़ा पदार्थ जिसका पुनः उपयोग किया जा सकता है लेकिन जो पर्यावरण की कार्यप्रणाली को बाधित कर रहा है ठोस अपशिष्ट है। इस अपशिष्ट का उत्सर्जन मानवीय गतिविधि, औद्योगिक गतिविधि एवं कृषि गतिविधि के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। आजकल संचार क्रान्ति के बढ़ते उपयोग के कारण इलेस्ट्रानिक अपशिष्ट की मात्रा भी बढ़ती जा रही है। पुराने कम्प्यूटर व मोबाईलस तथा इलेक्ट्रानिक पदार्थों का अपशिष्ट बढ़ता जा रहा है। विकसित देश अपने इस अपधिष्ट को विकासशील देशों में बड़ी मात्रा में भेज रहे हैं। नाभिकीय उर्जा के उत्पादन के पश्चात बचे पदार्थ नाभिकीय अपशिष्ट में आते हैं। इनका प्रबंधन बहुत सावधानी व उचित पद्धति से किया जाना चाहिए। समुद्र में ये अपशिष्ट डाल देने से समुद्री जीवन को खतरा उत्पन्न हो जाता है। औद्योगिक अपशिष्ट बड़ी मात्रा में खुले स्थान पर डाल दिये जाते हैं अथवा स्वच्छ जल स्रोतों (जैसे नदियों में) में प्रवाहित कर दिया जाता है। इससे जल प्रदूषण होता है। घरों से निकला अपशिष्ट पदार्थ खुले में बिना ठीक प्रकार से निस्तारण किए डाल दिया जाता है। जो मानव स्वास्थ्य के लिए व पर्यावरण के लिए हानिकारक है। कृषि गतिविधियों से उत्पन्न अपशिष्ट का उचित निस्तारण नहीं होता। उन्हें जलाने से वायु प्रदूषण होता है। जबकि इस अपशिष्ट का उचित प्रयोग किया जा सकता है। बढ़ती आबादी, बढ़ता शहरीकरण व बढ़ती आर्थिक गतिविधियों की स्थिति में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की एक बड़ी समस्या विकासशील देशों में विद्यमान है। इस ठोस अपशिष्ट का उचित संग्रहण, निस्तारण व पुनर्निर्माण आवश्यक है। ठोस अपशिष्ट पदार्थ उत्सर्जन के दो मुख्या स्रोत है (क) नगरपालिका अपशिष्ट– इसमें नगरपालिका क्षेत्र में घरो, कार्यालयों, बाजारों व लघु कुटीर उद्योगों से उत्पन्न कचरा आता है। (ख) गैर नगरपालिका अपशिष्ट– इस वर्ग में कृषि, उद्योग व खनन आदि आर्थिक गतिविधियों से उत्पन्न अपशिष्ट आते है। उत्पत्ति के स्रोत के आधार पर यह वर्गीकरण किया गया है। ठोस अपशिष्ट पदार्थों का उचित प्रबंधन न होने के कारण इसका सर्वाधिक प्रभाव भूमि पर पड़ता है। भूमि की उत्पादक क्षमता कमजोर हो जाती है। यदि इन अपशिष्टों को स्वच्छ स्रोतों में डाल दिया जावे तो जल के ये स्रोत प्रदूषित हो जाते हैं। जल प्रदूषण से टाइफाइड, पेचिस, हैजा व पीलिया जैसे रोग हो जाते हैं। प्लास्टिक रबड़ आदि अजैविक अपशिष्ट को जलाने पर वायु प्रदूषण होता है।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिए निम्न प्रकार प्रयास किए जाने चाहिए (क) आवासीय क्षेत्रों में कचरा एकत्र करने की उचित व्यवस्था हो (ख) प्लास्टिक, धातु अवशेष, इलेक्ट्रानिक अवशेष तथा नाभिकीय अपशिष्टों का निस्तारण उनकी प्रकृति के अनुसार किया जाना चाहिए। (ग) अस्पताओं के ठोस अपशिष्ट का निस्तारण अलग किया जाना चाहिए। (घ) खुले स्थान पर कचरा फैंकने तथा जलाने पर रोक होनी चाहिए। (ड.) खाद्य अपशिष्टों का प्रयोग पशु आहार व बायोगैस उत्पादन में किया जा सकता है। (च) ठोस अपशिष्टों को उनके निस्तारण स्थल पर ले जाने के लिए बंद वाहन की व्यवस्था हो। (छ) ठोस अपशिष्ट निस्तारण के लिए नागरिकों, स्थानीय स्वशासन इकाइयों तथा गैर सरकारी संगठनों के सामुहिक प्रयास की आवश्यकता है। ठोस अपशिष्ट निस्तारण की नवीनतम तकनीक का प्रयोग आवश्यक है।

(6) ध्वनि प्रदूषण (Noise Pllution): असामान्य व असहनीय तेज आवाज ध्वनि प्रदूषण है। असामान्य व तेज ध्वनि को शोर भी कहते हैं। ध्वनि की तीव्रता को डेसीबल में मापा जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation) के अनुसार दिन के समय 55 डेसीबल तथा रात्रि के समय 45 डेसीबल तक ध्वनि होनी चाहिए। सामान्य बातचीत में उत्पन्न ध्वनि की तीव्रता 40–60 डेसीबल होती है। सामान्यतः 60 डेसीबल से अधिक तीव्रता की आवाज को हानिकारक माना जाता है। ध्वनि विस्तारक यंत्रों का प्रयोग वाहनों की आवाज

तथा प्राकृति खराब मौसम के दौरान आवाजे तीव्र ध्वनि उत्पन्न करते है। तीव्र आवाज मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। बादलों की गर्जना, तूफानी हवा, भूकंप, ओलावृष्टि आदि प्राकृतिक घटनाओं के समय भी तीव्र आवाज उत्पन्न होती है लेकिन ये अल्पकालीन होती है व इनका अधिक दुष्प्रभाव नहीं होता। लेकिन मानव निर्मित स्रोतों से उत्पन्न तीव्र आवाज ध्वनि प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। मानव निर्मित स्रोतों से उत्पन्न ध्वनि स्रोत के आधार पर निम्न स्रोतों में वर्गीकृत की जा सकती है। प्रथम, औद्योगिक क्षेत्रों में मशीनों से उत्पन्न आवाज। आवासीय क्षेत्रों में मशीनों की आवाज हानिकारक है तथा कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों को इस ऊँची आवाज के सम्पर्क में रहना पड़ता है। यह उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। दूसरा, परिवहन के साधनों द्वारा उत्पन्न तीव्र ध्वनि इसका कारण है। वायु परिवहन में हवाई अड्डों के आस–पास आवासीय क्षेत्र में रेल पटरी व रेल स्टेशन के आस–पास के आवासीय क्षेत्र तथा व्यस्त सड़क परिवहन के नजदीकी क्षेत्रों में परिवहन के कारण तीव्र ध्वनि उत्पन्न होती है। शहरों में वाहनों के बाधित आवागमन के कारण हार्न की तीव्र ध्वनि उत्पन्न होती है। तृतीय, मनोरंजन के साधनों द्वारा ऊँची आवाज में ध्वनि प्रदूषण होता है। धार्मिक स्थलों पर व विवाह समारोह में तेज आवाज वाले लाउड स्पीकरों का प्रयोग न केवल दिन में अपितु रात्रि में भी उत्पन्न होता है। धार्मिक कार्यकलापों के दौरान, मेलों व सांस्कृतिक कार्यक्रमों में ध्वनि विस्तारकों का उपयोग, विज्ञापनों के कारण ध्वनि प्रदूषण होता है। खनन आदि गतिविधियों से तीव्र ध्वनि उत्पन्न होती है।

ध्वनि प्रदूषण के कारण व्यक्ति की श्रवण क्षमता कमजोर हो जाती है। लगातार ऊँची आवाज के सम्पर्क में रहने से व्यक्ति ऊँची आवाज में बोलने व ऊँची आवाज में सुनने की क्षमता हो जाती हैं 90 डेसीबल से अधिक शोर श्रवण शक्ति के लिए घातक होता हैं एक अनुमान के अनुसार शहरी क्षेत्र में 10 प्रतिशत व ग्रामीण क्षेत्र में 7 प्रतिशत लोग इस विकार से ग्रसित है। अत्यधिक ध्वनि प्रदूषण से सम्पर्क में रहने से व्यक्ति की मानसिक दशा व आचरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण तनाव, चिड़चिड़ापन, थकान व मानसिक अस्थिरता जैसे मनोविकार उत्पन्न हो जाते है। जो व्यक्ति की कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। अधिक अवधि तक उच्च ध्वनि के सम्पर्क में रहने के कारण स्नायुतंत्र पर बुरा असर पड़ता है। तनाव, चिड़चिड़ापन व अस्थिर मनोदशा के कारण उच्च रक्तचाप व हृदय रोगों का खतरा उत्पन्न हो जाता है। ध्वनि प्रदूषण से व्यक्ति की रोगों से लड़ने की क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ध्वनि प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आधुनिकीकरण के साथ ध्वनि प्रदूषण की व्याप्तता बढ़ी है। ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रण करने के लिए कानून बनाकर, तकनीकी परिवर्तन करके तथा मानव व्यवहार में परिवर्तन कर इसके दुष्प्रभावों को सीमित किया जा सकता है। ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए निम्न उपाय किये जा सकते है। औद्योगिक इकाइयों की स्थापना आवासीय क्षेत्र से बाहर हो तथा मशीनों का रख रखाव ठीक रखकर उससे उत्पन्न शोर को कम किया जा सकता है। आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर कम शोर उत्पन्न करने वाली मशीनों का प्रयोग हो तथा इस प्रकार की तकनीकी काम में लाई जावे कि श्रमिकों तक ऊँची आवाज में शोर न पहुंचे। शहरी क्षेत्रों में विभिन्न स्रोतों से होन वाले शोर का स्तर निर्धारित किया जावे। इससे अधिक शोर उत्पन्न करने वालों पर कानूनी कार्यवाही हो। शहरों में शोर का उच्चतम स्तर नियत किया जाना आवश्यक है। रात्रि के समय निश्चित समय के पश्चात उत्पन्न शोर को कठोरता से नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। आवास निर्माण में ध्वनि रोधक आवासों का निर्माण किया जावे विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां आवास तीव्र ध वनि के सम्पर्क में रहते है। तीव्र शोर उत्पन्न करने वाले पुराने वाहनों पर प्रभावी रोक लगायी जावे। इस प्रकार ध्वनि प्रदूषण के लिए उचित तकनीकी उपाय, कानूनी उपाय व मानव के व्यवहार में सुधार के समन्वित योग से ही नियंत्रण किया जा सकता है। जन चेतना उत्पन्न कर ध्वनि प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों से अवगत कराया जाना चाहिए।

पर्यावरण प्रदूषण के कारण
(Causes of Environment Pollution)

1. तीव्रगति से बढ़ता औद्योगिक व उद्योगों द्वारा समुचित प्रदूषण नियंत्रण प्रणाली का उपयोग में न लाना।
2. वन क्षेत्र का ह्रास व तदनुरूप वृक्षारोपण का अभाव व अत्यधिक पशुचारण
3. वाहनों की बढ़ती संख्या के कारण उनसे निकलने वाले कार्बन की मात्रा बढ़ती जा रही है।
4. कृषि में रासायनिक खाद्य व कीटनाशकों का बढ़ता

प्रयोग तथा सिंचाई की अनुचित पद्धति तथा कृषि अपशिष्ट के समुचित निस्तारण का अभाव।

5. बढ़ती जनसंख्याः प्राकृतिक संसाधनों पर जनसंख्या दबाव बढ़ता जा रहा है। भारत में विश्व के 2.17 प्रतिशत भू क्षेत्र पर विश्व की 17 प्रतिशत आबादी रहती है।

6. निर्धनता– उर्जा के परम्परागत स्त्रोतों पर निर्भरता

7. ठोस अपशिष्ट निस्तारण की उचित पद्धति का अभाव

8. उर्जा के लिए थर्मल उर्जा स्त्रोतों पर निर्भरता

9. गैर नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन व नवीकरणीय प्राकतिक संसाधनों का कम पुर्नजनन

10. जैव विविधता के ह्रास के संबंध में पर्यावरणीय चिन्ता पर विचार ना करना

11. कार्बन उत्सर्जन नियंत्रण में विकसित देशों की प्रतिबद्धता का अभाव

पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण के सुझाव (Suggestions to Control Environment Pollution)

1. औद्योगिक प्रदूषण को उपयुक्त प्रदूषण नियंत्रण प्रणाली अपनाकर, दक्ष ईंधन प्रयोग अपनाकर तथा उचित ठोस अपशिष्ट निस्तारण प्रणाली अपनाकर प्रदूषण नियंत्रण किया जावे।

2. वृक्षारोपण कर वन क्षेत्र को बढ़ाना, अत्यधिक पशुचारण पर नियंत्रण व सामाजिक वानिकी कार्यक्रम अपनाकर वन क्षेत्र में वृद्धि करना। लकड़ी के विकल्पों का प्रयोग करना।

3. सार्वजनिक परिवहन प्रणाली का विकास करना

4. कृषि में रसायन व कीटनाशकों के स्थान पर जैविक खाद्य तथा कीटनाशकों का प्रयोग व सिंचाई में जल दक्ष उपयोग पद्धति अपनाना। उचित फसल प्रारूप अपनाना तथा कृषि अपशिष्ट का उचित निस्तारण करना।

5. जनसंख्या नियंत्रण ताकि संसाधनों पर जनसंख्या के बोझ को कम किया जा सके।

6. निर्धनता निवारण कार्यक्रमों में पर्यावरण संरक्षण की चिंताओं को ध्यान में रखना। सूखे गोबर की बजाय गोबर गैस का ईंधन के रूप में प्रयोग

7. शहरी, औद्योगिक अपशिष्टों तथा नाभीकीय अपशिष्टों का उचित निस्तारण।

8. उर्जा के स्वच्छ स्रोतों– पवन उर्जा, सौर उर्जा, ज्वारीय उर्जा– पर निर्भरता बढ़ना व दक्ष उर्जा पद्धतियों का विस्तार।

9. गैर नवीकरणी प्राकृति संसाधनों के प्रतिस्थापन खोजना व नवीकरणीय संसाधनों के पर्याप्त पुनर्जनन करना।

10. पृथ्वी पर विद्यमान जैव विविधता के संरक्षण– जैव अधिवासों की रक्षा।

11. कार्बन उत्सर्जन नियंत्रण में विकसित देश प्रतिबद्ध हों तथा विकासशील देशों को स्वच्द व दक्ष तकनीक का हस्तान्तरण करें।

पृथ्वी सम्मेलन (Earth Summit) : संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में ब्राजील के रियो डि जेनेरो शहर में भावी पर्यावरण के कार्यक्रमों की रूपरेखा के लिए एक पर्यावरण सम्मेलन 1992 में आयोजित किया गया। इसे पृथ्वी सम्मेलन नाम दिया गया। पर्यावरण से सम्बद्ध समस्याओं पर इसमें विचार किया गया। सम्मेलन में निम्न प्रमुख दस्तावेज रखे गए। प्रथम, रियो घोषणा पत्र यह 27 सूत्री घोषणा पत्र पर्यावरण नीति के मार्गदर्शक सिद्धान्तों का आबद्धकारी दस्तावेज है। द्वितीय, ऐजेडा 21 रियो सम्मेलन में 21 वीं सदी में पृथ्वी को पुनः हरा भरा करने के लिए प्रसिद्ध दस्तावेज ऐजेंडा 21 के नाम से था। इसमें गरीबी, जनसंख्या नीति, स्वास्थ्य, शिक्षा, महिलाओं, युवाओं व अविकसित मानव समुदायों पर विशेष बल दिया गया। जीविकोपार्जन के अधिकार का वर्णन है। शुद्ध जल के स्रोतों की सुरक्षा, समुद्रों की सुरक्षा, विषैले रसायनों का सुरक्षात्मक प्रयोग तथा जोखिम व रेडियोधर्मी पदार्थों से सुरक्षा आदि का वर्णन है। ऐजेंडा–21 के क्रियान्वयन पर निगरानी रखते हुए 'पर्यावरण सम्मत विकास नामक आयोग का गठन किया गया। तृतीय, पर्यावरण के बढ़ते तापमान के लिए उत्तरदायी गैसों के उत्सर्जन में कमी के संबंध में प्रावधान इसमें थे। चतुर्थ, वनों की रक्षा के संबंध में बाध्यकारी दस्तावेज था लेकिन विकासशील देशों के विरोध के चलते यह असफल रहा। पांचवां, जैव संरक्षण के संबंध में यह प्रावधान किया गया कि यदि विकसित देश गरीब देशों के जैव संसाधनों का प्रयोग करें तो अपनी जैव तकनीक एवं उसके लाभों को उन देशों के साथ बांटें। लेकिन इस संबंध में अमेरिका का दृष्टिकोण नकारात्मक रहा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सम्मेलन विश्व की सरकारों को पर्यावरण के प्रति सांचेत करने में सफल रहा व विश्व के नागरिकों को भी विश्व की पर्यावरणीय चिन्ताओं के प्रति चेतना जगाई व नई दिशा देते हुए पर्यावरण के प्रति सही सोच की ओर उन्मुख किया।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (Central Pollution Control Board) : भारत में 1974 में केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई। इसके अधीन 7 क्षेत्रीय कार्यालय व 5 प्रयोगशालाएं है। यह पर्यावरण आंकलन व अनुसंधान का प्रबंध करता है। यह विभिन्न पर्यावरणीय कानूनों के अन्तर्गत राष्ट्रीय पर्यावरणीय मानकों को बनाये रखने के लिए उत्तरदायी है। यह पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों के लिए पर्यावरण व वन मंत्रालय को तकनीकी सेवायें प्रदान करता है। यह बोर्ड भूमि, जल व वायु से संबंधित सूचनाओं का संकलन व वितरण करता है। राज्यों ने अपने–अपने राज्य बोर्ड बना रखे है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड राज्य मण्डलों को तकनीकी सहायता व मार्गदर्शन प्रदान करके तथा उनके बीच विवादों को सुलझाकर समन्वय का कार्य करता है। यह मण्डल पानी व हवा की गुणवता की निगरानी कर गुणवता मापदण्डों को बनाये रखने का कार्य करता है। यह केन्द्र सरकार को जल एवं वायु प्रदूषण को रोकन व नियंत्रित करने के संबंध में सलाह देता है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड राज्य प्रदूषण नियंत्रण मण्डलों के साथ मिलकर पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम व नियंत्रण से सम्बन्धित कानूनों के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है। यह मण्डल अपने क्षेत्रीय कार्यालयों एवं स्थानीय सरकारों के साथ परामर्श के रूप में कार्य करता है। स्वैच्छिक प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रमों एवं उर्जा संरक्षण के प्रयासों में यह उद्योगों तथा सरकार के सभी स्तरों के साथ भी कार्य करता है।

सतत विकास अवधारणा
(Concept of Sustainable Development)

अर्थव्यवस्था व पर्यावरण के संबंध में व्यापक अध्ययन यह इंगित करते हैं कि विकास का वर्तमान प्रारूप पर्यावरण को गम्भीर रूप से प्रभावित कर रहा है व यदि यह इसी प्रकार से जारी रहता है तो भविष्य में पर्यावरण आर्थिक गतिविधियों को पूरा करने में असमर्थ रहेगा। इस विषय में प्रमुख चिन्ता यह है कि भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को मानव जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितिक दशायें उपलब्ध रहेंगी या नहीं। सतत विकास अवधारणा में यही विचार प्रमुख है।

सतत विकास शब्द को पहली बार प्रमुखता से 1980 में इंटरनेशनल यूनियन फार दर कन्जर्वेशन आफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सिज द्वारा विश्व संरक्षण रणनीति (World Conservation Stratigy) में प्रस्तुत किया गया। 1987 में 'वर्ल्ड कमीशन ऑन दा एनवायरमेंट एण्ड डवलेपमेंट' के अध्ययन 'आवर कामन फ्यूचर (Our Common Future) (इसे ब्रुटलेण्ड रिपोट भी कहा जाता है।) द्वारा इस शब्द को महत्वपूर्ण बनाया गया। सतत विकास वह विकास है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति भावी पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ति की सामर्थ्य को कम किए बिना करती है। अर्थात सतत विकास परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, तकनीकि विकास की दशा तथा निर्देशन और संस्थागत परिवर्तन सभी सुसंगत रूप में हों और मानवीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने हेतु वर्तमान व भविष्य दोनों संभावनाओं की वृद्धि होती है।

सतत विकास इस विचार पर आधारित है कि वर्तमान पीढ़ियां अपने कल्याण के लिए तब तक स्वतंत्र होनी चाहिए जब तक कि ऐसा करने से भावी पीढ़ियों का कल्याण कम नहीं होता। (टाम टिनबर्गन के अनुसार) वर्तमान व भावी पीढ़ी के बीच इस आवंटन की तीन वैकल्पिक परिभाषाएं हो सकती है।

(i) कमजोर सुस्थिरता (Weak Sustainability): वर्तमान पीढ़ी द्वारा संसाधन उपयोग उस स्तर से अधिक नहीं होना चाहिए जो भावी पीढ़ियों को कम से कम वर्तमान पीढ़ी के समकक्ष कल्याण स्तर भी प्राप्त नहीं हो। कुल पूंजी का स्टॉक (प्राकृतिक तथा भौतिक पूंजी) कम नहीं होना चाहिए। यदि इनमें से एक घटक कम होता है तो दूसरा घटक इतना अवश्य बढ़ना चाहिए कि कुल स्तर समान रहे।

(ii) मजबूत सुस्थिरता (Strong Sustainability): इस व्याख्या के अनुसार शेष प्राकृतिक पूंजी के स्टॉक का मूल्य कम नहीं होना चाहिए। यह परिभाषा कुल पूंजी की अपेक्षा प्राकृतिक पूंजी पर विशेष बल देती है। इसमें यह मान्यता निहित है भौतिक व मानव पूंजी में सीमित प्रतिस्थापन संभावना होती है।

(iii) पर्यावरण सुस्थिरता (Environmental Sustainability): इस परिभाषा को अन्तर्गत केवल समग्र का मूल्य ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत (Individual) संसाधना का भौतिक प्रवाह बना रहना चाहिए। जैसे मछली पालन क्षेत्र स्थिर रहना चाहिए।

आर्थिक गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। अतः वर्तमान जनसंख्या की आवश्यकताएं पूरी करने के साथ पर्यावरण की सुरक्षा आवश्यक है। आर्थिक गतिविधियों का पर्यावरण के साथ सामंजस्य होना चाहिए। नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग उनके पुनः पूर्व स्तर को कम किए बिना

होना चाहिए। जैसे वृक्षों का उपयोग वृक्षारोपण से हो। गैर नवीकरणीय प्राकृतिक पूंजी का उपयोग उनके स्थान पर अन्य साधन (जो उनका प्रतिस्थापन कर सके) की समकक्ष मात्रा से अधिक नहीं करना चाहिए। जनसंख्या का भार प्राकृतिक पूंजी की उपलब्धता के अनुरूप होनी चाहिए। बहुत अधिक जनसंख्या भार हमारी भावी पीढ़ी की आवश्यकता पूर्ण करने के सामर्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। संयुक्त राष्ट्र संघ के सामान्य निष्कर्षों के अनुसार यदि वर्तमान आबादी और उपभोग की प्रवृति जारी रहती है तो वर्ष 2030 तक हमें अपने भरण–पोषण के लिए दो पृथ्वियों की जरूरत पड़ेगी। तकनीकि दक्ष होनी चाहिए अर्थात कम आगत से अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। उर्जा के पर्यावरण अनुकूल स्रोतों को अपनाया जावे जैसे पवन उर्जा, सौर उर्जा, गोबर गैस व लघु जलीय विद्युत संयत्र व इनका विकास तेजी से किया जावे क्योंकि पैट्रोल व कोयले द्वारा विद्युत उत्पादन एक ओर उनके स्थिर भण्डार को कम कर रहा है दूसरी और प्रदूषण का कारक है। नई हरित क्रान्ति के बाद रासायनिक उर्वरको का उपयोग तथा कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता कम हो गई है। ये जहरीले रासायनिक पदार्थ कृषि उत्पादों व जल द्वारा हमारे भोजन में समाहित हो रहे है। इनके स्थान पर जैविक खाद, जैविक कीट नियंत्रण का प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि पर्यावरण का नुकसान कम हो।

भारत सरकार द्वारा वर्तमान में विकास व पर्यावरण पर संतुलन रखने का प्रयास जारी है। देश में महत्वपूर्ण पर्यावरणीय उपाय किए गए हैं जिनका उद्देश्य नदियों का संरक्षण, शहरी वायु की गुणवत्ता में सुधार, वन रोपण में वृद्धि, नवीकरणीय उर्जा स्रोतों की स्थापित क्षमता में तीव्र वृद्धि, सार्वजनिक परिवहन को अपनाना तथा शहरी व ग्रामीण आधारभूत संरचना में बढ़ोतरी करना। स्वच्छ भारत मिशन निर्मल गंगा योजना व राष्ट्रीय सौर मिशन आदि हाल के प्रयास हैं।

रियों में जून 2012 में आयोजित सतत् विकास संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (रियो+20) के परिणाम दस्तावेज ''दिफ्युचर वी वांट'' के अधीन कार्यदल ने जुलाई 2014 में 17 सतत् विकास लक्ष्य निर्धारित किए। इन सतत् विकास लक्ष्यों में व्यापक स्तर पर सुस्थिर विकास के मुद्दे शामिल है और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यान्वयन के साधनों का भी वर्णन है।

सतत् विकास लक्ष्य

1. गरीबी के सभी रूपों को सर्वग समाप्त करना।
2. भुखमरी को समाप्त करना, खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना और पोषण में सुधार लाना तथा सम्पोषणीय कृषि को बढ़वा देना।
3. स्वास्थ्य सुनिश्चित करना और हर उम्र में सभी के लिए तंदुरूस्ती को बढ़ावा देना।
4. समावेशी और साम्यपूर्ण स्तरीय शिक्षा सुनिश्चित करना और सबके लिए आजीवन पठन पाठन के अवसरों को बढ़ावा देना।
5. लिंग संबंधी समानता हासिल करना और सभी महिलाओं एवं बालिकाओं का सशक्तिकरण।
6. सबके लिए जल और स्वच्छता की उपलब्धता और स्थायी प्रबंधन सुनिश्चित करना।
7. सबके लिए वहनीय, विश्वसनीय और आधुनिक ऊर्जा की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
8. सबके लिए स्थायी, समावेशी और सतत आर्थिक विकास, पूर्ण एवं लाभकारी तथा उचित रोजगार को बढ़ावा देना।
9. समुत्थानशील अवसंरचना निर्मित करना, समावेशी एवं संपोषणीय औद्योगिकरण को बढ़ावा देना तथा नवोन्मेष को प्रोत्साहित करना।
10. देशों के भीतर और आपस में भी असमानता कम करना।
11. शहरों और मानव बस्तियों को समावेशी, सुरक्षित, समुत्थानशील और सम्पोषणीय बनाना।
12. सम्पोषणीय खपत और उत्पादन पैटर्न सुनिश्चित करना।
13. जलवायु परिवर्तन एवं इसके प्रभावों का मुकाबला करने के लिए तत्काल कार्रवाई करना।
14. सतत विकास के लिए महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाधनों का संरक्षण करना एवं सम्पोषणीय तरीके से उपयोग करना।
15. पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्रों का संरक्षण, पुनरूद्धार करना एवं उनके सम्पोषणीय उपयोग को बढ़ावा देना।
16. संपोषणीय विकास के लिए शांतिपूर्ण व समावेशी सोसाइटियों का संवर्धन करना, सबके लिए न्याय सुलभ करना

और सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेही व समावेशी संस्थाओं का निर्माण करना।

17. कार्यान्वयन के तरीके सुदृढ़ करना और सम्पोषणीय विकास हेतु वैश्विक भागीदारी को पुनः सक्रिय करना।

स्रोत : आर्थिक समीक्षा, 2013–14 भारत सरकार।

सतत् विकास के लिए उर्जा के गैर पारम्परिक स्रोतों (गोबर गैस, एल.पी.जी., वायु शक्ति, लघु जलीय सयंत्र, सौर उर्जा व शहरी क्षेत्रों में उच्चदाब प्राकृतिक गैस) तथा देश का पारम्परिक ज्ञान व व्यवहार (जैविक कीट नियंत्रण, स्वदेशी चिकित्सा पद्धति व जैविक कम्पोस्ट खाद) को उचित स्थान दिए जाने की आवश्यकता है क्योंकि ये पर्यावरण को नुकसान किए बिना दीर्घकाल तक विकास की आवश्यकता को पूर्ण करने में सक्षम हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दू

- पर्यावरण जीवन के लिए आवश्यक भौतिक, जैविक व रासायनिक व्यवस्था प्रदान करता है, उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चा माल प्रदान करता है तथा आर्थिक गतिविधियों से उत्पन्न अपशिष्ट को विशोषित करता है।
- पृथ्वी व वायुमण्डल के घटकों में कोई प्रतिकूल परिवर्तन जिससे पर्यावरणीय कार्यप्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है पर्यावरण प्रदूषण है।
- जल का दूषित होना, वायु का प्रदूषित होना, मृदा अपटदन, जैव विविधता का ह्रास व ठोस अपशिष्ट पदार्थों के उचित निस्तारण का अभाव आदि प्रमुख पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार हैं।
- औद्योगिकरण, वाहनों की बढ़ती संख्या, वनों का विनाश व बढ़ती जनसंख्या व कृषि में अधारणीय कृषि पद्धति पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।
- सार्वजनिक परिवहन का विकास, उर्जा के स्वच्छ स्रोतों का विकास, जैविक कृषि अपनाकर व अपशिष्ट पदार्थों का उचित निस्तारण अपनाकर प्रदूषण नियंत्रण किया जा सकता है।
- विकास प्रक्रिया में पर्यावरण के साथ संबंध इस प्रकार होना चाहिए कि न कवल वर्तमान पीढ़ी अपितु आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ति की क्षमता पर प्रतिकूल परिवर्तन न हो। यह सतत् विकास कहलाता है।
- पृथ्वी का बढ़ता तापमान, ओजोन परत का क्षय व जैव विविविधता का ह्रास वर्तमान में वैश्विक समुदाय के समक्ष प्रमुख पर्यावरण चुनौतियां है। कार्बन उत्सर्जन पर नियंत्रण के विषय में सम्पूर्ण विश्व को गंभीरता से प्रयत्न करना होगा ताकि पृथ्वी को जीवन के लिए बेहतर रखा जा सके।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः

1. पर्यावरण निम्न में से कौनसा कार्य करता है।
   (अ) जीवन के लिए आवश्यक जैविक, भौतिक व रासायनिक व्यवस्था प्रदान करना।
   (ब) उत्पादन के लिए आवयक कच्चा माल प्रदान करना।
   (स) अपशिष्ट पदार्थों का अवशोषण करना।
   (द) उपर्युक्त सभी ( )
2. निम्न में से कौनसी गैस वायु प्रदूषण का कारक नहीं है।
   (अ) कार्बनडाई आक्साइड
   (ब) कार्बन मोनो आक्साईड
   (स) सल्फर डाई आक्साईड
   (द) हाइड्रोजन ( )
3. वर्तमान में मुख्य वायु प्रदूषक गैस कौनसी है।
   (अ) कार्बन मोनो आक्साईड
   (ब) कार्बनडाई आक्साईड
   (स) सल्फरडाई आक्साईड
   (द) मीथेन ( )
4. ओजान परत के क्षय के लिए उत्तरदाई गैस कौनसी है।
   (अ) क्लोरोफ्लोरो कार्बन
   (ब) हैक्साफ्लोरो कार्बन
   (स) कार्बनडाई आक्साईड
   (द) सल्फर डाई आक्साईड ( )
5. निम्न में से प्रदूषक गतिविधि कौनसी है।
   (अ) थर्मल उर्जा स्त्रोतों पर निर्भरता
   (ब) वाहनों की बढ़ती संख्या
   (स) कृषि में रसायनों का बढ़ता प्रयोग

(द) उपर्युक्त सभी ( )

6. 'वर्ल्ड कमीशन ऑन द एनवायरमेंट एण्ड डवलपमेंट' का अध्ययन 'ऑवर कॉमन फ्यूचर (ब्रुटलेण्ड रिपोर्ट) कि वर्ष आयी।
(अ) 1997 (ब) 1980
(स) 1987 (द) 1960

7. 'मान्ट्रियल प्रोटोकाल' किससे संबंधित है।
(अ) ओजोन क्षय को रोकने हेतु
(ब) पृथ्वी के बढ़ते तापमान को रोकने हेतु
(स) जैव विविधता ह्रास को रोकने हेतु
(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

8. 'क्योटो प्रोटोकाल' किससे संबंधित है।
(अ) पृथ्वी के बढ़ते तापमान पर नियंत्रण के लिए
(ब) जैव विविधता ह्रास को रोकने के लिए
(स) ओजोन क्षय को नियंत्रित करने के लिए
(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

9. ब्राजील के रियो डी जेनेरों शहर में पर्यावरण सम्मेलन 'अर्थ सम्मेलन' किस वर्ष हुआ।
(अ) 1980 (ब) 1987
(स) 1992 (द) 1965 ( )

अतिलघूत्तरामक प्रश्न

1. वायु प्रदूषण के लिए उत्तरदायी दो गैसों के नाम लिखिए।
2. ओजोन परत के नुकसान के लिए उत्तरदायी गैस का नाम लिखिए।
3. वायु प्रदूषण के लिए उत्तरदायी कोई दो कारण लिखिए।
4. पृथ्वी का तापमान बढ़ाने के लिए उत्तरदाई दो गैसों का नाम लिखिए।
5. अम्ल वर्षा के लिए उत्तरदायी दो गैसों के नाम दीजिए।
6. मृदा प्रदूषण के कोई दो कारक लिखिए।
7. जैव विविधता का ह्रास के लिए उत्तरदायी कोई दो कारण दीजिए।
8. किन्हीं तीन प्रकार के प्रदूषण का नाम लिखिए।
9. पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रण के लिए दो वैश्विक सम्मेलन उद्घोषणाओं (प्रोटोकोल्स) के नाम लिखिए।

लघूत्तरामक प्रश्न

1. पर्यावरण से क्या तात्पर्य है ?
2. पर्यावरण प्रदूषण से क्या तात्पर्य है।
3. प्रमूख पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार लिखिए।
4. वायु प्रदूषण क्या है परिभाषित कीजिए।
5. जैव विविधता के ह्रास से आप क्या समझते हैं ?
6. मृदा प्रदूषण को परिभाषित कीजिए।
7. सतत विकास से क्या तात्पर्य है ?
8. मौन्टियल प्रोटोकला क्या है ?
9. क्योटो प्रोटोकाल क्या है ?
10. मजबूत सुस्थिरता (Strong Sustainability) से क्या तात्पर्य है ?
11. मृदा प्रदूषण के कोई चार कारण लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. पर्यावरण के कार्य लिखिए।
2. वायु प्रदूषण के स्वरूप कारण व परिणामों का विवेचन कीजिए।
3. पर्यावरण प्रदूषण के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
4. पर्यावरण प्रदूषण के कारणों को लिखिए।
5. पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण के सुझाव लिखिए।
6. सुस्थिर विकास से क्या तात्पर्य है यह क्यों आवश्यक है।

उत्तरमाला

(1) (द) (2) (द) (3) (ब) (4) (अ) (5) (द)
(6) (स) (7) (अ) (8) (अ) (9) (स)

सन्दर्भ ग्रंथ

1. आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय भारत सरकार 214–15
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्रा व पुरी, हिमालय पब्लिकेशन
3. The Indian Economy, Ishwar Chand Dhingra, Sultan Chand and Sons, New Delhi
4. भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मीनारायण नाथूरामका

अध्याय–5.1

भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति
(Position of Rajasthan in indian economy)

राजस्थान का भारतीय इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान रहा है। राजस्थान अनेक रणबांकुरों, पराक्रमी व साहसी यौद्धाओं की जन्म स्थली रहा है। प्राकृतिक कठिनाईयों की तपोभूमि में राजस्थान एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था का प्रदेश माना गया है। इस अध्याय में जनसंख्या, क्षेत्रफल व आधारभूत ढांचा (Infrastructure) की दृष्टि से भारत में राजस्थान की स्थिति का विवेचन करेगें और साथ ही अन्य राज्यों की स्थिति से भी इसकी तुलना की जाएगी।

वर्तमान में राजस्थान को भारतीय अर्थव्यवस्था का एक विकासशील राज्य माना जा सकता है। भारत के पश्चिम का यह राज्य कई विरोधाभासों से जुड़ा हुआ है। इसके आधे से अधिक भाग में रेगिस्तान है। कृषि का अधिकांश हिस्सा वर्षा पर निर्भर करता है। उद्योग राज्य के कुछ ही क्षेत्रों में केन्द्रित है। राजस्थान में आधारभूत संरचना का अभाव है। भारतीय अर्थव्यवस्था ने गत 50–60 वर्षों के विकास के दौरान विकास में काफी असमानताओं का अनुभव किया है। देश के कुछ राज्यों में तो तेज गति से विकास हुआ है जब कि कुछ काफी पीछे रह गये हैं। आर्थिक विकास की इस क्षेत्रीय विषमता के पीछे राज्य की परिस्थितियां या इस राज्य की सम्पूर्ण नीति ही उत्तरदायी है। राजस्थान भारत का एक ऐसा राज्य है जो विकास की सीढी पर आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील है।

राजस्थान के भरतपुर व धौलपुर जिलों की सीमा उत्तरप्रदेश से, भरतपुर, अलवर, जयपुर, सीकर, चुरु, झुंझुनूं की सीमा हरियाणा से, हनुमानगढ़, गंगानगर की सीमा पंजाब से जुड़ी है। दक्षिण में डूंगरपुर, बांसवाड़ा, जालौर, सिरोही की सीमा गुजरात से लगती है। बांसवाड़ा, कोटा, बांरा, धौलपुर, सवाईमाधोपुर, करौली की सीमा मध्यप्रदेश से लगती है। इस प्रकार राज्य की आकृति समान्तर असम चुर्तुभुज आकार में है। इसका विस्तार लम्बाई में पश्चिम से पूर्व की ओर 869 कि.मी. व उत्तर से दक्षिण की ओर 826 कि.मी. है। जयपुर इसकी राजधानी है जो कि राज्य के पूर्व–मध्य भाग में स्थित है। तालिका–1 में राज्य की प्रमुख विशेषताएं बताई गई है।

तालिका–1

राजस्थान अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं

(Main Features of Rajasthan Econony)

क्र.सं.	मद	विवरण
1.	क्षेत्रफल	3.42 लाख वर्ग कि.मी.
2.	जिले	33
3.	संभाग	7
4.	तहसील	314
5.	जिला परिषद	33
6.	पंचायत समिति	295
7.	ग्राम पंचायत	9900
8.	कुल गाँव	45493
9.	कुल नगर	222
10.	नगर पालिकाएं	147
11.	जनसंख्या	6.85 करोड़ (2011 की जनगणना)
12.	जनसंख्या घनत्व	200 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी.

राज्य की आधारभूत संरचना (बिजली, सड़क, परिवहन, दूरसंचार, आदि) तथा सामाजिक आधारभूत संरचना (शिक्षा, चिकित्सा, सफाई आदि) आज भी कमजोर स्थिति में है और भविष्य में इनके विकास किये जाने की प्रबल सम्भावनाऐं है। हम विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार राजस्थान की स्थिति पर विस्तार से अध्ययन करेंगेः–

(1) राजस्थान का क्षेत्रफल (Area of Rajasthan)

राजस्थान का कुल क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग कि.मी. है जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.41% है यानि कि लगभग 10वां भाग है जबकि गुजरात का क्षेत्रफल लगभग 6% एवं उत्तरप्रदेश का

क्षेत्रफल लगभग 7.3% है। स्पष्ट है कि राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है।

राज्य के क्षेत्रफल की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि लगभग 61% भाग में मरुस्थल है। राजस्थान का क्षेत्रफल विश्व के कई देशों से भी बड़ा है जैसे इजरायल से लगभग 16 गुना, मारीशस से 171 गुना, श्रीलंका से 5 गुना तथा नेपाल, बंग्लादेश व पुर्तगाल से लगभग ढाई गुना बड़ा है।

राजस्थान के पिछड़ेपन के पीछे केवल यही कारण नहीं है कि इस राज्य ने आर्थिक विकास की यात्रा अन्य राज्यों से देरी से प्रारम्भ की है बल्कि इसके लिए प्रकृति प्रदत्त परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी है। राजस्थान की भौगोलिक स्थिति के कारण इसकी विकास की गति उस व्यक्ति के समान है जो रेत में यात्रा कर रहा है तथा जैसे–जैसे एक कदम आगे बढ़ाता है वैसे–वैसे थोड़ा पीछे हटना पड़ता है। इसलिए इस प्रदेश को अन्य राज्यों के बराबर आने के लिए अधिक समय व प्रयत्न की आवश्यकता है।

(2) राजस्थान में जनसंख्या (Population in Rajasthan) 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या लगभग 6.85 करोड़ है जबकि भारत की कुल जनसंख्या 121.09 करोड़ आंकी गई है। राजस्थान की जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 5.7% है। 2001 से 2011 तक भारत में जनसंख्या वृद्धि 17.7% हुई है जबकि राजस्थान में यह वृद्धि 21.3% हुई है। अतः भारत की तुलना में अधिक तीव्र गति से बढ़ रही है जो एक चिन्ता का कारण बनी हुई है। 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान का स्थान जनसंख्या की दृष्टि से आठवां आता है।

(3) आधार ढांचे में राजस्थान की स्थिति (Infrastrucutral in Rajasthan) आधार ढांचे में विद्युत सिंचाई, सड़के, रेल्वे, डाकघर, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं बैंकिग स्थिति का अध्ययन किया जाता है। राजस्थान गैर विशिष्ट श्रेणी के राज्यों में आता है। आधार ढांचे के सापेक्ष विकास सूंचकाक की दृष्टि से राजस्थान का 14वां स्थान है। इसका अर्थ है कि राज्य अत्यधिक पिछड़ा हुआ है। आधारभूत विकास में राज्य की स्थिति निम्न प्रकार से है।

(i) राजस्थान में विद्युत उत्पादन के प्रमुख स्रोत कोटा व सूरतगढ़ तापीय संयन्त्र, धौलपुर, गैस तापीय संयन्त्र, माहीपन बिजली परियोजना, पवन ऊर्जा, बॉयोमास, भांखड़ा, व्यास, चम्बल व सतपुड़ा अन्तर्राज्यीय भागीदारी परियोजनाएँ और राजस्थान में परमाणु ऊर्जा संयन्त्र सिंगरोली, रिहन्द, दादरी व अन्ता परियोजनाएं है।

राजस्थान में प्रति व्यक्ति विद्युत का उपभोग 2010–11 में अनुमानतः 844 किलोवाट घंटे रहा जो गुजरात, पंजाब व हरियाणा की तुलना में कम रहा। जैसा कि नीचे तालिका में बताया गया है।

2013–14 में प्रति व्यक्ति विद्युत का उपभोग

राज्य	किलोवाट घण्टे में (KWH में)
राजस्थान	1011.2
बिहार	159.9
गुजरात	1972.6
हरियाणा	1773.1
पंजाब	1810.0
समस्त भारत	956.64

(Economic Review 2016-17 Raj. Table 27 P. A50)

दिसम्बर 2016 के अन्त तक राजस्थान में शक्ति प्रतिस्थापक क्षमता 17894.2 मेगावाट थी, जिसमें 5405.30 मेगावाट क्षमता राज्य के स्वयं के स्वामीतत्व/अंशधारी प्रोजेक्ट से प्राप्त हो रही थी तथा शेष केन्द्रीय प्रोजेक्टों, पवन उर्जा और सौर उर्जा के प्रोजेक्टों से प्राप्त हो रही थी। राजस्थान में प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग 2013–14 में लगभग 1011.2 किलोवाट घंटा रहा जो गुजरात के लगभग 1972.6 किलोवाट घण्टा की तुलना में काफी नीचे है। मार्च 2014 के अन्त तक 40249 गांवों का विद्युतीकरण किया जा चुका है जब कि 2011 की जनगणना के अनुसार गांवों की सम्भावित संख्या 45493 आंकी गई है।

(ii) मार्च 2016 के अन्त में राजस्थान में प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रों पर सड़कों की लम्बाई 63.61 कि.मी. रहने का अनुमान है। जबकि राष्ट्रीय औसत 166.47 कि.मी. आंका गया है। जिसकी तुलना में राज्य की स्थिति संतोषजनक नहीं है।

(iii) सड़कों का व्यवस्थित एवं सक्षम परिक्षेत्र राज्य के सन्तुलित एवं समावेशित विकास के लिए एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण साधन है। सड़कों का आधारभूत ढांचा अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के लिए कुशल एवं प्रभावशाली आधार तैयार करता है, इसके परिणामस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक लाभ प्राप्त होते है। सड़कों के रख–रखाव से आम–आदमी, बाजारों,

सेवाओं और ज्ञान के क्षेत्रों की दूरियां कम करना चाहता है। सामान्य भाषा में लोगों को आपस में जोड़ना भी आर्थिक वृद्धि का ही एक महत्त्वपूर्ण भाग है। एक राष्ट्र के आर्थिक विकास और इसके सड़क तंत्र की गुणवत्ता के मध्य गहन सकारात्मक सह–सम्बन्ध होता है। राज्य में सड़कों की लम्बाई गुजरात, हरियाणा व मध्य प्रदेश से कम है। मार्च 2015 के अन्त में राज्य में रेलमार्ग की लम्बाई 5898 कि.मी. थी जिसमें ब्राड गेज का अंश 4801.18 कि.मी., मीटर गेज का 983.71 कि.मी. एवं शेष 86.76 कि.मी. संकरी (नैरोगेज) का था। इसको भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

(iv) राज्य में अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों में साक्षरता का अनुपात काफी नीचा पाया जाता है। इस दिशा में अभी भी प्रयासों की आवश्यकता है। नामांकन वृद्धि तो हो रही है परन्तु स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ रही है। वर्ष 2010–11 में राजस्थान व भारत के लिए सकल नामांकन अनुपात (Gross Enrolment Ratio) कक्षा 1 से 5 तथा 6 से 8 के लिए निम्न मालिका में दर्शाया गया है।

2014–15 में प्राइमरी स्तर पर सकल नामांकन अनुपात (प्रतिशत में)

क्षेत्र	प्राथमिक कक्षा (1 से 5), आयु वर्ग 6 से 10 वर्ष			उच्च प्राथमिक कक्षाऐं (6 से 8) आयु वर्ग 11 से 13 वर्ष		
	लड़के	लड़कियाँ	कुल	लड़के	लड़कियाँ	कुल
राजस्थान	99.8	97.3	98.6	87.4	83.9	85.8
सम्पूर्ण भारत	98.9	101.4	100.1	87.7	95.3	91.2

(Economic survey 2016-17 P.111 Statistics of School Education)

सारणी से स्पष्ट है कि कक्षा 6 से 8 तक में नामांकन की दृष्टि से लड़कियों का अनुपात समस्त भारत से कम है।

राज्य में साक्षरता का अनुपात भी काफी नीचा है। 2011 में यह 66.1% रहा जबकि पुरूषों के लिए 79.2% महिलाओं के लिए 52.1% था। राजस्थान की यह स्थिति ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता का अनुपात कम रहने के कारण है।

(v) स्वास्थ्य सूचक दृष्टि से भी राजस्थान भारत की तुलना में पीछे ही है निम्नलिखित सारणी में स्वास्थ्य सूचक सूचकांक बताये गये है।

क्षेत्र	शिशु मृत्यु दर 2015 में प्रति हजार	जन्मदर 2015 में प्रति हजार	मृत्यु दर 2015 में प्रति हजार
राजस्थान	43	24.8	6.3
भारत	37	20.8	6.5
केरल	12	14.7	6.9

(Economic survey 2016-17 Table 27, P. A49)

तालिका से स्पष्ट है कि राजस्थान में जन्मदर प्रति हजार भारत से अधिक है। मृत्युदर में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन शिशु मृत्यु दर भारत की तुलना में राजस्थान में अधिक है। तालिका में साफ नजर आता है कि केरल की स्थिति सभी प्रकार से भारत व राजस्थान से बेहतर है। स्वास्थ्य सुविधाओं के अन्तर्गत 2016 के अन्त में राज्य में ऐलोपैथिक मेडिकल संस्थानों की कुल संख्या 17546 थी जिसमें से अस्पतालों की संख्या 114 थी इसमें मेडिकल कॉलेज शामिल नहीं है। 17546 में से डिस्पेन्सरियां 194 व उपस्वास्थ्य केन्द्र 14408 थी एवं शेष रही संख्या अन्य संस्थाओं की रही है।

(vi) बैंकिग सुविधाओं की दृष्टि से राजस्थान की स्थिति सन्तोषजनक कही जा सकती है जून 2016 में प्रतिलाख जनसंख्या पर बैंकों की संख्या की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश का प्रथम स्थान रहा है। भारत की दृष्टि से राजस्थान ज्यादा पीछे नहीं है।

(4) कृषि की दृष्टि से राजस्थान की स्थिति (Position of Agriculture in Rajasthan Economy)

राजस्थान एक कृषि प्रधान राज्य है जिसकी लगभग 70% आबादी कृषि पर निर्भर करती है। राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है जहां कुल राज्य आय का लगभग आधा भाग कृषि एवं उससे सम्बन्धित कार्यकलापों से प्राप्त होत है। कृषि उत्पादन में सिंचाई सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। राज्य में सतही जल स्रोतो की कमी है। वर्षा की विषमता एवं अभाव के कारण भूमिगत जल स्तर नीचे जा रहा है इसलिए कृषि का महत्व ओर अधिक हो जाता है। राज्य में वर्षा के विलम्ब से आगमन, असमान वितरण तथा प्रतिकूल मौसमी परिस्थितियों के कारण उत्पादन में कमी–बेशी (कम, अधिक) होती रहती है। सारांश के रूप में कृषि का योगदान मुख्य रूप से निम्न प्रकार से देखा जा सकता है:–

(i) औसत जोत का आकार 2010–11 में 3.07 हैक्टेयर पाया गया जबकि समस्त भारत में 1.15 हैक्टेयर रहा। 2005–06

में राजस्थान में 3.38 हैक्टेयर था तो कह सकते है कि इसका आकार राजस्थान में घट रहा है। कृषि जोत में भारत में नागालैण्ड का प्रथम स्थान रहा जबकि राजस्थान का स्थान चतुर्थ पाया गया।

(ii) 2009–10 में राजस्थान में भारत के कुल कृषि क्षेत्रफल का 11.3% पाया गया जबकि भारत में प्रथम स्थान पर उत्तर प्रदेश एवं राज्य का स्थान तीसरा रहा।

(iii) प्रमुख फसलों के उत्पादन में राजस्थान देश के तिलहन उत्पादन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण राज्य के रूप में उभरा है। देश के तिलहन उत्पादन का लगभग 1/8 भाग राजस्थान में होता है। राई व सरसों के उत्पादन में राजस्थान अग्रणी राज्य हो गया है। देश के कुल उत्पादन का आधा भाग (राई व सरसो में) राजस्थान का पाया गया है।

(iv) 2015–16 में खाद्यान्नों के उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान का उत्पादन, समस्त भारत के कुल उत्पादन का 7.5% रहा है। उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान कपास में भी महत्त्वपूर्ण राज्य बन गया है।

(v) राज्य की मुख्य फसलों में ज्वार, चावल, बाजरा, ग्वार, मक्का, चना, गेहूँ, सरसों, तिलहन, कपास व दालें प्रमुख है। पिछले कुछ वर्षों से सब्जियों और सन्तरा उत्पादन तथा माल्टा जैसे नीम्बू जाति के फलों के उत्पादन में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यहां की व्यापारिक फसलों में लाल मिर्च, मैथी, सरसों और जीरा प्रमुख है।

सिंचाई की दृष्टि से राजस्थान की स्थिति

राजस्थान की कृषि मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर करती है। सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता में काफी क्षेत्रीय विषमताएं है। राजस्थान के कुछ क्षेत्र तो ऐसे है जहां खेती के लिए भूमिगत जल उपलब्ध है जब कि कुछ क्षेत्रों में नहरों की सहायता लेनी पड़ती है। राजस्थान में चम्बल, माही, रावी, व्यास नदियों से जल प्राप्त हो रहा है। गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर, व जोधपुर जिलो को इन्दिरा गांधी नहर से पानी मिल रहा है जबकि चम्बल से कोटा, बांरा, बून्दी व सवाईमाधोपुर को जलापूर्ति हो रही है। माही– बजाज सागर योजना से बांसवाड़ा की जलापूर्ति बढ़ी है।

राजस्थान में 2012–13 में सकल सिंचित क्षेत्रफल, सकल कृषि क्षेत्रफल का लगभग 39.47% रहा था जो समस्त भारत की तुलना में कम पाया गया। राजस्थान का प्रतिशत हर साल घटता–बढ़ता रहता है।

(5) राजस्थान के उद्योगों की स्थिति (Industries in Rajasthan) राजस्थान की अर्थव्यवस्था धीरे–धीरे प्रगति करने वाली तथा औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था है। परन्तु धीरे–धीरे राज्य में औद्योगिक वातावरण का माहौल तैयार करने में राज्य सरकार औद्योगिक नीतियां बनाकर प्रयत्नशील है। नवम्बर 2015 में रिसर्जेन्ट (Resurgent) राजस्थान के तहत देश–विदेश के उद्योगपतियों का सम्मेलन जयपुर में किया गया है। जिससे राज्य में निवेश का वातावरण बन सके। उद्योगों की दृष्टि से स्थिति का निम्न प्रकार से अध्ययन कर सकते है।

(i) सकल राज्य घरेलू उत्पादन में उद्योगों का योगदान :– राज्य की अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत बिना दोहरी गणना किए हुए एक निश्चित अवधि में, एक वर्ष में समस्त अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को सकल राज्य घरेलु उत्पाद कहा जाता है। राज्य घरेलु उत्पाद को प्रायः प्रचलित एवं स्थिर दोनों कीमतों पर अनुमानित किया जाता है।

सकल राज्य घरेलु उत्पाद द्वारा राज्य में अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण उपलब्धियों को आंका जाता है। राज्य की अर्थव्यवस्था प्रायः कृषि पर प्राकृतिक रूप से निर्भर होने के कारण कृषि उत्पादन के घटने–बढ़ने पर राज्य की वृद्धि दर भी घटती–बढ़ती रहती है।

1. कृषि क्षेत्र में कृषि, पशुपालन, वानिकी तथा मत्स्य क्षेत्र सम्मिलित है।
2. उद्योग क्षेत्र में खनन, पंजीकृत विनिर्माण इकाइयां, अपंजीकृत विनिर्माण इकाइयां, विद्युत, गैस एवं जलापूर्ति तथा निर्माण क्षेत्र शामिल है।
3. सेवा क्षेत्र में रेलवे, अन्य यातायात, भण्डारण संचार, व्यापार, होटल एवं रेस्टोरेन्ट, स्थावर सम्पति, लोक प्रशासन, बैंकिग एवं बीमा व अन्य सेवाएं शामिल है।

राजस्थान फैक्ट्री क्षेत्र में पिछड़ा हुआ राज्य है लेकिन राज्य की स्थिति हथकरघा, दस्तकारी व ग्रामीण उद्योगों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राज्य रत्न व आभूषणों, गलीचों, दस्तकारी व हथकरघा आदि के सामान से निर्यात द्वारा काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित कर पाया है। गुजरात व महाराष्ट्र में फैक्ट्रियों की संख्या राजस्थान से लगभग 2½ गुणा अधिक है। इस कारण ये दोनों राज्य औद्योगिक दृष्टि से उन्नत है।

(7) राजस्थान में खनिज सम्पदा की स्थिति (Min-

erals in Rajasthan)– राजस्थान में खनिज पदार्थो का अथाह भण्डार है। यहां पर 39 किस्म के बड़े खनिज एवं 22 प्रकार के लघु खनिज पाये जाते है, देश में खनिज सम्पदा के भण्डारों की दृष्टि बिहार के बाद राजस्थान का दूसरा स्थान है। सीसा, जस्ता व ताम्बे के उत्पादन मूल्य की दृष्टि से राजस्थान का भारत में पहला स्थान है। प्रचलित कीमतों पर खनन से 1991–92 में 511 करोड़ रूपये की आमदनी हुई थी जो राज्य की शुद्ध घरेलु उत्पति का 2% थी। यह 2013–14 में 21750 करोड़ रूपये हो गई जो राज्य के शुद्ध घरेलु उत्पाद का 4.5% हिस्सा रही। भारत के कुल उत्पादन में खनिजों का 70% उत्पादन अकेले राजस्थान में होता है। खनिजों के बारे में विस्तृत रूप से आगामी पाठ में अध्ययन करेगें।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- राजस्थान के आर्थिक विकास में भौगोलिक भू जल स्तर एवं सूखा वर्षा की अनियमितता के बाधक रहने के कारण पर्याप्त विकास नहीं हो पाया।
- राज्य में आधारभूत संरचना का पूरा ढांचा नही बन पाया है। इस कारण शेष भारत की अर्थव्यवस्था के साथ राजस्थान पीछे रह गया।
- राजस्थान की कृषि ही यहां की अर्थव्यवस्था के लिए आधार तैयार करती है। पर्याप्त वर्षा के अभाव में उत्पादन में कमी–वृद्धि कृषि में पायी जाती है।
- उत्तरप्रदेश में भू–भाग कम रहते हुए भी कृषि क्षेत्रफल में राजस्थान से आगे रहने का कारण वहां पर पर्याप्त जल संसाधन का उपलब्ध होना है।
- एक वर्ष की निश्चित समय–अवधि में राज्य का सभी क्षेत्रो से कुल उत्पाद को सकल घरेलू उत्पाद कहते है।
- सकल घरेलू उत्पाद में, उत्पादन क्रिया में लागत (खर्चों) को घटा देने पर शुद्ध घरेलू उत्पाद प्राप्त करते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है।
   (अ) उत्तर प्रदेश
   (ब) मध्यप्रदेश
   (स) राजस्थान
   (द) बिहार ( )
2. राजस्थान में रेगिस्तान का प्रतिशत हिस्सा है।
   (अ) 27%
   (ब) 61%
   (स) 40%
   (द) 50% ( )
3. राजस्थान की जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार है।
   (अ) 6.85 करोड़
   (ब) 5.85 करोड़
   (स) 6 करोड़
   (द) 7 करोड़ ( )
4. दिसम्बर 2016 के अन्त तक राजस्थान में विद्युत उत्पादन क्षमता थी–
   (अ) 17894.2 मेगावाट
   (ब) 5405.30 मेगावाट
   (स) 11371.61 मेगावाट
   (द) 15405.30 मेगावाट ( )
5. 2010–11 में राजस्थान में औसत जोत थी–
   (अ) 3.07 हैक्टेयर
   (ब) 1.05 हैक्टेयर
   (स) 3.88 हैक्टेयर
   (द) 4.07 हैक्टेयर ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थान का क्षेत्रफल, भारत के क्षेत्रफल की तुलना में कितना प्रतिशत है?
2. खनिज सम्पदा की दृष्टि से राजस्थान का भारत में कौनसा स्थान था?
3. कौन–कौन से खनिजों के उत्पादन में राजस्थान का प्रथम स्थान है?
4. मॉही बांध राजस्थान के कौनसे जिले में स्थित है?
5. तिलहन के उत्पादन में, भारत की तुलना में राजस्थान का उत्पादन कितना था?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सकल घरेलु राज्य उत्पाद व शुद्ध घरेलु राज्य उत्पाद में क्या अन्तर है?
2. राजस्थान की कृषि पर टिप्पणी लिखिये?

3. राजस्थान की अर्थव्यवस्था पर भूमि व कृषि में क्या सम्बन्ध है?
4. औद्योगिक दृष्टि से राजस्थान की भारत में स्थिति बताइये?
5. भौगोलिक दृष्टि से राज्य में अर्थव्यवस्था पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये?
6. राजस्थान की अर्थव्यवस्था में खनिज सम्पदा का महत्व बताइये?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थान का भारतीय अर्थव्यवस्था में स्थान निर्धारित करिये?
2. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि, उद्योग व क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का स्थान निर्धारित करिये?
3. भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान बड़ा प्रान्त होने पर भी गुजरात व महाराष्ट्र से अर्थव्यवस्था में पिछड़ा हुआ है। स्पष्ट करिये?

उत्तर माला

1. (स) 2. (ब) 3. (अ) 4. (अ) 5. (अ)

सन्दर्भ ग्रंथ

- राजस्थान की अर्थव्यवस्था– डॉ. छीपा एवं शर्मा, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
- आर्थिक समीक्षा–2016–17

अध्याय–5.2

राजस्थान में प्राकृतिक संसाधन
(Natural Resources in Rajasthan)

प्राकृतिक संसाधनों का आर्थिक विकास में महत्त्व
(Importance of Natural Resources in Economy)

प्राकृतिक संसाधनों में उन सभी प्रकृति से प्राप्त निःशुल्क उपहारों को सम्मिलित किया जाता है, जो मनुष्य के आस–पास के वातावरण (भौतिक पर्यावरण) में उपस्थित होते है, तथा जिन पर मनुष्य व जीव मात्र का जीवन–यापन निर्भर करता है। इसी कारण से प्राकृतिक संसाधन में भूमि, जलवायु, वन, मिट्टी, खनिज, जल एवं ऊर्जा को शामिल किया जाता है।

किसी अर्थव्यवस्था का स्वरूप, उसका स्तर एवं विकास उसकी भौगोलिक तथा प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा, विविधता, गुणवत्ता तथा उपयोग करने की क्षमता पर निर्भर करता है। प्राकृतिक संसाधन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आधार शिला का काम करते है तथा मनुष्य के आर्थिक जीवन के प्रत्येक आयाम (पहलू) को प्रभावित करते हैं।

खनिज संसाधनों से उद्योगों को कच्चा माल मिलता हैं। तेल, कोयला व प्राकृतिक गैस अर्थव्यवस्था के लिए रीढ़ की हड्डी के समान (शक्ति व ऊर्जा के रूप में) हैं।

इस जगत में जन–जीवन बहुत कुछ प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करता हैं अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों का विकास इन्हीं प्राकृतिक संसाधनों की वजह से तीव्र गति से हुआ है। भारत में पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि की प्रगति भी बहुत कुछ इन्हीं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है, जो कि उप–महाद्वीप के उत्तरी–पश्चिमी भाग में स्थित है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 3.42 लाख वर्ग कि.मी. है जो देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का 10.41 प्रतिशत है।

राज्य की जलवायु, भूमि, वन, जल और खनिज सम्पदा, औद्योगिक विकास की दिशा व दशा को निर्धारित करते है जिसका दूरगामी प्रभाव राज्य में रोजगार व आय पर पड़ता है। इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा व गुणवत्ता से राज्य का आर्थिक विकास होता है। इन साधनों का उचित उपयोग करके विकास के अगले पायदान पर कदम बढ़ाना आसान होता है। इनका सदुपयोग करके निर्धनता, बेरोजगारी जैसी जटिल समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है।

राजस्थान में भूमि संसाधन
(Land Resources in Rajasthan)

किसी राज्य में उसके आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक संसाधनों का योगदान महत्वपूर्ण होता है। प्राकृतिक संसाधन के रूप में भूमि की मात्रा व किस्म का कृषि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। कृषि राजस्थान की अर्थव्यवस्था में प्राणवायु की तरह है। मिट्टी की किस्म, वर्षा व जलवायु को ध्यान में रखकर ही फसलों का उत्पादन किया जाता है। भूमि का उपयोग अर्थव्यवस्था में प्राथमिक साधन के रूप में होता है। भूमि व जलवायु के आधार पर राजस्थान को मोटे रूप से चार भागों में बांटा जा सकता हैः–

1. उत्तरी–पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश
2. पूर्वी मैदान
3. मध्यवर्ती पहाड़ी प्रदेश
4. दक्षिणी पूर्वी पठार

1. उत्तरी–पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश (North-West Desert Region)

राज्य का लगभग 61 प्रतिशत भाग इस प्रदेश में आता है। इस भाग में 12 जिलें जिनमें मुख्यतः बीकानेर, चुरू, जैसलमेंर, बाड़मेंर, जोधपुर है। मारवाड़ का क्षेत्र व थार का रेगिस्तान इसी प्रदेश में है। इस प्रदेश की मुख्य विशेषताएं निम्न प्रकार हैः–

(1) औसत वर्षा कम होती है लगभग 12 से 15 से.मी. इस कारण यहां पर मोटे अनाज का उत्पादन किया जाता है।

(2) मिट्टी मुख्यतः बालू (रेतिली) पाई जाती हैं।

(3) मुख्य फसलों में ग्वार, ज्वार, बाजरा, मूंग व मोठ प्रमुख हैं।

(4) गंगानगर व हनुमानगढ़ में सिंचाई सुविधा (नहर) होने पर कपास, गन्ना व गेहूँ पर्याप्त मात्रा में होता है।

(5) इस क्षेत्र में सांभर, डीडवाना व पचपद्रा में खारे पानी की झीलों से नमक का उत्पादन किया जाता है।

(6) पशुपालन मुख्य उद्योग होता है।

(7) राजस्थान के कुल क्षेत्रफल के आधे से अधिक भाग 57 प्रतिशत इसी प्रदेश में हैं।

2. पूर्वी मैदान (Eastern Plains) – इस भाग में जयपुर, दौसा, भरतपुर, धौलपुर, टोंक, सवाईमाधोपुर, करौली, अलवर एवं सीकर, झून्झूनू का कुछ भाग आता है। राजस्थान की अर्थव्यवस्था में इस भाग का योगदान ठीक ठाक रहता है। इसकी मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:–

(1) औसत वर्षा ठीक रहती है (लगभग 40–80 से.मी.) इसी कारण यहां पर जनसंख्या घनत्व भी अधिक पाया जाता हैं।

(2) मुख्य फसलों में गेहूं, तिलहन, कपास, गन्ना, चना, बाजरा, सरसों आदि का उत्पादन किया जाता है।

(3) जल की पर्याप्त उपलब्धता के कारण यह उपजाऊ क्षेत्र है जो राज्य के कुल क्षेत्रफल का लगभग 23 प्रतिशत से अधिक हैं।

3. मध्यवर्ती पहाड़ी प्रदेश (Central Mountain Area) – इसमें मुख्यरूप से डूंगरपुर, उदयपुर जिलें आते है। सिरोही, पाली, बांसवाडा व चित्तौडगढ़ अजमेर का कुछ भाग भी इस प्रदेश का हिस्सा है।

गुरूशिखर (172 मी.) मॉउन्ट आबू (सिरोही) भी इसी प्रदेश में स्थित है। इस प्रदेश की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:–

(1) यहाँ वर्षा का औसत 20–90 से.मी. के बीच पाया जाता है।

(2) इस क्षेत्र में लाल, काली, भूरी व कंकरीली मिट्टी पाई जाती है।

(3) ताम्बा, जस्ता, अभ्रक, लोहा आदि खनिज पाये जाते हैं।

(4) यह राज्य के क्षेत्रफल का लगभग 9 प्रतिशत भाग में हैं।

4. दक्षिणी–पूर्वी पठार (South-East Platue) – यह क्षेत्र मालवा या हाड़ौती के क्षेत्र से जाना जाता है। इसमें मुख्यरूप से कोटा, बांरा, बून्दी तथा झालावाड़ जिले आते हैं। यहां पर काली मिट्टी, लाल मिट्टी पाई जाती है तथा प्रमुख फसलों में कपास, मूंगफली, चावल, गन्ना और गेहूँ का उत्पादन किया जाता है। यहां पर औसत वर्षा 30–70 से.मी. होती है।

राजस्थान की मिट्टियाँ
(Soils in Rajasthan)

किसी भी क्षेत्र में फसलों का स्वरूप, सिंचाई के साधन, यातायात के साधन तथा जनसंख्या घनत्व आदि मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करते हैं। राज्य में अनेक प्रकार की मिट्टियां पाई जाती है। प्रमुख मिट्टियाँ निम्न प्रकार से है:–

(1) **रेतीली मिट्टी** :– यह मिट्टी राज्य के सबसे विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती है। यह बहुत कम उपजाऊ होती है। यह मुख्यतः चुरू, बाड़मेर, चुरू आदि जिलों में पाई जाती है। यहां पर मोटे तोर पर मोटा अनाज ही पैदा होता है।

(2) **लाल मिट्टी** :– इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, चूना, पोटास व लौह कण पाये जाते हैं। यह डूंगरपुर, उदयपुर व अजमेर जिलों के क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

(3) **दुमट या कछारी मिट्टी** :– इसमें पोटाश चूना, फॉस्फोरस तथा लौहे की मात्रा पाई जाती है। इस मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी पायी जाती है। यह जयपुर, दौसा, टोंक, धौलपुर आदि क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

(4) **काली मिट्टी** :– इस मिट्टी में फॉस्फेट नाइट्रोजन व जैविक पदार्थों की कमी होती है। परन्तु कैल्सियम की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, बून्दी, झालावाड, बांरा आदि क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

इन मिट्टियों के अलावा लाल व पीली मिट्टी, लाल व काली मिट्टी, भूरी रेतिली मिट्टी भी अलग–अलग स्थानों पर पाई जाती है। भूमि की संरचना व उत्पादन क्षमता में सुधार लगातार अपेक्षित रहते है इस हेतु मरूस्थल में जल समस्या का समाधान होना जरूरी है साथ ही सतही व भूमिगत जल का दोहन भी विवेक पूर्ण रूप से करना जरूरी है। मानवीय कमियों में वृक्षारोपण पर अनियंत्रित कटाई को रोकना भी जरूरी है। वृक्षों की ऐसी किस्मों का उपयोग वृक्षारोपण के रूप में जरूरी हैं जो भूमि के अनुकूल हों।

भूमि के संरक्षण में सरकारी प्रयास (1) मरूस्थल को

रोकने के लिए मरूविकास कार्यक्रम, सूखा–सम्भाव्य क्षेत्र में कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

(2) जोधपुर में 'काजरी' संस्थान से सूखा क्षेत्र पर अनुसंधान कार्य हो रहा हैं

(3) काम्बेटिंग डेजर्ट नाम के कार्यक्रम में केन्द्र के सहयोग से राजस्थान में भूमि सुधार का कार्य हो रहा है।

राजस्थान में जल संसाधन
(Water Resources in Rajasthan)

राजस्थान एक कृषि प्रधान राज्य है कृषि जल पर निर्भर है तो इसी जल पर देश व प्रदेश की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। जल के अभाव में सूखा व अकाल इस प्रदेश के लिए सामान्य बात है। भारत के लिए कुल कृषि क्षेत्र का 13.9 प्रतिशत भाग अकेले राजस्थान में है जबकि जल संसाधनों का केवल 1 प्रतिशत भाग ही राजस्थान में उपलब्ध है। राजस्थान में जल संसाधन स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया गया हैं। 1. सतही जल 2. भू–जल

राजस्थान में जल संसाधनों के स्रोत

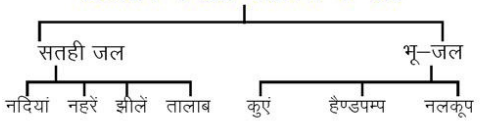

राजस्थान की प्रमुख नदियां
(Main Rivers in Rajasthan)

1. चम्बल नदी

(i) यह नदी मध्यप्रदेश के मऊ के पास जनापाव पहाड़ी से निकलकर राजस्थान के कोटा, सवाई माधोपुर और धौलपुर जिलों में लगभग 210 कि.मी. बहकर यमुना में मिल जाती है।

(ii) काली सिन्ध, पार्वती, परवन, बनास आदि इसकी सहायक नदियां है।

(iii) चम्बल नदी पर गांधी सागर, जवाहर सागर तथा राणा प्रताप सागर बांध बनाये गये है।

(iv) इससे जल विद्युत उत्पादन किया जाता है।

2. माही नदी

(i) यह मध्यप्रदेश के विध्यं पहाड़ियों से निकलकर राजस्थान में 174 कि.मी. बहकर गुजरात में प्रवेश कर जाती है।

(ii) इस नदी पर बांसवाड़ा जिले में माही सागर बांध का निर्माण किया गया है।

(iii) इससे जल विद्युत उत्पादन किया जाता है।

3. बनास नदी

(i) अरावली पर्वतमाला की खमनोर पहाड़ियों (कुम्भलगढ़) के पास से निकलती हैं।

(ii) इस नदी पर टोंक जिले में बीसलपुर बांध बनाकर पेयजल व कृषि कार्यों में उपयोग किया जाता हैं।

4. लूनी नदी – पश्चिमी राजस्थान की सबसे बड़ी नदी है जो अजमेर के निकट नाग पहाड़ी से निकलकर जोधपुर जिले से बहती हुई कच्छ की खाड़ी में चली जाती हैं। इसके पानी का उपयोग नमक उत्पादन में किया जाता है।

अन्य प्रमुख नदियों में बाणगंगा, घग्घर, साबरमती, सूकड़ी, साहिबी, कातली, मन्था, जाखम, पार्वती, काली सिन्ध, जंवाई व मेजा नदियां हैं।

राजस्थान की झीलें
(Lakes in Rajasthan)

(1) मीठे पानी की झीलें :– पिछोला झील, फतेहसागर झील, राजसमन्द झील, जयसमन्द झील उदयपुर में, अनासागर झील, फाईसागर व पुष्कर झील अजमेर में स्थित हैं। इनके अलावा सिलीसेड झील (अलवर), नक्की झील (सिरोही), नव खां झील (बूंदी) तथा कैलना झील (जोधपुर) में मीठे पानी की झीलें हैं।

(2) खारे पानी की झीलें:– इनका उपयोग नमक उत्पादन में किया जाता है। इनमें सांभर झील (जयपुर), डीडवाना झील (नागौर), लूणकरणसर झील (बाड़मेर) में हैं।

सांभर में तो केन्द्रीय उपक्रम 'सांभर साल्ट लिमिटेड' द्वारा नमक का उत्पादन किया जाता है।

प्रमुख नहरें (Main Canals in Rajasthan)

(1) इंदिरा गांधी नहरः– पंजाब के सतलज और व्यास संगत पर बनाये गए हरिके बांध से निकाली गई है। इस नहर से गंगानगर, बीकानेर, बाड़मेंर, जैसलमेंर जिलों में सिंचाई की जाती हैं।

(2) गंगा नहरः– सतलज नदी से फिरोजपुर के निकट हुसैनीवाला से यह नहर निकाली गई हैं। इससे गंगानगर जिले में सिंचाई होती हैं।

(3) भरतपुर नहरः– यह आगरा नहर की एक शाखा है। जो 28 किमी. लम्बी है। भरतपुर जिले में सिंचाई इस

नहर से होती हैं।

कुएं नलकूप व तालाबः– कुए व नलकूप द्वारा भूमिगत जल का उपयोग होता है। जबकि तालाब वर्षा जल का संग्रहण करते हैं। भूमिगत जल का स्तर चिन्ताजनक स्थिति में होने के कारण कुएं व नलकूप के जल में लवणों की मात्रा अधिक आ रही है, तो दूसरी तरफ तालाब वर्षा जल पर निर्भर रहते हैं।

राज्य में जलसंसाधनों के सदुपयोग के प्रयास

(i) उपलब्ध जल का समुचित उपयोग करना चाहियें। इसके लिए फव्वारा सिंचाई, बूंद–बूंद सिंचाई की विधि का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए।

(ii) पानी के स्रोत निश्चित है। इस पहलू को ध्यान में रखकर जनता को जागृत करना चाहिये ताकि जल संरक्षण का उद्धेश्य सफल हो। प्रभावी किसानों द्वारा जल सिंचाई प्रणाली को नियन्त्रित करना चाहियें।

(iii) अन्तराष्ट्रीय जल संसाधनों में राज्य के अंश का पूर्ण उपयोग करना चाहियें।

(iv) वर्षा जल संग्रहण के समुचित उपाय करने चाहिये ताकि भूमिगत जल स्तर को नीचे गिरने से रोका जा सकें।

राजस्थान में वन सम्पदा
(Forest Resources in Rajasthan)

वनस्पति और मानव का आदिकाल से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। मनुष्य का जीवन, संस्कृति एवं दिनचर्या सभी कुछ वनस्पति से प्रभावित होती है। राजस्थान वनस्पति के दृष्टिकोण से पिछड़ा हुआ राज्य है। राज्य के समस्त क्षेत्रफल का लगभग 7 प्रतिशत से 8 प्रतिशत के बीच का भाग ही वनों के अर्न्तगत आता है। जबकि राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार 33.33 प्रतिशत भूमि में वन होने चाहिए।

भारत में भी कुल भूमि के क्षेत्रफल के 22.8 प्रतिशत भू–भाग में ही वन हें।

किसी भी राज्य की अर्थव्यवस्था में वनों का योगदान महत्वपूर्ण होता है। राजस्थान में प्राकृतिक वनस्पति तीन प्रकार की मिलती है। वन, घास और मरूस्थलीय वनस्पति। राज्य के दक्षिणी–पूर्वी भाग ही मुख्यतः वन क्षेत्र हैं। इस भाग में सवाई माधोपुर, कोटा, झालावाड, बांरा, बूंदी, बांसवाडा, डूंगरपुर, चित्तौडगढ़, उदयपुर, अलवर, भरतपुर, सिरोही जिलें शामिल हैं। राजस्थान में करौली, सिरोही, बांरा व उदयपुर में सर्वाधिक तथा सबसे कम वन क्षेत्र चुरू व जैसलमेर जिले में हैं।

प्रशासनिक दृष्टि से राज्य के वनों को निम्न तीन भागों में विभक्त किया गया हैं।

1. **आरक्षित वनः–** यहाँ पर पशुओं को घास चराने व पेड़ काटने की सुविधा नहीं होती हैं।
2. **सुरक्षित वनः–** इस क्षेत्र में पशुओं को चराने तथा सूखें पेड काटने की कभी–कभी आज्ञा दी जाती हैं।
3. **अवर्गीकृत वनः–** इसमें बरसाती घास के चारागाह पेड़ तथा छोटी–छोटी झाड़ियां होती हैं।

वनों के प्रकार

1. **शुष्क सागवान के वन** – ये वन मुख्यतः दक्षिणी राजस्थान के बांसवाडा और डूंगरपुर जिलों में पाये जाते हैं। उदयपुर, चित्तौडगढ़ तथा कोटा जिलों के कुछ भागों में भी पाये जाते हैं।
2. **मिश्रित पतझड़ वन** – मुख्यतः उदयपुर में तथा कोटा, बूंदी, चित्तोड़गढ़, राजसमन्द व सिरोही के कुछ भागों में ये वन क्षेत्र पाया जाता है। इनमें मिलने वाले वृक्षों में बरगद, गूलर, जामून, केर, बबूल, आम व धौकड़ा प्रमुख है।
3. **उष्णकटिबन्धीय वन** – कांटेदार वृक्ष मुख्यतः बीकानेर, जोधपुर, अजमेर, सीकर, पाली, झुन्झुनू, दौसा व नागौर में पाये जाते है। इनमें बेर, साल, बबूल, खेजड़ा, रोहिडा आदि प्रमुख हैं। खेजड़ा इस क्षेत्र का मुख्य वृक्ष है, इसी कारण इसको रेगिस्तान का कल्पवृक्ष कहा जाता हैं तथा इसको राज्य वृक्ष घोषित किया गया है।
4. **अर्द्ध–उष्ण सदाबहार वन** – ये वन हमेशा हरे–भरे रहते हैं। आबू पर्वत के चारों तरफ लगभग 32 वर्ग किलो मीटर का क्षेत्र है जो 1375 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। यह अर्द्ध–उष्ण सदाबहार वन क्षेत्र में आता है। यहाँ के मुख्य वृक्षों में नीम, जामुन, आम, बांस व रोहिडा हैं।

राजस्थान में वन सम्पदा का आर्थिक योगदान

1. **इमारती लकड़ी** – राज्य के वनों में सागवान, सालर, बबूल, धौंकड़ा, रोहिडा आदि वृक्ष इस कार्य में काम आते हैं।
2. **ईंधन** – राज्य के वनों का अधिकांश उपयोग ईंधन के रूप में काम आता है।
3. **घास** – इसका उपयोग पशुओं को चराने के साथ–साथ रस्सियां, झाड़ू, मूंज आदि बनाने में काम आता है।

4. **बांस** – इसका उपयोग चारपाई, टोकरी, झोपड़ी व कागज बनाने में होता हैं।
5. **शहद व मोम** – वृक्षों पर मधुमक्खियां छत्ता बनाती है, जिससे शहद व मोम प्राप्त होता हैं।
6. **कत्था**–खैर के वृक्ष के तने के आन्तरिक भाग को काटकर व उबालने पर कत्था तैयार होता हैं।
7. **तेन्दु पत्ता** – इसका उपयोग बीड़ी, पत्तल आदि बनाने में होता हैं।
8. **खस** – एक प्रकार की घास है जिसकी जड़ो से तेल निकाला जाता है, इसके अलावा टाटी, परदे व हाथ के पंखे बनाने में किया जाता है।
9. **पर्यटन उद्योग** – वनों के आबाद रहने से पर्यटन को बढ़ावा मिलता है। जिसमें बिना निर्यात किये ही विदेशी मुद्रा प्राप्त होती हैं।

वन विकास के लिए सरकारी प्रयास

1. सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम के अन्तर्गत पंचायत राज संस्थाओं व व्यक्तियों को पौधे वितरित करके गांवों व शहरों में लगाने का प्रयास किया जाता हैं।
2. फार्म वानिकी के तहत् इच्छुक किसानों, स्कूलों व सरकारी संस्थाओं को पेड़ लगाने के लिए पौधे दिये जाते हैं।
3. बारहवी पंचवर्षीय योजना 2012–13 में वानिकी के विकास के लिए 1617.6 करोड़ रूपये आंवटित किये गये। वन विभाग रेगिस्तान को रोकने का प्रयास कर रहा हैं।
4. 1992–93 से 2002 तक अरावली वृक्षारोपण के अर्न्तगत वृक्षारोपण का कार्य किया गया।
5. इन्दिरा गांधी नहर परियोजना वानिकी के तहत् वृक्षारोपण किया गया।
6. गैर अरावली व गैर मारू वानिकी के तहत् वृक्षारोपण किया गया।
7. जापान के सहयोग से राजस्थान वानिकी व जैव विविधता प्रोजेक्ट (वर्ष 2012–13 से 2018–19 तक संचालित) योजना के तहत वानिकी विकास व संरक्षण किया जायेगा।
8. भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई समन्वित ग्रामीण वानिकी योजना द्वारा राज्य में 19 वन विकास एजेन्सियां स्थापित की गई हैं।

राजस्थान में खनिज सम्पदा
(Mineral Resources in Rajasthan)

खनिजों का आर्थिक विकास में योगदान (Economic Role of Minerals in economy) – अन्य प्राकृतिक संसाधनों की तरह खनिज संसाधन अर्थव्यवस्था की दिशा निर्धारित करते हैं। लोहा, इस्पात, सीमेन्ट, कोयला, पैट्रोल व डीजल, एल्यूमिनियम तथा उर्वरक उद्योग राज्य के आर्थिक विकास में नींव के पत्थर की तरह लाभदायक होते है। प्रत्येक खनिज कच्चे माल के रूप में उद्योगों में काम आता है तो दूसरी तरफ राज्य की आय व रोजगार को भी बढ़ाता है। एक नजर में राजस्थान की खनिज सम्पदा के रूप में स्थिति निम्न प्रकार हैः–

1. उत्पादन मूल्य की दृष्टि से भारत में राज्य का 5वां स्थान हैं।
2. राज्य में खनन क्रिया में लगभग 5 लाख व्यक्तियों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला हुआ हैं।
3. प्रचलित कीमतों पर खनन से 1991–92 में 511 करोड़ रूपये की आमदनी हुई थी जो 2013–2014 में 21750 करोड़ रूपये तक हो गई।
4. वर्तमान में राजस्थान जास्पर व बोलस्टोनाइट का एक मात्र उत्पादक राज्य हैं।
5. सीसा, जस्ता अयस्क, टंगस्टन अयस्क, फास्फोराइट एसबेस्ट्स, कैल्साइट, चीनी मिट्टी, फैल्सपार, गारनेट (रत्न), जिप्सम, जस्पार, चांदी अयस्क, सोप स्टोन आदि खनिजों के उत्पादन में राज्य का स्थान देश में प्रथम पायदान पर हैं। सारणी 1 से राजस्थान का देश में प्रतिशत योगदान दिखाया गया हैं।

सारणी–1

भारत में खनिज उत्पादन में राजस्थान का प्रतिशत हिस्सा

क्र.सं.	खनिज	प्रतिशत हिस्सा
1	बोल स्टोनाइट	100 प्रतिशत
2	जास्पर	100 प्रतिशत
3	जिंक फास्फेट	99 प्रतिशत
4	फ्लोराइट	96 प्रतिशत
5	जिप्सम	93 प्रतिशत
6	संगमरमर	90 प्रतिशत
7	एसबेस्टस	89 प्रतिशत
8	सोप स्टोन	87 प्रतिशत
9	सीसा कन्सन्ट्रेट	80 प्रतिशत
10	रॉक फास्फेट	75 प्रतिशत

राजस्थान कच्चा लोहा, बॉक्साइट, क्रोपराइट, मैंगनीज, कोयला तथा पैट्रोलियम खनिजों की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ है। बाड़मेर में तेल की खोज से राज्य में नई उम्मीदों का संचार हुआ है। भारत के कुल खनिज उत्पादन में राजस्थान का योगदान 5.74 प्रतिशत है तथा देश में 5वां स्थान हैं।

वर्तमान में 39 मुख्य खनिज जिनमें सीसा–जस्ता, टंगस्टन अयस्क, जिप्सम, ताम्बा आदि है तो लघु (Minor) खनिज की संख्या 22 है जिनमें कोटा स्टोन, सैड स्टोन, संगमरमर मुख्य हैं। इस प्रकार खनिजों की कुल संख्या 61 हैं।

राजस्थान में पाये जाने वाले खनिजों का अध्ययन निम्न प्रकार से हैः–

1. धात्विक खनिज (Metallic Minerals) – धात्विक खनिजों में ताम्बा, सोना, लोहा, अयस्क, सीसा–जस्ता, चांदी, कैडमियम और मैंगनीज आते हैं। इनका उपयोग धात्विक उद्योगों में किया जाता है। सीसा व जस्ता का उपयोग बन्दूक की गोली बनाने में किया जाता हैं।

इनमें ताम्बा खेतड़ी–सिघांना (झुन्झुनू) से जबकि सीसा–जस्ता जावर व राजपुरा दरीबा क्षेत्र, उदयपुर में पाये जाते हैं। टंगस्टन रेवत पहाड़ी डेगाना, नागौर एवं मैंग्नीज बांसवाडा, जयपुर, उदयपुर व सवाई माधोपुर जिलों में मिलता हैं।

2. अधात्विक खनिज (Non-metallic Minerals) इनमें ऐस्बेस्टस, फेल्सपार, सिलिका रेत, चाइना क्ले आदि आते है। ऐस्बेस्टस उदयपुर व डूंगरपुर जिले में पाया जाता है। जबकि फेल्सपार की अधिकांश मात्रा अजमेर जिले में पाई जाती हैं।

3. इलैक्ट्रानिक एवं आणविक खनिज (Electronic and Automic mineral)

(i) **अभ्रकः**– यह खनिज भीलवाडा, जयपुर, टोंक, उदयपुर व अजमेर जिलों में पाया जाता है। अभ्रक उत्पादन में बिहार, आन्ध्रप्रदेश के बाद राजस्थान का भारत में तीसरा स्थान हैं।

इसका उपयोग विधुत कुचालक, वायुयान, कम्प्यूटरों, परिवहन व औषधि निर्माण में किया जाता हैं।

(ii) **आणविक खनिजः**– उदयपुर में यूरेनियम, अजमेर में लिथियम तथा भीलवाड़ा में बेरेलियम के भण्डार होने का पता चला हैं।

4. बहुमूल्य खनिज (Precious Minerals)

(i) **पन्ना** – देश के उत्पादन में राजस्थान का लगभग एकाधिकार है। यह उदयपुर, राजसमन्द तथा जोधपुर जिलों में पाया जाता हैं।

(ii) गारनेट (तामड़ी) :– इसके उत्पादन में भी राज्य का एकाधिकार है। यह अजमेर, टोंक, भीलवाड़ा तथा सीकर जिलों में पाया जाता है। इसे रक्त मणी भी कहते हैं। क्योंकि इसका रंग लाल होता है।

5. उर्वरक खनिज (Fertilizer Minerals)

(i) **जिप्सम**– जिप्सम का उपयोग मुख्यतः रंग–रोगन, रासायनिक खाद, प्लास्टर ऑफ पेरिस में किया जाता है। यह खनिज नागौर, बीकानेर, चुरू, श्री गंगानगर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, पाली, जालौर आदि जिलों में पाया जाता हैं।

(ii) **रॉक–फास्फेटः**– यह रासायनिक खाद बनाने में काम आता है। उदयपुर जिले झामरा–कोटडा, दाकन कोटरा, भीण्डर, बैलागढ़, लाखखास तथा जैसलमेंर जिले में लाठी एवं बिरमानियां में पर्याप्त मात्रा में मिलता हैं।

(iii) **पाइराइट्सः**– राज्य के सीकर जिले के सलादीपुरा में पाया जाता है। इससे गन्धक का अम्ल बनाते है जो रासायनिक खाद में काम आता हैं।

(iv) **लाइमस्टोन या चूना पत्थरः**– इसके विशाल भण्डार मुख्यतः अजमेर, उदयपुर, बांसवाडा, चित्तौडगढ़, भीलवाडा, सिरोही, पाली और जैसलमेर जिले में पाये जाते हैं।

6. छोटे खनिज (Minor Minerals)

(i) **बेन्टोनाईट** :– यह एक बहुत ही उत्तम दानेदार मिट्टी का नाम है जो स्लेटी, पीले व गुलाबी रंग में मिलता हैं। इसके भण्डार बाड़मेर, सवाईमाधोपुर व बीकानेर में मिलते हैं।

(ii) **मुल्तानी मिट्टीः**– यह एक प्राकृतिक मिट्टी है जो लेसदार होती है। बीकानेर जिले के पलना, केसर देसर, बाड़मेर जिले में कपूरड़ी, अलामरिया, शिव तथा जैसलमेर जिले के मन्धा में मिलती हैं।

(iii) **संगमरमर, ग्रेनाइट एवं इमारती पत्थरः**– देश में उत्पादित संगमरमर का 100 प्रतिशत उत्पादन राजस्थान में होता है। मकराना (नागौर) का संगमरमर सर्वश्रेष्ठ हैं। यह नागौर, सीकर, जयपुर, अलवर, उदयपुर, जालौर व

सिरोही जिलों में पाया जाता हैं।

राज्य में ग्रेनाइट सीकर, जयपुर, झुन्झुनू, अजमेर, दौसा, बाड़मेर, पाली, भीलवाड़ा, जालौर, अलवर, व सिरोही जिलों में प्राप्त होता हैं।

इमारती पत्थर के उत्पादन की दृष्टि से जोधपुर, कोटा, झालावाड़, जयपुर, दौसा, बीकानेर, चित्तोड़ प्रमुख है। करौली, भरतपुर एवं धौलपुर के निकट भी लाल रंग का इमारती पत्थर पाया जाता है।

7. अन्य खनिज (Other Minerals)

(i) **घीया पत्थर** के उत्पादन में राज्य का एकाधिकार है, इससे पत्थर के खिलौने, वेलकम पाउण्डर, कागज निर्माण किया जाता है। यह जयपुर, दौसा, अलवर, भीलवाड़ा, उदयपुर, डूंगरपुर जिलों में पाया जाता हैं।

(ii) **स्लेट पत्थरः–** यह पत्थर स्लेट बनाने के काम आता है। यह जर्मनी, हॉलैण्ड व आस्ट्रेलिया में निर्यात किया जाता हैं। राज्य के अलवर जिले में यह पत्थर पाया जाता हैं।

(iii) **केल्साइटः–** यह ब्लीचिंग पाउण्डर, कांच, कैल्सियम कार्बाइड, विस्फोटक पदार्थ बनाने के काम आता है। भारत में सबसे अधिक उत्पादन करने वाला राज्य राजस्थान हैं। राजस्थान में सबसे अधिक सीकर में तथा शेष उदयपुर, पाली सिरोही तथा जयपुर जिले में उत्पादित होता हैं।

8. पैट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस व कोल (Petrolium, Natural Gas & Coal)

– मरूभूमि के लिए एक ज्योति किरण के रूप में बाघेवाला से तुवरी वाला तक 13 किमी. दूरी में मंगला, शक्ति, ऐश्वर्या, सरस्वती, रागेश्वरी, कामेश्वरी, विजया, वन्दना भाग्यम् तेल क्षेत्र बाड़मेर के साथ–साथ राजस्थान का भी भाग्य बदलने को तैयार है। रिफाइनरी लगने पर राजस्थान की आर्थिक स्थिति में चार–चांद लगने वाला हैं।

भूरा कोयला (लिग्नाइट कोल) की प्रचुर मात्रा के भण्डारों का भी पता चला है तापीय विद्युत उत्पादन की मात्रा में इस कोयला का उपयोग किया जा सकेगा। 60 करोड़ टन कोयला अकेले बाड़मेर में जबकि 35 करोड टन कोयला बीकानेर में होने का पता चला है। 20 करोड़ टन कोयला नागौर जिले में सम्भावित है। अगर इसका दोहन सफल होता है तो ऊर्जा क्षेत्र में इसकी आपूर्ति हो सकती हैं।

तेल, प्राकृतिक गैस तथा कोल बेड मिथेन (सी.बी.एम) के कुँओं की खोज

- वर्ष 2016–17 में दिसम्बर, 2016 तक 33 तेल कूपों की खुदाई की गई, जिसमें 24 कूपों का छिद्रण मैसर्स केयर्न एनर्जी द्वारा बाड़मेर–साचौर बेसिन में, 3 कूपों का फोकस एनर्जी द्वारा ओ.एन.जी.सी.एल. द्वारा दो कूपों एवं चार कूप का छिद्रण ऑयल इण्डिया द्वारा जिला जैसलमेर में किया गया है।
- अब तक कुल 3.7–4.1 बिलियन बैरल (480–500 मिलिन टन) तेल के भण्डार अकेले बाड़मेर–सांचौर बेसिन में पाए गए हैं। दिसम्बर, 2016 तक मैसर्स केयर्न एनर्जी द्वारा 171 खोजे गए कुँओं के अतिरिक्त कुल 481 तेल के कुँए खोदे गए।
- राजस्थान में मंगला तेल क्षेत्र से खनिज तेल का उत्पादन 29.8.2009 से आरम्भ हो गया है।
- पेट्रोलियम क्षेत्र राज्य को महत्वपूर्ण राजस्व दे रहा है। वर्ष 2014–15 में राज्य सरकार को लगभग रुपये 5,100 करोड़ का राजस्व प्राप्त होने की सम्भावना है।
- मैसर्स फोकस एनर्जी द्वारा शाहगढ़ सब–बेसिन, जिला जैसलमेर में कुल 50 कुँओं की खुदाई पूर्ण की जा चुकी है।
- तीन कुँओं में उच्च गुणवत्ता वाली गैस की खोज की गई, जो पाकिस्तान के मियानों एवं स्वान गैस क्षेत्रों के समकक्ष है, जिसमें हाइड्रोकार्बन की उपलब्धता 88 से 91 प्रतिशत तक की है।
- हाल ही में फोकस एनर्जी द्वारा लगभग 8 से 9 लाख घनमीटर प्रतिदिन उच्च गुणवत्ता की प्राकृतिक गैस का उत्पादन 8 जुलाई, 2010 से आरम्भ हो गया।
- शाहगढ़ से बेसिन के 16 तेल कुँओं से प्राकृतिक गैस का उत्पादन प्रारम्भ हो चुका है।

राजस्थान में खनिज उद्योग की समस्याएं एवं समाधान

राजस्थान में कई प्रकार खनिज पाये जाते हैं, उनमें से कुछ का अविवेकपूर्ण ढ़ंग से विकास हुआ और कुछ खनिज बिना विकास के ही रह गये। राज्य के खनिज उद्योग में निम्न समस्याएं देखने को मिलती हैं:–

(i) **खनिजों का असमान वितरणः–** राज्य के दक्षिणी एवं दक्षिणीपूर्वी जिलों में तो खनिज बहुत मात्रा में पाये जाते हैं। परन्तु उत्तरी भाग में बहुत कम पाये जाते हैं। इस वजह से औद्योगिक विकास व आर्थिक विकास में असमानताएं पायी जाती हैं।

(ii) **अनियोजित विदोहनः–** राज्य में खनिजों का विदोहन नियोजित ढंग से नहीं हो पाया क्योंकि एक तो राज्य में परिवहन के साधनों की कमी है दूसरी ओर पहाड़ी क्षेत्रों में खनिज प्राप्त होने से उनकी खनन लागत अधिक आती है।

(iii) **यन्त्रीकरण का अभावः–** खान मालिकों के पास वित्तीय साधनों की कमी होने से नयी तकनीकों का प्रयोग नहीं होकर पुरानी तकनीकों से खनन कार्य किया जा रहा है।

(iv) **ईंधन व लौह खनिजो की कमी–** इन्जिनियरिंग एवं भारी उद्योगों के विकास के लिए लौह एवं ईंधन की कमी है। आधारभूत खनिजों के अभाव में उत्पादन लागत अधिक आती है।

(v) **कुशल एवं प्रशिक्षित श्रमिकों की कमीः–** खनन उद्योग में लगे अधिकांश श्रमिक न केवल मौसमी है अपितु अकुशल भी होते है। प्रक्षिण के अभाव में वे अपना कार्य कुशलता से नहीं कर पाते हैं।

(vi) **पानी व बिजली की कमीः–** राज्य में पानी की कमी है जो भूगर्भीय पानी है वो भी कई हिस्सों में बहुत गहरा है। राज्य में बिजली की कमी चलती रहती है, इससे भी खनन उद्योग का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है।

(vii) अधिकांश खनिज राजस्थान में निकाले जाते है परन्तु शुद्धता के लिए इन्हें दूसरे राज्यों में भेजा जाता है इससे उनकी गुणवत्ता का ह्रास होता है तथा परिवहन लागत बढ़ने से कीमत बढ़ जाती है।

(viii) खनन कार्य में अपशिष्ट पदार्थों का सही एवं पूर्ण उपयोग नहीं होता है।

भूगर्भ–शास्त्रियों का कहना है कि जिस अनियोजित तरीके से खनिजों का विदोहन हो रहा है, इससे भविष्य में इन पदार्थों की कमी हो सकती है। अतः आवश्यक है कि खनिजों का संरक्षण एवं उचित उपयोग किया जाये। राजस्थान में इसी बात को ध्यान में रखकर सरकार ने खनिज नीति बनाकर खनिज उद्योगों को पर्याप्त संरक्षण दिया है। राज्य में 1978 में एक खनिज नीति घोषित की थी, जिसमें खनिजों के सर्वेक्षण एवं खोज पर बल दिया गया।

1979 में राजस्थान राज्य खनिज विकास निगम (RSMDC) स्थापित किया गया जिसकी स्थापना का उद्देश्य खनिज सम्पदा के दोहन एवं विपणन कार्य को त्वरित गति देने तथा वैज्ञानिक रीति से विकसित करना था। रॉक फास्फेट के खनन एवं परिशोधन का मुख्य कार्य राजस्थान राज्य खान एवं खनिज निगम करता है इसी प्रकार टंगस्टन खनिज के दोहन को गति देने के लिये राजस्थान राज्य टंगस्टन विकास निगम लिमिटेड का गठन रक्षा मन्त्रालय भारत सरकार के सुझाव पर राज्य सरकार ने (RSMDC) की सहायक कम्पनी के रूप में 22 नवम्बर 1983 में किया।

राज्य की नई खनिज नीति 2011 – राज्य में खनिज नीति 1994 एवं 2005 के बाद नई खनिज नीति 2011 में घोषित की गई जिसमें 11 उद्देश्य रखे गये थे। खनिज नीति 2011 के 11 उद्देश्य निम्न है।

1. राज्य में खनिजों के मूल्यवर्धन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करना।
2. रोजगार के अवसर में वृद्धि करना।
3. खनिजों के लिए आधुनिक तकनीके बढ़ाना और लाइमस्टोन, निग्नाइट व बेस–मेट के खनन पर अधिक जोर देना।
4. पर्यावरणीय उत्पादों व खनन संरक्षण को ध्यान में रखते हुए यन्त्रीकृत व वैज्ञानिक खनन को प्रोत्साहित करना।
5. खनन व खनिज आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए मानवीय साधनों को बढ़ाना।
6. निर्गत क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं का विकास करना।
7. खनन क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं का विकास करना।
8. नोबल, बेस धातुओं, औद्योगिक खनिज व उर्वरकों की जांच व खनन कार्य को प्रोत्साहित करना।
9. मिथेन व लिग्नाइट आधारित उद्योगों व पेट्रोलियम रिफाइनरी को प्रोत्साहित करना।
10. खनन विकास में आने वाली बाधाओं के नियमों व प्रक्रियाओं को सरल बनाना।
11. खनन श्रमिकों को कल्याण के उपायों को लागू करना।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- प्राकृतिक संसाधनों में प्रकृति से प्राप्त निःशुल्क उपहारों को शामिल किया जाता है।
- किसी भी राज्य की अर्थव्यवस्था का आधार वहां की भूमि की संरचना, किस्म व उपजाऊपन पर निर्भर करती हैं।
- भूमि व जल संसाधन दोनो के समुचित योगदान से कृषि उत्पादन निर्भर करता है। कृषि उत्पादन बढ़ने पर राज्य की जनता में आर्थिक क्रियाएं बढ़ती हैं।
- अर्थव्यवस्था में जल संसाधन, अन्य सभी उत्पादन प्रक्रियाओं में गति प्रदान करता है। जिससे अर्थव्यवस्था मजबूत होती हैं।
- किसी भी राज्य की सम्पन्नता में पेड–पौधों, (वन) का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं। वन विकसित रहने पर पर्यावरणीय सन्तुलन बना रहता है जो अर्थव्यवस्था के लिए सकारात्मक होता हैं।
- वनों से राज्य में पर्यटन उद्योग पनपता है। प्रदूषण कम होने के साथ–साथ विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती हैं।
- खनिज राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए जीवन–रेखा का काम करते है। जिस राज्य में पर्याप्त मात्रा में खनिज भण्डार व उनका दोहन होता है तो आय व रोजगार बढ़ने के साथ–साथ राज्य की अर्थव्यवस्था भी मजबूत होती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्राकृतिक संसाधनों का महत्व हैः–
   (अ) राज्य के घरेलू उत्पाद बढ़ाने में।
   (ब) पर्यावरण सुधार एवं उपभोग में।
   (स) पर्यटन उद्योग के विकास में।
   (द) उपरोक्त सभी में। ( )
2. राजस्थान में प्राकृतिक भाग हैः–
   (अ) चार
   (ब) पांच
   (स) तीन
   (द) दस ( )
3. उत्तरी–पश्चिमी रेगिस्तान वाला जिला हैः–
   (अ) चुरू
   (ब) कोटा
   (स) जयपुर
   (द) टोंक ( )
4. रेगिस्तान का कल्पवृक्ष कहलाता हैः–
   (अ) नीम
   (ब) केर
   (स) खेजड़ा
   (द) बबूल ( )
5. माही डेम कौनसे जिले में हैः–
   (अ) कोटा में
   (ब) टोंक में
   (स) बांसवाड़ा में
   (द) जयपुर में ( )
6. सांभर झील हैः–
   (अ) जयपुर में
   (ब) नागौर में
   (स) बाड़मेर में
   (द) चुरू में ( )
7. भारत के खनिज उत्पादन में सौ प्रतिशत उत्पादन वाला राज्य का खनिज हैः–
   (अ) बोलास्टोनाइट व जास्पर
   (ब) रॉक फॉस्फेट व सीसा कन्सन्ट्रेट
   (स) लोहा
   (द) सोप स्टोन ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नमक उत्पादन की प्रमुख दो झीलों के नाम लिखियें?
2. 'कजरी' संस्थान कहाँ पर है ?
3. पचपद्रा की झील कहाँ पर हैं ?
4. खेतड़ी में कौनसे धातु की परियोजना हैं ?
5. चम्बल नदी पर कौनसा बांध है ?
6. बनास नदी पर बीसलपुर बांध कौनसे जिले में स्थित हैं?
7. राजस्थान की प्रथम खनिज नीति कब घोषित की गई।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वनों से प्राप्त प्रमुख खनिजों के नाम लिखिये ?
2. राजस्थान में सिंचाई करने वाली प्रमुख नहरों के नाम लिखिये ?

3. खनिज संसाधनों से आय व रोजगार पर क्या प्रभाव पड़ता है, समझाइयें ?
4. खारे पानी की झीले कहां–कहां पर है एवं इनका आर्थिक उपयोग क्या है ?
5. वन क्षेत्र विकसित होने पर आर्थिक लाभ के साथ–साथ विदेशी मुद्रा का भी अर्जन होता है, कैसे ? समझाइयें।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक संसाधनों से राज्य की अर्थव्यवस्था कैसे प्रभावित होती है, विस्तार पूर्वक समझाइयें ?
2. वन व जल संसाधन बढ़ने पर राज्य की अर्थव्यवस्था मजबूत होती है कैसे ? समझाइयें।
3. खनिज पदार्थ राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए मेरूदण्ड का कार्य करते है कैसे ?विस्तार पूर्वक समझाइयें ?
4. जिस राज्य में उपजाऊ भूमि और पर्याप्त मात्रा में जल संसाधन मौजूद है तो उस राज्य की अर्थव्यवस्था कमजोर नही हो सकती है। इस पर सविस्तार अपने विचार प्रकट करिये?

उत्तर माला

1. (द) 2. (अ) 3. (अ) 4. (स) 5. (स) 6. (अ) 7. (अ)

सन्दर्भ ग्रंथ

1. राजस्थान की आर्थिक समीक्षा 2016–17
2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था–डॉ. छीपा एवं शर्मा, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

अध्याय–5.3

राजस्थान में मानव संसाधन विकास
(Human Resource- Development in Rajasthan)

मानव ही प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता हैं वास्तव में प्राकृतिक साधन निष्क्रिय होते हैं। ये केवल आर्थिक विकास हेतु सुविधा प्रदान करते हैं जबकि मानवीय संसाधन उनकी सहायता से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करते हैं। प्राप्त उत्पादन का उपयोग भी मानवीय संसाधनों द्वारा ही किया जाता हैं। इस प्रकार मानवीय संसाधन उत्पादन का साधन व साध्य दोनो ही है तथा प्राकृतिक संसाधन की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हैं। मानवीय संसाधनों के अभाव में अनुसंधान व विकास कार्य सम्भव नहीं हैं तथा राष्ट्र की सुरक्षा भी सम्भव नहीं हैं। मानवीय संसाधन एक दायित्व भी हैं क्योंकि इनके लिए भोजन, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन व रोजगार आदि की व्यवस्था भी करनी पड़ती हैं। इस प्रकार मानवीय संसाधन किसी भी राष्ट्र के लिए सम्पत्ति के साथ–साथ दायित्व भी हैं।

किसी भी अर्थव्यवस्था के तीव्र आर्थिक विकास में भौतिक संसाधनों के साथ–साथ मानवीय संसाधनों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। अर्थव्यवस्था में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उचित विदोहन मानवीय संसाधनों पर ही निर्भर करता है। मानवीय संसाधनों में अर्थव्यवस्था की जनसंख्या के मात्रात्मक एवं गुणात्मक पहलूओं को शामिल किया जाता है। जनसंख्या के इन पहलूओं की श्रेष्ठता आर्थिक विकास में सकारात्मक भूमिका अदा करती है। मानव संसाधन अर्थव्यवस्था की सामाजिक आधारभूत संरचना होती हैं। जिसमें जनसंख्या, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पेयजल आदि का अध्ययन करते हैं। जनसंख्या आर्थिक विकास के विभिन्न सूचकों को प्रभावित करती है।

मानव संसाधन का अर्थ
(Meaning of Human Resources)

मनुष्य में अपनी ज्ञान संग्रह करने और उसके प्रसारण करने की क्षमताओं, जिनका उपयोग मनुष्य बातचीत, लोकगीत व व्याख्यानों के माध्यम से करता आ रहा हैं। इन कार्यों के करने के लिए सकारात्मक सोच के साथ ज्ञान अर्जन करने, उचित प्रशिक्षण व कौशल की आवश्यकता महसूस करता हैं। जब मनुष्य इन प्रक्रिया को सफलतापूर्वक पूरा कर लेता है तो वह पहले से अधिक मूल्यवान बन जाता हैं और उच्चतम सामाजिक स्थिति में पहुँच जाता हैं। इसके लिए मनुष्य की प्रथम सीढ़ी शिक्षा होती है और इस सीढ़ी पर आगे चढ़ने के लिए सहयोगी के रूप में स्वस्थ, स्वास्थ्य होना जरूरी होता हैं। जब ये दोनों बातें मनुष्य के साथ होती है तो वह एक योग्य नागरिक बनकर जीवन में बेहत्तर विकल्पों का चयन करने में सक्षम होता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं की उन्नति करने के साथ–साथ अपने देश की उन्नति में सहायक होता है इसी को मानव निर्माण या मानव संसाधन के रूप में जाना जाता हैं।

जिस प्रकार एक देश अपने भूमि जैसे भौतिक संसाधनों को कारखानों जैसी भौतिक पूँजी में परिवर्तित कर लेता है तो उसी प्रकार वह अपने छात्ररूपी कच्चे मिट्टी के मटके को मानव पूंजी रूपी पक्के मटके में परिवर्तित करना ही मानव विकास कहलाता हैं। मानव के सर्वांगीण विकास में सरकार के साथ–साथ सामाजिक परिवेश, अच्छे शिक्षण संस्थान व प्रशिक्षण केन्द्र एवं स्वास्थ्य सुविधाएं भी अहम् योगदान निभाती हैं।

मानवीय संसाधन का महत्व
(Importance of Human Resources)

विकास का मुख्य आधार जनसंख्या होती हैं। प्राकृतिक संसाधन निष्क्रिय होते है। उनका उचित उपयोग करने के लिए मानवीय संसाधनों की आवश्यकता होती हैं। जनसंख्या आर्थिक विकास को भी प्रभावित करती है। वह आर्थिक विकास के विभिन्न सूचकों–जनसंख्या एवं श्रमशक्ति, पूँजी–निर्माण की दर, आय का स्तर, प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात, आय का वितरण, जीवन स्तर, विनियोग का स्तर, उत्पादन के आकार तथा उत्पादकता, पर्यावरण को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। जनसंख्या बढ़ने पर श्रम शक्ति भी

बढ़ती है जो कई बार आर्थिक विकास के लिए आवश्यक व लाभदायक भी सिद्ध होती हैं। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं:–

- मानवीय संसाधन का आकार शक्ति का प्रतीक माना जाता है।
- अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक श्रम शक्ति जनसंख्या से मिलती है।
- मानवीय संसाधन ही निष्क्रय प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन कर उनकी उत्पादकता में वृद्धि करता हैं।
- जनसंख्या एक ओर उत्पत्ति का साधन है तो दूसरी ओर उसका साध्य भी हैं।
- जनसंख्या बढ़ने से बाजार मांग का विस्तार सम्भव हैं।
- शोध, अनुसंधान एवं आविष्कार मानवीय संसाधनों के द्वारा ही संभव है।
- तकनीकी ज्ञान का विकास होता हैं।

उपर्युक्त अनुकूल प्रभाव होने के बावजूद जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभाव किसी भी अर्थव्यवस्था पर स्पष्टत दिखाई देते हैं।

राजस्थान में मानवीय संसाधनों की स्थिति (Position of Human Resources in Rajasthan)

मानवीय संसाधन

मात्रात्मक पहलू	गुणात्मक पहलू
1. जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि	1. शिक्षा एवं साक्षरता
2. जनसंख्या घनत्व	2. स्वास्थ्य
3. राजस्थान मे शहरी एवं ग्रामीण जनसंख्या	3. आवास

मात्रात्मक पहलू

1. राजस्थान में जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि (Population Size and Growth in Rajasthan)

मनुष्य जाति के विकास में बहुत अधिक प्रभावित करने वाला कारक उस देश या राज्य में जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि माना जाता है यदि जनसंख्या की वृद्धि अनियन्त्रित या अधिक होती है तो उस राज्य के योग्य नागरिकों के निर्माण में पिछड़ना पड़ता हैं अपेक्षित मानव पूंजी निर्माण नहीं होने पर उसकी अर्थव्यवस्था पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं। जिससे सामाजिक परिवेश के बिगड़ने के साथ–साथ आर्थिक रूप से पिछड़ना पड़ता हैं। राज्य की आय का अधिकांश भाग सामाजिक सुरक्षा जैसे गरीबी रेखा, आवास सुविधा, स्वास्थ्य सुविधा शिक्षा पर खर्च हो जाता है और विकास कार्य अवरूद्ध हो जाते हैं। अतः मानव संसाधन में उस राज्य की जनसंख्या के आकार एवं वृद्धि का अध्ययन भी जरूरी हो जाता हैं। राजस्थान में जनसंख्या का आकार व वृद्धि की स्थिति तालिका–1 में दशायी गयी हैं।

जनगणना 2011 के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या 5.65 करोड़ से बढ़कर 6.85 करोड़ हो गयी तथा भारत की जनसंख्या 102.07 करोड़ से बढ़कर 121.06 करोड़ हो गयी। राजस्थान में 2001 से 2011 के दशक में कुल जनसंख्या 1.20 करोड़ वृद्धि हुयी। यह दशकीय वृद्धि दर 21.30 प्रतिशत रही। जबकि भारत की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 17.7 प्रतिशत रही। अतः भारत की तुलना में राजस्थान की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर लगभग 3.6 प्रतिशत अधिक रही लेकिन राजस्थान का क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल का 10.4 प्रतिशत हैं। यहां कुल जनसंख्या का 5.7 प्रतिशत भाग ही निवास करता हैं। राजस्थान का भारत में जनसंख्या की दृष्टि से आंठवा स्थान हैं। भारत में सर्वाधिक जनसंख्या उत्तरप्रदेश में हैं।

तालिका–1

वर्ष	जनसंख्या (करोड)	दसकीय वृद्धि दर %	वि.वि.
1901	1.03	–	
1911	1.10	6.70	
1921	1.03	(–) 6.29	ऋणात्मक वृद्धि
1931	1.17	14.14	
1941	1.39	18.01	
1951	1.60	15.20	
1961	2.02	26.20	
1971	2.58	27.83	
1981	3.43	32.97	सर्वोच्च वृद्धि
1991	4.40	28.44	तीव्रता वृद्धि
2001	5.65	28.41	
2011	6.85	21.30	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 1901 से 2011 तक के 110 वर्षो में राजस्थान की जनसंख्या 1.03 करोड़ से बढ़कर 6.85 करोड़ हो गई। 1901–1951 तक के 50 वर्षों में राजस्थान में केवल 57 लाख जनसंख्या वृद्धि हुई जबकि

1951–2011 तक के 60 वर्षों में राजस्थान की जनसंख्या 5.25 करोड़ की वृद्धि हो गई। स्वतन्त्रता के बाद जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई जो अत्यन्त शोचनीय विषय हैं।

राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि दर भी भारत में जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक रही। अतः भारत की तुलना में राजस्थान की जनसंख्या का आकार भी बढ़ा है तथा वृद्धि दर भी अधिक हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले राजस्थान में जन्मदर व मृत्युदर दोनों ही अधिक थी जिससे जनसंख्या का आकार व वृद्धि दोनो ही कम थी। इसी कारण जनसंख्या की कोई समस्या नहीं थी। वर्ष 1921 में तो जनसंख्या वृद्धि नकारात्मक रही क्योंकि उस समय महामारियां, बीमारियों व विश्वयुद्ध प्रमुख कारण थे।

जनगणना 2011 के अनुसार राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या जयपुर जिले में तथा सबसे कम जैसलमेर में है। सर्वाधिक जनसंख्या वृद्धि बाड़मेर जिले में 32.5 प्रतिशत तथा सबसे कम गंगानगर जिले में 10 प्रतिशत रही।

राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि दर को प्रभावित करने वाले कारण
(Causes of Population Growth in Rajasthan)

(i) **बाल विवाह** – राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत कम उम्र में ही शादी हो जाती है परिणामस्वरूप कम उम्र में ही सन्तान उत्पन्न होना आरम्भ हो जाती थी, जिससे जनसंख्या तेजी से बढ़ी, कानूनी रूप से विवाह योग्य आयु लड़के व लड़कियों की क्रमशः 21 व 18 वर्ष हैं, परन्तु राजस्थान में अक्षय तृतीया जैसे अवसरों पर हजारों बाल विवाह होते हैं।

(ii) **गरीबी एवं निम्न जीवन स्तर** – परम्परागत काल से ही राजस्थान आर्थिक रूप से पिछड़ा हैं। जनसंख्या, शक्ति व साधन दोनों रूप में प्रयोग होती है, इसलिए लोग शक्ति व साधनों के लिए परिवार को बढ़ाना चाहते थे जिससे जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ी। वर्तमान में गरीब लोग अतिरिक्त संतान को अतिरिक्त आय का स्रोत मानते है, गरीबी के कारण ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में छोटे–छोटे बच्चों को आय प्राप्त करने की दृष्टि से काम पर लगा दिया जाता है जिससे परिवार की अधिक आमदनी के लिए अधिक सन्तान पर गरीब लोगों का ध्यान जाता हैं।

(iii) **शिक्षा का अभावः**– राजस्थान में साक्षरता का स्तर निम्न रहा है। अशिक्षा के कारण लोग भविष्य के प्रति जागरूक नही होते है। राजस्थान में पुरूष साक्षरता की तुलना में महिला साक्षरता दयनीय हैं। जिसके कारण परिवार नियोजन के साधनों से अनभिज्ञ है, अतः शिक्षा के अभाव के कारण जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ी।

(iv) **आर्थिक पिछड़ापनः**– आर्थिक विकास होने के साथ–साथ जनसंख्या वृद्धि दर भी कम हो जाती है। राजस्थान आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछड़ा हुआ हैं। इसलिए जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक हैं।

(v) **उष्ण जलवायुः**– राजस्थान की जलवायु उष्ण होने के कारण मनुष्य परिपक्व भी जल्दी हो जाते हैं इससे जनसंख्या वृद्धि दर बढ़ने की सम्भावना रहती हैं।

(vi) **परिवार नियोजन कार्यक्रम की विफलताः**– लोगों में उदासीनता, कर्मचारियों की लापरवाही एवं परिवार नियोजन कार्यक्रम का प्रचार–प्रसार कम होने से जनसंख्या वृद्धि कम नही हो पाती हैं।

(vii) **जन्मदर व मृत्युदर अन्तरः**– राजस्थान में जन्मदर व मृत्युदर में काफी अन्तर होने के कारण जनसंख्या वृद्धि अधिक रहती है। आर्थिक समीक्षा 2016–017 के अनुसार राजस्थान में जन्मदर 2015 में प्रतिहजार 24.8 व समस्त भारत में 20.8 रही हैं। इसका मुख्य कारण विवाह की अनिवार्यता और विवाह की औसत आयु कम होता हैं। राजस्थान में स्वास्थ्य सुरक्षा की जागरूकता के कारण मृत्यु दर तीव्र गति से घट गई।

जन्मदरः– जन्मदर को प्रतिवर्ष में जीवित शिशुओं की संख्या में कुल जनसंख्या का भाग देकर इसे 100 से गुणा करके प्रतिशत या 1000 से गुणा करके प्रति हजार ज्ञात करते हैं।

$$\text{जन्मदर} = \frac{B}{P} \times 1000$$

जहाँ B = एक वर्ष में हुए जन्मों की संख्या

P = उस अवधि की जनसंख्या हैं।

इस प्रकार मृत्युदर भी निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती हैं।

$$\text{मृत्युदर} = \frac{D}{P} \times 1000$$

जहां D = एक वर्ष की अवधि में हुई मृत्युओं की संख्या

P = उस वर्ष की जनसंख्या

(viii) **जनसंख्या प्रवासः**– योजना काल में भारत के पड़ोसी देशों एवं देश के दूसरे राज्यों के लोग पलायन करके राजस्थान

में आये हैं।

(ix) **भाग्यवादिता :–** अधिकांश लोग बच्चों को भगवान की देन मानते हैं, इस कारण वे छोटे परिवारों के प्रतिजागरूक नही रहते हैं।

(x) **अन्य कारणः–** आवास समस्या, मनोरंजन के साधनों का अभाव, सामाजिक सुरक्षा की अपर्याप्तता, अज्ञानता के कारण भी जनसंख्या वृद्धि को बढ़ाते हैं।

2. जनसंख्या घनत्त्व (Density of Population) – प्रति वर्ग किलोमीटर में निवास करने वाली जनसंख्या को जनसंख्या घनत्व कहते है। जनगणना, 2011 के अनुसार राजस्थान में जनसंख्या घनत्व 200 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर आंका गया। भारत में जनसंख्या घनत्व 382 रहा। भारत की तुलना में राजस्थान में जनसंख्या घनत्व कम है। 2001 में राजस्थान में यह 165 था। सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व बिहार में 1106 तथा न्यूनतम अरूणाचल प्रदेश में 17 है।

3. राजस्थान में शहरी व ग्रामीण जनसंख्या (Urban and Rural Population in Rajasthan) – जनसंख्या को निवास व क्रियात्मक विशेषताओं के आधार पर दो भागों, ग्रामीण व शहरी जनसंख्या में बांट कर अध्ययन किया जाता है क्योंकि ग्रामीण व शहरी जनसंख्या की संरचना, घनत्व, वितरण, जीवन स्तर, समस्याओं आदि में भारी अन्तर पाया जाता है। शहरी व ग्रामीण जनसंख्या के बीच आसानी से कोई विभाजन रेखा नही खींची जा सकती है क्योंकि ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में जनसंख्या का प्रवसन होता रहता हैं।

जनसंख्या 2011 के अनुसार राजस्थान में कुल जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्र में 75.13 प्रतिशत भाग निवास करता है शेष जनसंख्या शहरी क्षेत्र में निवास करती हैं। अतः राजस्थान की दो तिहाई जनसंख्या आज भी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती हैं।

4. लिंगानुपात (Sex-Ratio) – प्रति एक हजार पुरूषों के पीछे स्त्रियों की संख्या को लिंगानुपात कहते हैं। जनगणना 2011 के अनुसार राजस्थान में लिंगानुपात 928 रहा तथा भारत में 943 रहा। अतः लिंगानुपात भारत की तुलना में राजस्थान में कम रहा लेकिन 2001 में यह 921 था जिसमें 7 अंको की वृद्धि हुयी। भारत में सर्वाधिक लिंगानुपात केरल में 1084 तथा राजस्थान सर्वाधिक लिंगानुपात प्रतापगढ़ 994 न्यूनतम एवं धौलपुर में 846 रहा हैं।

बाल लिंगानुपात – 0–6 आयु वर्ग में लिंगानुपात को बाल लिंगानुपात माना गया। राजस्थान में बाल लिंगानुपात 2011 में घटकर 888 रह गया। जो 2001 में 909 था। जो राजस्थान में चिंता का विषय माना गया। राजस्थान का क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल का 10.4 प्रतिशत है तथा यहां कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग निवास करता है।

राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि दर भारत में जनंसख्या वृद्धि दर से अधिक रही। अतः राजस्थान की जनसंख्या का आकार बड़ा है तथा लगातार तीव्र गति से बढ़ रहा है।

5. जिलेवार जनसंख्या घनत्व, लिंगानुपात (District Wise Population and Sex Ratio) – जिलेवार जनसंख्या व जनसंख्या घनत्व, लिंगानुपात राजस्थान के 33 जिलों में जनगणना 2011 के अनुसार सर्वाधिक जनसंख्या जयपुर जिले में तथा न्यूनतम जनसंख्या जैसलमेर जिले में हैं। सर्वाधिक न्यूनतम जनसंख्या घनत्व भी इन्ही जिलों में पाया गया है।

गुणात्मक पहलू

1. **शिक्षा/साक्षरता** (Literacy and Education):– मानव संसाधन विकास में शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा मानव के जीवन का सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक उन्नति का आधार होता है। शिक्षा मानव पूंजी का महत्वपूर्ण स्रोत है। शिक्षा से मानव की कार्यकुशलता का विकास होता है। इसमें देश की सामाजिक आधारभूत संरचना सुदृढ़ होती है। जिससे आर्थिक विकास में योगदान मिलता है।

राज्य की विभिन्न विकास योजनाओं का मूल उद्देश्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों का विकास कर, लोगों को अधिक समृद्ध एवं खुशहाल बनाना है। अतः राज्य सरकार सामाजिक क्षेत्र के विकास के लिए प्राथमिकता के आधार पर हर संभव प्रयास कर रही है। सामाजिक क्षेत्र से संबंधित गतिविधियों में शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, आवास, पेयजल आदि के विकास को विशेष महत्व दिया जाता है।

मानव इतिहास के आदि काल से ही शिक्षा का विविध प्रकार से विकास एवं प्रसार निरन्तर जारी है। क्योंकि शिक्षा आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण कारण है। मानव पूंजी में पर्याप्त निवेश के बिना सतत् आर्थिक विकास संभव नही है। शिक्षा से लोगों में समझदारी, विवेकशीलता, गुणवत्ता, कार्यकुशलता का विकास होता है। शिक्षा लोगों में उत्पादकता व रचनात्मकता को बढ़ाती है तथा उद्यमशीलता एवं तकनीकों विकास को भी

बढ़ावा देती है। अतः प्रत्येक देश सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए विशिष्ट शिक्षा प्रणाली को विकसित करता है। राज्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

राजस्थान को राज्य के गठन के समय कमजोर शिक्षा प्रणाली विरासत में प्राप्त हुयी। तब से ही राज्य सरकार शिक्षा एवं शिक्षा संसाधनों में सुधार के लिए ठोस प्रयास कर रही है। सरकार विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं के माध्यम से सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु लगातार प्रयासरत है।

राजस्थान में साक्षरता की स्थिति

जनगणना 2011 के अनुसार राजस्थान में कुल साक्षरता 66.10 प्रतिशत है। जिसमें पुरूष साक्षरता 79.20 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 52.10 प्रतिशत ही है। जबकि भारत में कुल साक्षरता 72.99 प्रतिशत है। अतः राज्य की साक्षरता देश की साक्षरता की तुलना में कम है।

2001 व 2011 में साक्षरता प्रतिशत

राज्य/देश / वर्ष	राजस्थान		भारत	
	2001	2011	2001	2011
कुल साक्षरता	60.40	66.10	64.80	72.99
पुरूष साक्षरता	75.70	79.20	75.30	80.89
महिला साक्षरता	43.90	52.10	53.70	64.64

(Economic Review 2014-15 P. A44)

उक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि राजस्थान की साक्षरता दर भारत की तुलना में काफी कम है। विशेष रूप से महिला साक्षरता बहुत ही नीची है। लेकिन पिछले वर्षो की तुलना में 2011 में राज्य की साक्षरता में काफी सुधार हुआ है। साक्षरता की दृष्टि से बिहार आज भी पिछड़ा हुआ है। सर्वाधिक साक्षरता केरल में है।

राज्य में महिला साक्षरता की स्थिति आज भी दयनीय है और शहरी महिलाओं की तुलना में तो ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता का नितान्त अभाव है तथा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों में भी साक्षरता का अनुपात काफी नीचा बना हुआ हैं।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में साक्षरता

	राजस्थान	
वर्ष	2001	2011
कुल साक्षरता	60.4	66.11
ग्रामीण साक्षरता	55.3	61.4
शहरी साक्षरता	76.2	79.7

(Economic Review 2014-15 P. A44)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि राज्य में शहरी क्षेत्र में साक्षरता का अनुपात ग्रामीण साक्षरता से अधिक रहा है।

राज्य में जिलेवार सर्वाधिक व न्यूनतम साक्षरता	
राजस्थान में सर्वाधिक साक्षरता	कोटा में 76.6 प्रतिशत
न्यूनतम साक्षरता	जालौर में 54.9 प्रतिशत
सर्वाधिक पुरूष साक्षरता	झून्झूनु में 86.9 प्रतिशत
न्यूनतम पुरूष साक्षरता	प्रतापगढ व बांसवाड़ा (69.5)
सर्वाधिक महिला साक्षरता	कोटा 65.9 प्रतिशत
न्यूनतम महिला साक्षरता	जालौर 38.5 प्रतिशत

2001–2011 के दशक में राज्य में कुल साक्षरता दर में काफी सुधार हुआ है। लेकिन आज भी राज्य साक्षरता की दृष्टि से भारत व अन्य राज्यों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। विशेष रूप से राज्य में महिला साक्षरता ग्रामीण क्षेत्र में बहुत कम है, तथा SC/ST वर्ग के लोगों में भी साक्षरता का अभाव है।

राजस्थान में नीची साक्षरता के कारण

1. पुनर्गठन से पूर्व रियासतों में शिक्षा पर ध्यान नही दिया।
2. विभिन्न सरकारों ने भी साक्षरता के विकास पर विशेष ध्यान नही दिया।
3. सामाजिक व आर्थिक कारणों ने भी साक्षरता को प्रभावित किया।
4. राज्य की निर्धनता भी साक्षरता में अवरोधक रही।
5. राज्य में शिक्षा के संसाधनों, स्कूलों का भी अभाव रहा।

राजस्थान में प्रारंभिक, माध्य तथा उच्च शिक्षा की स्थिति – राजस्थान में 2014–15 तक 41,525 प्राथमिक

विद्यालय 37573 उच्च प्राथमिक विधालय, एवं 27,155 प्राथमिक कक्षाओं सहित माध्य/उच्च माध्यमिक, विधालय चालू है। जिनमें 60.75 लाख छात्र नामांकित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिकता दी गयी है। 6–14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए 'सर्व शिक्षा अभियान' कार्यक्रम चलाया जा रहा है। राज्य में निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE) 2009 एक अप्रेल, 2010 से लागू किया गया है। इसके तहत् निजी विद्यालयों में कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गयी है।

बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 200 कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय कार्यरत है तथा 10 मेवात बालिका आवासीप विद्यालय संचालित है।

शिक्षा में गुणवत्ता बढ़ाने के लिए सम्बलन अभियान 2012–13 से प्रारम्भ किया गया तथा विधालय में भौतिक संसाधनों के विकास पर जोर दिया जा रहा है।

साक्षरता को बढ़ाने के लिए राज्य में – सम्पूर्ण साक्षरता अभियान, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, साक्षर भारत कार्यक्रम, सतत् शिक्षा कार्यक्रम आदि चलाये जा रहे हैं।

माध्यमिक शिक्षा की स्थिति – माध्यमिक शिक्षा वह स्तर है जहां विधार्थी स्वरोजगार व रोजगार हेतु पाठ्यक्रम का चुनाव करते है। वर्तमान (2016–17) में राज्य में 13,527 माध्यमिक एवं 15683 उच्च माध्यमिक विद्यालय संचालित है। जिनमें से 3875 माध्य एवं 9,444 उच्च माध्यमिक विद्यालय सरकारी क्षेत्र में है। जिनमें 15.48 लाख बालिकाओं सहित कुल 37.96 लाख विधार्थी अध्ययनरत है। सकल नामांकन अनुपात को वर्ष 2017 तक 100 प्रतिशत तथा ठहराव दर वर्ष 2020 तक 100 प्रतिशत करने के उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) योजना चल रही है। प्रत्येक ग्राम पंचायत में कम से कम एक उच्च माध्यमिक विद्यालय स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। 66 अंग्रेजी माध्यम के स्वामी विवेकानन्द राजकीय मॉडल स्कूलों की स्थापना की गयी है।

- विद्यालयों में शौचालयों, पेयजल सुविधाओं एवं भौतिक संसाधनों के विकास पर भी जोर दिया जा रहा है।
- बालिकाओं के लिए साईकिल वितरण योजना चल रही है। राष्ट्रीय प्रतिभा खोज/राज्य प्रतिभा खोज (NTSE/STSE) के तहत् छात्रों को छात्रवृत्तियां प्रदान की जा रही हैं।

उच्च शिक्षा – राजस्थान में उच्च शिक्षा विभाग सामान्य शिक्षा के महाविद्यालयों से संबंधित है वर्तमान में राज्य में 1729 महाविद्यालय कार्यरत है। इनमें से 192 राजकीय महाविद्यालय, 1509 निजी महाविद्यालय, 7 संस्थान स्ववित्त पोषित एवं 4 महाविद्यालय (PPP Mode) सार्वजनिक निजी सहभागिता के अन्तर्गत संचालित है।

814 शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय (B.Ed. College.), 15 राजकीय विधि महाविद्यालय, 43 निजी विधि महाविधालय संचालित है। राज्य में 40 निजी विश्वविद्यालय, 7 डीम्ड विश्वविद्यालय संचालित है। उच्च शिक्षा में 3.56 लाख विद्यार्थी राजकीय महाविद्यालय में नामांकित है।

उच्च शिक्षा में छात्राओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। अतः राज्य में 27 महिला महाविद्यालय तथा 17 स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय संचालित है।

तकनीकी शिक्षा हेतु 2016–17 में कुल 197 पोलोटेक्निक महाविद्यालय, 2015 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, चिकित्सा शिक्षा के लिए राज्य में 12 मेडिकल कॉलेज है। जिनमें 8 राजकीय तथा 4 निजी क्षेत्र के हैं।

सारांश में शिक्षा में मात्रात्मक उद्देश्यों को पूरा करने पर को बल दिया जा रहा है लेकिन भौतिक सुविधाओं का अभाव है, गरीबी के कारण आज भी कई बच्चे शिक्षा से वंचित रह रहे हैं। साक्षरता के कार्यक्रमों का अनुकूलतम क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है। जिससे साक्षरता में धीमी गति से वृद्धि हो रही है तथा शिक्षा गुणात्मक दृष्टि से कमजोर होती जा रही है। शिक्षा को रोजगारोन्मुखी, रूचिपूर्ण बनाये एवं उच्च शिक्षा में राजकीय महाविद्यालयों का विस्तार करेंने की नितान्त आवश्यकता हैं।

2. स्वास्थ्य (Helth) – स्वस्थ व्यक्ति ही आर्थिक एवं सामान्य विकास को तेजी से बढ़ा सकते है। लोगों को स्वास्थ्य मुख्यतया खान–पान, संतुलित आहार, पेयजल, आवास से प्रभावित होता है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उत्तम स्वास्थ्य सेवाओं से लोगों की कार्यकुशलता बढ़ती है। शिशु मृत्यु दर एवं सामान्य मृत्यु दर घटती है और जीवन प्रत्याशा बढ़ती है जो आर्थिक एवं सामाजिक विकास के सूचक हैं।

राजस्थान में स्वास्थ्य की स्थिति को निम्न स्वास्थ्य सूचकों से दर्शाया जा सकता है। इसमें जीवन प्रत्याशा, शिशु

मृत्यु दर, जन्म दर व मृत्यु दरों को शामिल करते हैं।

क्र.सं.	स्वास्थ्य संकेतक	राजस्थान	भारत
1	शिशु मृत्यु दर (SRS-2015)	43	37
2	मातृ मृत्यु अनुपात (SRS-2011-13)	244	167
3	कुल प्रजनन दर (SRS-2013)	2.8	2.3
4	शिशु मृत्यु दर (0-4)	13	11
5	जन्मदर (SRS-2015)	24.8	20.8
6	मृत्युदर (SRS-2014)	6.5	7.0
7	कुल जीवन प्रत्याशा (SRS-2010-14)	67.7	67.9
8	पुरूष (SRS-2006-10)	64.7	64.6
9	महिला (SRS-2006-10)	68.3	67.7

तालिका से स्पष्ट होता है कि राजस्थान में स्वास्थ्य सूचकों की स्थिति राष्ट्रीय स्थिति से अच्छी नही है। राज्य में जन्मदर तथा शिशु मृत्यु दर देश से अधिक है। हालांकि मृत्यु दर तथा जीवन प्रत्याशा में कोई विभेद नही रहा। लेकिन अन्य राज्यों की तुलना में राज्य के स्वास्थ्य, सूचकों की स्थिति अच्छी नही है। देश में केरल की स्थिति सबसे अच्छी आंकी गयी है।

स्वास्थ्य सुविधाएं:– स्वास्थ्य सुविधाओं के अन्तर्गत अस्पतालों, डॉक्टरों की संख्या, पोषण, पेयजल सुविधाओं को शामिल करते हैं। 2016 तक राज्य में ऐलोपैथिक मेडिकल संस्थाओं की कुल संख्या 17546 थी जिसमें 114 अस्पताल, 194 डिसपेन्सरियां तथा 14407 उप स्वास्थ्य केन्द्र तथा शेष अन्य संस्थाएं थी। राज्य में वर्तमान में 118 आयुर्वेदिक अस्पताल 3,577 आयुर्वेदिक औषधालय, 3 योग एवं प्राकृतिक चिकित्सालय संचालित है। राज्य में 46669 रोगी शैय्याओं की सुविधा थी। राज्य में स्वास्थ्य सुविधाओं का अन्य राज्यों की तुलना में अभाव है। स्वास्थ्य सुविधाओं का गांवों व शहरों में विस्तार करने की नितान्त आवश्यकता है।

राज्य की जनता को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए राज्य सरकार द्वारा चिकित्सा क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया जा रहा हैं।

राज्य में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार हेतु चलायी गयी योजनाएं

(i) **मुख्यमंत्री निःशुल्क दवा योजनाः–** यह योजना 2 अक्टूबर, 2011 में लागू की गयी। इसका उद्देश्य, राजकीय चिकित्सालयों में आने वाले सभी अन्तरंग एवं बहिरंग रोगियों को लाभ पहुंचाना तथा रोगियों को अधिकांश दवाईयां निशुल्क उपलब्ध करवाना है।

(ii) **मुख्यमंत्री निःशुल्क जांच योजना –** यह योजना राजकीय अस्पतालों में सम्पूर्ण उपचार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रयोगशालाओं की क्षमता बढ़ाने और अन्य जांच सुविधाएं निःशुल्क उपलब्ध कराने के लिए चलायी गयी हैं।

इसके अलावा जननी शिशु सुरक्षा योजना, राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम, मुख्यमंत्री B.P.L. जीवन रक्षा कोष योजना, जननी एक्सप्रेस, धनवन्तरी 108 टोल फ्री एम्बुलेंस योजना आदि भी राज्य में स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए चल रही है। कर्मचारी राज्य बीमा योजना, परिवार कल्याण एवं जनसंख्या स्थिरीकरण कार्यक्रम, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, आशा सहयोगिनी आदि योजनाएं चल रही है।

राज्य में स्वास्थ्य क्षेत्र की समस्याएं – उक्त योजनाओं के उपरान्त राजस्थान के ग्रामीण, दूर–दराज क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव बना हुआ है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु जन्म के समय अप्रशिक्षित दाइयों की सेवाएं ली जाती है। ग्रामीण क्षेत्र में अस्पतालों के अभाव के कारण नीम हकीमों का जाल फैला हुआ है।

3. **आवास** (Habitate) – राज्य में मानव संसाधन के लिए हवादार व रोशनी युक्त आवास की भी नितान्त आवश्यकता होती हैं। स्वच्छ आवास में निवास करने पर मानव मानसिक व शारीरिक दोनो ही प्रकार से स्वस्थ रहता हैं। इसके लिए राज्य व केन्द्रीय सरकारें विभिन्न योजनाओं द्वारा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के लिए आवास उपलब्ध कराने का प्रयास कर रही हैं। वर्तमान में सरकार द्वारा राज्य में आवास के लिए निम्न योजनायें संचालित है :–

(i) **राजीव आवास योजना (आर.ए.वाई.) –** राजीव आवास योजना का मुख्य उद्देश्य कच्ची बस्तियों में जीर्णशीर्ण अवस्था में रहने वाले निवासियों के जीवन स्तर में सुधार लाना हैं। राजीव आवास योजना जून, 2011 में दो चरणों में प्रारम्भ की गई; प्रारम्भिक चरण जून, 2013 तक रहा, जो दो वर्षो का था एवं क्रियान्वयन चरण, भारत सरकार द्वारा वर्ष 2013–2022 के लिए अनुमोदित किया गया हैं। राजीव आवास योजना की कार्यान्वयन रणनीति की परिकल्पना दो चरणों अर्थात् कच्ची

बस्ती मुक्त शहर योजना (एस.एफ.सी.पी.ओ.ए.) के कार्य की तैयारी और चयनित कच्ची बस्तियों के लिए परियोजना की तैयार में हैं।

(ii) **एकीकृत आवास एवं कच्ची बस्ती (स्लम) विकास कार्यक्रम (आई.एच.एस.डी.पी.)** – इस योजना का मुख्य उद्देश्य शहरी क्षेत्रों की चिन्हित कच्ची बस्तियों में रहने वाले व्यक्तियों को आवास एवं आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराना है। इस योजना में समूह पद्धति के माध्यम से कच्ची बस्तियों में निवास करने वाले समाज के सभी वर्गों को लक्षित समूह में रखा गया है। शहरी स्थानीय निकायों हेतु अभी तक 66 परियोजनाओं हेतु रूपये 1,012,78 करोड़ स्वीत किए गए हैं। इस योजना के अन्तर्गत गृह निर्माण के अतिरिक्त सड़क, नालियां, सामुदायिक केन्द्र, सामुदायिक शौचालय, सीवरेज प्रणाली, सैफ्टी टैंक, रोड़ लाइट व पेयजल सहित आधारभूत विकास की अन्य परियोजनाएं सम्मिलित हैं।

(iii) **इन्द्रा आवास योजना** – मानवीय अस्तित्व एवं सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए आवास एक मूलभूत आवश्यकता है। ग्रामीण गरीबों हेतु उन्नत आवास की तीव्र आवश्यकता महसूस की गई। ग्रामीण गरीबों हेतु आवास पूर्ति के प्रयासों के क्रम में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम एवं जवाहर रोजगार योजना की एक उप योजना के रूप में वर्ष 1985–86 में इन्दिरा आवास योजना प्रारम्भ की गई। योजना की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैः–

- ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले विशेष योग्यजनों के लिए तथा अल्पसंख्यकों के लिए आवास निर्माण।
- परिवार की महिला सदस्य अथवा पति–पत्नी के संयुक्त नाम से सहायता स्वीकृत की जाती हैं।
- अनु.जाति/जनजाति के लोगों के आवास के लिए एवं स्वस्थ शौचालय एवं धुंआ रहित चूल्हा इन्दिरा आवास योजना में बनाये जाते हैं।
- मुख्यमंत्री जन आवास योजना 2015
- योजना में निर्माण कार्य की तकनीक, निर्माण सामग्री का चयन एवं डिजाइन का कार्य लाभार्थी पर छोड़ा गया है। इस सम्बन्ध में बिचौलिए अथवा ठेकेदार एवं विभागीय एजेन्सी की आवास निर्माण में कोई भूमिका नहीं हैं।

4. **पेयजल (Drinking Water)** – मानव संसाधन विकास में जल का महत्वपूर्ण स्थान हैं। अतः मानव संसाधन के लिए शुद्ध पेयजल उपलब्ध होना जरूरी हैं। राजस्थान में ग्रामीण क्षेत्र के साथ शहरी क्षेत्रों में भी यह समस्या लगातार बनी हुई हैं। राज्य सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों के माध्यम से पेयजल की समस्या का समाधान करने का प्रयास लगातार करती रहती हैं। चालू वर्ष 2014–15 में विभाग द्वारा 3,173 बस्तियों/ढ़ाणियों को पेयजल से लाभान्वित करने का कार्य हाथ में लिया गया हैं। वर्तमान में पेयजल उपलब्ध कराने हेतु निम्न योजनाएं संचालित हैं।

(i) **ग्रामीण पेयजल योजनाएं** – इस योजना के संचालन के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा धन उपलब्ध कराया जा रहा हैं।

(ii) **शहरी पेयजल योजनाएं** – राज्य में 33 जिला मुख्यालयों सहित 222 शहरी/कस्बें शामिल हैं। राज्य के सभी 222 शहर/कस्बें पाइप्ड पेयजल योजना से लाभान्वित हैं।

राज्य के सात प्रमुख शहर यथा–जयपुर, अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, भरतपुर, कोटा एवं उदयपुर में स्थाई जलस्रोत से पेयजल आपूर्ति की जा रही हैं। राज्य के अन्य शहरों, कस्बों में अत्याधिक भू–जल दोहन एवं भू–जल के कम संरक्षण होने से स्थानीय पेयजल स्रोतों के असफल होने के कारण पेयजल की समस्या हैं। राज्य सरकार द्वारा भूगर्भीय स्रोत से सतही जलस्रोत आधारित पेयजल योजनाएं परिवर्तित करने का नीतिगत निर्णय लिया गया हैं।

आर.ओ. प्लॉन्स स्थापित करने का कार्य सौर ऊर्जा आधारित बोरवेल पम्पिंग सिस्टम।

(iii) **वृहद पेयजल योजनाएं** – राज्य के दीर्घकालिक पेयजल समस्या के स्थायी समाधान हेतु राज्य में उपलब्ध कुछ सतही स्रोत जैसे–इन्दिरा गांधी नहर परियोजना, नर्मदा नदी योजना, बीसलपुर बांध योजना, जवाई बांध योजना आदि इसमें शामिल हैं। इन प्रगतिरत् परियोजनाओं को आगामी 3–4 वर्षों में पूर्ण किया जाना लक्षित हैं।

निष्कर्ष – राजस्थान के मानवीय संसाधनों के मात्रात्मक तथा गुणात्मक पहलुओं के अध्ययन के बाद यह स्पष्ट होता है कि राज्य में जनसंख्या के मात्रात्मक पहलुओं में तीव्र वृद्धि हुई तथा गुणात्मक पहलू आज भी कमजोर स्थिति में है। राज्य में जनसंख्या वृद्धि घटनी चाहिए, गुणात्मक व मात्रात्मक दोनों प्रकार की साक्षरता बढ़नी चाहिए, जन्मदर पर प्रभावी नियंत्रण

होना चाहिए, स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि तथा सामाजिक सूचकों में सकारात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है। सरकार को राज्य में मानव विकास तथा मानव पूँजी निर्माण को बढ़ाने के प्रभावी प्रयासों की क्रियान्विति की जानी चाहिए। तब ही राज्य का मानव संसाधन विकास हो सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- किसी भी अर्थव्यवस्था में भौतिक संसाधनों के साथ–साथ मानवीय संसाधनों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।
- सामाजिक आधारभूत संरचना में जनसंख्या, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास व पेयजल का अध्ययन किया जाता है।
- प्रति हजार पुरूषों स्त्रियों की संख्या को लिंगानुपात कहते हैं।
- राजस्थान में सर्वाधिक लिंगानुपात धौलपुर (994) और सबसे कम लिंगानुपात जैसलमेर 846 रहा है।
- शिक्षा ही मानव जीवन की सामाजिक व आर्थिक उन्नति का आधार होती है। शिक्षा मानव पूंजी का महत्वपूर्ण स्रोत है।
- सामाजिक विकास के लिए महिला साक्षरता महत्वपूर्ण होती है। राजस्थान में ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता बहुत कम है।
- स्वस्थ व्यक्ति ही आर्थिक एवं सामाजिक विकास को तेजी से बढ़ा सकता है अतः राजस्थान में स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार की आवश्यकता हैं।
- स्वास्थ्य सेवाओं के सुधार में राजस्थान सरकार निःशुल्क दवाई, मुख्यमंत्री निःशुल्क जांच योजना, जननी शिशु सुरक्षा योजना, राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम, मुख्यमंत्री बी.पी.एल. जीवन रक्षा कोष, जननी एक्सप्रेस आदि योजनाएं संचालित हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) जनगणना, 2011 के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या है ?
(अ) 5.65 करोड़
(ब) 6.85 करोड़
(स) 5.85 करोड़
(द) 6.65 करोड़ ( )

(2) राज्य में 2001–2011 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर रही है ?
(अ) 28.44
(ब) 28.41
(स) 21.30
(द) 20.40 ( )

(3) राजस्थान में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व वाला जिला है।
(अ) जयपुर
(ब) अजमेर
(स) उदयपुर
(द) जैसलमेर ( )

(4) 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में लिंगानुपात क्या है?
(अ) 935
(ब) 928
(स) 920
(द) 925 ( )

(5) 2011 की जनगणना के अनुसार सर्वाधिक महिला साक्षरता वाला जिला कौनसा है–
(अ) कोटा
(ब) जालौर
(स) झून्झूनु
(द) प्रतापगढ़ ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

(1) मानव संसाधन का अर्थ बताइयें ?
(2) राजस्थान में सर्वाधिक साक्षरता कौनसे जिले में है ?
(3) राज्य की कितनी प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है ?
(4) मानव विकास के कौन–कौनसे सूचक हैं ?
(5) राज्य में अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम (RTE Act) कब से लागु किया गया है।
(6) सर्वाधिक जनसंख्या कौनसे जिले में है ?
(7) 2011 के अनुसार सबसे कम जनसंख्या कौनसे जिले में है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

(1) राजस्थान में प्राथमिक शिक्षा में क्या–समस्याएं पायी

गयी है।।

(2) जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण को स्पष्ट करों।

(3) राजस्थान के स्वास्थ्य सूचकों की स्थिति का वर्णन करों।

(4) मुख्यमंत्री निशुल्क दवा योजना को स्पष्ट करों ?

(5) जनसंख्या वृद्धि दर को प्रभावित करने वाले कारकों की सूची बनाइये ?

(6) लिंगानुपात किसे कहते हैं ? राजस्थान में इसकी स्थिति बताइये ?

(7) राजस्थान में साक्षरता नीचे रहने के कारण बताइये ?

निबन्धात्मक प्रश्न

(1) राजस्थान के जनसंख्या के आकार एवं वृद्धि के कारणों को स्पष्ट करों।

(2) राजस्थान की शिक्षा की स्थिति व समस्याओं का वर्णन करते हुये निवारण के उपाय बताओं।

(3) राजस्थान सरकार द्वारा शिक्षा व स्वास्थ्य पर किये गये प्रयासों का वर्णन करें।

(4) मानव संसाधनों में मात्रात्मक पहलुओं की स्थिति स्पष्ट करें।

उत्तरमाला

1. (ब) 2. (स) 3. (अ) 4. (ब) 5. (अ)

संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय अर्थव्यवस्था – डॉ. छीपा एवं शर्मा, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
2. आर्थिक समीक्षा – 2016–17

अध्याय–5.4

राजस्थान में पर्यटन विकास
(Tourism Development in Rajasthan)

मानव एक सामाजिक एवं जिज्ञासु प्राणी है। आज के इस प्रगतिशील युग में मनुष्य अपने कार्यों में इतना व्यस्त रहता है कि उसे अपने दैनिक कार्यो से अरूचि उत्पन्न होने लगती है। वह समय निकालकर देश–विदेश में भ्रमण करना चाहता है।

ऐतिहासिक स्थलों को देखने, प्राकृतिक सुरम्यता व सौन्दर्य का आनन्द लेने, धार्मिक स्थलों का दर्शन करने एवं पर्वतीय स्थलों पर भ्रमण करने तथा भाषा, संस्कृति की जानकारी प्राप्त करने के लिए जो यात्राएँ की जाती है उसे पर्यटन कहते हैं। आज के युग में पर्यटन भी औद्योगिक क्रियाओं की भांति विकसित हो चुका है, इसलिए हम इसे पर्यटन उद्योग कहते है।

राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा का पर्यटन में उच्च स्थान प्राप्त है। इस सम्बन्ध में एक कथन सदैव गूंजता रहता है– ''कैसरिया बालम आवो जी पधारो नी म्हारे देश'' ''पधारो सा'' यह राज्य वास्तव में सुरंगा राजस्थान है।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पर्यटन की भूमिका
(Role of Tourism in Rajasthan Economy)

भारत में कश्मीर, गोवा व राजस्थान तीन प्रमुख पर्यटन केन्द्र है। कश्मीर में पिछले कुछ वर्षो से बढ रही आतंकवादी एवं अलगाववादी गतिविधियों से इसका महत्व कम हो रहा है। इस कारण पर्यटक राजस्थान की ओर मुड़ रहे है। राज्य सरकार ने पर्यटन को उद्योग घोषित किया हुआ है। वास्तव में पर्यटन राज्य की अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड बन सकता है। राज्य की अर्थव्यवस्था

हवा महल, जयपुर

(1) **विदेशी मुद्रा की प्राप्ति (Foreign Exchange Earning)** पर्यटन वह माध्यम है जो बिना वस्तुएं निर्यात किये ही करोड़ो रूपये की विदेशी मुद्रा प्रदान करता है। विदेशो से आने वाले पर्यटकों में से हर तीसरा पर्यटक राजस्थान में आता है। वर्ष 2014 में 330.76 लाख घरेलु एवं 15.36 लाख विदेशी पर्यटक राजस्थान आये थे। इस प्रकार कुल पर्यटकों की संख्या 346.02 लाख रही जबकि 2013–14 में 317.30 लाख पर्यटक राजस्थान में आये थे। राज्य में प्रतिवर्ष एक हजार करोड़ रुपये पर्यटक खर्च करके जाते है जिससे आर्थिक विकास में मदद मिलती है।

(2) **रोजगार के साधन (Means of Employment)** राजस्थान में पर्यटन को उद्योग का दर्जा दे दिया गया है। यह एक प्रदुषण मुक्त उद्योग है। यह माना जाता है कि प्रत्येक आठ विदेशी पर्यटकों पर राज्य में एक व्यक्ति को रोजगार मिलता है तथा प्रत्येक 32 स्वदेशी पर्यटकों पर एक व्यक्ति के लिए रोजगार का अवसर खुलता है। पर्यटन उद्योग से गाइड, ट्रेवल एजेन्ट, ड्राईवर, होटलवालों, हस्तशिल्पियों को पर्याप्त रोजगार मिलता है इस प्रकार पर्यटन उद्योग से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।

(3) **संस्कृति एवं कला का विकास (Art and Cultural development)** पर्यटन उद्योग राज्य की सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखता है। पर्यटन से सांस्कृतिक आदान–प्रदान के अवसरों में वृद्धि होती है। राज्य के मेलों व त्यौहारों पर जो नृत्य एवं संगीत के कार्यक्रम होते है, उनको देखने देशी व विदेशी पर्यटक आते है जैसे– जयपुर में तीज, गणगौर तथा कठपुतली के खेल से पर्यटक आर्कषित होते है। जैसलमेर के मरु मेले में प्रतिवर्ष काफी संख्या में पर्यटक आते है। राज्य

के शेखावाटी आंचल की हवेलियों में दीवारों पर बनी चित्रकारी ने पर्यटकों को बहुत ही आकर्षित किया है। नवलगढ़ में पौद्यारों, छावछरिया, मानसिंघका, सेकसरिया तथा मोरों की हवेलियां पर बनी चित्रकारी देखने लायक है। आमेर में हाथी सवारी जैसलमेर में ऊंट सवारी पर्यटकों का मन मोह लेती है। इस प्रकार पर्यटक देश की संस्कृति व कला को विश्व में बिना श्रम के पहुँचा देते है।

(4) **परिवहन सुविधाओं में वृद्धि (Increase in transport facilities)** पर्यटकों के आने पर आवागमन के साधनो का विकास होता है जैसे ''पैलेस आन व्हील्स रेलगाड़ी पर्यटकों की सुविधा के लिए चलाई जाती है।

उपरोक्त के अतिरिक्त राज्य में आय व रोजगार सृजन की संभावना भी बनती है, जिससे व्यापार व उद्योगों का विकास होत हैं विदेशी पर्यटकों के आवागमन से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि का आकर्षण भी बनता है।

राजस्थान में पर्यटन की दृष्टि से मण्डल क्षेत्र (Circuit) बनाये गये है जो निम्न है।

(1) ढूँढाड़ क्षेत्र (जयपुर–अजमेर–दौसा) (Dhundhar Circuit)
(2) मेवात क्षेत्र (अलवर–भरतपुर–सवाई माधोपुर) (Mewat Circuit)
(3) बांगड क्षेत्र (Vangad Circuit) – डूंगरपुर–बांसवाड़ा
(4) हाड़ौती क्षेत्र (Hadoti Circuit) – कोटा–बून्दी–झालावाड
(5) मेर वाड़ा क्षेत्र (Merwara Circuit) – अजमेर–पुष्कर–मेड़ता–नागौर
(6) शेखावाटी क्षेत्र (Shekhawati Circuit) – सीकर–झुन्झुनूं–चूरू
(7) मरू क्षेत्र (Desert Circuit) – बीकानेर–जैसलमेर–बाड़मेर–जोधपुर
(8) गोडवाड क्षेत्र (Godwad Circuit) – माउण्ट–आबू–रणकपुर–जालौर
(9) मेवाड़ क्षेत्र (Mewar Circuit) – उदयपुर–कुम्भलगढ़–नाथद्वारा–चित्तौड़गढ–जयसमन्द–डूंगरपुर
(10) रणथम्भौर क्षेत्र (Ranthambor Circuit) – रणथम्भोर–सवाईमाधोपुर–टोंक

इन क्षेत्रों में अलग–अलग विशिष्टताएं पाई जाती है कही पहाड़ी तो कहीं मरुस्थल आदि। इस प्रकार प्रकृति द्वारा प्रदत्त आकर्षण से पर्यटक राजस्थान की ओर आकर्षित होते है।

राजस्थान में प्रमुख पर्यटन स्थल (Main tourism points in Rajasthan)

पर्यटन की दृष्टि से राजस्थान न सिर्फ भारत, अपितु विश्व के पर्यटन मानचित्र पर अपना विशिष्ट स्थान रखता है राजस्थान में जहां एक ओर जैसलमेर का 800 वर्ष से अधिक पुराना सोनार किला है तो दूसरी ओर महाराणा प्रताप की शौर्यगाथा का प्रतीक चित्तौड़गढ का शानदार किला है। भरतपुर में जहां एक ओर विश्वप्रसिद्ध घना राष्ट्रीय पक्षी विहार है वहीं दूसरी ओर झीलो की नगरी उदयपुर है। इस प्रकार राजस्थान के कोने–कोने में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न इमारतों का एक खजाना है। महत्वपूर्ण पर्यटक स्थल निम्न प्रकार से है।

(1) **दुर्ग एवं महल (Fort and Palace)** सन् 1733 में राजा सूरजमल ने लोहागढ़ किला भरतपुर में बनाया था। डीग के राजमहल थके मन के लिये आदर्श विश्राम स्थली हैं। भूतपूर्व रियासत धौलपुर और उसके महल गहरे लाल रंग के पत्थरों के लिये प्रसिद्ध हैं।

आमेर फोर्ट जयपुर

प्राचीन रणथम्भौर का किला सवाई माधोपुर जिले में स्थित है। यह 200 मीटर ऊँचा है। राजस्थान की राजधानी जयपुर गुलाबी नगर के नाम से प्रसिद्ध है। यह एक सुनियोजित शहर है। इसे महाराजा जयसिंह द्वितीय ने 18वीं शताब्दी में बसाया था। हिन्दु शिल्पकला के आधार पर जयपुर के प्रमुख प्रसाद (महल) और स्मारक बने हुए है तो दूसरी तरफ हिन्दु और मुस्लिम संस्कृतियों का सौहाद्रपूर्ण मिश्रण मेरवाड़ा क्षेत्र में देखने

को मिलता है। राज्य के रणबांकुरों की वीरता तथा शौर्य यहां के राजमहलों तथा दुर्गों में विद्यमान है। जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, कोटा, बूंदी तथा बीकानेर के मध्य राजमहल आकर्षण के प्रमुख केन्द्र है। महलों में बने भित्ति चित्र, कांच की बारीक कारीगरी एवं स्थापत्य कला के लिये आमेर, उदयपुर तथा बूंदी महल विश्व में अनूठे है। पहाड़ियों में बने दुर्गो में डीग, आमेर, बीकानेर, जैलसमेर, जोधुपर, जालौर, नागौर, बयाना, रणथम्भौर, तारागढ, शेरगढ, चित्तौड़गढ़ व कुम्भलगढ़ प्रसिद्ध है।

(2) **धार्मिक स्थल (Religious points)** धार्मिक दृष्टि से प्रमुख पर्यटन केन्द्रों में स्थित देलवाड़ा जैन मन्दिर संगमरमर पर उत्कीर्ण कारीगरी तथा रणकपुर का जैन मन्दिर साधारण पत्थर पर उत्कीर्ण कारीगरी के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इसके अलावा उदयपुर के जगदीश मन्दिर, ऋषभदेव, चारभुजा मन्दिर, नाथद्वारा, एकलिंग जी, सांवरिया, बिजोलिया, हाड़ौती पठार पर चार चौसा का शिव मन्दिर, पारण के मन्दिर एवं पुष्कर में ब्रह्मा मन्दिर अजमेर में सोनी जी का मन्दिर, ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह, सीकर में खाटुश्याम जी, सालासर जी का मन्दिर, जयपुर में गोविन्द देव जी का मन्दिर, आमेर का सूर्य मन्दिर तथा बीकानेर में करणीमाता मन्दिर प्रमुख है।

(3) **कला एवं संस्कृति स्थल (Art and cultural points)** राजस्थान कला एवं सांस्कृतिक दृष्टि से धनी राज्य है। मीनाकारी के आभुषणों में जयपुर, नाथद्वारा व प्रतापगढ़ तथा सांगानेर (जयपुर) रंगाई– छपाई तथा हस्तनिर्मित कागज कागज के लिए प्रसिद्ध है उदयपुर के लकड़ी के खिलौने एवं बीकानेर, जयपुर, बाड़मेर के कालीन तथा जयपुर के पीतल व चांदी के बर्तन पर बेलबूटे बनाने का कार्य पर्यटकों को काफी आकर्षित करता है।

नाकोड़ा जैन मंदिर

इसी प्रकार प्रतापगढ़ की कांच पर सोने के पानी की थेईकला चित्रकारी, शाहपुरा (भीलवाड़ा) की फड़ चित्रकारी, बूंदी, किशनगढ़ शैली की चित्रकथाएं व जयपुर की मूर्तिकला अपने आप में विशिष्ट स्थान रखती है। राजस्थान में मारवाड़ का डांडिया नृत्य, मेवाड़ा का घूमर, मरूस्थल का ढोल नृत्य, हाड़ौती का चकरी नृत्य बीकानेर का अग्नि नृत्य राज्य के जन–जीवन को व्यक्त करने तथा पर्यटकों के मनोरंजन के प्रमुख साधन है। कोटा का दशहरा मेला, जयपुर में तीज व गणगौर का मेला, भरतपुर की होली, जयपुर की रंगीन दिवाली, पर्यटकों को बहुत आकर्षित करती है। कोलायत में कपिल मुनि का मेला, अजमेर में ख्वाजा चिश्ती का मेला, करौली में केला देवी का मेला, पुष्कर का पशु मेला, पोकरण (जैसलमेर) में रामदेव जी का मेला, परबतसर में तेजा जी का मेला, गंगानगर में गोगा जी का मेला, रणथम्भौर मे गणेश जी का मेला आदि राज्य की सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

(4) **वास्तु व स्थापत्य कला** – राजस्थान में स्थापत्य एवं वास्तुकला के प्रसिद्ध केन्द्रों में अजमेर का ढाई दिन का झोपड़ा, जयपुर का जन्तर मन्तर, हवामहल, चन्द्रमहल व पूरा गुलाबी शहर, जैसलमेर में पटवों की हवेली व नथमल की हवेली, डीग के प्रसिद्ध महल, चित्तौडगढ किले पर विजय स्तम्भ एवं कीर्ति स्तम्भ, बूंदी में चौरासी खम्भों की छतरी, सारबाग की छतरियां, रानी जी की बावड़ी, रामगढ़ की हवेलियां, उदयपुर का तोरण द्वार, झालावाड़ की भवानी नाट्यशाला नवलगढ की इमारते आदि पर्यटकों को आकर्षित करती है।

नवलगढ़ की हवेली

(5) **अभ्यारण्य व राष्ट्रीय उद्यान (Wildlife Tourism)**

एशिया का श्रेष्ठ पक्षी विहार भरतपुर के निकट केवलादेव घना राष्ट्रीय उद्यान देश–विदेश से आने वाले पक्षियों व चिड़ियों की शरणस्थली का विश्वप्रसिद्ध स्थान है। अलवर जिले का सरिस्का अभ्यारण्य, कोटा जिले का दर्रा अभ्यारण्य, धौलपुर अभ्यारण्य, चुरू जिले का तालछापर मृग अभयारण्य प्रतापगढ के निकट सीतामाता अभ्यारण्य पर्यटकों के आकर्षण के प्रमुख केन्द्र है तथा सवाई माधोपुर का रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान तो देश के 9 बड़ो प्रोजेक्ट टाइगर क्षैत्रों में एक है। सन् 1983 में इसे राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया था। अलवर जिले में सरिस्का बांध अभ्यारण्य का 191 वर्ग मील का क्षेत्र राष्ट्रीय उद्यान के रूप में सन् 1982 में घोषित किया गया था।

रणथम्भोर अभ्यारण

इनके अलावा, भौगोलिक महत्व के स्थानों में अजमेर मे अनासागर, फाईसागर, पुष्कर, झील, जयपुर में गलता जी, जोधपुर में उम्मेद सागर, माउण्ट आबू में नक्की झील, उदयपुर में जयसमन्द, उदयसागर, फतहसागर व पिछोला झील पर्यटकों की पसन्द है। इनके अलावा जयपुर में बिड़ला मन्दिर, अजायबघर, आबू का सनसेट पाईन्ट, रेगिस्तान की चांदनी रात में ऊंट की सवारी, इसी प्रकार जयपुर का अत्याधुनिक कम्प्यूटर से युक्त बृजमोहन बिड़ला प्लेनिटोरियम लगातार पर्यटको का प्रमुख आकर्षण केन्द्र बनता जा रहा है।

पर्यटन की समस्याएँ एवं समाधान
(Problems of Tourism and their Solutions)

राजस्थान में दूसरे राज्यों की तुलना में पर्यटकों को प्राप्त होने वाली सुविधाएं पूरी तरह विकसित नहीं हो पाई, पर्यटन से जुड़ी सुविधाएं विकसित करने की सतत आवश्यकता है। ये समस्याएं निम्न प्रकार से है :–

(1) **उचित आवास व्यवस्था का अभाव** – पर्यटन के महत्त्व पूर्ण स्थानों पर आवास व्यवस्था उपयुक्त नहीं होने के साथ ही सुविधाजनक भी नहीं है। इन स्थानों पर समुचित मात्रा में होटल या पर्यटन आवास केन्द्रों का अभाव है। इस समस्या के समाधान के लिये राज्य सरकार ने महत्त्वपूर्ण पर्यटक स्थलों पर पेईंग गेस्ट सुविधा को विकसित करने का प्रयास किया है। रियासती दरों पर होटलों के निर्माण के लिए भूमि उपलब्ध कराई जाती है। पुराने किलो व महलों को हैरिटेज होटलों में परिवर्तित कर उनके पुनरूद्वार की कोशिश की है। इसके लिये महल, किले या हवेली का 75 वर्ष पुराना होना आवश्यक है।

(2) **प्रचार साहित्य, गाइड और जनसम्पर्क की समस्या** – पर्यटन के अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों पर न तो प्रशिक्षित गाइड उपलब्ध है और ना ही जनसम्पर्क का कोई ऐसा उचित माध्यम है जिससे पर्यटकों को पर्यटन स्थलों की भौतिक व भौगोलिक जानकारी दे सके। इस समस्या के समाधान के लिए पर्यटन विभाग द्वारा पर्यटन सूचना केन्द्रों का विस्तार और महत्त्वपूर्ण स्थानों पर पर्यटन स्वागत केन्द्रों की स्थापना की जा रही है।

(3) **अपर्याप्त परिवहन व संचार सुविधा** – राज्य में बड़े पर्यटन स्थलों पर परिवहन व संचार की सुविधाएं है परन्तु छोटे पर्यटन स्थलों पर यह सुविधा आसानी से उपलब्ध नहीं होती है। जिससे पर्यटकों को वहाँ तक पहुँचने में समय भी अधिक लगता है और खर्चा भी अधिक उठाना पड़ता है। पर्यटन विभाग द्वारा इन क्षेत्रों के लिए सरकारी और निजी स्तर पर उचित किराये पर परिवहन के साधन उपलब्ध कराने चाहिये।

(4) **पर्यटन स्थलों के रख–रखाव की समस्या** – महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थलों को छोड़कर दूसरे पर्यटन स्थलों पर स्वच्छता, रोशनी और मरम्मत अपर्याप्त पाई जाती है। ऐसे पर्यटन स्थलों को आकर्षक बनाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था की जरूरत है। यह जिम्मेदारी पर्यटन विभाग स्थानीय निकायों, पुरातत्त्व विभाग अथवा स्वयंसेवी संस्थाओं को अनुदान देकर, व्यवस्था कर सकता है।

(5) **विपणन केन्द्रों की कमी**– स्वदेशी और विदेशी पर्यटक

स्थानीय कपड़े, पेन्टिग आदि उचित मूल्य पर खरीदना चाहता है। प्रायः स्थानीय लोग व लपके उन पर्यटकों से वस्तुओं की ऊंची कीमत लेकर पर्यटकों के मन में गलत धारणाये पैदा करते है अतः पर्यटन विभाग द्वारा उचित दरों पर विपणन केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिये।

उपर्युक्त समस्याओं के अलावा पर्यटकों को समुचित सुरक्षा, आवश्यकता पड़ने पर पुलिस की पर्याप्त व समय पर सहायता तथा पर्यटकों के प्रति स्नेहपूर्ण एवं सम्मानजनक व्यवहार की आवश्यकता है। पर्यटकों को स्थानीय क्षेत्र के भिखारी परेशान करते है जिससे पर्यटकों के मन में इन स्थानों की गलत तस्वीर विकसित होती है।

पर्यटन को उद्योग बनाने और इसके माध्यम से रोजगार बढ़ाने के लिए सन् 2001 में एक पर्यटन नीति बनाई गई थी जिसके मुख्य बिन्दु निम्न थेः–

(i) राज्य की समृद्ध हस्तकला और कुटीर उद्योगों के माल के विक्रय के लिए समुचित बाजार का विकास।

(ii) पर्यटन इकाइयों की स्थापना के लिए कृषि भूमि की आरक्षित दरो के एक चौथाई दाम पर अधिकतम चार बीघा भूमि के आवंटन का प्रावधान किया गया।

(iii) पर्यटन इकाई में अकुशल कार्यबल की शत प्रतिशत भर्ती स्थानीय स्तर पर की जाये।

(iv) नई पर्यटन इकाइयों को पांच वर्ष तक विलासिता शुल्क में छूट।

(v) नये होटलों को भूमि खरीदने में पंजीयन शुल्क में 60 प्रतिशत की छूट

(vi) ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने वाले होटलों पर उपयुक्त छूट के अलावा भूमि एवं भवन कर पर शत प्रतिशत छूट।

(vii) पर्यटन का राज्य में प्रचार–प्रसार व विपणन।

(viii) साहसिक पर्यटन, नौकायन व ऊंट–घोड़े की सवारी को बढ़ावा।

(ix) पर्यटन को बढ़ावा देने वाले फिल्म शूटिंग, सिनेमा व थियेटर विकसित करने जैसे कार्यों को बढ़ावा।

(x) 60 लाख रूपये तक का निवेश करने वाली इकाई को ब्याज में 2 प्रतिशत की छूट दी गई।

राजस्थान में पर्यटन विकास हेतु किये जा रहे सरकारी प्रयास

(Programmes of Tourism Development in Rajasthan)

राज्य सरकार विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत राज्य में पर्यटन की विपुल सम्भावनाओं को देखते हुए पर्यटको के आवास, परिवहन सुविधाओ के अलावा अन्य सुविधा उपलब्ध कराने हेतु राज्य सरकार निरन्तर राजस्थान पर्यटन विकास निगम के माध्यम से निजी उद्यमियों को प्रोत्साहित कर इन सुविधाओं के विस्तार के प्रयास कर रही है। ऐसे पर्यटन स्थल जो पर्यटकों की जानकारी में नहीं रहे हैं, के विकास कार्य करवाकर उन्हें प्रचारित करके जानकारी में लाने के प्रयास किये जा रहें है।

अन्तराष्ट्रीय स्तर पर राजस्थान के पर्यटन को लोकप्रिय बनाने के लिए राजस्थान पर्यटन विकास निगम लिमिटेड (RTDC) की स्थापना 1 अप्रेल 1979 में एक निजी सीमित दायित्व वाली कम्पनी के रूप में हुई थी। इस निगम के मुख्य कार्य निम्न है।

(1) राज्य में पर्यटकों के लिए प्रोजेक्ट स्कीम बनाना तथा लागू करना ।

(2) पर्यटन महत्व के स्थानों का रख रखाव व विकास करना

(3) पर्यटकों के लिए निवास एवं भोजन आदि की सुविधा हेतु होटल, मोटल, टयूरिस्ट, बंगले आदि बनाकर संचालित करना।

(4) पर्यटकों के लिये परिवहन, मनोरंजन आदि सुविधाएं प्रदान करना तथा पैकेज – पर्यटन की व्यवस्था करना

(5) राज्य के पर्यटको को आकर्षित करने के लिए प्रचार सामग्री उपलब्ध कराना तथा उसका वितरण करना।

राजस्थान में पर्यटन विकास के कार्यक्रम

(1) मार्च 1989 में राज्य सरकार ने पर्यटन को उद्योग घोषित किया गया था। वर्तमान में राज्य सरकार निजी निवेशकों को बढावा देने की है और अनुदान 15% से बढ़ाकर 20% कर दिया गया है।

(2) जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, जैसलमेर, बीकानेर, अजमेर, चित्तौड़गढ़, माउण्ट आबू एवं पुष्कर में 562 परिवारो

के माध्यम से पेईंग गेस्ट योजना के अन्तर्गत 4 हजार से अधिक पर्यटको को ठहराने की सुविधा की है।

(3) विश्वप्रसिद्ध जैसलमेर किले के संरक्षण के लिए गन्दे पानी व सीवरेज निकास की योजना प्रारम्भ की गई है।

(4) राजस्थान सरकार पर्यटक स्थलो के विकास का कार्य कर रही है। अभी दरगाह शरीफ, अजमेर तथा पुष्कर के सर्वांगीण विकास की योजना पर काम कर रही है। इससे पहले कैलादेवी, गोगामेढी, सालासर जी, रामदेवरा, देशनोक व मेहन्दीपुर बालाजी में विकास कार्य करवाये गये थे।

(5) पर्यटकों के आवागमन में सुविधा के लिए विमान सेवा का विस्तार किया जा रहा है। अब प्रति सप्ताह उड़ानों की संख्या 9 से 42 हो गई।

(6) उदयपुर की मोतीडूंगरी एवं आमेर के महलों में दृश्य एवं श्रव्य (Light and Sound) शो प्रारम्भ किया गया है।

(7) राजस्थान में हेरीटेज होटलो (75 वर्ष से पुराने हवेली/किले को होटल का रूप में विकसित करना) की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि की जा रही है।

(8) समय–समय पर पर्यटन निति बनाकर, पर्यटकों की संख्या बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है।

(9) 2010–11 के बजट में पर्यटन को बढावा देने के लिए डेजर्ट सफारी, अन्तर्राष्ट्रीय पतंग व बैलून महोत्सव मनाने का कार्यक्रम रखा।

(10) 2011–12 में जंतर–मंतर को यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर की सूची में शामिल किया गया है। सरकार इसके सौन्दर्य पर व्यय करेगी।

(11) 2012–13 में शहरों में हैरीटेज वाक विकसित करने के साथ–साथ धार्मिक स्थलों में जल सुविधाओं का विकास पर जोर दिया।

(12) 2013–14 में पर्यटन निति को 31 मार्च 2014 तक बढ़ा दिया गया है।

2014–15 के परिवर्तित बजट में वसुन्धरा राजे के द्वारा पर्यटन के विकास हेतु प्रस्ताव –

(i) राज्य सरकार 'राजस्थान दिवस' को प्रतिवर्ष एक उत्सव के रूप में मनाएगी जैसे स्पेन में Tomatino Festival एवं गोवा में कार्निवाल मनाया जाता है।

(ii) गोडावण क्षेत्र में पाली, जालौर और सिरोही के रणकपुर, नरवारिया तथा जवाई बांध व बावड़ियों आदि का विकास किया जाएगा।

(iii) सिलिशेढ, जयसमंद आदि स्थलो का विकास किया जाएगा।

(iv) सांभर क्षैत्र में धार्मिक क्षैत्र, बसस्टेन्ड का विकास किया जाएगा।

(v) बूंदी, रणथम्भौर, झालावाड़, डीग व धौलपुर जिलो में पर्यटक स्थलों का विकास किया जाएगा।

(vi) बूढा पुष्कर (अजमेर), नाथद्वारा (राजसमंद) तथा केला देवी (करौली) जैसे प्रमुख धार्मिक स्थलों का विकास किया जाएगा।

(vii) मेगा डेजर्ट ट्यूरिस्ट सेन्टर (Mega Desert Toursit Centre) का निर्माण किया जाएगा।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि राज्य में पर्यटन के विकास की सम्भावनाए मौजूद है, पर्यटन को बढावा देने के लिए सरकारी एवं निजी प्रयासों में ओर गति लाने की आवश्यकता है।

नई पर्यटन इकाई नीति 2015 मुख्य बिन्दु

राजस्थान पर्यटन इकाई नीति–2015 जारी होने के साथ राज्य में नवीन निवेश प्रस्ताव प्राप्त होगे। इस नीति में प्रस्तावित आर्थिक लाभ एवं रियासतें उन पर्यटन इकाइयों को भी उपलब्ध होंगी। जो पूर्ववर्ती पर्यटन इकाई नीति–2007 के अन्तर्गत अनुमोदित हैं। उल्लेखनीय है कि राजस्थान पर्यटन इकाई नीति–2007 के तहत वर्ष 2015 तक लगभग 1,500 पर्यटन इकाइयों के प्रोजेक्ट पर्यटन विभाग द्वारा अनुमोदित किए गए हैं, जिनसे राज्य में लगभग 12,500 करोड़ रूपये का निवेश प्राप्त हुआ हैं।

राजस्थान पर्यटन इकाई नीति–2015 के मुख्य बिन्दु निम्नानुसार है :–

1. इस नीति में पर्यटन क्षेत्र की विभिनन इकाइयों को व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है, जिनमें अब होटल, मोटेल, हैरिटेज होटल, बजट होटल, रेस्टोरेन्ट, केम्पिंग साइट, माइस/कनवेन्शन सेन्टर, स्पोर्ट्स रिसोर्ट, रिसोर्ट, हैल्थ रिसोर्ट, एम्यूजमेन्ट पार्क, एनिमल सफारी पार्क, रोप वे, टूरिस्ट लग्जरी कोच, केरावेन एवं क्रूज

पर्यटन सम्मिलित हैं।

2. नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में नवीन पर्यटन इकाइयों का भूमि सम्परिवर्तन निःशुल्क होगा। इसी प्रकार नगरीय क्षेत्रों में नई पर्यटन इकाइयों से विकास शुल्क नहीं लिया जाएगा।
3. नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में वर्तमान हैरिटेज सम्पत्तियों एवं हैरिटेज होटलों को भू–सम्परिवर्तन शुल्क से मुक्त किया गया हैं।
4. भू–सम्परिवर्तन के लिए समय सीमा निर्धारित की गई है एवं यदि कोई भी प्राधिकरण निर्धारित समय में निर्णय करने में विफल रहता है तो, भूमि को स्वतः ही भू–सम्परिवर्तित मान लिया जाएगा।
5. हैरिटेज होटलों के आच्छादित क्षेत्र पर नगरीय विकास कर आवासीय दर से वसूल किया जाएगा किन्तु उनके खुले क्षेत्र पर नगरीय विकास कर नहीं लिया जाएगा।
6. हैरिटेज होटल के लिए बी.एस.यू.पी. शेल्टर फण्ड केवल सफल निर्मित क्षेत्रफल पर देय होगा।
7. हैरिटेज होटलों को पट्टा जारी करने के लिए पात्र माना जाएगा।
8. नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में हैरिटेज होटलों के लिए सड़क की चौड़ाई की कोई बाध्यता नहीं होगी।
9. पर्यटन इकाइयों को दोगुणा अर्थात् 2.25 से 4.50 एफ.ए.आर. अनुज्ञेय होगा।
10. हैरिटेज होटलों एवं पुरासम्पत्तियों के आच्छादित क्षेत्रफल का अधिकतम 10 प्रतिशत अथवा 1000 वर्गमीटर जो भी कम हो, में खुदरा वाणिज्यिक उपयोग स्वतः अनुज्ञेय होगा।
11. भवन योजना का अनुमोदन संबंधित विभाग द्वारा निर्धारित समय सीमा में किया जाएगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- मानव दैनिक जीवन की भागदौड़ की व्यस्तता के कारण मानसिक रूप से स्वस्थ होने के लिए प्रकृति के नजदीक जाकर एक अच्छा शकुन पर्यटन के रूप में महसूस करता है।
- राजस्थान की रग–रग में संस्कृति के साथ–साथ मेहमानबाजी मौजूद है इसी कारण राजस्थान में पर्यटन उद्योग के फलने–फूलने की आशा है।
- विदेशी मुद्रा अर्जन के रूप में पर्यटन उद्योग को विकसित करने में राज्य सरकार निजी सहभागिता की भी मदद ले रही है।
- पर्यटन उद्योग के बढ़ने पर स्थानीय निवासियो के रोजगार अवसरों में वृद्धि होती है।
- पर्यटन को बढ़ावा मिलने पर आय के साथ–साथ हमारी संस्कृति एवं सभ्यता भी बरकरार रहती है।
- राजस्थान में पर्यटन की दृष्टि से 10 मण्डल (Circuit) बनाये गए है।
- राज्य में पर्यटन को बढावा देने के लिए प्राचीन किले, दुर्ग, हवेलियां, धार्मिक स्थल एवं प्राकृतिक सौन्दर्य राजस्थान के पर्याप्त रूप से मौजूद है।
- मेले, त्यौंहार एवं उत्सव पर्यटकों को राजस्थान में घूमने के लिए आकर्षित करते है।
- राज्य सरकार निजी सहभागिता के साथ–साथ पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए पर्यटन नीति बनाकर इसको उद्योग का दर्जा दे रखा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जैसलमेर में स्थित है–
   (अ) नाहरगढ़ किला
   (ब) तारागढ़ का किला
   (स) सोनार किला
   (द) कोई नहीं ( )
2. राज्य में नए पर्यटन पैकेज में शामिल है।
   (अ) पैलेस ऑन व्हील्स
   (ब) हेरिटेज होटल
   (स) पेईंग गेस्ट स्कीम
   (द) उपरोक्त सभी ( )
3. पर्यटन की दृष्टि से राजस्थान में मण्डल है–
   (अ) 5 (ब) 7
   (स) 9 (द) 10 ( )
4. रणथम्भौर स्थित है।
   (अ) अलवर
   (ब) सवाई माधोपुर
   (स) भरतपुर
   (द) सीकर ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. माउण्ट आबू कौनसे जिले में स्थित है ?
2. ब्रह्मा जी का मन्दिर कहां पर है?
3. मीनाकारी के आभूषणो में राज्य का कौनसा शहर प्रसिद्ध है?
4. गोगा जी का मेला कहाँ पर मनाया जाता है?
5. विश्व धरोहर सूची में शामिल जंतर–मंतर कौनसे शहर में है?
6. पौद्धारों की हवेली कहाँ पर है?
7. घाना पक्षी विहार कौनसे जिले में है?
8. ताल छापर मृग अभ्यरण्य कहाँ पर है?
9. राजस्थान पर्यटन विकास निगम की स्थापना कब हुई?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वर्ष 2012–13 के बजट प्रावधानों में पर्यटन के लिए क्या प्रावधान किये गये?
2. राजस्थान पर्यटन विकास निगम के मुख्य कार्य लिखे?
3. वास्तु एवं स्थापत्य कला पर्यटन क्षैत्र के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आप अपने विचार प्रकट करिये?
4. दुर्ग एवं महलो का पर्यटन उद्योग में क्या महत्त्व है?
5. पर्यटन उद्योग के विकसित होने पर राज्य के नागरिकों की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। कैसे? समझाइये?
6. भारत में मुख्य तीन पर्यटन केन्द्र कौन–कौन से है?
7. पर्यटन विकास निगम के मुख्य कार्य क्या है?
8. पर्यटन क्षेत्र की तीन समस्याओं के नाम लिखिये?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पर्यटन का अर्थ लिखते हुए इसके महत्त्व बताइये?
2. पर्यटन की कौन–कौनसी समस्याएं है? उन्हें कैसे हल किया जा सकता है?
3. राजस्थान में पर्यटन के विकास पर निबन्ध लिखिए?
4. राजस्थान में प्रमुख पर्यटन स्थल कौन–कौन से है विस्तार से लिखिये?

उत्तरमाला

1. (स) 2. (द) 3. (द) 4. (ब)

संदर्भ ग्रंथ

1. आर्थिक समीक्षा 2014–15
2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था – डॉ. छीपा एवं शर्मा, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

राजस्थान सैलानियों की सैरगाह

राजस्थान भारत के उन बिरले प्रदेशों में से एक है जिसका नाम अपनी गौरवमयी परम्परओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। वीरता, शौर्य और पराक्रम की प्रतीक राजस्थानी धरती प्राचीनता की दृष्टि से अपनी विलक्षण विशेषता रखती है। पौराणिक गाथाओं में वर्णित अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की घटनास्थली रहा यह ऐसा प्रदेश है जहाँ के रणबांकुरों की गौरव गाथाएं भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखी गई हैं। वीर प्रसविनी राजस्थानी भूमि का इतिहास महाराणा कुम्भा और राणा सांगा के शौर्य, जयमल पत्ता के बलिदान, महाराणा प्रताप के स्वदेशाभिमान, भामाशाह की उदारता, पद्मिनी के जौहर, पन्नाधाय एवं गौराधाय के वात्सल्य और वीर दुर्गादास की स्वामीभक्ति के अनुकरणीय उदाहरणों से भरा है। अदम्य साहस और वीरता के साथ ही यहाँ के नयनाभिराम दर्शनीय स्थल और ऐतिहासिक महत्त्व के मनोरम स्मारक सैलानियों को सैर के लिए आमंत्रित करते हैं। यहाँ के दर्शनीय स्थल पर्यटकों को इतना भाते हैं कि वे एक बार ही नहीं बल्कि बार–बार आना चाहते हैं।

विश्व में गुलाबी नगर के नाम से विख्यात राजस्थान की राजधानी जयपुर अपनी मनमोहक स्थापत्य कला, अद्वितीय नगर नियोजन और गुलाबी सौंदर्य छटा के लिए लोकप्रिय रहा है। सन् 1727 में महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा बसाये गए इस ऐतिहासिक नगर के भव्य राजमहल, स्मारक एवं किले न केवल वैभवशाली अतीत को प्रतिबिम्बित करते हैं बल्कि वास्तुशिल्प की दृष्टि से भी बेजोड़ हैं। यहाँ की समृद्ध संस्कृति और कलाओं की मनभावन परम्पराएं पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

अरावली पर्वतमालाओं से घिरे इस शहर की नयनाभिराम झांकी ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी चित्रकार ने इसे अपने कैनवास पर उकेरा हो। सैलानियों के स्वागत को आतुर शहर के बड़े–बड़े प्रवेश द्वार, भव्य एवं मनमोहक महल, छतरियां और जाली–झरोखे मध्यकालीन कला और आधुनिकता का अनोखा संगम है। जयपुर का ज्यामितीय स्वरूप, गणितीय परिशुद्धता और अनूठी संरचना इसे अद्वितीय बनाती है। जयपुर का हवामहल, जन्तर–मन्तर, सिटी पैलेस, आमेर का किला एवं महल, जयगढ़ और नाहरगढ़ दुर्ग अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए भी विख्यात है।

वर्ष 2001 से जयपुर के आकर्षण में विधान सभा का नया भवन भी जुड़ गया है। राजस्थानी वास्तुशिल्प और स्थापत्य कला का दिग्दर्शन कराने वाले इस भवन का बाहरी भाग जोधपुर, बंसी पहाड़पुर और करौली के पत्थरों से निर्मित होने के कारण गुलाबी आभा लिये हुए है। लगभग 17 एकड़ क्षेत्रफल में फैले तथा 6 लाख वर्ग फीट आच्छादित क्षेत्र वाले इस भवन में कमानियां, छतरियां, मेहराबें, जाली–झरोखे, बारादरियां तथा टोडें आदि सभी राजस्थान की प्रसिद्ध कलात्मक शैली में निर्मित किए गए हैं। प्रथम तल पर भवन के मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही जयपुर शैली के शिल्प एवं चित्रकला से सुसज्जित उत्तरी प्रवेश–कक्ष (लाउंज) है जहां के भित्ति चित्रों में रंगों और कल्पना का अनोखा समन्वय दृष्टिगत होता है। भवन की अन्य दिशाओं में भूतल पर 60 फीट ऊँचे द्वार हैं जिनमें प्रवेश करने के बाद विभिन्न शैलियों से सुसज्जित एवं आकर्षक प्रवेश कक्ष (लाउंज) बने हुए हैं। इन प्रवेश कक्षों को मेवाड़, मारवाड़ एवं शेखावाटी शैली के शिल्प एवं भित्ति चित्रों से सुसज्जित किया गया है। पश्चिमी प्रवेश कक्ष मेवाड़ शैली, दक्षिण कक्ष मारवाड़ शैली तथा पूर्वी कक्ष शेखावाटी शैली का उत्कृष्ट नमूना है। इन कक्षों की छतों, दीवारों, स्तम्भों तथा फर्श की कलात्मक डिजाइनों से इनकी विशिष्टता का दिग्दर्शन होता है। पक्की आराइश के ऊपर प्राकृतिक रंगों से बनाए गए भित्ति चित्रों ने इन कक्षों को मोहक और चित्ताकर्षक बनाने के साथ ही भव्य स्वरूप प्रदान किया है।

राजस्थान का प्रत्येक शहर अपने–अपने ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थलों के लिए जाना जाता है। मरुधरा का हृदयस्थल अजमेर विभिन्न शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक धाराओं का त्रिवेणी संगम है। यह प्राचीन नगर तीर्थराज पुष्कर की पावनता और ख्वाजा गरीब नवाज के रहम तथा गिरजाघरों में बजती घंटियों की मधुर झंकार से धार्मिक विविधता का प्रतीक बना हुआ है। हिन्दुस्तान की धरती सदियों से अपने सूफियों और संतों के माध्यम से संसार को भाईचारे और विश्व बन्धुत्व का पैगाम पहुँचाती है।

राजस्थान की रसवन्ती भूमि का लोक जीवन पारम्परिक त्यौहारों, मेलों, उत्सवों और अनुरंजनों से सदा ही महकता रहता है। 'सात वार, नौ त्यौहार' कहावत से ही यहाँ के त्यौहारों की अधिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ की सांस्कृतिक परम्पराएं और जनजीवन की झांकियां रंगीले राजस्थान की ऐसी छवि अंकित करती हैं जो भुलाये नहीं भूलती। तीज और गणगौर यहाँ के लोकप्रिय पर्वों में प्रमुख हैं। राजस्थान की लोक संस्कृति, लोक गीत–संगीत और नृत्य लोगों के जीवन में रच–बस गए हैं।

अध्याय–5.5

राजस्थान के आर्थिक विकास में बाधाएं एवं निवारण के उपाय
(Constraints in the Economic Development of Rajasthan and Measures to Overcome them)

किसी भी राज्य का आर्थिक विकास न केवल उसके सकल उत्पाद में वृद्धि से होता है बल्कि उसमें शिक्षा का स्तर, स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार, सामाजिक सुदृढ़ता तथा आधारित संरचनाओं के विकास से ही संभव हो पाता है।

राजस्थान में आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए 1951 से प्रथम पंचवर्षीय योजना के रूप में योजना बद्ध विकास प्रक्रिया को अपनाया गया है। पिछले 65 वर्षो से निरन्तर 11 पंचवर्षीय तथा 6 वार्षिक योजनायें पूर्ण करने के बावजूद आज भी राज्य ने एक विकसित राज्य का दर्जा प्राप्त नहीं किया।

राजस्थान के आर्थिक विकास के उच्च स्तर पर पहुंचने के मार्ग में अनेक बाधाएं मौजूद हैं जो निम्न हैः–

_राजस्थान के आर्थिक विकास में बाधाएँः–

(अ) प्राकृतिक व भौगोलिक बाधाएं
(Natural and Geographical Constraints)

1. पश्चिम का विशाल रेगिस्तान राजस्थान के पश्चिमी भाग में राज्य के कुल भूभाग का लगभग 61 प्रतिशत भाग मरूस्थलीय है। जो विशाल रेत के धोरो से घिरा है। इसके अन्तर्गत राज्य के 12 जिले आते हैं। मरूस्थल के कारण यहां कृषि क्रियायें, उद्योग आदि सभी के विकास में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। रेत के धोरों के बीच परिवहन सुविधाएं भी विकसित कर पाना बेहद कठिन होता हैं।

2. अरावली पर्वत माला की स्थिति (Position of Aravali Range)

अरावली पर्वत माला राज्य के दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर स्थित है। जो राज्य को दो भागों में बांटती है। अरावली की स्थिति के कारण राज्य के पूर्वी जिलो में वर्षा का स्तर ऊँचा रहता है। किन्तु पश्चिमी जिले वृष्टि छाया प्रदेश की श्रेणी में आने के कारण सूखे रह जाते है। इन जिलो में वर्षा का स्तर काफी काम रहता है। यही नही अरावली क्षेत्र खनिज सम्पदा से भी सम्पन्न है। जिससे यहां औद्योगिक विकास सम्पन्न हुआ किन्तु पश्चिमी जिले इससे वंचित है। इस प्रकार अरावली ने प्रदेश को सौगात के साथ–साथ असमानता भी प्रदान की है।

3. मानसून पर निर्भरता (Dependence on Rain)

राज्य में वर्ष भर बहने वाली नदी के नाम पर केवल चम्बल नदी है। यहां कृषि कार्य तथा अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जलापूर्ति हेतु मानसून पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यदि किसी वर्ष मानसून ने राज्य की अनदेखी कर दी तो पीने के पानी के लिए भी काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कृषि जो अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, काफी नुकसान सहना पड़ता है। किसान मानसून के अच्छे रहने की आशा में बीजारोपण तो कर देते है। किन्तु वर्षा न होने की स्थिति में विशाल क्षेत्र में फसले बर्बाद हो जाती है और किसानों के साथ राज्य की भी कमर टूट जाती है।

4. अकाल एवं सूखा (Draught and Desert)

'पग पूंगल, धड कोटडे', बाहु बिकानेर, जावै लादै बाड़मेर ठावो जैसलमेर राज्य में यह कहावत अकाल के लिए प्रचलित है अर्थात् राज्य ने अकाल की विभीषिका को अनेकों बार झेला है। 1991–92 और 2002–03 में तो सम्पूर्ण राज्य अकाल की चपेट में था। ऐसी स्थिति में राज्य को विकास की ओर लगाए

जाने वाले संसाधनों को अकाल निवारण तथा उसके प्रभावों से जनसामान्य को बचाने में लगाना पड़ता है। अकाल से एक तो भारी आर्थिक क्षति होती है तो दूसरी और विकास भी अवरूद्ध होता है। सूखे तथा अकाल का प्रतिकूल प्रभाव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर दृष्टिगोचर होता है। सरकार को लगान की भारी हानि होती है, तो औद्योगिक क्षेत्र को कच्चे माल की समस्या का सामना करना पड़ता है। रोजगार की कमी से क्रय शक्ति घट जाती है तथा वस्तुओं व सेवाओं की मांग में कमी आती है और अर्थव्यवस्था गहरे संकट में चली जाती हैं।

5. क्षेत्रीय विषमता (Regional Difference)

राजस्थान अपने अन्दर अनेक भिन्नता लिए हुए है। जहां एक ओर मरूस्थल, तो दूसरी ओर पर्वतमाला दक्षिण में पठार तो पूर्व में मैदान, इन सब भिन्नताओं के कारण राज्य एक जुट होकर विकास नही कर पाए। राज्य को क्षेत्रीय भिन्नताओं के अनुसार अलग–अलग योजनाएं तथा नीतियों का निर्धारण करना पड़ता है।

6. विशाल बंजर भूमि (Large desert land)

राजस्थान में रेगिस्तान तथा डांग व बीहड क्षेत्रों में विशाल भू–भाग बंजर भूमि के रूप में व्यर्थ पड़ा हुआ है। जिस पर केवल कंटीली झाड़ियों का विस्तार है ऐसी भूमि राज्य के उत्पादन में कोई योगदान नही दे पाती है।

(ब) आर्थिक बाधाएँ
(Economic constraints)

1. सिंचाई साधनों का अभावः– राजस्थान जलाभाव की स्थिति वाला राज्य है। वहां सतही तथा भूमिगत दोनों ही जल संसाधन दुर्लभ है। मरूस्थलीय जिलों में तो सदैव पेयजल संकट बना रहता है। पीने के पानी के लिए कई किलोमीटर दूर तक जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यहां कृषि, पशुपालन तथा औद्योगिक विकास को सुदृढ़कर पाना अत्यन्त कठिन हैं।

2. कृषि सहायक क्रियाओं का अभावः–राज्य की अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्यो में संलग्न है जो स्वयं मानसून पर निर्भर हैं। सिंचाई सुविधाओं के अभाव तथा वर्षा की कमी के कारण कृषिगत उत्पादन स्तर काफी नीचा है। किन्तु फिर भी किसानों के पास आय के अन्य वैकल्पिक साधन जैसे–पशुपालन, मुर्गीपालन, कुटीर उद्योग आदि का अभाव है। जिससे किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय है क्योंकि कृषि उत्पादन से वे अपना गुजारा बेहद कठिनाई पूर्वक कर पाते हैं।

3. तकनीकी का अभाव :– राजस्थान खनिजों का अजायबघर कहलाता है किन्तु उचित तकनीकी के अभाव में हम इन खनिजों का विदोहन तथा समुचित उपयोग नहीं कर पाते हैं। थार के मरूस्थल में प्राकृतिक गैस–पैट्रोलियम तथा कोयले के विशाल भण्डार होने के बावजूद इतने वर्षो तक राज्य उन्हे विदोहन नही कर पाया इसके अतिरिक्त उन्नत तकनीकी के अभाव में राज्य का औद्योगिक विकास भी धीमा रहा।

4. ऊर्जा की कमीः– किसी भी क्षेत्र के विकास में आधारभूत संरचना महत्त्वपूर्ण होती है। किन्तु राज्य को इसी के अभाव का सामना करना पड़ता है। यहां विद्युत उत्पादन मांग की अपेक्षा काफी कम है। इसके पीछे मुख्य कारण उच्च कोटि के कोयले की अनुपयुक्तता तथा जल परियोजना का अभाव है। तापीय विद्युत उत्पादन के लिये उच्च कोटि का कोयला अन्य राज्यों से मंगवाना पड़ता है तथा जल विद्युत के लिए अन्य राज्यों से समझौते करने पड़ते हैं।

5. निवेश का अभाव :– राजस्थान उद्योग–पतियों तथा औद्योगिक घरानों की जन्म स्थली रहा है किन्तु उन घरानो ने राज्य में निवेश के लिए कोई उत्सुकता नही दिखाई। राज्य न तो इन घरानों को और न ही विदेशी निवेशको को आकर्षित कर पाया। यहाँ की भौगोलिक स्थिति तथा ऊर्जा की कमी को देखते हुए निवेशक राज्य में निवेश नही करना चाहते हैं। जिससे यहाँ औद्योगिक विकास सार्वजनिक क्षेत्र पर ही निर्भर है। यही कारण है कि राज्य औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा है।

6. आधारभूत संरचना का पिछड़ापनः– राज्य के मरूस्थलीय पहाड़ी तथा बीहड व डांग क्षेत्रों में परिवहन सुविधाओं का अभाव है। सड़क मार्गो की दशा बेहद खराब है तथा रेल्वे लाईनों का पूरे राज्य में अभाव है। रेल्वे सुविधाओं के क्षेत्र में राज्य अभी भी काफी पिछड़ा है। परिवहन सेवाएं राज्य के आर्थिक विकास की नस होती है। किन्तु राज्य के लिए इनका अभी भी एक चुनौती है।

7. गरीबी व बेरोजगारीः– स्वतंत्रता के पश्चात् विकास की आर्थिक नियोजन प्रक्रिया अपनाने के बावजूद भारत में गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्या प्रमुख रूप से विद्यमान हैं। आज देश के नीतिकार व अर्थशास्त्रियों के समक्ष यह एक प्रमुख चुनौती है कि इस समस्या से कैसे छुटकारा पाया जावे?

प्रारम्भ में यह माना गया था कि जैसे–जैसे विकास होगा, गरीबी व बेरोजगारी जैसी समस्याएं स्वतः ही समाप्त हो

जाएगी, इसी कारण अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर बढ़ने पर बल दिया गया लेकिन आज यह समस्या पहले से अधिक भयावह रूप में हमारे सामने मौजूद हैं। आज भारत गरीबी के कुचक्र में फंस चुका हैं।

भारत में गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करने के लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा प्रयास किये गये, लेकिन उचित परिणाम प्राप्त नही हो सके। भारत में योजना आयोग तथा वित्त आयोग द्वारा राज्य सरकारों को प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता में गरीबी को वितरण का एक आधार मानने के कारण यह देश के नीतिकारों, अर्थशास्त्रियों तथा राजनेताओं के लिए एक महत्वपूर्ण समस्या हैं।

8. केन्द्र सरकारों की पक्षपात पूर्ण नीतिः– राजस्थान ने अधिकांश समय केन्द्र सरकार की उपेक्षा का सामना किया है। देश के सबसे बड़े राज्य के बावजूद राजस्थान को केन्द्र की तरफ से बजट में उचित स्थाान नहीं दिया जाता है। यहाँ मरूस्थली क्षेत्र के उत्थान तथा जनजातियां क्षेत्र के विकास की सदैव अनदेखी की गई हैं।

(स) सामाजिक बाधाएं
(Social constraints)

1. जनसंख्या वृद्धि :–राजस्थान की बढ़ती जनसंख्या भी आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध हो रही है। राज्य की दशकीय वृद्धि दर भारत के कुल दशकीय वृद्धि दर से बहुत ऊँची है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए संसाधन उपलब्ध करवा पाना बेहद कठिन होता है। दूसरी ओर लोगों को रोजगार, शिक्षा तथा स्वास्थ्य एवं आवासीय सुविधाओं को प्रदान कर पाना भी संभव नहीं हैं।

2. शिक्षा व साक्षरता का स्तर :–राज्य की जनसंख्या में वृद्धि दर देश से आगे है किन्तु वह साक्षरता दर में नीचा है। 2011 की जनगणना में राज्य का साक्षरता स्तर 67.1 प्रतिशत था। जो किसी भी राज्य के आर्थिक विकास के लिए एक शुभ संकेत नही है। राज्य की महिला साक्षरता दर तो मात्र 52.7 प्रतिशत थी। इसमें भी उच्च शिक्षा दर तो बेहद कम है। अतः बिना गुणात्मक जनसंख्या के कोई भी राज्य विकसित नही हो सकता है। राज्य ने शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास के लिए अनेक योजनाएं क्रियान्वित की है। किन्तु अभी भी लोगों तक इन सुविधाओं का विस्तार होना बाकी है। राज्य के ग्रामीण तथा दूर–दराज के लोगों को उचित स्वास्थ्य सुविधा आज भी एक चुनौती भरा कार्य हैं।

3. रूढ़िवादी सामाजिक संरचनाः– राजस्थान की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है जहाँ आज भी अनेक रूढ़िवादी परम्पराएं जैसे– बालविवाह, दहेज प्रथा, लिंगभेद, छुआछूत तथा जादू टोना अंधविश्वास प्रचलित है। ग्रामीण जनसंख्या में साक्षरता का स्तर भी काफी कम है। जिससे वे इन परम्पराओं से बाहर नही निकल पाते हैं। ऐसा समाज राज्य के विकास में बाधक सिद्ध होता है।

आर्थिक विकास में बाधाओं को दूर करने के उपाय

राज्य के शुष्क प्रदेश में सिंचाई की सम्भावनाएं सीमित होने से उपलब्ध नमी के सरंक्षण व कुशल उपयोग पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। फसलों का प्रारूप ऐसा हो जो नमी के अनुकूल हो, इससे फसलों के उत्पादन को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

राज्य के आर्थिक विकास में संयुक्त क्षेत्र का विकास करना चाहिए जिससे अनियंत्रित पूंजीवाद की शोषण प्रवृत्ति एवं सार्वजनिक क्षेत्र की अर्कमण्यता व अकार्यकुशलता के बीच अधिक व्यावहारिक मार्ग निकाला जा सकें।

1. शुष्क खेती को बढ़ावा दिया जायेः– राज्य में वर्षा की कमी तथा सिंचाई साधनों के अभाव को देखते हुए यहाँ कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों के उत्पादन को बढ़ावा दिया जाए, साथ ही बूंद–सिंचाई तथा फव्वारा सिस्टम को विस्तृत क्षेत्र में प्रचारित किया जाये। बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के प्रयत्न किए जाए तथा वहां ऐसी कृषि क्रियाओं को विकसित किया जाए तो उसके अनुकूल हो।

2. कृषि सहायक क्रियाओं का विकासः– राज्य में किसानों की दशा सुधारने के लिए उन्हे खेती के साथ–साथ पशु पालन मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन तथा छोटे–छोटे कुटीर उद्योगों की स्थापना के लिए प्रेरित किया जाये तथा वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाए जिससे किसानों की आर्थिक दशा सुधरने तथा कृषि पर निर्भरता कम होगी। राज्य के सकल घरेलू उत्पाद तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा।

3. मरूस्थल के प्रसार को रोका जाएः– राज्य में बढ़ते मरूस्थलीय प्रसार को रोकने के लिए मरूस्थलीय क्षेत्रों में सघन वृक्षारोपण किया जाए। उस क्षेत्र में ऐसे वृक्षों को रोपित किया जाए जो वहाँ की मृदा एवं प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल हो। राज्य के जिन क्षेत्रों में पेयजल का अभाव पाया जाता है,

उनमें जल–पूर्ति के कार्यक्रम तेजी से लागू करने चाहिए। जल संसाधनों की वृद्धि हेतु निर्माणाधीन सिंचाई परियोजनाओं को शीघ्र पूर्ण करवाने का प्रयत्न करना चाहिए। नदियों को जोड़ने जैसी महत्वकांक्षी योजना को धरातल पर लाने का प्रयास करना चाहिए।

4. **लघु एवं कुटीर** उद्योगों को अधिक विकसित किया जाए क्योंकि राज्य में वृहद उद्योगों के स्थापना के लिए पूँजी का अभाव है। इनकी स्थापना से एक तो लोगों को रोजगार प्राप्त होगा दूसरा राज्य की आर्थिक दशा में सुधार होगा।

5. **सूखा एवं अकाल प्रबन्धनः–** राज्य में मानसून की निर्भरता को कम करने के लिए वर्षा जल को संग्रहित किया जाये। कुएं बावडियाँ, तालाबों तथा जोहड़ों का निर्माण तथा उनके पुर्नभरण की समुचित व्यवस्था की जाए। इससे सूखे का समाधान हो सकेगा।

6. **ऊर्जा के गैर परम्परागत संसाधनों का विकासः–** राजस्थान में सौर ऊर्जा व पवन ऊर्जा जैसे गैर परम्परागत संसाधनों के विकास की प्रचुर संभावनाएं है। अतः इन संसाधनों का अधिक से अधिक विकास एवं उपयोग करके ऊर्जा संकट से उभरा जा सकता है।

7. **निवेशको को आकर्षित करनाः–** राज्य सरकार देशी तथा विदेशी निवेशकों को सुविधाएँ प्रदान करके राज्य में निवेश हेतु आकर्षित करने का प्रयास करें जिससे राज्य का औद्योगिक विकास संभव हो।

8. **पर्यटन क्षेत्रों का विकासः–** राजस्थान पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। राज्य में प्रयाप्त मात्रा में देशी व विदेशी पर्यटक प्रतिवर्ष आते हैं अतः राज्य के पर्यटन में वृद्धि करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न करने चाहिए। राज्य की हवेलियां, किले, धोरे, पहाड़ी क्षेत्र सभी पर्यटकों को लुभाते है। अतः राज्य सरकार को इस क्षेत्र में विशेष ध्यान देकर उन्हे विकसित करने का प्रयास किया जाये ताकि लोगो को रोजगार प्राप्त हो तथा राज्य का आय में वृद्धि हो।

9. **आधारभूत संरचनाओं का विकासः–** राज्य सरकार द्वारा राज्य में शिक्षा स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, बैकिंग, सिंचाई तथा ऊर्जा जैसी आधारभूत संरचनाओं को विकसित किया जाना चाहिए जिससे कृषिगत तथा औद्योगिक विकास को मजबूती मिले।

10. **राज्य में औद्योगिक व खनिज विकास** के भावी संभावनाओं का पता लगाने के लिए आर्थिक सर्वेक्षण अधिक मात्रा में किया जाना चाहिए। खनिजों का समुचित तथा विवेक पूर्ण विदोहन किया जाए।

11. **पशुसम्पदा का विकासः–** राज्य में डेयरी तथा मुर्गीपालन जैसे क्षेत्रों के विकास की प्रबल संभावनाएं है तथा इनके विकास एवं विस्तार तथा नस्ल सुधार पर विशेष ध्यान दिया जाए। खनिज आधारित लघुस्तरीय इकाईयां संचालित कर उन्हें वृहद रूप में परिवर्तित किया जावे ताकि अधिक रोजगार व प्रतिफल मिले।

12. **हस्तशिल्प को बढ़ावाः–** राज्य हस्तशिल्प तथा कलाकृतियों का संकेन्द्रण है अतः इन क्षेत्रों को विकसित कर लोगों को रोजगार तथा आय में वृद्धि की जाये। राज्य में रंगाई छपाई, बन्धेज, लहरिया, गोटा पाती तथा लाख का काम आदि देशभर में प्रसिद्ध है एवं राज्य सरकार द्वारा इन क्षेत्रों को विशेष रूप से विकसित कर लोगों को रोजगार तथा आय बढ़ाने में सहायक बन सकती हैं।

13. ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत तथा आधारित सुविधाओं को विकसित किया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार करके सामाजिक पिछड़ेपन को दूर किया जाना चाहिए। विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता एवं जनजाति के क्षेत्रों में ध्यान देने की आवश्यकता हैं ताकि ये क्षेत्र आर्थिक विकास की मुख्यधारा से जुड़ सकें।

14. वित्तिय संसाधनों के अपव्यय को रोकने एवं रोजगार को बढ़ाने की दृष्टि से वित्तिय प्रबन्ध पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए विश्लेषकों एवं विशेषज्ञों की सक्षम टीम बनाकर सम्पूर्ण नियोजन तन्त्र को अधिक व्यापक बनाया जा सकता हैं।

इसके लिए प्रशासनिक कुशलता में सुधार किया जाना चाहिए। कार्यकुशल एवं ईमानदार व्यक्तियों के लिए उचित प्रेरणाएं, पुरूस्कार व संरक्षण तथा अकार्यकुशल लोगों के लिए सजा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

15. जनसंख्या वृद्धि दर को नियन्त्रित तथा साक्षरता दर को बढ़ाने के प्रयास किए जाए। जनसंख्या पर प्रभावी नियंत्रण के लिए महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता, परिवार नियोजन, परिवार कल्याण जैसे कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए।

राज्य का आर्थिक विकास आधारित संरचनाओं के साथ–साथ शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सामाजिक संरचना के मजबूत होने से होता हैं।

16. बढ़ते उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं एकीकरण के परिपेक्ष्य में विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए राज्य स्तर पर विभिन्न एजेंसियों, संस्थाओं, बोर्डों आदि के बीच सही समन्वय एवं सहयोग होना चाहिए। विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में जन सहयोगिता को बढ़ावा देना चाहिए।

इस प्रकार हमें भूतकाल के अनुभवों का लाभ उठाकर भावी योजना को अधिक सक्रिय व सफल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि राज्य में पिछड़ेपन को दूर करके विकास की गति तेज की जा सकें।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- राजस्थान में आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का रास्ता अपनाया गया।
- राजस्थान में लगभग 61 प्रतिशत भू–भाग में मरूस्थल है।
- अरावली पर्वतमाला राज्य के दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर स्थित हैं।
- "पग पूंगल घड़ कोटडे, बाहु बीकानेर जावै लादे बाड़मेर ठावो जैसलमेर" अकाल की कहावत है।
- जलाभाव के कारण कृषि मानसून पर निर्भर है तथा मानसून भी अपर्याप्त, अनियमित रहता है।
- राजस्थान में तकनीकी तथा निवेश का अभाव है।
- राजस्थान में सामाजिक व आर्थिक आधार भूत संरचना पिछड़ी हुयी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. राजस्थान में प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ की गयी।
   (अ) 1950
   (ब) 1951
   (स) 1981
   (द) 1956 ( )
2. राजस्थान में मरूस्थलीय जिलों की संख्या है?
   (अ) 10
   (ब) 15
   (स) 12
   (द) 5 ( )
3. राजस्थान अकाल की चपेट में था ?
   (अ) 1991–92 व 2002–03
   (ब) 1991–92 व 2003–04
   (स) 1990–91 व 2002–03
   (द) 1990–91 व 2000–01 ( )
4. राजस्थान में साक्षरता का प्रतिशत है ?
   (अ) 67.1
   (ब) 67.2
   (स) 66.1
   (द) 66.2 ( )
5. ऊर्जा का गैर परम्परागत स्रोत हैं ?
   (अ) केवल सौर ऊर्जा
   (ब) केवल पवन ऊर्जा
   (स) सौर ऊर्जा व पवन ऊर्जा
   (द) इनमें से कोई नहीं ( )
6. ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में बाधक तत्व हैं ?
   (अ) बाल विवाह
   (ब) अशिक्षा
   (स) लिंगभेद
   (द) सभी ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थान में अरावली पर्वतमाला किस ओर स्थित है ?
2. अकाल किसे कहते है?
3. क्षेत्रीय भिन्नता से क्या तात्पर्य है ?
4. शुष्क कृषि का क्या तात्पर्य है ?
5. किस प्रकार के उधोग में पूंजी की आवश्यकता कम होती है ?
6. राजस्थान के कौनसे भाग में पठार पाया जाता हैं ?
7. राजस्थान के कौनसे भाग में मैदानी इलाका हैं ?
8. राजस्थान के पश्चिमी जिलों में वर्षा का अभाव क्यो रहता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थान के आर्थिक विकास में भौगोलिक बाधाएं बताइयें ?
2. आर्थिक आधारभूत संरचना आर्थिक विकास को कैसे प्रभावित करती है?
3. राजस्थान में सामाजिक रितिरिवाज आर्थिक विकास को अवरूद्ध करते है स्पष्ट करें?
4. राजस्थान में उद्योगपति निवेश क्यों नही करना चाहतें ?

5. राज्य के पश्चिमी जिलों में वर्षा का अभाव क्यों रहता हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थान के आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं का वर्णन करों?
2. राजस्थान के आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय बताओ?
3. राजस्थान के आर्थिक विकास में बाधाएं एवं निवारण पर आप अपना मौलिक लेख लिखो।

उत्तरमाला

(1) ब (2) स (3) अ (4) अ (5) ब (6) द

संदर्भ ग्रंथ

1. आर्थिक समीक्षा 2014–15
2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था – डॉ. छीपा एवं शर्मा, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर